प्रकाशकीय

जगत्पिता, सर्वेश्वर, आनन्दचन्द्र भगवान श्री कृष्ण को कोटि-कोटि धन्यवाद है कि उन्होने हमारी चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण की। वेद केवल हिन्दू जाति का ही शिरोधार्य महाग्रंथ नही है। अपितु विश्व भर के लिए ज्ञान का प्रथम कोष व स्रोत है। वेद स्वयं भगवान की वाणी है। अत. प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे अपार श्रद्धा है।

हमारी प्रकाशन-संस्था सदैव भारतीय संस्कृति के जाज्वल्यमान रत्नों को प्रकाशित करने के लिए कटिबद्ध रही है। इसी योजना के अन्तर्गत हम, रामायण, महाभारत, पुराण आदि महान् ग्रथो का प्रकाशन कर चुके हैं और अब वेदो के प्रकाशन का कार्य भी सम्पन्न हो चुका है। हमारे हृदय में चिरसंचित अभिलाषा थी कि भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ वेदो के मौलिक भावो को अक्षुण्ण रूप से प्रस्तुत किया जाय। अभी तक वेदो के जितने भी भाष्य प्रकाशित हुए हैं वे सब विभिन्न मतमतान्तरों से प्रभावित रहे हैं। जिससे वे सम्प्रदाय के प्रचार मात्र बन कर रह गए हैं।

अन्त मे हम गोवर्धन निवासी श्री १०८ बाबा श्याम सुन्दर दास जी के ऋणी हैं जिनकी चरणों की प्रेरणा से ही यह कार्य सम्पन्न हो सका।

विनीत—

प्रकाशक

भूमिका

वेद ईश्वर कृत और सब विद्याओ का मूल है, उसके चार भेद विषय की सुगमता के लिए किये गये हैं। अथर्व वेद मे जिन विषयो का वर्णन दिया है उनके ज्ञान एव आचरण से भौतिक उन्नति हो॰र राज्य म सुख शान्ति रहती है कहा भी है—

यस्य राज्ञोजनपदे अथर्वा शांति पारग।
निवसत्यादि तद्राष्ट्र वधते निरुपद्रवम् ॥

जिस राष्ट्र के राज्य मे शान्ति विधान और अथव वेद का ज्ञाता विद्वान रहता है वह राष्ट्र सब प्रकार के उपद्रवो से रहित होकर उन्नति करता है।

अथर्व वेद भी चौथा वेद है वेद की त्रयी विद्या ज्ञान कर्म और उपासना का वर्णन चारो वेदो मे ही है इसलिए चारो वेद ही त्रयीविद्या कहलाते हैं तीन ही नही जैसी कि अनेक व्यक्तियो को भ्राति हो रही है। महाभारत मे इसको और भी स्पष्ट कर दिया है।

त्रयी विद्या मवेक्षेत वेदे सूक्त मयाङ्गत ।
ऋक्साम वर्णाक्षरता यजुषोऽयवण स्तया ।

महाभारत २ ॥ प १३५

अर्थात ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद और अथर्ववेद को त्रयीविद्या कहते हैं। समस्त ब्राह्मण ग्रन्थो मे तीनो वेदो के साथ अथर्व वेद का भी वर्णन है यथा—

अर अस्य महती भूतस्य निश्वसित मेतद ऋग्वेदो ।
'ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस' ॥

बृहदारण्यकउपनिषद

"भेषज वा अथर्वणानि" साण्ड्य महाब्राह्मण

अर्थात अथर्व वेद मे औषध विद्या है

यज्ञ कर्म सम्पादन में जो ब्राह्मण ब्रह्मा पद पर नियुक्त होता है - वह अथर्व वेद का ही विशेषज्ञ होता है । कहा है—

ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेनाध्वर्यु सामवेदेनोद्गाता अथर्ववेदा ब्रह्मा ॥

अर्थात् ऋग्वेद का ज्ञाता होता यजुर्वेद का अध्वर्यु सामवेद का उद्गाता और अथर्व वेद का ब्रह्मा नियुक्त करे। वैदिक साहित्य मे अथर्व वेद के चार नाम आते हैं १. निगद २. ब्रह्म ३ अथर्व ४. छद । ये चारों नाम चार गुणों के कारण व्यवहृत हुए हैं मीमांसा में निगद नाम के सम्बन्ध मे लिखा है—

'निगदो वा चतुर्थस्याद्धर्म विशेषात्'

अर्थात् विशेषता के कारण ही निगदनामक चतुर्थ वेद का आस्तित्व है । निगद नाम सरलता के कारण पड़ा है इसके मंत्र सरल अर्थ बोधक हैं । इसका दूसरा नाम ब्रह्म भी है । यज्ञ का अधिष्ठाता ब्रह्मा इसी वेद की विशेषता के कारण नियुक्त होता है । ब्रह्म वेद का उल्लेख अन्य वेदों के साथ इस प्रकार आया है—

तमृचश्च सामानिच यजू षिच ब्रह्मच ॥ अथर्व वेद १५ । ७ । ८
"चत्वारो वाइमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदो ब्रह्मवेद ।"
—गोपथ ब्राह्मण

तीसरा नाम अथर्व है अथर्व अग्नि शब्द अग्नि का द्योतक है अथर्व वेद मे तीन वेदो से विराट पुरुष के अन्य अन्य अंग बतलाए हैं। वहां अथर्व से विराट का मुख बतलाया है देखिये—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानियस्य लोमानि अथर्वांगिरसो मुखम्। अ. १० । ७ । २०

विराट के मुख से ही अग्नि उत्पन्न हुई है यजुर्वेद मे कहा है "मुखादग्नि रजायत" निश्चय हुआ कि अथर्व भी अग्नि है, अथर्व का अग्नि के साथ सम्बन्ध बतलाने वाले कई प्रमाण मिलते हैं—

'अग्निर्जातो अथवर्ण।
अर्थात् अथर्वा से अग्नि उत्पन्न हुई।
'त्वमग्ने पुष्कराद ह्यथर्वा निमरमन्थत्।

अर्थात् हे अग्नि ! तुमको पुष्कर (आकाश) मे अथर्वा ने मथ कर निकाला।

'यज्ञै रथर्वा प्रथम पथस्तते।

अर्थात् अथर्वा ने पहिले यज्ञ में धर्म मार्ग स्थापित किया। यज्ञ और अग्नि का वाचक होने से ही इस वेद का नाम अथर्व वेद हुआ।

अथर्व वेद का चौथा नाम छन्द भी है।

'ऋच सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। अ १८ । ४ । २४

इस मन्त्र मे तीनो ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद के साथ चौथा छन्दांसि का उल्लेख है। इस नामका कारण इसमे अनेक प्रकार सरलाय छन्दो का होना है पुरुषसूक्त (जो चारो वेदो मे है) उसमे एक मन्त्र है जिसमे चारो वेदों में अथर्व स्थान पर छन्दांसि पद व्यवहृत हुआ है यथा—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्माद जायत।

गोपथ ब्राह्मण में भी अथर्व वेद को छन्दांसि कहा है—

अथर्वणा चन्द्रमा दैवत तदेव ज्योति सर्वाणि छन्दांसि आपस्थानम्'

अर्थात् अथर्व वेद का चन्द्रमा देवता है वही ज्योति है सभी प्रकार के छन्द और जल स्थान है अथर्व वेद में सभी प्रकार के सरलाय बोधक छन्द है।

बृहदारण्यक उपनिषद में लिखा है—

'यदिद किंचर्चो यजू षि सामानि छन्दांसि।'

हरिवंश पुराण में तो स्पष्ट ही चारों वेदों का उल्लेख करके छन्दांसि और अथर्वाणानि लिख कर स्पष्ट कर दिया है कि अथर्व वेद ही छन्द वेद हैं। यथा—

ऋचो यजू षि सामानि छन्दांस्यथर्वाणानि च।
चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्यास्सविस्तरा।

प्रसिद्ध है कि अन्य धर्म भी अथर्व वेद से ही निकले हैं यारुप के विद्वानों ने अनुसंधान करके बहुत स तथ्य प्रकाशित किये है।

जैसे—हजरत मुहम्मद (इस्लाम धर्म के प्रवर्तक) ने अपने विश्वास यहूदियों से लिए हैं और यहूदियों ने पारसियों से लिया है और पारसियों के विश्वास का आदिस्रोत अथर्व वेद ही है अरबी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान सेल साहिब कुरान की भूमिका म लिखते हैं—

Mohammad borrowed from the jews who learned the names and offices of those

beings from the persians, as they themselves confess. (Talmud Hieros and Roshbashan. Sale's Koran,P. 56)

अर्थात् हजरतमुहम्मद साहिब ने अपने विश्वास यहूदियो के लिये हैं और यहूदियो ने पारसियो के लिये हैं।

पारसियो के विश्वास अथर्व वेद द्वारा प्राप्त हैं।

उसके सामयिक मार्टिन हाग, नामक विद्वान लिखते हैं।–

In the Gatha (which are the oldest parts of the Zend Avasta we) find Zarthushtra alluding to old revelation and praising the wisdom of Saoshyants, Atharvas, fire priests He evhorts his party to respect and revere the Angra. (Yas. XVIII, 12) i. e the Angiras of the vedic hymns-Hung's Essays P. 294.

अर्थात पारसियो के पुराने साहित्य गाथा मे महात्मा जरदुस्त एक पुराने ईश्वरीय ज्ञान को स्वीकार करते हैं जिसका वेदो मे वर्णन है *गाथा के जिसश्लोक मे अङ्गिरा का वर्णन हुआ है वह इस प्रकार है—*

स्पन्तेम अतथ्या मज्दा मेगही अहुरा,

ह्वान मा वोहु पइरि—

जसत मनेगहा, यक्षत् उप्या तुष्ना मइतिश।

वहिश्ता, नाइत् नो पोउरश द्रेगवतो स्यात् चिश्नुषो।

थ्रत् तो वीह्वेग अग्रेग अ रोउना अदरे॥ गाथा य १८। १२

अर्थात हे अहुरमज्द ! मैंने तुझे आबादी करने वाला जाना। *तब तेरा सदेश लाने वाला अङ्गिरा मेरे पास आया तो उसने प्रकट*

क्रिया सतोष सबसे उत्तम वस्तु है। एक पूर्ण मनुष्य कभी भी पापी व्यक्ति को सतुष्ट नही कर सकता क्योकि (पूर्ण मनुष्य) सत्यका ही पक्ष करता है।

इस श्लोक मे "अ ग्रे ग शब्दअङ्गिरा के लिए ही आया है और अङ्गिरा अथर्व का ही पर्याय है, इसलिए जरदुस्त देव जिस अ गिरा के द्वारा परमात्मा का सदेश अपने पास आना बतलाते हैं वह अथर्व वेद ही है। अथर्व वेद का पर्याय छन्द वेद है इसलिए पारसी धर्म का मुख्य साहित्य जन्द अथवा जन्दावस्था कहलाता है जो छन्द और छन्दावस्था का अपभ्रश या रूपान्तर ही है। इसके सम्बन्ध मे वेद के प्रसिद्ध योरुपीय विद्वान प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं—

I still hold that the name of Zend was originally a corruption of the Sanskrit word छन्द chhanda which is the name given to the Language of the Veda by Panini and others

(Chips from a German Workshop Vol I P 84)

अर्थात्, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जन्द शब्द सस्कृत का ही अपभ्रश है जिसे पाणिनि और अन्य विद्वानों ने वैदिक भाषा के लिए कहा है।

वेदों मे चौथा वेद छन्द वेद कहलाता है, पारसियो का साहित्य अधिकांश म अथर्व वेद से ही सम्बन्धित है इसलिए उनकी धर्मपुस्तक का नाम "छन्द' के नाम म ही हुआ।

अत सब प्रकार स प्रमाणित हुआ कि अथर्व वेद भी उसी प्रकार अपौरुषेय पुरातन और प्रामाणिक है जिस प्रकार अन्य तीन वेद हैं।

अथर्व वेद के मन्त्रो मे अनेक जीवनोपयोगी, विधियाँ वर्णन की गई है शास्त्रकारो ने इन कर्मों की गणना निम्न प्रकार से की है।

१. स्थालीपाक (भोजन बनाना।)
२. मेधा जननम् (बुद्धि वर्द्धक विधियाँ।)
३. ब्रह्मचर्यम् (वीर्य रक्षा।)
४. ग्राम नगर राष्ट्र वर्द्धन ग्राम नगर राज्य आदि की प्राप्ति।
५. पुत्र पशु धन धान्य प्रजा स्त्री करि तुरग रथान्दोलिकादि सम्पत्साधिकानि पुत्र पशु धन धान्य प्रजा स्त्री हाथी घोडे रथपालकी आदि ऐश्वर्य साधनो की सिद्धि के उपाय।
६. सामानस्यम्—जनता मे एकता सहानुभूतिस्नेह की स्थापना के प्रयत्न।
७. राजकर्म—शासन सचालन की विधि।
८ शत्रुत्रासन—शत्रुओं को पीडित करने के उपाय।
९. सग्राम विजय—युद्ध मे जीतने के उपाय।
१० शस्त्र निवारणम—शत्रुओ के शस्त्रो को व्यर्थ करने के उपाय।
११. परसेना मोहनोद्वेजनस्तमनोच्चाटनादिनि—शत्रु सेना मे मोहभ्रम उद्वेग हेष भाव उत्पन्न करके उन्हे स्तम्भित, (क्रियाहीन उच्चाटित (उखाड देना) करने के उपाय।
१२. स्वसैनोत्साह परिरक्षण मयार्थानि—अपनी सेना का उत्साह बढा कर उसे निर्भय करने के उपाय।
१३ सग्रामे जयपराजय परीक्षा—युद्ध मे पहिले सेही हार जीत की परीक्षा कर लेने की विधियाँ।
१४. सेनापत्यादि प्रधान पुरुष जय कर्माणि—सेनापति मन्त्री आदि राज्य कर्म चारियो को नियत्रण मे रखने के उपाय।
१५. पर सेना सचारणम्—शत्रु सेना मे गुप्त रीति मे सचार करके

उसकी गति विधियों के जानने के उपाय।

१६. शत्रुत्सादितस्यराज्ञः पुन स्वराष्ट्र प्रवेशनम्—शत्रु द्वारा उखाड़े गये राजा को फिर अपने राज्य मे स्थापित करने के उपाय।

१७. पापक्षयकर्म—पतन के कारणो को दूर करने के उपाय।

१८. गौ समृद्धि कृषि पुष्टि कराणि—गौ बैल आदि की वृद्धि करके कृषि की उन्नति करने के उपाय।

१९. गृहसमृद्धिकराणि—घरकी शोभा और वैभव बढाने के उपाय।

२०. भैषज्यानि—रोग निवारक औषधो का ज्ञान।

२१. गर्भाधानादिकर्म—गर्भाधान आदि आवश्यक संस्कारो का ज्ञान।

२२. सभाजय साधनम्—सभा मे वादविवाद मे जीतने और कलह शान्ति करने के उपाय।

२३. वृष्टिसाधनम् —वर्षा करने के उपाय।

२४. उत्थानकर्म—शत्रु पर आक्रमण करने की विधियाँ।

२५. वाणिज्य लाभ—देश विदेश मे व्यापार बढाने के उपाय।

२६. ऋण विमोचनम्—ऋण उतारने के उपाय।

२७. अभिचार निवारणम—शत्रुओ की विनाशक विधियो से बचने के उपाय।

२८. आयुष्यम्—दीर्घायु और सुदृढ स्वास्थ्यकी प्राप्ति के साधन।

२९. यज्ञ-याग-मानव कल्याण कारी यज्ञो की विधियां।

इस सूची मे उन सब विषयो का समावेश है जिनके द्वारा व्यक्ति अपनी अपने समाज की अपने राष्ट्र की उन्नति कर सकता है सुख सुविधा की सामिग्री सम्पत्ति उपार्जित कर सकता है और उसकी रक्षा कर सकता है।

इस प्रकार अथर्व वेद का महत्व लोक रक्षा के लिए बहुत आवश्यक है। आगे उन विशिष्ट स्थल और प्रसगो का उल्लेख करते हैं

जिनमें विविध विषयों का विशेष ज्ञान वर्णित है।

राष्ट्र रक्षा और राजशासन प्रणाली के सम्बन्ध मे वैदिककाल की जो प्रणाली प्राचीन समय मे प्रचलित थी वह आज भी उतनी ही उपयोगी तथा हितकारी है इस सम्बन्ध में अथर्ववेद मे भी कुछ मत्र आये हैं जिनका अर्थ उपासना परक होने के साथही देश भक्ति पूर्ण और शासन प्रणाली को प्रकट करने वाला भी है।

> सभाच मासमिति श्चावता प्रजापते र्दुहितरौ सविदाने।
> येना संगच्छा उपमास शिक्षात् चारु वदानि पितरः सगतेषु ॥
> —अथ. अ. ७। १२

सभा और समिति ये दोनो प्रजापति की पुत्रियाँ हैं (यह इस प्रकार है जैसे भारत की शासन प्रणाली मे लोक सभा दो और राज सभा दो सस्था हैं, ये दोनो प्रजापति राष्ट्रपति की आज्ञा द्वारा बनती है इस लिए पुत्रियो का नाम देकर रूपक बताया है) ये दोनो सत्य ज्ञान (देश की वास्तविक स्थिति जनता को सद् इच्छा का ज्ञान) राष्ट्राध्यक्ष को देती है। जिस सभासद (एम. पी.) से मैं मिलू वह मुझे सत्यज्ञान दे। हे पितरः (रक्षक सदस्यो) मे सभाओ मे अच्छा भाषण ही करूँगा।

अथर्व वेद के उपरोक्त मत्र द्वारा आज की प्रजातत्र शासन प्रणाली का स्पष्ट विवरण ज्ञात होता है। सभासदस्यो (एम. पी.) के कर्तव्य की ओर भी इ गित किया गया है। एवम राष्ट्रध्यक्ष शासन सचालक का कर्तव्य भी बताया गया है।

राष्ट्रअध्यक्ष के विषय मे विचार प्रकट करने वाला एक और मत्र भी आया है जिससे शासन मे स्थायित्व दृढता और न्याय पूर्वक राज्य सचालन तथा राष्ट्र की रक्षा का विवरण प्रकट होता है।—

ध्रुवोऽच्युत प्रमृणीहि शत्रून् शत्रूयतोऽधरान् पादयस्व।
सर्वा दिश: समनस: सध्रीची ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह,
अथ. अ ६। ८८। ३

हे राष्ट्र अध्यक्ष ! तुम राज्य से पदच्युत न होओ। राज्यगद्दी पर स्थिर रह कर (अर्थात पदभ्रष्ट न होते हुए) तू शत्रुओं का पूर्णरूप से नाश कर एवं शत्रु के समान आचरण करने वाले जो अन्य व्यक्ति, देश के भीतरी शत्रु देशद्रोही। जो भी हों उनको नीचे गिरादे (अर्थात् उनको दंड दे) सब दिशाओं में रहने वाले प्रजाजन एकमत होकर तुमको ही राज्य में शासनध्यक्ष पद पर रहने की सम्मतिदें इस प्रकार उत्तम प्रजाहितकारी शासन तू कर इसमें असावधानी प्रमाद न हो यदि यह राष्ट्रसमिति (लोकसभा राज्यसभा) तेरे अनुरूप होगी तो तुमको ही राष्ट्र अध्यक्षपद पर स्थिर रखने की इच्छा करेगी और तेरी स्थिति राज्य शासकपद पर बनी रहेगी अन्यथा स्थान भ्रष्ट होने मे देर नहीं लगेगी।

राज्यशासन के अध्यक्ष राजा निरंकुश नही होता वह प्रजा द्वारा ही नियुक्त होता है और अपने अनुचित स्वेच्छाचारी पक्षपातपूर्ण आचरण के कारण हटाया भी जाता है।

(राष्ट्र के) अध्यक्ष का निर्वाचन होता था और उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति योग्य था, अर्थात् जैसे प्रजातन्त्र मे आज कल निर्वाचन होता है वैसे ही वैदिक काल में भी होता था, अध्यक्ष होने की कामना करने का वर्णन इस मन्त्र मे आया है।—

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यन्तेपृथिवी स्योनमस्तु।
बभ्रु कृष्णा रोहिणी विश्वरूपा ध्रुवांभूमि पृथिवीमिन्द्र
गुप्ताम् अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ।अ १२।१।११

हे मातृभूमि ! तुम्हारे बर्फीले पर्वत और साधारण पर्वत एवम् वन हमारा सुख बढावें। भूरी काली अनेक रंग वाली उपजाऊ विस्तृत और स्थिर मातृभूमि हमारे प्रतापी वीरो द्वारा सुरक्षित हुई है, इस भूमि पर अपराजित, अहत, और क्षतरहित होकर मैं अध्यक्ष होऊँगा।

अथर्ववेद की १२ वें काण्ड के प्रथम सूक्त मे जो मंत्र है वह राष्ट्रगति है इस सूक्त का ऋषि *अथर्वा* ऋषि है इसका देवता मातृभूमि है और राष्ट्र रक्षा के कार्य मे इसका विनियोग होता है।

इन मंत्रो मे मातृभूमि की स्पष्ट कल्पना है इनके द्वारा समाज मे प्रत्येक व्यक्ति मे देशभक्ति की देशोन्नति करने की भावना उत्पन्न होती है।

यथा—माताभूमि पुत्रोहं पृथिव्या । १२ । १ । १२

अर्थात् मेरी माता (भारत) भूमि है और मैं इस मातृभूमि का पुत्र हू।

सानो भूमि विसृजतां माता पुत्राय मे पय । १२ ।१। १०

यह मातृभूमि जिसका मैं पुत्र हू उस पुत्र के लिए पर्याप्त दूध (अर्थात् आहार) दे।

भूमे मातर्निधेहिमा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् । १२ । १ । ६३

हे मातृभूमि मुझे सुरक्षित रख !

और भी—त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्या, त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्व चतुष्पद. ।

तवेमे पृथिवि पञ्चमानवा, येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य, उद्यन्स्-रश्मिभि रातनोति । अ. १२ । १ । १५

हे मातृभूमि ! (तुम्हारी शक्ति से उत्पन्न) हम सब मनुष्य तुम्हारे ऊपर सचार करते हैं तुम ही दो पैर वालों (मनुष्य) और चार पैर वालो (पशु) का सरक्षण और धारण पोषण करती हो, पचमानव (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र निषाद) निस्सदेह तुम्हारे ही पुत्र है इनके लिए अमृत ज्योति प्राप्त हो इनके लिए ही सूर्य प्रकाश दे । आगे मत्र दूसरा को आक्रांत न करने की तथा दूसरो का आक्रमण न सहने की ओर भी निर्देश करता है ।

अथर्ववद के इसी अध्याय म अनेक भाषा बोलने वाले और अनक धर्मों के मानने वालो की भी सम्भावना की ओर भी निर्देश मिलता है ।

> जन बिभ्रती बहुधा विवाचस नानाधर्माणं पृथिवी यथौ कसाम् ।
>
> सहस्र धारा द्रविणस्य मे दुहा, ध्रुवेव धेनुरुप स्फुरन्ती ।
>
> अ १२ । १ । ४५

अनेक प्रकार की भाषा बोलन वाले और अनेक धर्मों को धारण करने वाले (धर्मों स अभिप्राय मानव मनकी प्रवृत्ति मे है जैस किसी मे से ज्ञान प्रवृत्ति प्रमुख है किसी म वीर प्रवृत्ति किसी मे सग्रह प्रवृत्ति और किसी म त्याग प्रवृत्ति अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र क्रम की ओर निर्देश है । आधुनिक कालकी दृष्टिकोण स लिया जाय तो हिंदू मुसलमान ईसाई आदि धर्मों का भी ग्रहण किया जा सकता है) जनसमूहों को यह मातृभूमि एक घर मे रहने वाल भाइयों के समान धारण करती है । यह भूमि हमको धनकी हजारो धारायें इसी प्रकार देती रहे जिस प्रकार दूध दुहने के समय न हिलने वाली स्थिर गौ दूध देती है । यह मत्र अखड भारत की राष्ट्रीय एकता की ओर निर्देश करता है । देश में

भाषा और धर्म के आधार पर संघर्ष नही होना चाहिये और सबको भिन्न २ विचारो के भाइयो के समान प्रेम से रहना चाहिये। आजकल भाषा के प्रश्न पर जो दगे हो रहे है एवम् धर्म के प्रश्न पर जो पहिले दगे हुए हैं वे सब वेद विधि के विरुद्ध हैं । मातृभूमि की प्रशसा—

यस्यां पूर्वेभूतकृत ऋषयो गा उदानृचु ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह । १२ । १ । ३९

जिस मातृभूमि में देश का भूतकाल निर्माण करने वाले प्राचीन ज्ञानी ऋषियो ने सत्र यज्ञ तप द्वारा सात-भूमि विभागो का उद्धार किया वही हमारी मातृभूमि है ।

यस्याः पुरो देव कृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापति· पृथिवी विश्वगर्भाम् आशामाशां रण्याः कृणोतु ।
अ. १२ । १ । ४३

हमारी मातृभूमि के नगर देवो द्वारा बनाये हैं, हमारी मातृभूमि के क्षेत्रो मे मनुष्य विविधि प्रकार के कार्य करने है उस अनेक उत्तम पदार्थों को अपने गर्भ मे (खानो के भीतर) धारण करने वाली हमारी मातृभूमि को प्रजा पालक परमेश्वर प्रत्येक दिशा मे हमारे लिए अत्यन्त सुन्दर बनावे ।

यामाश्विना च मिमाता विष्णुर्यस्याविचक्रमे ।
इन्द्रोया चक्र आत्मने ऽ न मित्रा शचीपति ।
सा नो भूमि विसृजता माता पुत्राय मे पयः । १२ । १ । १०

हमारी मातृभूमि जिसका आश्व देवो ने मापन किया, विष्णुदेव ने जहाँ अनेक पराक्रम किये, शक्ति शाली इन्द्र देव ने जिस भूमि को अपने लिए शत्रु रहित किया, वह हमारी मातृभूमि हमको उसी प्रकार उपयोगी पदार्थ दे जिस प्रकार माता दूध देती है ।

यस्यापूर्वेपूर्व जना वि चक्रिरे,, यस्या देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वाना वयसश्च विष्ठा भग वर्चं पृथिवी नो दधातु ॥
अ. । १२ । १ । ५

जिस मातृभूमि मे हमारे प्रचीन पूर्वजो ने पराक्रम किया था और जिसम देवो ने असुरो को हराकर भगा दिया था जो मातृ भूमि गो घोड़े आदि पशु पक्षियो के रहने के लिए अच्छा स्थान देती है वह हमारी मातृभूमि हमको ऐश्वर्य और तेज (शक्ति दे ।

याऽर्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत्, या मायाभिरन्वचरन्मनीषिण ।
सानो भूमिस्त्विषिं बल राष्ट्रे दधातु त्तमे ॥ १२ । १ । ८

जो मातृभूमि प्रारम म जल के भीतर थी जिस मातृभूमि की सेवा मनन शील विद्वान पुरुष राजनीति और कुशलता से करते हैं वह हमारी मातृभूमि हमारे राष्ट्र मे तेज और बलधारण करें ।

या रक्षन्त्य स्वप्ना विश्वदानी देवा भूमिंपृथिवीम प्रमादम् ।
सानो मधुप्रिय दुहा अथो उक्षतु वर्चसा ॥ १२ । १ । ७

जिस मातृभूमि की ज्ञानी और वीर पुरुष प्रमाद रहित (साव-धानी स) होकर रक्षा करत हैं वह मातृभूमि हमको मधुर एव प्रिय अन्न दे और हमको तेजस्वी करे ।

मातृभूमि की वदना भी अथव वेद म की गई है । एवम् मातृ-भूमि की सेवा करने की प्रतिज्ञा ली गई है ।

यस्या श्चतस्र प्रदिश पृथिव्या, यस्यामन्न कृष्टय सवभूवु ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्, सानो भूमिर्गो ष्वप्यन्ने दधातु ।
अ १२ । १ । ४

जिस मातृभूमि मे चारों दिशाओ में अनेक खेत हैं जिसमे किसान आपसी महयोग से उत्तम अन्न उत्प न करत हैं । जो मातृभूमि अपने ऊपर घूमने वाले सब प्राणियो को धारण करती है वह मातृभूमि हमको गौओ तथा अनेक प्रकार के अन्नो म रखे ।

यस्यामाप परिचरा समानो अहोरात्रे अप्रमाद क्षरन्ति ।
सानो भूमिर्भूरि धारा पयो दुहा अथो उक्षतु वचसा ॥
अ १२ । १ । ६

हमारी मातृभूमि मे दिन रात जन प्रवाह रहते हैं वह मातृभूमि हमे भरपूर दूध दे और हममे तेजोमय शक्ति बढावे ।

मातृभूमि की वदना भी यहा की गई एवम् है सेवा करने की प्रतिज्ञा भी अथर्व वेद मे की गई है ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः । १२ । १ । २६

जिस मातृभूमि की छाती मे सुवर्ण आदि मूल्यवान धातुए रहती हैं मैं उस मातृभूमि को नमस्कार करता हूं ।

अभिप्राय यह है कि मातृ भूमि की वंदना करनी चाहिये ।

यस्यामन्न व्रीहियवौ यस्या इमा. पञ्चकृष्टय: ।

भूम्यै पर्जन्य पत्न्यै नमो ऽस्तु वर्ष मेदसे ॥ १२ । १० । ४२

हमारी मातृभूमि मे चावल और जो होते है और जिसमे ज्ञानी शूर व्यापारी शिल्पी और वनवासी पाँचो लोग इसका आशय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और अन्त्यज भी होता है) आनन्द से निवास करते हैं, वर्षा से आनदित होने वाली (अर्थात् हरीभरी होने वाली) एव पर्जन्य से पाली जाने वाली इस हमारी मातृभूमि के लिए हम वंदना करते हैं ।)

यह मन्त्र भी मातृभूमि की वदन करना कर्तव्य बतलाता है । मातृभूमि की सेवा करने का निश्चय बतलाने वाले मन्त्र भी इसी अध्याय में आये हैं यथा—

विश्वस्व मातर मोषधीनां ध्रुवाम् भूमि पृथिवी धर्मणा धृताम् ।

शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा ॥ १२ । १ । १७

हमारी मातृभूमि उत्तम ओषधों को उत्पन्न करती है, इस भूमि को हम धर्म से धारण करते हैं, इस शुभ और सुन्दर देने वाली मातृभूमि की हम सदैव सेवा करेंगे ।

मातृभूमि की सेवा में उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व अर्पण करने

की भावना होना आवश्यक है यह प्रत्यक देश भक्त का कर्तव्य है। इस भावको प्रकट करने वाला एक मंत्र भी है—

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूता
दीर्घं न आयु प्रतिबुध्यमाना वय तुभ्य बलिहृत स्याम ॥ १२।१।६२

हे मातृभूमि! तुम्हारे उत्पन्न किए हुए तुम्हारी सन्तान हम सब लोग रोग रहित एव यक्ष्मादिदोष रहित होकर तुम्हारी सेवा के लिए तुम्हारे पास रहेंगे। तुम्हारे द्वारा उत्पन्न भोग हमको प्राप्त हो हम ज्ञानी और दीर्घायु हो, तुम्हारे (यशको बढाने के) लिए अपने सर्वस्व का बलिदान करने के लिए, सर्वस्व अर्पण करने के लिए समर्थ हो।

मातृभूमि को धारण करने के लिए अर्थात् रक्षा करने के लिए एवम् समृद्ध और प्रतिष्ठित करने के लिए मातृभूमि के पुत्र देश वासियो मे किन गुणो की आवश्यकता है इसके लिए भी अथर्ववेद म मत्र आया है यथा—

सत्यबृहत् ऋत उग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ, पृथिवी धारयन्ति।
सानो भूतस्य भव्यस्य पत्नी उरु लोक पृथिवी न कृणोतु।२।१।१

सत्य बडप्पन (ऊंच विचार) सरलता उग्रता (तेजस्विता) दीक्षा नियमसस्कार (चतुरता कुशलता) तप (कष्ट सहन शीलता एवम् लगातार उद्योग में परिश्रम पूर्वक लगा रहना तथा भगवद् भजन) ज्ञान और यज्ञ (सदनुष्ठान) य आठ सदगुण मातृभूमि को धारण करते हैं अर्थात् मातृभूमि की रक्षा करते हैं उसे समृद्धशाली बनाते हैं हमारे भूत वर्तमान और भविष्य का पालन करने वाली मातृभूमि हमारे लिए विस्तृत कार्य क्षेत्र दे।

ऊपर लिखे मत्र म राष्ट्र के नागरिकों को उनगुणों को धारण करना आवश्यक बतलाया है।

सत्य—नागरिकों को सत्यपर होना चाहिय आचरण म सत्यता

रहने से सभी साथियों का सुविधा सुख मिलता है जिससे देश की उन्नति होती है।

ऋत—सरलता निष्कपट आचरण से राष्ट्ररक्षण होता है और मातृभूमि का यश बढ़ता है। उग्र वीरता शौर्य धैर्य युद्धशक्ति का समावेश उग्र शब्द मे है। ये क्षत्रिय कर्म के लिए आवश्यक है इससे शत्रु के आक्रमण से रक्षा होती है एवम् देश के आन्तरिक उपद्रवोंका भी शमन होता है।

दीक्षा—नियम पालन करना सस्कारित होना। इससे नागरिको का आत्म बल कार्य शीलता दृढ़ता और ज्ञान विवेक बढता है।

तप (खुशी २ विश्वास और श्रद्धा के साथ किसी कार्य की सिद्धि के लिए नियमित और व्यवस्थित रूप से श्रम करना कष्ट सहना) इससे नागरिक परिश्रमी सहन शील और सफल बनते हैं। जिससे राष्ट्र की रक्षा और उन्नति होती है।

बृहत्—बृहतभाव महानता बड़प्पन नागरिको मे होने से उनके द्वारा राष्ट्रहित के महान कार्य किए जा सकेंगे।

ब्रह्म—प्रकृति जीव और परमात्मा तीनो के ज्ञान का नाम ब्रह्मज्ञान है इसलिए ब्रह्म पद का अर्थ यहाँ ज्ञानविज्ञान करना चाहिये। ज्ञान विज्ञान के द्वारा नागरिक आध्यात्मिक और भौतिक दोनो प्रकार की उन्नति कर सकता है, जिससे राष्ट्र सुखी और समृद्ध होता है। ससार मे दोनो की समान रूप से आवश्यकता है जहाँ केवल ज्ञान है (आत्मज्ञान) जैसे भारत मे, वहा निष्क्रियता है भौतिक उन्नति कम है। पश्चिम (यूरुप अमेरिका) मे विज्ञान है भौतिक उन्नति पर्याप्त है। वहाँ आत्मज्ञान की कमी है इससे वास्तविक शाति नही है आत्म सुख नहीं है।

यज्ञ—सदनुष्ठान को कहते हैं। द्रव्य यज्ञ, तपो यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, योग यज्ञ आदि अनेक यज्ञ हैं। यज्ञो से सगठन आध्यात्मिक उन्नति

और भौतिक उन्नति करने की योजना पर परामर्श भी होता है इसीलिए ये भी राष्ट्र उन्नति रक्षण के लिए आवश्यक कार्य हैं।

राष्ट्र रक्षा के लिए इन गुणों का उल्लेख अथर्ववेद में किया है।

रोगों को उत्पन्न करने वाला कारण असख्य अनेक प्रकार के सूक्ष्म कृमि होते हैं ऐसा आधुनिक चिकित्साशास्त्र का मत प्रसिद्ध है, किन्तु प्राचीन काल में भी रोगोत्पादक कृमियों को माना जाता था इसका प्रमाण अथर्ववेद मे मिलता है —

उत पुरस्तात् सूर्य एति विश्व दृष्टो अदृष्टहा।

दृष्टाश्चघ्नन् अदृष्टाश्च सर्वाश्च प्रमृणन् क्रिमीन्। अ ५।२३।६

सूर्य का उदय पूर्व दिशा मे होता है वह सूर्य अपनी किरणों से दीखने वाले और न दीखने वाले सब कृमियों का नाश करता है।

उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तुनिम्लोचन् हन्तु रश्मिभि ।

येअन्त क्रिमियो गवि।— अ २।३२।१

उगते समय भी सूर्य कृमियों का नाश करता है और अस्त होते समय भी क्रिमियों का नाश करता है, पृथ्वी पर जो सूक्ष्म क्रिमि होते है उनका नाश सूर्य किरणो द्वारा होता है।

ये क्रिमिय पर्वतेषुवनेषु, औषधीषु पशुष्वप्स्वन्त ।

ये अस्माक तन्वमाविशु सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम्।

—अ २।३१।५

पर्वतो वनों औषधियों (वनस्पतियो अन्नो) और पशुओ मे जो क्रिमी होते हैं एवम् हमारे शरीरों म घुस हाते हैं उन सब क्रिमियो के उद्गम का ही हम नाश करते हैं।

रोग क्रिमियो के अनेक नामों का उल्लेख अथर्ववेद मे हुआ है एवम् रोग कृमियो को नष्ट करने वाली वनस्पतियों का उल्लेख भी हुआ है।

वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूता श्चरतो अपसे धामि सर्वान् ।
आरादराति निर्ऋति परो ग्राहि क्रव्याद पिशाचान् ।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूत तत्तम इवाय हन्मि ॥ अ. ८ । २ । ११-१२

वैवस्वत द्वारा भेजे हुए सब यमदूतो को जो यहा भ्रमण कर रहे हैं मैं नष्ट करता हू। अराति निर्ऋति ग्राही क्रव्याद पिशाच दुर्भूत और सब राक्षसो को जो रोग उत्पन्न करत हैं मैं उन सबको इसी तरह दूर करता हूं जैसे दीपक अंधेरे को दूर करता है ।

यहां रोगोत्पादक जीवाणुओ को राक्षस सज्ञादी है और उनके अन्य नाम भी दिये हैं—अराति—इसका अर्थ किये हुए भोजन से पोषण न होने देने वाला रोग है ।

निर्ऋति—विनाश की ओर लेजाने वाला रोगाणु ।

ग्राही—जो पकड कर रखता है छोडता नही ऐसा रोगाणु ।

क्रव्याद—मासभक्षी रोगाणु जिससे रोगी मांसक्षीण होकर सूख जाये ।

पिशाच—रक्त खाने वाला रोगाणु ।

दुर्भूनत—शरीर की स्थिति को विपरीत करने वाला, क्षीण करने वाला रोगाणु ।

रोगोत्पादक—कृमियो के लिए अन्य नाम भी आये हैं उनका अभिप्राय भी रोगाणु से ही है । यथा—

असुर —सुर (सूर्य) नही जहा, अर्थात् जहां सूर्य प्रकाश नही पहुँचता वहा रहने वाले रोगाणु ।

सुरद्विष'—सूर्य से द्वेष करने वाले, यह भी रोगाणुओ का ही नाम है ।

यातु यातुधान—यातना (कष्ट) देने वाले रोगाणु ।

रक्षस्, राक्षस्— (रक्षन्तिमस्मात्) जिससे रक्षा की जाती है ऐसे रोगाणु अर्थात् रोगोत्पादक जीवाणुओ से रक्षा करनी चाहिये ।

इन कृमियो के स्वरूप आकार प्रकार का भी उल्लेख हुआ है।

विश्वरूप चतुरक्ष कृमि सारग अर्जुनम्। २। ३२। २

त्रिशीर्षाणं त्रिककुद कृमि सारगमर्जुनम्। ५। २३। ६

अनेक रूप वाले चार नेत्रो वाले अनेक रग वाले, श्वेत रग वाले तीन सिर वाल, तीन ककुद वाले। ऐसे अनेक प्रकार के कृमि होते थे। इन कृमियों के नाश करने वाली विधियों का उल्लेख भी अथर्ववेद में हुआ है यथा—वनस्पतियों द्वारा नाश होन के सम्बन्ध म—

वनस्पति राह देवैर्न आगन्। रक्ष पिशाचानपबाधमान। १२।३।१५

दिव्यगुण धर्म वाली वनस्पतियां हमारे पास आती हैं जो राक्षसों पिशाचो को नष्ट करती हैं।

शीर्षक कृमि-रूप प्राणा छेवोंऽग्नी रक्षोहाऽमाय चातन।

दहत्रप द्वयाविनो यातुधानान् क्रिमीदिन.। अ १। २८। १

यह अग्नि राक्षसो का नाश करने वाला और रोगो को दूर करने वाला है कष्टदायक रक्तमांस भक्षक रोग कृमियों का नाश यह अग्नि करता है।

सर्य प्रकाश द्वारा कृमि नाश।—

विश्वरूप चतुरक्ष क्रिमि सारग अर्जुनम्।

श्रृणाम्यस्य पृष्टीराप वृश्चामि यच्छिर।

भिनद्मि ते कुसुम यस्ते विषधान। अ २। ६। १

ये कृमि अनेक रगो और अनेक रूपों वाले होते है। कई श्वेत हैं कई लाल हैं कइयो के चार नेत्र हैं, कइयो के दो सींग होते हैं जिनसे ये प्राणियों को कष्ट दते हैं इनमें विष की थैली भी होती है जिसम दशस्थान पर पीडा होती है, इन सब कृमियो का मैं नाश करता हूँ, यह सूय की किरणो के सम्बन्ध कहा है।

गन्ध से कृमि नाश—

अजशृङ्ग्यज रक्ष सर्वान्गन्धेननाशय। अ ४। ३७। २

प्रश्रृंगी (औषध विशेष) अपनी गंध से रोग कृमियों को नष्ट करती है।

वच से कृमि नाश—

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य मथो पार्ष्टेयं कृमीन्।

अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जंभयामसि। अ. २। ३१। ४

आँतो मे मस्तक मे पसलियो मे घूमने वाले तथा यज्ञ विरोधी (यज्ञ से नष्ट होने वाले) कृमियो को मैं वच से नष्ट करता हू। वचा पद से मन्त्रशक्ति द्वारा कृमियो का नाश होता है ऐसा अर्थ भी होता है।

शंख द्वारा कृमियो का नाश—

यो अग्रतो रोचमाना समुद्रादधि जज्ञिषे।

शङ्खेन हत्वा रक्षांसि अत्त्रिणो विषहामहे। अ. ४। १०। ६

जो पहिले समुद्र से उत्पन्न होता है जो तेजस्वी है उस शंख से राक्षस और अत्रियो ('अत्ते इति अत्रिः') अर्थात् रक्त मारा आदि को खाता है, वो हम विनष्ट करते हैं।

अर्थात् शंख से निर्मित औषधियां (शंखभस्म आदि) रोगाणुओ को नष्ट करती हैं। शंखभस्म आम जनित रोगो के नाश करने के लिए प्रसिद्ध है इसीलिए वैद्यको, अमीवचातन भी कहते है।

अथर्व वेद मे चिकित्सा शास्त्र की प्रसिद्ध औषधों का उल्लेख हुआ है साथ ही उनके गुणो की ओर भी इंगित किया गया है। यथा—

पिप्पली क्षिप्त भेषज्यु उतातिविद्ध भेषजी।

तां देवाः समकल्पयन् इयं जीवितवा अलम्॥ अ. ६। १०९। १

पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि।

यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः॥

असुरास्त्वा न्यखनन देवास्त्वोदवपन् पुनः।

वातीकृतस्य भेषजमथो क्षिप्तस्य भेषजीम्॥

पीपल नामक औषध क्षिप्त और अतिविद्ध (वात रोगो) के

लिए अत्यन्त उपयोगी औषध है, यह एक ही औषध जीवित रहने के लिए पर्याप्त है। गज पीपल भी रोग नाश करने वाली है। उसने अपने आविष्कार से पूर्व यह निश्चय किया था कि हम जिस प्राणी के शरीर में औषध रूप से प्रविष्ट हों वह नाश को प्राप्त न हो। हे पिप्पली! तू आक्षेपक वात रोग की औषध है। तुझे पहिले दानवों ने गाड़ दिया और फिर देवताओं ने निकाला ये तीनों मन्त्र आयुर्वेद की प्रसिद्ध बहु प्रयुक्त औषध पीपल और गज पीपल के गुणों का उल्लेख करते हैं।

श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता।

इदमू षु प्रसाधय पुना रूपाणि कल्पय॥ अ १।२४।४

पृथ्वी के ऊपर उगने वाली श्यामा नामक औषध शरीरके रंग को ठीक करती है अर्थात् यदि शरीर का रंग किसी रोग के कारण कुरूप होगया हो तो इसके प्रयोग से ठीक हो जाता है।

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्॥ १।२३।१

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।

आत्वास्वो विशतां वर्णः पराशुक्लानिपातय॥ १।२३।२

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।

असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत्॥ १।२३।३

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि।

दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम्॥ १।२३।४

इस २३ वें सूक्त के चारों मन्त्र कुष्टभेद किलास तथा शरीर के रंग को विवर्ण करने वाले अनेक प्रकार के चर्म रोगों की चिकित्सा के लिए औषध का निर्देश प्रार्थना रूप में करता है।

हरिद्रा रामा (भृंगराज) कृष्ण इन्द्रवारुणी आदि औषधों के उपयोग की ओर इंगित करती है आज जिन नामों से प्राप्त हो रही हैं उनके सिवाय उस समय में इन औषधों के दूसरे नाम भी हो सकते हैं

इसका निर्णय करना आयुर्वेदीयचिकित्सकों के अनुसंधान का विषय है।

कर्मकाण्डी पंडित इन मंत्रों के जप तथा हवन द्वारा भी इन रोगों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं और सफलता भी प्राप्त करते हैं।

इसके आगे के २४ वें सूक्त में भी चारों मंत्रों में भी पूर्व सूक्त २३ के समान कुष्ठरोग नाशक शरीर के वर्णों को पूर्णवत् सामान्या (सम अवस्था) में करने वाली औषधी का विवरण प्राप्त होता है।

अथर्व वेद में आयुर्वेद की अनेक प्रसिद्ध औषधों का गुणों सहित उल्लेख भी मिलता है।

यथा अपमार्ग के विषय में—

क्षुधामारं तृष्णामारं तथा अनपत्यताम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे॥
अपामार्ग औषधीनां सर्वासामेक इद्वशी।
तेन ते मृज्म असस्थितमथ त्वमगदश्चर॥ ४। १७। ६

भूख प्यास सतान न होना आदि विकार इस औषध अपामार्ग के द्वारा नष्ट होते हैं, अपामार्ग से अनेक औषधों का निर्माण होता है। अपामार्ग गुणों के सम्बन्ध में आयुर्वेद निघण्टुओं में निम्न वर्णन मिलता है।

अपामार्गस्तु तिक्तोष्णः कटुश्च कफनाशनः।
अर्शः कण्डूदरामघ्नो रक्तहृद्ग्राही वातिकृत्॥
रक्तापामार्गकः शीतः कटुकः कफवातनुत्।
व्रणकण्डू विषघ्नश्च सग्राही वातिकृत् परः॥--ध०नि०रा०नि०
अपामार्गः सदा तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटुः।
पाचनो नावनो छर्दिः कफमेदोऽनिलापहः॥
निहन्ति हृद्रुजाऽऽध्मानार्शः कण्डूशूलोदरापचीः।
अपामार्गोऽरुणो वातविस्तम्भी कफकृद्धिमः॥
रक्षा पूर्वगुणैर्न्यून कथितो गुण वेदिभिः।

अपामार्ग फल स्त्रादुरसे पाकेच दुर्जरम् ॥
विष्टम्भि वातले रुक्ष रक्तपित्त प्रसादनम्।—भाव प्रकाश
अपामार्गोऽग्नि कृत्तीक्ष्णो नस्यात्शीर्ष कृमोजयेत् ।
धामको रक्तसग्राही रक्तातीसार नाशन ॥
मस्ये वातो प्रशस्त स्यात् दद्रुकड्डूकफायह ।—शोढल

अर्थात् कड़वा चरपरा गर्म कफ अर्श खुजली उदररोग आम नाशक रक्तदोषहारी और ग्राही है, लाल अपामार्ग शीतल चरपरा कफ वात व्रण खजली विष नाशक ग्राही वमन कराने वाला है।—
(ध० रा० नि०)

दस्तावर तीक्ष्ण अग्रे कड़वा चरपरा अग्निदीपक पाचक नाकसे दोषनिकालने वाला वमन कफ मेद वायु हृद्रोग अफरा अर्श खुजली शूल उदररोग अपच नाशक है। लाल अपामार्ग शीतल रुखा वातविष्टमी कफकारक *पहिले की अपेक्षा गुण म कम है। अपामार्ग के फल मधुर* पाकमें दुर्जर कठिनता स पचने वाले विष्टम्भ रुक्ष रक्तपित्त प्रसादक हैं (भाव प्रकाश)। अग्नि कारक तीक्ष्ण नास देने से शिर में कृमियों का नाशक वमन कारक रक्त सग्राही रक्तातीसार दद खुजली कफनाशक नेस्य और वमन के लिए श्रेष्ठ है (सोढ़ल)

इसकी जड़ का प्रयोग ऊपर लिखे रोगों के सिवाय निम्नरोगों में और मिलता है। शकरामे (वाग्भट) कर्ण नाद और बहरा पन मे तिजारीज्वर म (वृन्द) विषमज्वर शिर शूल नेत्रपीड़ा सद्योव्रण के रक्त स्राव म रक्तप्रदर सुख प्रसव करान के लिए योनिशूल गर्भ धारणाथ पुत्र प्रसवाथ सर्पविष करा शोधक मूत्र कृच्छ्र सिध्मकुष्ठ (वैधमनोरमा) वीर्यस्तम्भनार्थ (रसरत्नाकर) (विसूचिका) भाव प्रकाश। रक्ताश मे अपामार्ग क बीजोंका (शङ्गधर) निद्रानाश में (हारीत) प्रयोग हुआ है।

याल बढाने वाली औषध का उल्लेख भी अथर्व वेद मे हुआ है—

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तास्त्या नितत्नि केशेभ्यो दृहणाय खनामसि । ६ । १३६ । १
दृह प्रत्नाञ्जनया जाता ञ्जातानु वर्षीयसस्कृधि ।

हे औषधि (काचमाची) तू पृथ्वी मे उत्पन्न हुई है । तू तिरछी होकर फैलती है । हम तुझे अपने केशों को दृढ करने के लिए खोदते हैं । हे औषध तू केशों को दृढ कर जहाँ केश उत्पन्न न हुए हों वहाँ केश उत्पन्न कर ।

बलीवर्द कारक औषध का भी उल्लेख हुआ है जो शत्रुओं के लिए प्रयोग की जाती है । इस का वर्णन काण्ड ६ सूक्त १३८ मे आया है ।

छटे काण्ड के १३६ वे सूक्त में सहस्त्रपर्णी औषध की बहुत प्रशसा की है, इसका उपयोग काम वासना को क्षीण करने के लिए बतलाया है । एवम् इसीका उपयोग स्त्री पुरुषो में पुनः सयोग कराने के लिए किया है. और उसका नकुल की दी है [जैसे वह सापको दो टुकडे करके पुन. जोड देता है ।

शल्य चिकित्सा के लिए घावों को भरने के लिए शस्त्राघात से उत्पन्न होने वाले रक्तस्त्राव को रोकने के लिए टूटी हड्डियो को जोडनेके लिए एक औषध का उल्लेख विस्तार के साथ हुआ है । अथर्व वेद मे उसका नाम स्पष्ट शब्दो मे रोहिणी आया है इसका अर्थ सामान्य रूप से लाक्षा (लाख) ही ग्रहण किया है । आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र मे इसका प्रयोग इसी काम के लिए होता है । पर सभव है उस वैदिक काल मे रोहिणी नाम की कोई दूसरी वनस्पति भी हो सकती है । इसविषय मे चतुर्थ काण्ड का तीसरे अनुवाद का बारहवां सूक्त द्रष्टव्य है।

वायुशोधक रोगाणु नाशक वनस्पतियां वृक्षों का वर्णन भी अथर्व वेद मे आया है । इनको वीर्यवती (शक्तिशाली) बताया है जल

मे रहने वाले रोगोत्पादक जीवाणुओं को अप्सर (पानी म चरने वाले विषजतु) बतलाया है । यथा—

यत्रा वत्या न्यग्रोधा महावृक्ष शिर्खडिन ।
तत् परेता अप्सरस प्रतिबुद्धा अभूतन ।
यत्र व प्रेंखा हरिता अजु ना उत् ।
तत्परेता अप्सरस प्रति बुद्धा अभूतन ।
एयमगन्नोषधीनां वीरुधा वीर्यवती ।
अज श्रृगयराटकी तीक्ष्ण श्रृगी व्युषतु ।

पीपल बड महान वृक्ष गुजा ये जल म रहने विषज तुओ को नष्ट करते हैं हरिता (जय ती) अजु न अघार ककरी अजश्रृ गी वेराट का तीक्ष्णश्रृ गी वृक्ष तथा वनस्पतियाँ जहा रहती है वहा जल म विच रने वाल विष जन्तु नही रहते है ।

अथव वेद के अष्टम अनुवाक का ३७ वाँ सूक्त सूक्ष्म कृमि नाशक औषधो से भरा पडा यद्यपि इसका अर्थ इस प्रकार से किया गया है कि गधर्व और अप्सरा दव योनिया मानी गई हैं जिससे प्रेत बाधा का अनुमान होता है पर चिकित्सा प्रकरण मे रोग जन्तुओ का अथही ग्राह्य है ।

गुलगुलू पीला नलद अक्षगध प्रमदनी ये पाँचो औषधों के नाम हैं । जिनका नाम रूपगुण आज कल सम्यक रूप म उपलब्ध नही है । उसीप्रकार इससूक्त म उल्लेख औषध अनश्रृ गी भी है । यह भी रोगोत्पादक जीवाणुओ के नष्ट करने म समथ है इसे अ य त व नवती औषध बतलाया है , यह रोगाणुओं की उत्पादन शक्ति को भी नष्ट करता है । इन रोगाणुओ को सिवार भक्षी गन्धव बतलाया है । इसका आशय है जल म रहने वाली सिवार के आश्रय पर पलने वाले रोगोत्पादक जीवाण ही हैं । अन्यथा गन्धव नाम की देवयोनि के प्राणीक्या सिवार

ग्र ने वाले हो सकते हैं। उन गन्धर्वों की आकृति श्वान बंदर और चारों ओर वालो युक्त बालक के समान बतलाया है ये सब सूक्ष्म रोग कृमियों के सम्बन्ध मे हीं है उनके ही ऐसे रूप होते हैं या सूक्ष्म रूप मे प्रतीत होते हैं। आधुनिक अणुवीक्षण यन्त्रों के प्रयोग द्वारा अतिसूक्ष्म अदृश्य जीवाणु बड़े आकार में दीखते हैं तो उनके आकार इसी प्रकार दिखाई देने लगते हैं।

आयुर्वेदिक चिकित्सा मे बहुश्रुत दशमूल का एक उपादान पृश्निपर्णी भी है इसकी प्रशंसा मे अथर्ववेद के द्वितीयकाण्ड के चतुर्थ अनुवाक मे पच्चीसवां सूक्त है इसमे पृश्निपर्णी के उपयोग के सम्बन्ध मे पाँच मंत्र दिये हैं इनमें पृश्निपर्णी को रक्तदोषजन्य व्याधि कुष्ठ दाद छाजन विसर्प आदि को सफल औषधि के रूप मे स्मरण किया है, रक्त पित्त नाशक गुणभी इसमे होता है अथर्ववेदोक्त गुणो का उल्लेख आयुर्वेद के निघण्टु ग्रथो में भी आया है यथा—

पृश्निपर्णो रसेस्वादुः लघूष्णाऽस्त्रत्रिदोषजित् ।
कासश्वास प्रशमनी ज्वर तृड्दाह नाशिनी ॥—धन्वन्तरि निघण्टु
पृश्निपर्णी कटूष्णाम्ला तिक्तातिसार कासजित् ।
वातरोग ज्वरोन्माद व्रणदाह विनाशिनी ॥—राजनिघण्टु
पृश्निपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्ण्वा मधुरा तरा. ।
हन्ति दाह ज्वर श्वासरक्तातिसार तृड् वमी ॥—भाव प्रकाश

अर्थात् पृश्निपर्णी मधुर, हल्की, त्रिदोष, रक्त विकार, खाँसी, श्वास, ज्वर, तृषा, दाह नाशक है। (धन्वतरि निघण्टु के मत से) चरपरी, उष्ण, खट्टी, कडवी अतिसार, कास, वातरोग, ज्वर उन्माद, व्रणदाह नाशक हैं (राज निघण्टु के मत से) मधुर, उष्ण, दस्तावर, त्रिदोष, दाह ज्वर, श्वास, रक्तातिसार एव रक्त विकार और अतिसार तृषा वमन नाशक है (भावप्रकाश निघण्टु के मत से) आयुर्वेदीय निघण्टुओ के गुण वर्णन से पृश्निपर्णी उन रोगो को लाभ करती है

जा शरीर की विशाल वृद्धि को रोकते हैं। भोजन का उचित परिपक्व न होकर रस रक्त मांस आदि धातुए न बढती हो तो लाभदायक है। गर्भपात की प्रकृति को भी रोकती हैं। एक गर्भपात की स्थिति पैदा होने पर पृश्निपर्णी को मुख से सेवन एव पेट गर्भाशय वस्ति पर लेप करने से भी गिरता गर्भ रुक जाता है। आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों म पृश्निपर्णी के प्रयोग मिलते हैं।

अथर्ववेद में ही पुत्र ही उत्पन्न करने वाले पुसवन सस्कार का उल्लेख भी हुआ है। पुसवन सस्कार की विधि आर्यों की प्रचलित प्रथा रही है। पुसवन के लिए जो औषधि उपभोग आती रही है उसमे अश्वत्य (पीपल) क सम्बन्ध म कहा है—

शमीमश्वत्य आरूढस्तत्र पुसवन कृतम्।

तद्वै पुत्रस्य वेदन तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥ ६ । ११ । १ ।

शमी वृक्ष (छोकरा) पर उत्पन्न हुआ पीपल पुसवन (पुत्रोत्पत्ति) करता है इसके लिए स्त्री को इसका सेवन करना चाहिए। विशेषरूप गर्भस्थिति के तीसरे महीने से लेकर सेवन करावें जबकि गर्भ मे भ्रूण का लिंग बनता है। गर्भ स्थापना के दो महीने तक कुछ नही कहा जा सकता कि क्या लिंग होगा। गर्भाधान के पूर्व ही खिलाया जाय तो और भी अच्छा है, तीन महीने बाद व्यर्थ है।

अश्वत्थ का पुसवन के लिए दूसरे रूप मे भी प्रयोग किया गया है—

पुमान् पुंस परिजातोऽश्वत्य खदिरादधि ॥ ३ । ६ । १

खैर (जिससे कत्था बनता है) वृक्ष के ऊपर चढे हुए पीपल के सेवन से भी उसी प्रकार पुत्र उत्पन्न होता है। वैसे पीपल मे वाजीकरण गुण तो होता ही है।

और भी औषधो का विवरण मिलता है—

अपाफेनेन नमुचे: शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वायद जयः स्पृधः ॥ अ. २० । २९ । ३ ॥

सामान्य रूप से इसका अर्थ है—हे इन्द्र ! अपाफेन के द्वारा नमुचि का सिर कुचल दे या मोड़ मरोड़ दे और विरोध को जीत ।

किन्तु इस मन्त्र का चिकित्सा परक अर्थ भी होता है, नमुचि का अर्थ है न छोड़ने वाला न छूटने वाला या ऊँचा नीचा यह शब्द गण्डमाला श्लीपद फोड़ा नासूर सूजन दाद आदि रोगों को प्रकट करता है जो कठिनता से छूटते हों, अपाफेन का अर्थ समुद्रफेन स्पष्ट ही है । इन्द्र का औषध सूचक बहु प्रचलित अर्थ सामान्य रूप से इन्द्र जौ या कुडा वृक्ष होता है ।

इन्द्र सूर्य का भी नाम है और सूर्य का अर्क भी एक नाम है और अर्क का औषध सूचक नाम आक का प्रसिद्ध पौधा है । इसलिए इस मंत्र का अर्थ हुआ 'आक समुद्रफेन के साथ प्रयोग करने से (लेप करने एवं सेवन करने से) ऊपर लिखे नमुचि (फोड़ा आदि रोगों) को कुचल देता है ।

इस प्रकार अथर्व वेद में उन औषधों का प्रयोग भी मिलता है जिनका आयुर्वेद के प्रचलित चिकित्सा ग्रन्थों में स्पष्ट उपयोग नहीं मिलता है उदाहरणार्थ ऊपर का मन्त्र द्रष्टव्य है ।

अथर्व वेद में अनेक रोगों का विवरण मिलता है । विशेष रूप से यक्ष्मा (क्षय) रोग का उल्लेख अनेक स्थान पर हुआ है—

मुञ्चामित्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मादुत राज यक्ष्मात्
३ । ११ । १

तुमको दीर्घ जीवन के लिए हवन द्वारा अज्ञात रोग (जिसका निश्चित निदान न हो सके) से तथा क्षय रोग से भी छुड़ाता हूँ ।

अंग भेदो अंगज्वरोयश्च ते हृदयामय ।
यक्ष्म श्येनइव प्रापप्तत् वाचा साढः परस्तराम् । ५ । ३० । ९

अंग भेद (शरीर के अवयवों का दूखना) शरीर का ज्वर हृदयरोग, यक्ष्मा (क्षय रोग) ये सब बीमारियाँ इस प्रकार एक दम नष्ट हो जावेगी जिस प्रकार श्येन (बाज पक्षी) झपट्टा मारते हैं ।

ये अंगानि मदयन्ति यक्ष्मा सो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वषां विष निरवोच महंत्वत् ॥

पादाभ्या तेजानुभ्या श्रोणिभ्यां परिमंससः ।
अनूकादर्षणी रुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोग मनीनशम् ॥
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य चयो विधु ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनी नशः ॥ ६ । ८ ॥

वह विष जिससे शरीर के अवयवो मे यह उत्पन्न होता है एवं नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, पैर, जानु, श्रोणी, पेट, कमर, मस्तक, कपाल, हृदय तथा अन्य अवयवो में जो विष रहता है उस विष को उगते हुए सूर्य की किरणें नष्ट करती हैं।

अपचित प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव
सूर्यः कृणोतु भेषज चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥ ६ । ८३ । १

जैसे गरुड दौडकर शीघ्रता से जाता है वैसे ही अपची (गड माला भेद) दूर हो जायगी। सूर्य और चन्द्रमा द्वारा औषध निर्माण होता है।

अनुसूर्यं मुदयता हृद्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ॥
परित्वा रोहितैर्वर्णै दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथाय मदपा असदयो अहरितो भुवत् ॥
या रोहिणीर्देवत्याद गावो या उत रोहिणी।
रुप रुप वयोवय स्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ॥
शुके पुते हरिमाण रोपणा कासु दध्मसि।
अयो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं निदध्मसि ॥ १ । २२ । १-४

हे रोगी व्यक्ति! तेरे हृदय मे दाह करने वाला हृद्रोग तथा कामला से उत्पन्न पीलापन आत हुए सूर्य की ओर चला जाय। गौ के लाल रंग मे तुझे पुष्ट करते हैं। लाल रंग की गौ का दूध सेवन करने से कामला (हृद्रोग युक्त) दूर होता है। प्रातःकाल की सूर्य किरणो का सेवन भी लाभ करता है। इसमे दीर्घायु प्राप्त होती है और पीलिया रोग से छुटकारा मिलता है। दिव्य लाल रंग की गौएं और सूर्य की लालरंग की किरणें हैं उनमे सुन्दरता और बल के अनुसार तुम्हे घेरते हैं। तेरे पीलिया रोग को तोते और पौधों के रंगों मे धारण करते है। तेरा पीलापन हरी वनस्पतियों में रख देते हैं। अ० वे० का यह सूक्त रंग चिकित्सा प्रणाली को निर्देश करता है।

लाल रग की सर्य किरणें और लाल गाय का दूध रोगी के रोग को दूर करता है कुछ प्राकृतिक चिकित्सक लाल रग की बोतलो मे जल भर कर सूर्य किरणो द्वारा तप्त करके उसे रोगियो को सेवन करात हैं। ऊपर लिखे मन्त्र उस विधि का मूल स्रोत प्रतीत होते हैं। परिदध्मसि, निदध्मसि और दध्मसि शब्द का इस सूक्त म कई बार प्रयोग हुआ है, चारो ओर से धारण करना लपेटना घेरना यही अर्थ इससे प्रकट होता है। इसका भावार्थ है शरीर पर चारो ओर से सूर्य किरणो का पडना। इसके लिए कमरे मे लाल रग के किवाडों को भेद कर शरीर को नग्न करके उसे अदल बदल कर चारो ओर से सूर्य किरणों से सेंकने से शरीर के भीतर सूर्य की लाल किरणो का प्रवेश हो जाता है। इससे ऊपर वर्णित हारिद्रक (पीलिया) पाण्डु रोग ही नही मिटता प्रत्युत बल वृद्धि होती है और आयुष्य भी प्राप्त होता है।

इसके उपयोग मे यह देखना आवश्यक है कि रोगी की बल प्रकृति के अनुसार ही सूर्य किरणो का सेवन किया जाय। निर्बल सुकमार रोगी के लिए थोडी देर और कोमल (प्रात.काल की किरणें) जो सह्य हो, उपयोगी हैं। अधिक उष्ण किरणें हानिकारक होगी और कठोर प्रकृति के रोगी के लिए व्यथ ही रहेंगी। इसलिए देश, काल, पात्र, वय और प्रकृति के अनुसार उपयोग करना चाहिए। इसके लिए तृतीय मन्त्र का उत्तरार्ध स्पष्ट निर्देश करता है।

इसी प्रकार रगीन गौ के दूध का उपयोग भी रोग नाशक सिद्ध होता है। आयुर्वेद के निघण्टुओ म गौ दूध के गुण गौ क रग के भेद स गुणो की विशेषता का उल्लेख मिलता है। गौ के दूध मे रग भेद से गुणो की विशेषता सूर्य किरणो के द्वारा आती है। सूर्य की किरणें जैसे आवरण को भेद कर शरीर मे प्रविष्ट होती है वैसी ही विशेषता उस गौ के दूध म उत्पन्न हो जाती है। आधुनिक वर्ण चिकित्सा का आधार यही सूय किरणो के रग भेद के ऊपर निर्भर हैं। उपरोक्त सूत्र मे हृदय रोग और कामला रोग के लिए रोहणी गावः लाल रग की गौ के दूध का विधान किया गया है।

आजकल मस्मरेजम वाले रोगी की चिकित्सा जिस प्रकार करते हैं, मानसिक चिकित्सक जैसे चिकित्सा करते हैं उसका विवरण भी अथर्व वेद मे प्राप्त होता है। हाथ के स्पर्श से रोग दूर करने का

तथा मन में स्वास्थ्य प्राप्ति के भाव भरने का वर्णन मिलता है—

आत्वागम शंतातिभि अथो अरिष्ट तातिभि ।
दक्ष त उग्र आभारिषा परा यक्ष्म सुवामिते ॥५॥
अय मेहस्तो भगवान अय मे भगवत्तर ।
अय मे विश्व भेषजो अय शिवाभिमर्शन ॥६॥
हस्ताभ्या दश शाखाभ्या जिह्वा वाच पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्या हस्ताभ्यां ताभ्या त्वाऽभिमृशामसि ।

अथ० ४ । १३

हे रोगी मैं तेरे पास सुख फैलाने वाली स्थिर जीवन देने वाली शक्ति के साथ आया हू । मैं तेरे शरीर में प्रचण्ड बल भरता हू और तेरे रोग को दूर करता हू ।

यह मेरा हाथ अधिक प्रभावशाली है मेरा यह हाथ अधिक समय है यह मेरा हाथ औषधियो की (रोग निवारक) शक्तियो से भरा है, यह मेरा हाथ सुखदायक और आरोग्य कारक है ।

हे रोगी ! दस शाखाओ वाले हाथो स तुम्हारे ऊपर प्रयोग करता हू । प्राणों को प्रेरणा देने वाली जिह्वा है, आरोग्यता स्थापित करने वाले दोनों हाथो स तुम्हें स्पर्श करता हू । इसस तुम्हारा रोग दूर हो जायगा ।

वैदिक संस्कृति मे जीवन का भौतिक लक्ष्य स्वस्थ रह कर दीर्घायु प्राप्त करना है । रोग रहित, बल बुद्धि मान, तेज युक्त होकर लम्बी आयु भोगने के लिए वेदानुमोदित आचार विचार का आश्रय लेना चाहिए । वैदिक प्रणाली मे उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राणायाम का बहुत महत्व है । प्राण बढाने का नाम ही प्राणायाम है । प्राणायाम से प्राण की शक्ति बढ़ती है । इस विषय म अथर्व वेद मे कुछ म त्र हैं—

कृणोमिते प्राणापानौ जरां मृत्यु दीर्घमायु स्वस्ति ।
यवस्वतः प्रहितान् यम दूतांश्चर ताप सेधामि सर्वान् ॥११॥
आरादराति निर्ऋति परो ग्राहि क्रव्याद पिशाचान् ।
रक्षो यत्सर्व दुर्भू त तत्तम इवाप हन्मसि ॥१२॥
अग्नेष्ट प्राणममृता दायुष्मत सो घवे जातवेदस ।
यथा न रिष्या अमृत सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदुते समृध्यताम् ॥

अथर्व वेद ८ । २ ।

मैं तुझ से प्राण और अपान का बल दीर्घायु स्वास्थ्य आदि सब उत्तमताए करता हू । जरा मृत्यु को दूर करता हू (अर्थात् पूर्ण आयु भोगन के बाद मृत्यु होना) वैवस्वत यम के द्वारा भेजे हुए यमदूता को ढूढकर दूर करता हूं । अराति (शत्रु) पीडा देने वाल निऋृति (दुख) देर तक रहने वाले रोग, मांस को क्षीण करन वाले रोग, रक्त को क्षीण या निर्बल करने वाले रोग क्षय के कारण रोग, दुर्भृत (अनमयस्कना) आदि जो भी विनाशक विकार हैं उनको अन्धकार के समान दूर करता हू । मैं तेरे लिए तजस्वी अमर और आयु परमात्मा से प्राप्त करता हू । जिस प्रकार तू अकाल मृत्यु को प्राप्त न हो दीर्घ जीवी मित्र भाव से सतुष्ट और कष्ट रहित रह इस प्रकार की समृद्धि तेरे लिए मैं अर्पण करता हू ।

प्राण शरीर को जीवित रखने वाली शक्ति है वही शरीर का सचालन करने वाली शक्ति भी है । इसे अथर्ववेद में 'मधुकशा' (मीठी चाबुक) संज्ञा भी दी है । इस सम्बध में मन्त्र इस प्रकार है—

> महत्पयो विश्वरूपमस्या समुद्रस्य त्वोतरेत आहु ।
> यतएति मधुकशा रराणा तत्प्राण स्तदमृत निविष्टम् ॥२॥
> माता दित्याना दुहिना वसूनां प्राणा प्रजानाम मृतस्यनाभि ।
> हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान्भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥४
> अ० ८ । १

इस पृथ्वी और समुद्र की महान शक्ति तू ही है, ऐसा सब कहते हैं, जहाँ से चमकता हुआ मीठा चाबुक चलता है वह ही प्राण और वह ही अमृत है । आदित्यो की माता वसुओ की कन्या प्रजाओ का प्राण और अमृत की नाभि यह मीठा चाबुक है । यह तेजस्वी तज उत्पन्न करन वाली और मनुष्यो मे सचार करन वाली है ।

इस रूपक मे चाबुक घोडा या बैल गाडी चलाने वालो के पास होता है इसके मारन से घोडे या बैल चलते हैं । अश्विनीदेवों का प्राणमय रूप शरीर मे प्राण अपान श्वास उच्छ्वास के रूप मे है । शरीर रूपी रथ के इन्द्रिय रूपी घोडो को चलाने वाला यह प्राणो का मीठा चाबुक ही है । इसमें ही जल थल की शक्ति निहित है । इस चाबुक के सचालन केन्द्र मे ही प्राण और अमृत एकत्र रहते हैं । प्राणायाम

द्वारा प्राण वलिष्ठ होते हैं इसके लिए प्रयत्न करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। कहा भी है—

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु ते त्वा परमेष्ठिन्। पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि॥ अथ० १३।१।१७॥

यहां ही प्राण हमारा मित्र बन। हे परमेष्ठिन् अपने मनुष्य और तेज के साथ आपको ही मैं धारण करता हूं।

परमात्मा की धारणा का अभिप्राय है परमात्मा की उपासना चिन्तना। इस चिन्तना का फल जिसका चिन्तन किया जाय उसके समान गुणो की प्राप्ति है। इससे मनुष्य निश्चित रूप से उन्नत और श्रेष्ठ बन सकता है। प्राणों के सात प्रकार अथर्व वेद मे बतलाए हैं—

तस्य व्रात्यस्य॥ सप्त प्राणा सप्तापानाः सप्त व्यानाः
योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः।
योऽस्य द्वितीय प्राण प्रौढो नामासौ स आदित्यः।
योऽस्य तृतीय प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः।
योऽस्य चतुर्थ. प्राणो विभुर्नामायं स पवमानः।
योऽस्य पंचमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः
योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशव।
योऽस्य सप्तम. प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः।

उस सन्यासी सत्पुरुष के सात प्राण सात अपान सात व्यान है। उसके सातों प्राणों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं। १– ऊर्ध्व (प्राण) इसका स्वरूप अग्नि है। २–प्रौढ (प्राण) इसका स्वरूप आदित्य है। ३–अभ्यूढ (प्राण) इसका स्वरूप चन्द्रमा है। ४–विभु (प्राण) इसका स्वरूप पवमान है। ५–योनि (प्राण) इसका स्वरूप आप है। ६–प्रिय (प्राण) इसका स्वरूप पशु है। ७–अपरिमिति (प्राण) इसका स्वरूप प्रजा है।

अथर्व वेद मे प्राण के रक्षक ऋषि भी रहे हैं। ये भी प्राण रक्षा के लिए सावधान रहने का संकेत करते हैं—

ऋषी बोध प्रती बोधावस्वप्नो यश्च जागृवि।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्त च जागृताम्॥ अथ०
५।३०।१०

बोध और प्रतिबोध से अभिप्राय ज्ञान और शिक्षण से है। ये

दो ऋषि है। ये दोनो तेरे प्राण की रक्षा करते हुए दिन रात जागते रहते हैं।

अथर्व वेद के ज्ञाता विद्वान् को अथर्वा कहते है। अथर्वा का अर्थ अचचल या स्थिर भी है। अचचल व्यक्ति योगी होता है। योगाभ्यासी को योगी कहते हैं। योग चित्त वृत्तियो के निरोध (रोकने) को कहते है। इस प्रकार अथर्वा की परिभाषा हुई, वेद विधि का ज्ञाता, मन की वृत्तियो को रोक कर अपने आधीन कर ले एवम् उसे इच्छानुसार अच्छे कार्यो मे लगावे। अथर्व वेद का मुख्य भाग योग साधन है। सिद्ध अवस्था की बातें भी इसमे हैं। प्राणायाम विषयक उपदेश भी इसमे अन्य वेदो से अधिक हैं। इसलिए यह योगियो का ही वेद कहा जाता है। इसमे अथर्वा के शिर का वर्णन अथर्व वेद के १० । ३ मे चमत्कृत ढग से किया गया है।

अथर्व वेद मे पुरोहित के कर्तव्य का भी निर्देश मिलता है। पुरोहित का महत्व भारतीय समाज व्यवस्था मे बहुत अधिक है। वह अपने यजमान मात्र का परम हितैषी होता है। क्षत्रियो के पुरोहित ब्राह्मण उनके राज्य की रक्षा के लिए, समृद्धि वृद्धि के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील रहकर पूर्ण योग देते रहे हैं।

अथर्व वेद मे परस्पर प्रेम भाव से रहने का श्रेष्ठ नागरिक बनने का उपदेश भी मिलता है। ईर्ष्या द्वेष रहित होकर रहने से सुख शान्ति मिलती है और सुख, समृद्धि, वृद्धि के साधन अधिक सुलभ होते हैं। अथर्व वेद के तृतीय काण्डमे उन्नीसवा सूक्त देखिये—जिसका भावार्थ निम्नलिखित है—

अर्थात् मेरे राष्ट्र का ज्ञान बल और वीर्य अत्यन्त तेजस्वी है मेरे राष्ट्रका क्षात्र बल कभी क्षीण नही। जिनका मै पुरोहित हूँ उनका बल बढना ही चाहिये। (१)

मैं इनके राष्ट्र को (अपने यजमान क्षत्रियो को) तेजस्वी करता हूँ, इनका बल सामर्थ्य और सेना को तेजस्वी करता हूँ, इस हवन द्वारा इनके शत्रुओ की सेना की भुजाओ को काटता हूँ।

ये सब शत्रु नीचे गिरजायें अवनत हो जायें, जो शत्रु हमारे ज्ञानी और धनी व्यक्तियो पर सेना भेजते हैं और अपनी सेना से ज्ञानी और धनीलोगो को कष्ट देते हैं, उन शत्रुओ को मैं क्षीण और निर्बल

करता हूँ। और अपने यजमानों को उन्नत करता हूँ अर्थात् उन्हें बलवान समृद्ध और समर्थ बनाता हूँ।

मैं जिनका पुरोहित हूँ उन क्षत्रियों के अस्त्र-शस्त्र परशु से भी अधिक तीक्ष्ण हों अग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण हों (ऐसा मैं प्रयत्न करूंगा जिससे मेरे राष्ट्र के अस्त्र-शस्त्र शत्रु के शस्त्रों से अधिक तीक्ष्ण तेजवान और समर्थ हों।

राष्ट्र के इन वीरों अपने यजमानों के शस्त्रों को मैं तीक्ष्ण करता हूँ, इस राष्ट्र को श्रेष्ठ वीरों का राष्ट्र बना कर उन्नत करता हूँ इनका क्षात्र बल कभी क्षीण न हो तथा ये विजयी हों ऐसा प्रयत्न मैं करता हूँ, सब देव इनके चित्त की रक्षा करें।

हे सम्पन्न राजा (राष्ट्र अध्यक्ष) हमारी (यजमान क्षत्रियों की, राष्ट्र की) सेनाका उत्साह बढ़ाओ, शत्रु की पराजय और अपनी विजय करने वाले सैनिकों की विजय घोष ऊपर उठे यह घोषणा प्रभाव कारी सिद्ध हो। झण्डा लेकर शत्रु सैन्य पर आक्रमण करने वाले हमारे वीर सैनिकों की जय ध्वनि अलग २ आकाश मे गूंजती रहे इन्द्र की आधीनता में मरुद गणों की सेना हमारी सहायक हो।

हे वीरो ! आगे बढ़ो विजय प्राप्त करो, आपकी भुजायें वीरता के कार्य करें, तीक्ष्ण बाण और शस्त्रों को व्यवहार में लाने वाले सैनिको ! वीरता से जिनके भुज दण्ड फड़क रहे हैं ऐसे वीरो ! निर्बल धनुष वाले शत्रु के सैनिको का संहार करो।

हे ज्ञान द्वारा तेजस्वी बने शस्त्रो ! छोड़े जाने पर दूर शत्रुओं पर जाकर गिरो शत्रुओं पर आगे बढ़कर आक्रमण करो, शत्रुओं को पराजित करो, उनके श्रेष्ठ वीरों का संहार करो, किसी को न छोड़ो, अर्थात् सब शत्रुओं का संहार करो।

यह सूक्त प्रमाणित करता है कि पुरोहित ब्राह्मण किस प्रकार राष्ट्र उत्थान में क्षत्रियों (अपने यजमानों) को बलवान श्रेष्ठ शस्त्रों से युक्त साहसी और कुशल वीर योद्धा बनाने की भावना रखता है। इसीलिये भारतवर्ष में ब्राह्मण पुरोहितों को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त रहा है।

इस प्रकार, अथर्व वेद देश की भौतिक उन्नति के साधन भी बताता है और जन-जन को सुखी समृद्ध सुयोग्य बनाता है।

॥ ॐ ॥

प्रथम काण्ड

प्रथम अनुवाक

—※—

१ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–वाचस्पति । छन्द–अनुष्टुप्, बृहती)

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिबला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ १ ॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ २ ॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पति नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ ३ ॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥ ४ ॥

स्थावर जङ्गम समस्त रूपो मे व्याप्त तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस देवता* सर्वत्र विचरण करते है। वाणी के

---

* टिप्पणी—यह समस्त विश्व सात मूल पदार्थो स उत्पन्न हुआ है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, तन्मात्रा और अहकार। यह सात पदार्थ कम अधिक मात्रा म मिल कर ससार की प्रत्येक वस्तु को एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं। तीन गुण हैं-सत्व, रज और तम। इन सात त [illegible] तीन [illegible] मे [illegible] प्त होने से ही [illegible] स [illegible] र्थों [illegible] त्ति हुई।

अधीश्वर ब्रह्माजी उनके अद्भुत पुरुषार्थ को आज मुझे प्रदान करें ॥ १ ॥ हे ब्रह्माजी ! स्वच्छ मन से मेरे निकट आइये। हे वसुपति ! अभीष्ट फल देकर मुझे प्रसन्नता प्रदान करें एव प्राप्त ज्ञान को धारण करने के लिए बुद्धि दें ॥ २ ॥ हे आचार्य ! वेदों को धारण करने योग्य मेधा तथा आनन्द उपभोग की आवश्यक सामग्री एकत्रित करें उसी प्रकार जैसे धनुष की डोरी खीचने से धनुष के दोनों छोर समान रूप से खिंच जाते हैं। पूर्ण प्रकार से मुझ मे स्थिर करें। आपकी प्रदान की हुई सुख सामग्री और बुद्धि मुझमें स्थिर रहे ॥ ३ ॥ वाणी के अधिपति ब्रह्माजी का हम आह्वान करते हैं। देव आचार्य हमको निमन्त्रित करें। हम ज्ञान मार्ग से कभी विचलित न हों। सपूर्ण ज्ञान से हम पूर्ण हों ॥ ४ ॥

२ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–पर्जन्य । छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री।)

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥ १ ॥
ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्व कृधि ।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥ २ ॥
वृक्ष यदगावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् ।
शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र ॥ ३ ॥
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रवं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥ ४ ॥

समस्त स्थावर जगम पदार्थो का धारण और पोषण करने वाला पर्जन्य बाण का पिता है यह हमे विदित है तथा

समस्त पदार्थों से युक्त वसुन्धरा इसकी जननी है। यह भी हम भली-भाँति जानते है। इन दोनो से मिल कर पुत्र वाण की उत्पत्ति हुई ॥ १ ॥ हे देव वाचस्पति! हमारे शरीरो को पाषाण सदृश्य सुदृढ और शक्ति सम्पन्न बनाओ। यह धनुष की डोरी हमारी ओर न झुके अर्थात् दूसरो की ओर झुके। हमारे विरोधियो के मत्सरपूर्ण कर्मो को हमसे दूर रखो तथा उनका पौरुष नष्ट करो ॥ २ ॥ शत्रु द्वारा पोषित उसके वीरो द्वारा हम पर छोडे गये तेज वाणो को हमसे उसी प्रकार दूर हटाओ जैसे ताप से पीडित गौवें शीघ्रता से शरण लेने के लिए वट वृक्ष की सघन छाया मे जाती है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार आवा पृथ्वी के बीच तेज की स्थिति होती है उसी भाँति व्याधि स्राव और घावो को यह वाण शमन करे ॥ ४ ॥

३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-पर्जन्यादयो। छन्द-पंक्ति, अनुष्टुप्।)

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अ तु बालिति ॥१
विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शं कर पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥२
विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥३
विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥४
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥५

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद् वस्तावधि संश्रितम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्याइव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ७ ॥
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ८ ॥
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥

शर के पिता पर्जन्य से हम भली-भाँति परिचित हैं। वह सकड़ों बलयुक्त पुरुषार्थ वाले मेघ हैं। उस बाण से हे पीड़ित ! तेरे मूत्रादि रोगों को विनष्ट करता हूँ। शरीर में अवरुद्ध तेरा मूत्र बाहर निकले ॥ १ ॥ हम शर के पिता मित्र को जानते हैं जो महान शक्ति सपन्न हैं। हे रोगी ! इस शर से मैं तेरे रोग को विनष्ट करता हूँ। शरीर में अवरुद्ध तेरा मूत्र बाहर निकले ॥ २ ॥ हम शर के महान शक्तिशाली पिता वरुण को भली-भाँति जानते हैं। इस बाण से हे रोगी ! तेरे रोग को दूर करता हूँ। शरीर में अवरुद्ध तेरा मूत्र बाहर निकले ॥ ३ ॥ हम शर के अमित बल संपन्न पिता चन्द्रमा को जानते हैं। हे रोगी ! इस बाण द्वारा मै तेरा रोग नष्ट करता हूँ। शरीर में रुका तेरा मूत्र बाहर निकले ॥ ४ ॥ हम शर के अनन्त शक्ति सपन्न पिता सूर्य को जानते हैं। हे रोगी ! इस बाण से तेरे रोग दूर करता हूँ। शरीर मे रुका हुआ तेरा मूत्र बाहर निकले ॥ ५ ॥ जो मूत्र तेरे मूत्राशय और मूत्र नलियों में अवरुद्ध है वह शीघ्र ही शब्द करता हुआ बाहर निकल आये ॥ ६ ॥ हे मूत्र व्याधि से पीड़ित रोगी ! मै तेरे मूत्र निकलने के लिये मार्ग खोलता हूँ।

उसी भाँति जैसे बाँध का पानी बाहर निकालने के लिए नाली खोदी जाती है। समस्त एकत्रित मूत्र शब्द करता हुआ बाहर निकले ॥ ७ ॥ जैसे समुद्र का जल बाहर निकालने के लिए मार्ग बनाया जाता है उसी प्रकार मैंने तेरे अवरुद्ध मूत्र को बाहर निकालने के लिए मूत्राशय का द्वार खोल दिया है। समस्त एकत्रित मूत्र शब्द करता हुआ बाहर निकले ॥ ८ ॥ धनुष से छोडा हुआ तीर जैसे लक्ष्य की ओर चला जाता है उसी प्रकार तेरा समस्त अवरुद्ध मूत्र शब्द करता हुआ बाहर निकल जाय ॥ ६ ॥

४ सूक्त

(ऋषि–सिन्धुद्वीप कृतिर्वा । देवता–आप । छन्द–गायत्री,बृहती)

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२॥
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गाव. पिबन्ति नः । सिन्धुभ्य. कर्त्वं हविः॥३
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥४

यजनकर्ताओं की माता तथा भगनियों सदृश्य जल, सोमरस, हव्य आदि सामग्री को अपने मार्गों से यज्ञ मे लेकर आते है ॥ १ ॥ सूर्य जिस जल के साथ रहता है तथा अन्तरिक्ष स्थित वह जल हमारे यज्ञ को फल प्रदान करने की शक्ति से पूर्ण करे ॥ २ ॥ मैं जल के स्वामी देवता का आह्वान करता हूँ जहाँ हमारे पशु जल पीते हैं ॥ ३ ॥ जलो में अमृत और औषधियाँ हैं। इसके इन दिव्य गुणों से हमारे घोडे और गायें बलवान और पुष्ट हो ॥४॥

५ सूक्त

(ऋषि —सिन्धुद्वीप कृतिर्वा । देवता—आप , । छन्द—गायत्री)

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न । उशतीरिव मातरः ॥२
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च न. ॥३
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४

हे जलो ! वास्तव मे तुम सुखदायक हो अत हमे शक्ति सपन्न बनाने मे सहायक हो जिससे हम महान सुख को प्राप्त कर सकें ॥ १ ॥ हे जलो ! हमे अपने परम सुखकारी एव मङ्गल-मय रस मे से कुछ भाग उसी प्रकार प्रदान करो जैसे माताएँ स्वेच्छा से अपने बच्चो को दूध पिलाती हैं ॥ २ ॥ हे जलो ! जिस अन्नादि को पुष्ट होने के लिए तृप्त करते हो उस अन्न की प्राप्ति के लिए आपको हम पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त करें तथा आप हमारी अधिकाधिक वृद्धि करें ॥ ३ ॥ प्राणिमात्र पर अपना सर्वोच्च नियन्त्रण रखने वाले समस्त सुख सुविधाओ के स्वामी जल की मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ४ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा कृतिर्वा । देवता—आप , । छन्द—गायत्री,पक्ति)

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु न. ॥१
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्नि च विश्वशम्भुवम् ॥ २ ॥
आप पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ३ ॥
शं न आपो धन्वन्या शमु सन्त्वनूप्याः । श न खनित्रिमा आपः
शमु या' कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकी. ॥ ४ ॥

दिव्य गुणो से संपन्न जल हमे पूर्ण सुख और शान्ति प्रदान करे वह हमे धन एव शक्ति प्रदान करें तथा हमारे पीने के लिए हो ॥ १ ॥ जलो मे समस्त रोग निवारक औषधिया विद्यमान हैं तथा अग्नि आनन्द और कल्याण का दाता है-ऐसा सोमदेव ने मुझे बताया है ॥ २ ॥ हानि से मेरे शरीर को सुरक्षित रखने के लिए हे जलो ! मुझे औषधियाँ प्रदान करो ताकि मैं बहुत समय पर्यन्त सूर्य को देखता रहूँ ॥ ३ ॥ मरुप्रदेश का जल हमे सुख प्रदान करे, दलदली तालाबो का जल भी हमे सुखकारी हो। खोदे हुए कूओ का जल घडों मे लाया हुआ जल या वर्षा द्वारा प्राप्त जल हमे आनन्द प्रदान करे ॥ ४ ॥

७ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि–चातन। देवता–अग्नि., इन्द्रश्च। छन्द–अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविय ॥ १ ॥
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥ २ ॥
वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः।
अथेदमग्न नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥ ३ ॥
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥ ४॥
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्रणो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ता पुरस्तात् त आयन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम्॥५
आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥ ६ ॥
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धां इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! हमारे हवि से प्रसन्न उस देवता को हमारे निकट लाओ जिसकी हम स्तुति कर रहे हैं। हे देव ! तुम दस्यु विनाशक प्रसिद्ध हो, अत इन दस्युओं को भी अपने पास बुलाओ ॥ १ ॥ हमारे शरीरों के नियन्त्रक महान मेधावी सर्वोच्च अग्नि देव ! हमारे द्वारा यज्ञ में अर्पित घृत आदि हवि सामग्री को प्राप्त करें तथा हमारे शत्रु राक्षसों को रुलाव ॥ २ ॥ हे इन्द्र और अग्ने ! आप दोनों हमारे द्वारा अर्पित घृत आदि हवि सामग्री को स्वीकार कर। समस्त दुष्ट जनों एव राक्षसों को विनष्ट करे एव उन्हे रुलावें ॥ ३ ॥ सबसे पहले अग्नि उन पर आक्रमण करे तत् पश्चात पुष्ट बाहु वाले इन्द्र उन्हे भगा कर दूर करें ताकि समस्त पीडित राक्षस अग्नि और इन्द्र के सन्मुख अपना-अपना परिचय देकर आत्मसमर्पण करें ॥ ४ ॥ हे महान मेधावी अग्निदेव ! हमे अपनी शक्ति प्रदर्शित करो। तुम सब दृष्टा हो, अत राक्षसों से कहो कि वे फिर हमे बाधा न पहुँचावें। आपके तेज से दग्ध दुष्टजन अपना अपना परिचय देते हुए तुम्हारे समक्ष इस यज्ञ मे आकर नष्ट हो जांय ॥ ५ ॥ हे ज्ञान रूप अग्ने ! हमारे दूत बनो। एव राक्षसों का हमारे हित मे दमन करो क्योंकि इस प्रयोजन के लिए आपका जन्म हुआ है। राक्षसों को रुलाओ ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! दुष्टजनों को जजीरों से जकडकर यहाँ लाओ तत्पश्चात् इन्द्र अपने वज्र से उनके सिरों को तोड डालें ॥ ७ ॥

८ सूक्त

(ऋषि-चातन । देवता-बृहस्पति प्रभृति । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्।)

इद हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इद स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जन ॥ १ ॥

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥ २ ॥
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजा नयस्व च।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥ ३ ॥
यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥ ४ ॥

यह यज्ञ दुष्टजनो को उसी प्रकार दूर ले जाय जैसे बाढ फेन को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है। जो स्त्री पुरुष दुष्ट कर्म करते है वे अपने कार्य मे निष्फल होकर तेरी प्रार्थना करें ॥ १ ॥ हे ब्रह्मणस्पती, अग्नि एव सोम देवताओ, यह राक्षस अपना अपराध स्वीकार करते हुए आपके समक्ष आया है। यह हमारा शत्रु है इसकी आप भली-भाति जांच करे। इसे आप अपने वश मे रखें ॥ २ ॥ हे सोम पान करने वाले अग्नि देव! इसे मारो तथा राक्षसो की सन्तानो को लाकर नष्ट कर दो। भयभीत हुए इस दुष्ट के दोनो नेत्र फोड डालिए ॥३॥ हे ज्ञान स्वरूप अग्ने! चूकि तुम इन छिपे हुए लालची दुष्टो-जनो की सन्तानो तथा कुलो आदि को भलीभाँति जानते हो, इस कारण ब्राह्मणो द्वारा की गई स्तुतियो से वृद्धि को प्राप्त हुए तुम इन राक्षसो को समूल नष्ट करो ॥ ४ ॥

६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-वस्त्रादयो मन्त्रोक्ता । छन्द-त्रिष्टुप्)

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिञ् ज्योतिषि धारयन्तु॥१॥
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम्।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ २ ॥

येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेद. ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेम सजातानां श्रेष्ठय आ धेह्येनम् ॥ ३ ॥
ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

सभी प्रकार के ऐश्वर्य आदि को चाहने वाले इस व्यक्ति को वसु इन्द्र, पूपा, वरुण, सूर्य अग्नि आदि देवता धन प्रदान करें। आदित्य, विश्वेदेवा तथा अन्य सभी देवता महान तेज को धारण करके इसे तेजस्विता प्रदान करें ॥ १ ॥ हे देवो ! इस पुरुष में सूर्य, अग्नि, चन्द्र एव स्वर्ण आदि की ज्योति पूर्ण रूपेण प्राप्त हो जिससे समस्त शत्रु हमसे नीचे ही रहे। हे देवताओ ! क्षणिक दुख न देते हुए इसे परम धाम पहुँचाओ ॥ २ ॥ हे ज्ञान सपन्न अग्ने ! जिन दिव्य और श्रेष्ठ मंत्रों द्वारा तुमने इन्द्र के निमित्त घृत दुग्धादि रस हवि रूप में प्रदान किये हैं, उन्ही मंत्रो द्वारा इस पुरुष को इस लोक में उन्नति प्रदान करो एवं अपने बराबर वालों से उत्तम स्थान मे स्थित करो ॥ ३ ॥ हे कान्तिमान अग्ने ! आपके अनुग्रह से मैं इन राक्षसों का धन, पुण्य कर्म तथा मन का हरण कर उन्हे प्राप्त करता हूँ। शत्रु हमारे वश मे हों और इस यजमान को आप क्षणिक दुख न देते हुए स्वर्ग की प्राप्ति करायें ॥ ४ ॥

१० सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–असुर., वरुणः । छन्द–त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥१॥
नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥३॥
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान् महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥४॥

दुष्टों को दण्ड देने वाले देवताओं में वरुण देव हैं। सबके नियामक होने के कारण वरुणदेव प्रकाशमान हैं। सत्य भाषण वरुणदेव के अधिकार में है तदपि मैं उनका यशोगान करके मन्त्रों के बल पर ज्ञानपूर्ण होकर तेजस्वी हो गया हूँ। अतः वरुणदेव के तीक्ष्ण क्रोध से पीड़ित इस मनुष्य को मुक्त करता हूँ ॥ १ ॥ हे तेजस्वी वरुण! आपके क्रोध के लिये नमन करता हूँ। हे तेजोमय वरुण! समस्त जीवधारियों के हृदय में व्याप्त क्रोध से आप भली-भाँति परिचित हैं। मैं एक साथ ही अनेकों अपराधियों को प्रेषित करता हूँ। आपके अनुग्रह से यह व्यक्ति आपका होकर शत आयु हो ॥ २ ॥ हे रोगी! अपनी जिह्वा का अनुचित उपयोग कर तूने बहुत झूँठ बोला है। असत्य भाषण के अपराधी वरुण देव के क्रोधभाजन मैं तुझे उससे मुक्त करता हूँ ॥ ३ ॥ हे मनुष्य! मैं तुझे समुद्र के स्वामी वरुण देव से मुक्त करता हूँ। हे परम पराक्रमी वरुणदेव! आप भी अपने दूतों को इस व्यक्ति को सतत पीड़ित न करने का आदेश दें। आप हमारे द्वारा अर्पित हवि तथा स्तुतियों से प्रसन्न हों एवं हमारे अपराधों को क्षमा करें ॥ ४ ॥

११ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-पूषादयो। मन्त्रोक्ता। छन्द-पंक्तिः,अनुष्टुप्)

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥१॥

चतस्रो दिव प्रदिशचतस्रो भूम्या उत ।
देवा गर्भं समैरयन् त व्यूर्णु वन्तु सूतवे ॥२॥
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।
श्रयया सूषणे त्वमव त्व बिष्कले सृज ॥३॥
नेव मासे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
श्रवैतु पृश्नि शेवल जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥४॥
विते भिनद्मि मेहन वि योनि वि गवीनिके ।
वि मातर च पुत्र च वि कुमार जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥५॥
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिण ।
एवा त्व दशमास्य साक जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥६॥

हे पूषादेव ! वषट्कार के द्वारा ऋत्विज एव अर्यमा आपको हवि अर्पित करें । आपके अनुग्रह मे यह स्त्री बिना दुख उठाये सन्तान पैदा करे । प्रसव-काल में इसे कष्ट न हो ॥ १ ॥ द्यावा पृथ्वी के आठो दिग्देवता एव इन्द्रादि सुरो ने पहले गर्भ का निर्माण किया । ये सभी देवता इस स्त्री को प्रसव के लिए तैयार करें ॥ २ ॥ हे पूषादेव ! गर्भ को जरायु से मुक्त करो । हम भी सुखदायक प्रसव के लिए गर्भ मार्ग को खोलते हैं । हे प्रसव काल मे सहायक देव ! तुम भी प्रसन्न होकर प्रसूता के अङ्गो को ढीला करो । हे मन्न देव ! आप गर्भ का मुँह नीचा करके इसे प्रेरित करो ॥ ३ ॥ हे प्रसूता ! यह जरायु तुझे पुष्ट नही करता, यह फेंकने योग्य है । अत यह जरायु जिसका सबध मज्जा मांस चर्बी आदि किसी धातु से नही है,कुत्तों के भोजनार्थ नीचे की ओर गिरे ॥ ४ ॥ मैं शिशु को बाहर निकालने के लिए तेरे गर्भ मार्ग एव रोकने वाली नाडियों को विस्तृत करता हूँ तथा माता पुत्र दोनो को अलग अलग करता हूँ । तत्पश्चात् यह जरायु भी उदर से निकल कर नीचे की ओर गिरे ॥ ५ ॥

जिस तीव्रगति से वायु मन एव नभचर विना रोक-टोक विचरण करते हैं, उसी तरह हे दस मास के गर्भस्थ शिशु ! तू जरायु सहित बाहर निकल तथा यह जरायु नीचे की ओर गिरे ॥६॥

१२ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–भृग्वङ्गिरा । देवता–यक्ष्मनाशनम् । छन्द–जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप ।)

जरायुज प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।
स नो मृडाति तन्वऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१॥
अगेअगे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ॥२॥
मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एन पुरुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वताश्च ॥३॥
शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्य: शमस्तु तन्वे मम ॥४॥

जरायु पुन सृष्टि के आदि पुरुष वायु के समान तीव्रगामी एव महान् पराक्रमी सूर्य मेघो द्वारा गर्जन करते हुए वर्षा के साथ आते हैं । वे सीधे गमन करने वाले सूर्य जो एक होकर भी तीन रूपो मे विभाजित हैं, हमारे शरीरो को व्याधि मुक्त करे ॥ १ ॥ अपने प्रत्येक अङ्ग मे दीप्त रूप से व्याप्त हे सूर्य ! हम स्तुति एव यज्ञादि द्वारा आपकी तथा आपके समीपस्थ देवो की उपासना करते हैं । रोगो से जकडे इस पुरुष के रोग निवारणार्थ हम आपकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥ हे सूर्य ! इस व्यक्ति को जो मस्तक पीडा एव खाँसी आदि से पीडित है तथा जो इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग मे व्याप्त हैं, रोग मुक्त करो । वर्षा, वायु

एव जनादि के सयोग से उत्पन्न हुए रोगों से इस व्यक्ति को मुक्त करो। रोगों के यह समूह इसे छोड़कर वनों में एवं एकान्त पर्वतों में प्रमाण कर जाँय ॥ ३ ॥ मेरे अन्य अङ्गों में व्याप्त रोग शान्त होकर सुख मिले। मेरे चारों अङ्ग स्वस्थ हो तथा मेरा समस्त शरीर रोग मुक्त हो ॥ ४ ॥

१३ सूक्त

(ऋषि – भृग्वङ्गिरा । देवता – विद्युत् । छन्द–अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति ।)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥१॥
नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तप समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्य नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्म ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यद् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥
यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

दीप्यमान विद्युत को मेरा नमस्कार पहुँचे। बिजली की गड़गड़ाहट को मेरा प्रणाम पहुँचे। वज्र के लिये मेरा प्रणाम पहुँचे जो अपने विपक्षियों पर भीषण प्रहार करता है ॥ १ ॥ हे पर्जन्य ! तुम्हें मेरा प्रणाम पहुँचे आप सत्पुरुषों की रक्षा करने वाले हैं। आप हमारे शरीरों को सुख एवं हमारे पुत्र पौत्रादि को प्रसन्नता प्रदान करें ॥ २ ॥ ऊपर से नीचे की ओर न गिरने वाले पर्जन्य आपको नमस्कार है। तुम्हारे वज्र को भी हम प्रणाम करते हैं। हे पर्जन्य ! गुफा के समान अगम्य। हम आपके रहस्यपूर्ण और श्रेष्ठ निवास स्थान से भली-भाँति

परिचित हैं उस निवास को जहाँ आप नाभिचक्र के समान अन्तरिक्ष रूपी समुद्र मे स्थिति है ।। ३ ।। हे देवी अश्ने ! दुष्टो का दमन करने के लिए समस्त देवताओ ने सुदृढवाण रूप मे तेरी रचना की है । हमारी स्तुति से प्रसन्न हो । हम पर अनुग्रह करो । हे वाणरूप देवी अश्ने ! हम तुझे प्रणाम करते है ।। ४ ।।

१४ सूक्त

(ऋषि— भृग्वगिरा । देवता—यम । छन्द—अनुष्टुप् ।)

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्नइव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्तताम् ।।१
एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयता यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितु ।।२
एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ।।३
असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्त कोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ।४

जैसे मनुष्य वृक्ष से फूल ग्रहण करता है उसी प्रकार मैं इस स्त्री के भाग्य और प्रसिद्धि को ग्रहण करता हूँ । विशाल पर्वत की भाँति अचल और स्थिर यह कन्या अपने सम्बन्धियो के बीच बहुत दिनो तक रहे ।। १ ।। हे यम ! यह कन्या तुम्हारी पत्नी हो । पहले तुमने इसे अपनाया था, अब यह वधु माता-पिता या भाई के घर मे रहे ।। २ ।। हे राजन् ! यह आपकी कुलवधु है, इसे हम पुन आपको समर्पित करते हैं । जब तक वृद्ध होकर इसके बाल श्वेत न हो जाँय, तब तक यह अपने सम्बन्धियो के घर निवास करें ।। ३ ।। तेरे भाग्य को मैं

असित, गय, कश्यप ऋषियों के मन्त्रों से इस प्रकार बाँधता हूँ, जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने धन, वस्त्र आदि को छिपाकर रखने का प्रयत्न करती है ॥ ४ ॥

१५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—सिन्ध्वादयो, मन्त्रोक्ता ।
छन्द—अनुष्टुप् , पंक्ति ।)

सं सं स्रवन्तु सिन्धव सं वाता स पतत्रिणः।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१
इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो य. पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयि ॥२
ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः
तेभिर्मे सर्वै संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥३
ये सर्पिषः सम्रावन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं स स्रावयामसि ॥४

समस्त नदियाँ हमारे अनुकूल हो मिलकर बहे। वायु भी हमारे अनुकूल मिलकर प्रवाहित हो तथा पक्षीगण भी हमारे अनुकूल ही सम्मिलित होकर उठते रहें। मेरा यह यज्ञ सभी देवताओं को सर्वदा प्रसन्नता प्रदान करे क्योंकि मैं सङ्गठन बद्ध होकर यज्ञ कर रहा हूँ ॥ १ ॥ हे देवताओ ! आप मेरे आह्वान पर पधारो। यज्ञ मे हवि को प्राप्त होने वाले तथा स्तुति स्वीकार करने वाले देवताओ,अपने अनुग्रह स्वरूप इस यजमान को पशु-धन आदि प्रदान कर समृद्धिशाली बनाओ। यह सब हमारे पास आवें ॥ २ ॥ नदियों के अक्षय स्तोत्र अवाधगति से बहते हैं, उन सबसे हम पशु एव धनधान्य आदि निर्वाध गति

से प्राप्त करते रहें ॥ ३ ॥ प्रवाहित होने वाले घृत दूध एव जल के प्रवाहो से हम गौ आदि धन-धान्य निर्बाध गति से प्राप्त करें ॥ ४ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि-चातन । देवता—अग्नि, वरुण आदि । छन्द—अनुष्टुप् ।)

येऽमावास्यां रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ॥१॥
सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् ॥२॥
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥३
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पुरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४॥

शत्रु विनाशक महान् तेजस्वी अग्नि हमारी उन राक्षस पिशाचादि से जो अमावस्या की रात्रि का विचरण करते है रक्षा कर । १ ॥ वरुणदेव ने सीसे के विषय मे बताया कि यह मेरा है । अग्निदेव इसको पुष्ट करते हैं । इन्द्र ने यह सीसा मुझे दिया और बताया कि यह सीसा राक्षसो का सहार करने वाला है ॥ २ ॥ यह सीसा राक्षसो पर विजय पाने वाला है । यह सीसा भयकर पिशाचो को दूर करने वाला है । इसके द्वारा मै समस्त उत्पीडक राक्षसो का शमन करता हूँ ॥ ३ ॥ यदि तू हमारे गाय, घोडे अथवा हमारे किसी व्यक्ति को मारता है तो हमारा शत्रु है । और हम तुझे सीसे के इस टुकड से छेडते हैं जिससे तू हमारे आदमियो को न मार सके ॥ ४ ॥

१७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-योषितो धमन्यश्च । छन्द-अनुष्टुप्,गायत्री।

अमूर्यायन्ति योषितो हिरा लोहित वासस ।
अभ्रातरइव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चस ॥१
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्व तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठका च तिष्ठति तिष्ठादिद् धमनिर्मही ॥२
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमा. साकमन्ता अरसत ॥३
परि व. सिकतावती धनूर्बृहत्य क्रमीत् ।
तिष्ठतेलयता सु कम् ॥४॥

स्त्री की यह नसें स्थिर हो जाँय जिससे रक्त अधिक मात्रा मे बाहर न निकले । उसी प्रकार जैसे बाधव रहित बहिनें पति के घर नहीं जा पाती, वैसे ही नाडियाँ स्थिर रहे ताकि रक्त बाहर न प्रवाहित हो ॥ १ ॥ हे शरीर के नीचे मध्य और ऊपरी भाग मे स्थित धमनियो, तुम सभी स्थिर एव शान्त हो एव रक्त बहाना बन्द करो । छोटी तथा बडी सभी नाडियाँ रक्त का प्रवाहित होना बन्द करके स्थिर हो ॥ २ ॥ हृदय स्थित मुख्य सौ धमनियाँ एव सहस्रों शाखा नाडियो मे मध्य की प्रधान नाडियाँ मंत्र बल के द्वारा स्थिर हो गई हैं जिससे रक्त का बहना शान्त हो गया । साथ ही साथ आखिरी शेष नाडियाँ भी स्थिर हो गई ॥ ३ ॥ रक्त बन्द होने के साथ तिरछी मूत्राशय की नाडी धनु और बृहती नाडियो को चारो ओर से अवरुद्ध कर दिया है । अत तुम रुधिर का बहना बन्द करो, स्थिर हो एव इसे सुख प्रदान करो ॥४॥

---

१८ सूक्त

(ऋषि-द्रविणोदाः। देवता-सवित्रादयो मन्त्रोक्ता। छन्द-बृहती, अनुष्टुप्।)

निर्लक्ष्म्य ललाम्य निररातिं सुवामसि।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥१
निररणिं सविता साविषत् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥२
यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा।
सर्वं तद् वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ॥३
रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत।
विलीढ्यं ललाम्यं ता अस्मन्नाशयामसि ॥४॥

मस्तक स्थान मे दुर्भाग्य सूचक चिह्नो को पूर्णतया बाहर करते है। शत्रु समान अनिष्टकारी असौभाग्य सूचक चिह्नो को हम दूर करते हैं तथा मङ्गलमय चिह्नो को अपने और अपनी सतति के लिए धारण करते है। बुरे लक्षणो को शत्रुओ की ओर दूर भगाते है ॥ १ ॥ सविता देव मित्र वरुण और अर्यमा देवता हाथ पैरो मे स्थित असौभाग्य सूचक चिह्नो को दूर भगावें उनका अनुग्रह भी अभीष्ट वर्षक होता हुआ शरीर स्थित दुर्भाग्य सूचक चिह्नो को दूर करे। देवताओ ने भी हमारे सुख के लिए इसे प्रेरित किया है ॥ २ ॥ तेरे शरीर आत्मा वालो एव नेत्रो मे जो भयसूचक चिह्न स्थित है, इन सबको हम मत्रो से दूर भगाते हैं। सविता देव तेरा कल्याण करे ॥ ३ ॥ बारहसिंघे के समान पैरो वाली वृषभ दती गाय के समान चलने वाली कटु भाषिणी स्त्री को दूर हटाते है अर्थात् अपने मत्र बल से इन दुर्लक्षणो को दूर करते हैं। मस्तक पर स्थित असौभाग्य सचक चिह्न को भी हम दूर करते है ॥४॥

१६ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–इन्द्र प्रभृति । छन्द–अनुष्टप्, बृहती, पङ्क्ति)

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद् विषूचीरिन्द्र पातय ॥१
विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्टयो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्य यैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ॥३
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ् छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४॥

अस्त्र-शस्त्र से वेधने वाले एवं हमे चोट पहुंचाने वाले शत्रु हमें खोज न सकें अर्थात् हमसे दूर रहे। हे इन्द्र ! शत्रुओ की ओर फेंके जाने वाले शरों को हमसे दूर गिराओ ॥ १ ॥ जो वाण छोडे जा चुके हैं अथवा जो छोडे जाते हैं तथा चारों ओर व्याप्त वाण हमसे जाकर दूर गिरें। हमारे दिव्य अस्त्र एव मनुष्यो के पास जो अस्त्र है, ये दोनों तरह के अस्त्र शत्रुओ को वेध डालें ॥ २ ॥ जो कोई भी हमसे शत्रुवत व्यवहार करता है, चाहे वह हमारा अपना हो अथवा कोई अन्य जाति का हो, इन मेरे शत्रुओ को रुद्रदेव अपने हिंसक वाणों से वेध कर सहार करें ॥ ३ ॥ विरोधी अथवा मित्र जो द्वेप के वशीभूत हो हमे शाप देता है ऐसे सब शत्रुओ का समस्त देव नाश करें। मेरा मन्त्र रक्षा करने वाला कवच रूप हो ॥ ४ ॥

---

२० सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–सोम, मारुत आदि । छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१
यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते ।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद् यावयतं परि ॥२
इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३
शास इत्था महां अस्यमित्रसाहो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४

हे सोमदेव ! मेरा शत्रु अपने स्थान को छोडकर अपनी स्त्री के निकट कभी न जाय । हे मरुद्गणो ! मैं जिस यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा हूँ, उसमे हमे सुखी करो । सामने आता हुआ शत्रु तेज के कारण मेरे निकट न आने पावे । हमें सुयश प्राप्त हो । इच्छित पथ मे जो निंद्य कर्म बाधा डालते है उनसे मैं दूर रहूँ ॥१॥ हे मित्र एव वरुण देवताओ ! आप दोनों शत्रुओ द्वारा हमारे ऊपर छोडे गये अस्त्रो की दिशा को दूसरी ओर मोड दो जिससे वे हमे छू न सके । आज युद्ध मे हिंसा की कामना से शत्रुओ द्वारा छोडे हुए शस्त्र समूह को हमसे दूर करने का प्रबन्ध करो ॥२॥ हे वरुणदेव ! शत्रुओं द्वारा इस ओर से अथवा दूसरी ओर से छोडे गये हिंसक शरो को दूर हटाओ । हमे अपना रक्षण प्रदान करो तथा इन हिंसक शस्त्रो को हमसे दूर करो ॥३॥ हे इन्द्र ! आप महान् शासक अपराजेय एव शत्रु हन्ता हो । ऐसे महान् पराक्रमी देव का मित्र पुरुष न कभी हार ही सकता है और न कभी मारा ही जा सकता है ॥४॥

१६ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-इन्द्र प्रभृति । छन्द-अनुष्टप्, बृहती, पङ्क्ति

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद् विषूचीरिन्द्र पातय ॥१
विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्य यैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ॥३
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ् छपाति न. ।
देवास्त सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४॥

अस्त्र-शस्त्र से वेधने वाले एव हमे चोट पहुचाने वाले शत्रु हमे खोज न सकें अर्थात् हमसे दूर रहें । हे इन्द्र ! शत्रुओ की ओर फेंके जाने वाले शरो को हमसे दूर गिराओ ॥ १ ॥ जो वाण छोडे जा चुके हैं अथवा जो छोडे जाते हैं तथा चारो ओर व्याप्त वाण हमसे जाकर दूर गिरें । हमारे दिव्य अस्त्र एव मनुष्यो के पास जो अस्त्र हैं, ये दोनो तरह के अस्त्र शत्रुओ को वेध डालें ॥ २ ॥ जो कोई भी हमसे शत्रुवत व्यवहार करता है, चाहे वह हमारा अपना हो अथवा कोई अन्य जाति का हो, इन मेरे शत्रुओं को रुद्रदेव अपने हिंसक बाणों से वेध कर सहार करें ॥ ३ ॥ विरोधी अथवा मित्र जो द्वेष के वशीभूत हो हमे शाप देता है ऐसे सब शत्रुओ का समस्त देव नाश करें । मेरा मन्त्र रक्षा करने वाला कवच रूप ही ॥ ४ ॥

---

२० सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–सोम, मारुत आदि। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१
यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद् यावयतं परि ॥२
इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३
शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृत।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४

हे सोमदेव! मेरा शत्रु अपने स्थान को छोडकर अपनी स्त्री के निकट कभी न जाय। हे मरुद्‌गणो! मैं जिस यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा हूँ, उसमे हमे सुखी करो। सामने आता हुआ शत्रु तेज के कारण मेरे निकट न आने पावे। हमे सुयश प्राप्त हो। इच्छित पथ मे जो निंद्य कर्म बाधा डालते हैं उनसे मैं दूर रहूँ ॥१॥ हे मित्र एव वरुण देवताओ! आप दोनो शत्रुओ द्वारा हमारे ऊपर छोडे गये अस्त्रो की दिशा को दूसरी ओर मोड दो जिससे वे हमे छू न सके। आज युद्ध मे हिंसा की कामना से शत्रुओ द्वारा छोडे हुए शस्त्र समूह को हमसे दूर करने का प्रबन्ध करो ॥२॥ हे वरुणदेव! शत्रुओ द्वारा इस ओर से अथवा दूसरी ओर से छोडे गये हिंसक शरो को दूर हटाओ। हमे अपना रक्षण प्रदान करो तथा इन हिंसक शस्त्रो को हमसे दूर करो ॥३॥ हे इन्द्र! आप महान् शासक अपराजेय एव शत्रु हन्ता हो। ऐसे महान् पराक्रमी देव का मित्र पुरुष न कभी हार ही सकता है और न कभी मारा ही जा सकता है ॥४॥

२१ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–इन्द्र। छन्द–अनुष्टुप्)

स्वस्तिदा विशा पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्कर. ॥१
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्मा अभिदासति ॥२
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥४॥

परम कल्याणकारी, प्रजा के स्वामी, असुर सहारक, शत्रु विजेता, सोमरस का पान करने वाले प्राणीमात्र के नियन्ता अविनाशी इन्द्र हमारा रक्षण करते हुए, सग्राम मे हमारे नेता बनें ॥१॥ इन्द्र हमारे शत्रुओं का दमन करते है तथा जो हमसे युद्ध करता है उसे पराजित कर नीचा दिखाते है। जो हमसे शत्रुता करता है, उसे हे देव! गहरे अन्धकार मे डालो ॥२॥ हे वृत्रासुर के संहारक, इन्द्रदेव! आप असुरो का हनन करें। वृत्रासुर के समान पराक्रमी शत्रु के जबडो को तोड दें। हे देव! जो हमारा बुरा चाहता है, उस शत्रु के क्रोध एव उत्साह का दमन कीजिये ॥३॥ हे इन्द्रदेव! हमे अपना महान् रक्षण प्रदान कीजिए। ईर्ष्या करने वाले शत्रु के विचारों का शमन कीजिए तथा शत्रु के शस्त्रो को हमसे दूर रखिए। हमारी हिंसा करने की कामना करने वाले शत्रुओं के आयुधों को विनष्ट कीजिए ॥४॥

२२ सूक्त (पांचवाँ अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–सूर्यः हृद्रोगश्च। छन्द–अनुष्टुप्)

अनु सूर्यमुदयतां हृदद्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥१॥
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥२॥
या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥३॥
शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥४॥

हे रोगी! सूर्य के उदय होने ही तेरा हृदय रोग एवं पाण्ड रोग से उत्पन्न शरीर का पीलापन दूर हो। गौ के रक्त वर्ण से प्रथक रक्त वर्ण द्वारा मैं तुझे आच्छादित कर रोगमुक्त करता हूँ ॥१॥ हे व्याधिग्रस्त पुरुष! हम तुझे गौ सम्बन्धी रक्त वर्ण से ढकते हैं जिससे तू स्वास्थ्य लाभ एव दीर्घायु प्राप्त करे, जिससे तू पाडु रोग से मुक्त हो एव तेरे शरीर का पीलापन दूर हो ॥२॥ देवताओं की 'लाल वर्ण की गौएं हैं' तथा मनुष्यो की लाल वर्ण की गौएं है। इन दोनों प्रकार की गौओं के रक्त वर्ण को प्राप्त कर हम तुझे आच्छादित करते है अर्थात् तुझे गाय जैसा उज्ज्वल वर्ण स्वास्थ्य प्रदान करते हैं ॥३॥ हे रोगिन! हम तेरे शरीर की पीलिमा को शुक एव काष्ठ शुक नामक पक्षियो मे तथा तेरा हरिद्वर्ण गोपी तनक नामक पक्षियो मे स्थानातरित करते हैं ॥४॥

—

२२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वनस्पतय । छन्द—अनुष्टुप)

नक्तजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥१॥
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥२॥
असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥३॥
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥४॥

हे हरिद्रा नामक औषधि ! तू रात्रि मे उत्पन्न हुई है और रोगी को सुख लाभ देने वाली राम भगरा नामक औषधि कृष्ण वर्ण करने वाली इन्द्र वारुणि नामक औषधि एव असित वर्ण करने वाली नील औषधि तुम सभी इस कुष्ठ रोग से विकृत अग को अपने रग मे रँग दो ॥१॥ कुष्ठ रोगी के शरीर से कुष्ठ रोग को दूर करो अर्थात् सफेद धब्बों को दूर करो जिससे इस रोगी मे पहले जैसी लाली आ जाय । हे औषधि ! श्वेत कुष्ठ को इसके शरीर से दूर कर दो ॥२॥ हे नील औषधि ! तेरा जन्म स्थान भी काला है तथा तू जिनके सम्पर्क मे आती है उन्हे भी अपने ही वर्ण का अर्थात काला बना देती है । अत तू कुष्ठ और धब्बे आदि रोगो को दूर कर दे ॥३॥ इस रोगी की हड्डियो में व्याप्त, शरीर और त्वचा पर स्थित कुष्ठ के चिन्हो को मैंने अपने मन्त्र बल के द्वारा नष्ट कर दिया है ॥४॥

२४ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-आसुरी वनस्पति । छन्द-अनुष्टुप्, पङक्ति

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ ।
तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥१॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् ॥२॥
सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥३॥
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥४॥

हे ओषधे ! पहले तू सुन्दर पङ्खों वाले गरुड़ की पि
थी । आसुरी माया ने गरुण से युद्ध करके उस पित्त को अप
अधिकार में कर लिया था तथा उस जीते हुए पित्त को औषि
का रूप दिया । वह रूप नील आदि में गया ॥१॥ आसु
माया ने सर्वप्रथम कुष्ठ रोग का चिकित्सक बन कर इस नी
औषधि को कुष्ठ निवारक औषधि के रूप में बनाया । उसने इ
औषधि के द्वारा कुष्ठ रोग को दूर किया है तथा त्वचा क
सामान्य वर्ण प्रदान किया है ॥२॥ हे औषधे ! तेरी माता
वर्ण तेरे वर्ण के समान है तेरा पिता भी तेरे जैसे वर्ण का
तेरे सम्पर्क में जो भी आता है उसको भी तू अपने रंग में र
लेती है । अतः तू रोगी को भी अपने वर्ण वाला बना ॥३॥
हे असित वर्णा ! तुझे आसुरी माया ने पृथ्वी पर उत्पन्न किय
है । तू इस रोगी के कुष्ठ से विकृत अंग को भली-भाँति रो
मुक्त करके पहले जैसा बना दे ॥४॥

२५ सूक्त

(ऋषि भृग्वङ्गिरा । देवता-यक्ष्मनशनाऽग्नि । छन्द त्रिष्टुप, अनुष्टुप)

मदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमासि ।
तत्र त आहु परम जनित्र स न सविद्वान परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥१॥
मद्यर्चियंदि वासि शोचि शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
ह्रु दुर्नामासि हरितस्य देव स न सविद्वान परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥२
यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्र ।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स न १ विद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥३
नम शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयाय नमो अस्तु तक्मने ॥४

हे कष्ट देने वाले ज्वर ! धर्मात्मा विद्वान जिस अग्नि मे हवन करते हैं उस अग्नि म तेरा जन्म स्थान बताया जाता है। अत जीवन को भार बनाने वाले ज्वर ! तू अपने लिए अग्नि का भलीभांति समझ कर हमारे छिडके हुए उष्ण जल से हमार शरीर को छोडकर अग्नि के साथ बाहर होजा ॥१॥ हे जीवन का कष्ट साध्य बनाने वाले ज्वर ! तू ताप प्रधान गुण वाला है, अग्नि पुत्र है एव शरीर को जला देन वाला है साथ ही हे ज्वर ! जिस पुरुष पर तू आक्रमण करता है, उसके शरीर को पीला बना देता है। इस प्रकार का ज्वर हमार द्वारा उष्ण जल स सिंचित शरीर को अपना जन्म स्थान अग्नि मान कर इस अग्नि के साथ ही बाहर चला जा ॥२॥ हे जीवन को कष्टमय बनाने वाले ज्वर ! चाहे तुम शरीर को जलाने वाले हो चाहे वरुण पुत्र हो पर फिर भी तुम रोगी के शरीर म पीलापन उत्पन्न करने के कारण हूड नाम स सम्बोधित किये जाते हो। हे ज्वर ! तू अपने जन्म स्थान अग्नि को जानकर हमारे द्वारा तप्त जल से सिंचित

शरीर को छोड़कर बाहर निकल जाओ ॥३॥ शीत पैदा करने वाले शीत ज्वर को मैं प्रणाम करता हूँ। ताप उत्पादक ज्वर को नमस्कार करता हूँ। पहले, दूसरे, तीसरे दिन आने वाले सभी प्रकार के ज्वर को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

२६ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–इन्द्रादयः। छन्द–गायत्री, त्रिष्टुप्।)

आरे सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत्। आरे अश्मा यमस्यथ ॥१॥
सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः। सविता चित्रराधाः ॥२॥
यूयं न प्रवतो नपान्मरुतः सूर्यत्वचसः। शर्म यच्छाथ सप्रथाः ॥३॥
सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥४॥

हे देवताओ! हमें मारने के लिए शत्रु द्वारा छोड़ा हुआ यह अस्त्र अथवा यन्त्र आदि से फेंका हुआ पत्थर हमसे दूर ही रहे ॥१॥ आकाश मंडल में दिखाई पड़ने वाले सूर्य हमारे मित्र हों। धनवान सविता देव एवं महान् ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव हमारे मित्र हों ॥२॥ पृथ्वी पर से सूर्य द्वारा खींचे गये जल को नियत समय तक धारण करने वाले पर्जन्य देव, सम्रगण युक्त मरुद्-गणो, आप सूर्य समान तेजस्वी हैं। आप सब हमें महान् सुख प्रदान करें ॥३॥ हे इन्द्रादि देवताओ! शत्रुओं द्वारा प्रहारित अस्त्र-शस्त्रों को हमसे अलग रखिये एवं हमें आनन्द प्रदान कीजिये। हमारा अनिष्ट चाहने वाले हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करके हमें सुख आरोग्य एवं हमारी सन्तति को सुख प्रदान कीजिए ॥४॥

२७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-इन्द्राणी। छन्द-पंक्ति, अनुष्टुप्।)

अमूः पारे पृदाक्व स्त्रियमा निर्जरायवः।

तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या यपि ह्यामस्यवायोः परिपन्थिन. ॥१॥
विदूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती ।
विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायव ॥२॥
न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः ।
वेणोरद्गाइवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥३॥
प्रेतं पादौ प्र स्फुरत वहत पृणतो गृहान् ।
इन्द्राण्ये तु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥४॥

नागो की ये इक्कीस जातिया नागलोक मे निवास करती हैं। नाल के समान लिपटी रहने वाली उन सर्पों की केंचुलियो से दूसरों का अनिष्ट चाहने वाले युद्ध भूमि मे आये शत्रुओ के नेत्रो को हम आच्छादित करते है ॥१॥ शत्रु हनन मे समर्थ शिव धनुष के समान कठोर अस्त्र शस्त्रो से युक्त मारधाड करती हुई हमारी वाहिनी चारो ओर से बढे जिससे यदि शत्रु सेना पुन एकत्र हो तो वे किंकर्त्तव्यविमूढ हो कुछ कर न सकें और उनके राजा देश, कोष आदि से सदैव के लिए हाथ धो बैठें ॥२॥ शत्रु थोडी सख्या मे हमारे सामने ही न आवें और न ही अपार शत्रु चारो प्रकार (अश्व, रथ, गज और पैदल) की सेना लेकर हमे पराजित कर सकें। पराजित हुए शत्रु बास की ऊपरी शाखा जैसी दुर्बलता को प्राप्त हों ॥३॥ हे वीरो ! तुम शीघ्र प्रयाण करते हुए अपने लक्ष्य स्थान को प्राप्त करो। अभीष्ट पूरक पुष्प के निवास-स्थान तक हमे पहुँचाओ एव शत्रु राष्ट्र तक हमारी सेना को पहुँचाओ। सेना की अभिमानी देवता इन्द्राणी रक्षार्थ मार्ग दर्शन करें ॥४॥

२८ सूक्त

(ऋषि चातन । देवता-अग्नि, यातुधान । छन्द अनुष्टुप्, बृहती)
उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातन ।

दहन्नप इयाविभो यातुधानान् किमीदिनः ॥१॥
प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥२॥
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोक्मत्तु सा ॥३॥
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् ।
अधा मिथो विकेश्यो विघ्नतां यातुधान्यो वि तृह्यन्तामराय्यः ॥४॥

अग्निदेव रोग विनाशक और शत्रु संहारक हैं। उनका निवास स्थान द्युलोक है। यह अग्नि हिंसक एव परदोषान्वेशी पीडक राक्षसो को भस्म करते हुए इस पुरुष के समीप आ रहे हैं ॥१॥ हे अग्निदेव ! इन पर दोषान्वेशी राक्षसो एव दुखदायी पिशाचों को भस्म करो। मनुष्यो के प्रतिकूल कर्मी पिशाचिनीयो को भी भस्म करो। हिंसात्मक पाप कर्म मे सलग्न क्रूर वाणी प्रयोग करने वाली तथा वे राक्षसी जो सन्तानादि के रूप रस पुष्टि को हरण करती है ये सब राक्षसियाँ अपनी और हमारे शत्रुओ की प्रजा का ही भक्षण करे ॥३॥ वे राक्षसियाँ अपनी सन्तति एव अपने बन्धु बान्धवो का ही भक्षण करें। वे परस्पर एक दूसरे के केशो को खीचते हुए लडकर मृत्यु को प्राप्त हो ॥४॥

२६ सूक्त (छठा अनुवाक)

(ऋषि-वशिष्ट। देवता-ब्रह्मणस्पति, अभीवर्तमणि । छन्द-अनुष्टुप्)

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातय. ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥
अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥
उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥
सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥

हे ब्राह्मणस्पते ! जिस वैभवशाली मणि से इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हुए, उस मणि के द्वारा शत्रुओं से पीड़ित समाज की समृद्धि का सवर्धन करो ॥१॥ जो हमसे स्पर्धा करते है हे मणि ! तू उनका दमन कर एवं समस्त दुष्ट जनों का विनाश कर। जो हमें ललकारता है तथा जो हमे हानि पहुँचाना चाहता है उनका सामना कर एवं उन्हें पराजित कर ॥२॥ सोम तथा सविता देव ने तुझे वैभवशाली बनाया है एवं तेरी वृद्धि की है। समस्त तत्वो ने तुझे सहायता दी है जिससे तू सबका विजेता बन गया है ॥३॥ शत्रुओं का नाश करने वाला एवं उनका दमन करने वाला तथा सर्व विजेता मणि को मेरे हाथ मे बांधो जिससे मैं अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकूं ॥४॥ सामने आदित्य आकाश में ऊँचा चढ गया है तथा मेरा मन्त्र भी प्रकट हो गया है ताकि मैं अभिवर्त मणि को धारण करने वाला शत्रुओं पर प्रहार कर सकूँ तथा राक्षस राक्षसियो का विनाश कर सकूँ ॥५॥ हे मणे ! तेरे बल से मैं शत्रुओं का हनन करने वाला, पुष्ट अपने राष्ट्र का स्वामी तथा शत्रुओं को वश मे करने वाला बनूँ ॥६॥

३० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा आयुष्काम । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)

विश्वेदेवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो य· ॥१॥
ये वो देवा· पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो व परि ददाम्येत स्वस्त्यें नं जरसे वहाथ ॥२॥
ये देवा दिविष्ठये पृथिव्या ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥३॥
येषा प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवा ।
येषा वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥४

वसु इन्द्रादि देवो ! आयु की चाहना करने वाले इस व्यक्ति की रक्षा करो। यह अपने बन्धुओ, शत्रुओ अथवा सर्व साधारण के द्वारा मृत्यु को प्राप्त न हो ॥१॥ देवगण, तुम्हारे जो पितर पुत्र हैं वे भी इस व्यक्ति के सम्बन्ध मे मेरी प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुनें। मैं इस व्यक्ति को तुम्हारे भरोसे पर छोडता हूँ। प्रसन्नतापूर्वक इसकी रक्षा करो तथा इसे पूर्ण आयु प्रदान करो ॥२॥ समस्त देवता जो पृथ्वी आकाश हवा, पौधों मे, जानवरो मे अथवा जलो मे निवास करते है इस आयु की कामना वाले व्यक्ति को पूर्ण वृद्धावस्था तक जीवित रखें। मृत्यु के कारण रूप सैकडो तरीको से इसे बचाएँ ॥३॥ जिस अग्नि के निमित्त पचयाग रूप प्रयाज किये जाते हैं वे अग्नि तथा जिन देवताओ के निमित्त तीन याग किये जाते हैं और अग्नि मे अर्पित की हुई हवि जिनका भाग है वे इन्द्रादि देवता, अग्नि से गिरी हुई हवि के भक्षक वलिहरण आदि देवता और दिग्गज

आदि अन्य सभी देवगणों को आयु की कामना करने वाले पुरुष की आयु वृद्धि के निमित्त सन्नसद नियुक्त करता हूँ ॥४॥

३१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आशापाला. (वास्तोष्पतयः । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥१॥
य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो अंहसः ॥२॥
अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥३॥
स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्र नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥४॥

सब प्राणियों के अधिष्ठाता, मरण धर्म से रहित इन्द्रादि चार दिक्पालों के लिए इस यज्ञ मे मन्त्र युक्त हवि अर्पित करते हैं ॥१॥ हे इन्द्रादि चारों देवो ! हमको पीड़ा पहुँचाने वाले पाप देवता निर्ऋति के मृत्युकारक बन्धनों से तथा उसके अन्य दुख देने वाले जालो से हमारा रक्षण करो ॥२॥ हे धनपते ! अभीष्ट धन की कामना से मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हूँ । मैं श्रोण (लँगडापन) रोग से छुटकारा पाकर तुम्हारी उपासना करता हूँ चौथे दिक्पाल हमारी हवि से तृप्त हो हमे धन धान्य प्रदान करें ॥३॥ हमारे माता पिता गौऐं और सम्पूर्ण विश्व के लिए चतुर हो । हमारे माता पिता श्रेष्ठ धन एव ज्ञान वाले हो तथा हम शतायु होकर सूर्य के दर्शन करने वाले हो ॥४॥

३२ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-द्यावापृथिवी । छन्द-अनुष्टुप् ।)

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥१॥
अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ॥२॥
यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षनम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥३॥
विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥४॥

हे जानने की इच्छा रखने वाले जिज्ञासुओ ! तुम इस वस्तु को जानो । यह जलात्मक ब्रह्म न तो पृथ्वी पर रहता है और न आकाश मे ही रहता है । कौशिक द्वारा बताई हुई उस जल से चित्ति औषधियाँ तथा विरोहणशील औषधियाँ जीवन पाती हैं ॥ १ ॥ इन औषधियों का प्राणरूप जल पृथ्वी और आकाश के बीच अन्तरिक्ष मे स्थित है। यक्ष गन्धर्व भी अन्तरिक्ष मे निवास करते हैं । इस विश्व मे समस्त जड चेतन पदार्थो का आश्रय स्थल जल है । पता नही विधाता मनु आदि भी इस तथ्य से अवगत हैं या नही ॥ २ ॥ हे द्यावा पृथ्वी ! तुम्हारे इस जल के उत्पत्ति,कर्म मे लगे रहने से ही यह उत्पन्न हुआ है । जल सर्वदा तरलपदार्थ है । समुद्र की ओर गमनशील नदियाँ सदा पूर्ण जलयुक्त रहती हैं ॥ ३ ॥ आकाश विश्व को ढकने वाला है । विश्व के समस्त पदार्थ आकाश से ही वर्षा की कामना करते हैं। वृष्टि द्वारा समस्त धनो के कारण रूप आकाश को और विश्व की आश्रयरूप पृथ्वी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

३३ सूक्त

(ऋषि–शन्तातिः । देवता–आपः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गार्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आप. शं स्योना भवन्तु ॥३॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आप· शं स्योना भवन्तु ॥४॥

महान् रमणीय सुन्दर वर्ण शोधक एव जिससे सूर्य का जन्म हुआ, ऐसा जल, तथा मेघस्थ तथा समुद्रस्थ जल जिसमें विद्युत और वडवाग्नि उत्पन्न होती है, यह सभी जल हमारी व्याधि आदि को दूर कर हमको सुख-सौभाग्य प्रदान करें ॥१॥ जिस जल मे स्थित पापियो के नियामक वरुण मनुष्यों के कर्मो का नियमन करते हैं, स्व पाश धारण कर निर्णय देते है और जिस जल मे अग्निरूप गर्भ स्थिर हुआ वह जल हमे सुख सौभाग्य प्रदान करे ॥ २ ॥ जिस जल से मिश्रित सोम का द्युलोक मे इन्द्रादि देवगण (पान) करते हैं तथा जो जल द्यावा पृथ्वी के बीच अनेक रूप धारण कर रहता है तथा वह जल जो अग्नि को अपने गर्भ मे रखता है - यह सभी जल हमको सुख सौभाग्य प्रदान करें ॥ ३ ॥ हे जल देवताओ ! तुम अपनी कृपा कोर से मुझ रोगादि न चाहने वाले की ओर देखो और अपने शरीर से मेरी त्वचा का स्पर्श करो । अमृत वर्षा रूप जल एव अग्निगर्भा जल हमको सुख सौभाग्य प्रदान करें ॥४॥

३४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-मधुवनस्पति । छन्द-अनुष्टुप् ।)

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि नो मधुमतस्कृधि ॥१॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥३॥
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तर ।
मामित् किल त्वं वना. शाखां मधुमतीमिव ॥४॥
परित्वा परितत्नुक्षुणागामविद्विषे ।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥५॥

सामने खड़ी यह 'वत्' जडी और विरोहणशील मधूक-लता पृथ्वी से ही पैदा हुई है। हे वीरुत् ! स्वभाव से ही तू मधुर है। मैं तुझे खोदता हूँ। तू हमें मधुररस से पूर्ण करदे ।१। हे मधूकलते ! जैसे जलमधुलक का पुष्प मधुर रस से पूर्ण होता है वैसे ही मेरी जिह्वा का अग्रभाग मधुररस से ओत-प्रोत हो। तू मेरे शरीर,हृदय और व्यापार में व्याप्त हो ॥२॥ हे मधूकलते ! तेरे धारण करने पर मेरे समीपस्थ कार्यों में प्रयुक्त होना मधुमय हो तथा दूरस्थ कार्यों में भी मधुररस से पूर्ण हो। मेरी वाणी मधुर हो तथा अपने समस्त कार्य व्यापार में मधुर होने के कारण सबका प्रियपात्र बनूँ ॥ ३ ॥ हे मधूकलते ! तेरा सामीप्य पाकर मैं तुझसे भी अधिक मधुर बनूँ। तू मेरी ही सेवनीय है अत जैसे गन्ने का सब सेवन करते हैं, उसी प्रकार मैं भी सबके द्वारा सेवनीय मित्र बनूँ ॥ ४ ॥ हे भार्या ! सब

ओर से मीठी ईख के समान परस्पर कलह रहित और मिष्टमय जीवन-यापन के लिए ही तूने मुझे प्राप्त किया है। तू जिस प्रकार मुझे ही चाहे और मुझे छोड़ कर कहीं दूसरी जगह न जा सके, इसलिए मैं तुझे प्राप्त हुआ हूँ ॥५॥

३५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (आयुष्काम.) देवता—हिरण्यम् । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।)

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥१॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥२॥
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।
इन्द्रइवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम्॥३
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥४॥

हे मनुष्य ! तू आयु की कामना करने वाला है। तेरी आयु वृद्धि के लिए मैं तेरे उस आनन्दप्रद हिरण्य को बांधता हूँ, जिस प्रकार शतायु प्राप्त करने के लिए दक्ष गोत्री महर्षियों ने शतनीक राजा के नीलम बांधा था ॥ १ ॥ हिरण्य धारण करने वाला पुरुष ज्वरादि से पीडित नहीं होता। माँस भक्षी पिशाच भी उसे कष्ट नहीं दे पाते। यह हिरण्य इन्द्रादि देवताओं से पहले उत्पन्न हुआ है तथा आठवीं धातु है। राक्षस हन्ता होने के कारण दाक्षायण भी कहाता है। इसका धारणकर्त्ता राक्षस हन्ता और शतायु होता है ॥ २ ॥ मैं इस हिरण्य धारी पुरुष में जल सूर्य चन्द्र का तेज तथा इन्द्र का ओज बल वीर्य आदि

स्थापित करता हूँ। जैसे इन्द्र की शक्ति, इन्द्र में ही निहित होती है उसी प्रकार इस पुरुष में उपरोक्त गुण प्रतिष्ठित हों ॥ ३ ॥ हे पुरुष तू समस्त वैभवों की कामना करने वाला है। मैं तुझे ऋतुओं से पूर्ण करता हूँ। संवत्सर पर्यन्त रहने वाले दूध से युक्त कर गवादि पशु और धन-धान्य से पूर्ण करता हूँ। अन्य सभी देवों सहित इन्द्राग्नि भी हमारी त्रुटियों से क्रोधित न होते हुए सुवर्ण धारण से उत्पन्न फल को प्रदान करें ॥४॥

॥ इति प्रथम काण्ड समाप्तम् ॥

द्वितीय काण्ड

दसवाँ अनुवाक

—※—

१ सूक्त

(ऋषि-वेन देवता-ब्रह्म, आत्मा। छन्द-त्रिष्टुप्, जगती।)

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।
इदं पृश्निरदुहज्जायमाना स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१
प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुवातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वेषो अग्निः ॥४
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशाना समाने योनावध्यैरयन्त ॥५

परब्रह्म मे सम्पूर्ण विश्वलीन होकर रहता है, ऐसे ब्रह्म को वेन (सूर्य) ने देखा । इस भौतिक जगत् से अभिन्न और सर्वशक्ति युक्त होने से इसे सूय के रूप और नाम से प्रकट किया । तभी से उत्पन्न प्रजाएँ इस सूर्य को जानती हैं और सामने खडे होकर स्तवन करती हैं ॥ १ ॥ रश्मिवत सूर्य हृदय गुहा स्थित उस ब्रह्म को आराधको को बताव । इस ब्रह्म के तीन पाद गुहा म स्थित हैं अर्थात् साधारण दृष्टि अथवा ज्ञान से ओझल हैं । उस ब्रह्म का ज्ञान केवल सत्य उपदेश द्वारा ही हो सकता है ॥ २ ॥ वह सूर्यात्मक ब्रह्म हमारा पोषक पिता है, वह हमको उत्पन्न करने वाला है, वही हमारे भ्राता आदि हैं । वे ही हमार कर्म फल रूप स्वर्गादि के ज्ञाता हैं । सभी लोकों का वह जानने वाला है । जिस परब्रह्म का वर्णन किया जाता है, वही इन्द्र, अग्नि आदि के नाम से लोक म प्रकट होता है ॥ ३ ॥ मैं आकाश पृथिवी और सम्पूर्ण विश्व को तत्वज्ञान के द्वारा प्राप्त कर चुका हूँ । सत्य ब्रह्म द्वारा प्रथम उत्पन्न सूत्रात्मा जैसे ससार को व्याप्त कर स्थित रहता है, वैसे ही मैं स्थित हूँ । वक्ता म स्थित वाणी के प्रयुक्त होते ही जैसे सब जान जाते हैं, वैसे ही मैं तत्वज्ञान के प्रकट होते ही इन सबको प्राप्त कर चुका हूँ ॥ ४ ॥ इन्द्रादि देवता जिस कारणभूत ब्रह्म मे लीन हो जाते हैं और जिस ब्रह्म म वृतिया द्वारा साक्षात् होने पर परमानन्द को भोगती हुई इन्द्रियाँ ब्रह्म म लीन हो जाती हैं,

उस ब्रह्म के दर्शनार्थ में ज्ञान प्राप्त होने से पूर्व विभिन्न लोकों मे अनेक बार घूम चुका हूँ ॥५॥

२ सूक्त

(ऋषि–मातृनामा । देवता–गन्धर्वाप्सरसः । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री ।)

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥१
दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः ॥२
अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥३
अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसु गन्धर्व सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४
याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्व पत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकर नमः ॥५

दिव्य जल बल धारक सूर्य वृष्टि आदि से पुष्ट करने के कारण पृथ्वी आदि लोको के स्वामी है । वे जीवधारियो को भी पुष्ट करने वाले है तथा वे प्रजाओ द्वारा स्तुति किये जाते हैं । हे गन्धर्व ! मैं तुम्हे सत्य रूप ब्रह्म मानकर हवि अर्पित करता हुआ नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ आकाश स्थित सूर्य सदृश्य तेजस्वी, लोकपाल, देवताओ के क्रोध को शमन करने वाले एव आनन्दप्रद जो गन्धर्व है, हमे आनन्द प्रदान करें ॥ २ ॥ सुन्दर स्वरूप वाली किरण रूप अप्सराओ से सूर्य रूप गन्धर्व सङ्गतरत हुए । इन अप्सराओ का स्थान समुद्रोप नामक सूर्य ही है । (सूर्योदय के समय सूर्य से ही किरणे निकलती है तथा

सायंकाल सूर्यास्त होने पर सूर्य में ही विलीन हो जाती हैं ॥३॥ हे नक्षत्र रूप किरणो ! तुम में से जो महान् वैभवशाली चन्द्रमा से संगतयुक्त होती हैं, ऐसी तुमको मैं नमस्कार युक्त हवि अर्पित करता हूँ ॥४॥ उपद्रवों द्वारा लोगों को क्रन्दन कराने वाली, मनि भ्रमकारक, ग्लानिवर्द्धक, गन्धर्व पत्नी अप्सराओं को नमस्कार पूर्वक हवि अर्पित करता हूँ ॥५॥

३ सूक्त

(ऋषि-अङ्गिरा । देवता-(अस्राव) भेषजम् । छन्द—अनुष्टुप् बृहती ।)

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् ।
तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥१॥
आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥२॥
नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥३॥
उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥४॥
अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥५॥
शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥६॥

जो मूँज व्याधिनाशक है एवं उन्नत पर्वत से उतरने वाला है उसके अग्रिम भाग को औषधि बनाता हूँ । हे मूँज ! तुझे औषधि बनाकर रोग शमन करने के लिए प्रयोग में लाता हूँ

॥१॥ हे औषधे! प्रयोग करते ही त रोग का शमन कर, अतिसार आदि रोगो को दूर कर। तू अपनी जैसी औषधियो मे सर्वोत्कृष्ट है, तू अतिसार, बहुमूत्र और नाडी व्रण का नाश करने मे सब प्रकार से समर्थ है ॥२॥ प्राण हन्ता राक्षस तथा शरीर नष्ट करने वाली व्याधियाँ इस व्रण के मुख को व्याप्त करती हैं किन्तु यह मूँज स्रावो को रोकने वाली तथा अतिसार आदि रोगो को नष्ट करने मे अचूक है ॥३॥ भूमिगर्भ स्थित जल से राग विनाशक औषधि रूप मिट्टी ऊपर आती है, यह मिट्टी रूप औषधि समस्त प्रकार के घावो तथा अतिसार आदि रोगो को दूर करने वाली रामबाण औषधि है ॥४॥ खेत की मिट्टी घाव को भरने वाली और अतिसार आदि रोगो को समूल नष्ट करने वाली महान् औषधि है ॥५॥ औषधि के निमित्त प्रयुक्त किये जाने वाले जल हमारे रोगो को नष्ट करने वाले एव आनंद-प्रद हो। इन्द्र का वज्र राग उत्पन्न होने के कारणो को नष्ट कर। राक्षसो द्वारा लोगो पर फके गये रोग रूप आयुध कही दूर जाकर गिरें ॥६॥

४ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–जङ्गिडमणि । छन्द–पंक्ति, अनुष्टुप्)

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणा सदव।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥१॥
जङ्गिडो जम्भाद् विशरा विष्कन्धादभिशोचनात्।
मणि सहस्रवीर्य परिण पातु विश्वत ॥२॥
अयं विष्कन्ध सहवेऽय बाधते अत्त्रिण ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिड पात्वंहस ॥३॥
देवैर्दत्तेन मणि जङ्गिडेन मयोभुवा।

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४॥
शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यो ॥५॥
कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वाञ् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

हम दीर्घआयु हों, इसके लिए दुष्टात्मक कार्यों से अपने को सदा बचाते हुए, राक्षसो के वेग को रोकने के लिए और मूखा रोग से बचने के लिए जगंडि वृक्ष निर्मित मणि को बाँधते हैं ॥१॥ यह जगिड मणि हिंसक कर्मरत राक्षसो के चर्वणादि से शरीर के टुकड़े-टुकडे होने से रक्षा करने मे समर्थ है। यह सब प्रकार से हमारी रक्षा करे ॥२॥ दूसरो द्वारा प्रेरित उपद्रवो का यह मणि भलीभाँति सामना करती है और कृत्यादि का नाश करती है। यह समस्त रोगों का शमन करने वाली औषधि रूप मणि हमें पापो से बचावे ॥३॥ अग्नि आदि देवताओं द्वारा प्रदान की हुई आनन्द उत्पादक जङ्गिड मणि मे हम उपद्रवो को, भूत प्रेतादि को उनके विचरण स्थान मे ही दबाते हैं ॥४॥ मणि बन्धक सूत्र रूप सन और जङ्गिड मेरी सब प्रकार से रक्षा करें। इनमे से सन कृषि के रस से और जांङ्गड जङ्गल से प्राप्त किया गया है। यह दोनो हमको उपद्रवों आदि से बचावें ॥५॥ दूसरो के द्वारा अभिचार से उत्पन्न कष्टदायक कृत्यों को यह मणि दूर करती है। यह बलशालिनी, शत्रु का पराभव करने वाली है। यह हमे दीर्घ आयु प्रदान करे ॥६॥

५ सूक्त

(ऋषि-भृगुराथर्वण । देवता-इन्द्र । छन्द-बृहती, त्रिष्टुप,)
इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम् ।

पिबा सुतस्य मतेरिह मघोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१
इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वर्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥२॥
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रुन् मदे सोमस्य ॥३॥
आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥४॥
इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥५॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रइव धेनवः स्यान्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥६॥
वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रं महन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥७॥

हे इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्य सम्पन्न हो, हमको अभीष्ट फल प्रदान करो। अपने अश्वों द्वारा हमारे यज्ञ में पधारो और निष्पन्न सोम का पान करो। यह अभिषुत सोम तुम्हें तृप्तिकारक हो ॥१॥ हे इन्द्र ! इस अमृतोपम मधुर सोम से अपना उदर भरो,फिर अभिषुत सोम का हर्षप्रदायक रस तुम स्तुत्य को स्वर्ग सदृश्य आनन्ददायक हो ॥२॥ इन्द्र सब प्राणियों के सखा और शत्रुओं को अपने वश में करने वाले हो। उन्होंने वृत्रासुर और मेघासुर का संहार किया था। अङ्गिरा ऋषियों की गायों का हरण करने वाले बल राक्षस का भी इन्द्र ने ही वध किया था। सोम पान कर हर्षोन्मत्त हो इन्द्र ने यह सब कार्य किए थे ॥३॥ हे इन्द्र ! इन अभिषुत सोमों से अपनी कोखों को भरो। हमारे आह्वान किए यहाँ पधारो और हमारी स्तुतियों को सुन कर प्रसन्न हो। हे इन्द्र ! अपने मित्र मरुतों आदि देवगणों सहित कर्म

फल प्रदान करने को सोम पान कर तृप्त हो ॥४॥ इन्द्र के पराक्रम पूर्ण कार्यों का वर्णन करता हूँ। उन्होंने वृत्रासुर और मेघासुर का वध किया। उन्होंने जल को उत्पन्न किया और पर्वतों पर नदियों के लिए मार्ग बनाया ॥५॥ इन्द्र ने वृत्रासुर का संहार किया तथा मेघासुर को छिन्न-भिन्न किया और जब वृत्रासुर के पिता त्वष्टा ने इन्द्र के लिए अपना वज्र उठाया तब गौओ के समान नीचा मुख किये प्रवाहित नदियाँ समुद्र की ओर चलीं ॥६॥ इन्द्र वृष के समान सिंचनशील आचरण वाले हैं। उन्होंने सोम रूप अन्न को प्रजापति से वरण किया तथा सोम यज्ञ मे अभिषुत सोम का पान किया। उससे हर्षोन्मत्त हो वज्र को उठाया और इन असुरो मे प्रथम उत्पन्न हुए वृत्रासुर का वध कर डाला ॥७॥

६ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि-शौनकः (सम्पत्काम) देवता-अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप पंक्तिः।)

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥
क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४॥
अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तीरति द्विषः।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

हे अग्ने! वर्ष, ऋतु मास पक्ष आदि तुम्हारी वृद्धि करें।

पृथ्वी आदि भी तुम्हारी समृद्धि करे और तुम अपने दिव्य तेज से दे दीप्यमान होकर चारो दिशाओ को दीप्त करो ॥१॥ स्वयं प्रकाशित होते हुए यजमान के निमित्त अभीष्ट पूरक हो, उसे धन देने के लिए उन्नत हो। तुम्हारी उपासना करने वाले ये ऋत्विज यजमान आदि कर्म को करते रहे और कभी हीन न हो। जो तुम्हारे उपासक नही है वे वैभवहीन हो ॥२॥ हे अग्ने! ऋत्विज यजमान आदि तुम्हारे उपासक हैं। यज्ञ कर्म मे प्रमादवश होने पर भी तुम रुष्ट न होओ। तुम हमारे शत्रुओ और पापों को नष्ट करते हुए अपने घर मे सचेष्ट रहो ॥३॥ हे अग्ने! अपने बल से युक्त हो। तुम अपने मित्रो की भलाई करने वाले हो अत. उनका पोषण करो। समान जन्म वाले ब्राह्मणो मे मध्यस्थ रहो, यजमान के उपजीव्य होओ। राजाओ के देवा ह्वाक यज्ञो मे प्रकाशित हो ॥४॥ हे अग्ने! यह विषय भोग श्वान, शूकर योनि मे डालने वाले है, इनका शमन करो। शरीर को सुखाने वाले रोगो को दूर करो। पाप की ओर ले जाने वाली कुबुद्धि को मिटाओ। हमारे शत्रुओं का नाश कर हमे सन्तति आदि धन प्रदान करो ॥५॥

७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-वनस्पति. (दूर्वा)।। छन्द-अनुष्टुप्, बृहती)

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१॥
यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥२॥
दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥३॥

परि मा परि मे प्रजां परि णः पाहि यद धनम् ।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातय. ॥४॥
शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन न. सह ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥५॥

पिशाचादि से उत्पन्न उत्पात विप्र श्राप आदि को नष्ट करने वाली देव निर्मित 'औषध' (जड़ी) मुझे हर प्रकार के शापों से मुक्त करे जैसे जल शरीर के स्थित सब विकारों को दूर करता है ॥१॥ शत्रु द्वारा कोसना, विप्र शाप वहिन का क्रोध यह त्रिदोष हमारे पैरों से दबे रहें ॥२॥ हे मणे ! नीचा मुख करके फैली हुई जड सदृश्य ऊपर की ओर उठी हुई सहस्रों गाठों वाली दूर्वा के द्वारा तू हमें शाप, मुक्त करा ॥३॥ हे मणे ! तू मेरी मेरी सन्तान की और मेरे धन की रक्षा कर। हमारा शत्रु वैभव हीन हो तथा क्रूर यक्ष पिशाचादि भी हमारी हिंसा में समर्थ न हों ॥४॥ शाप देने वाले को ही वह शाप लगे। हमारे अनुकूल पुरुष हमें सुखदायक हो। हमारा बुरा चाहने वाले और पीछे हमारी बुराई करने वाले के नेत्र और पसलियों को छिन्न भिन्न करते हैं ॥५॥

८ सूक्त

(ऋषि – भृग्वङ्गिरा । देवता-यक्ष्मकुष्ठादि नाशनम् । छन्द–अनुष्टुप्, पङ्क्ति)

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥१
अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरी. ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२
बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।

वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३
नमस्ते लांगलेभ्यो नम ईशायुगेभ्यः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४
नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यो नमः क्षेत्रस्य पतये ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५

विचृती नामक मूल नक्षत्र उदय होगया। यह माता पिता से प्राप्त क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि रोगो को पाश के सदृश्य बाँधने वाला हो एव रोग की जड को नष्ट करे ॥१॥ यह उषाकालीन रात्रि इन क्षेत्रिय रोगो को नष्ट करे। सूर्य इस रोग को शान्त करे। क्षेत्रिय रोगों को दूर करने वाली पिशाची दूर हो जाय। औषधि भी इन रोगो को दूर करने मे समर्थ हो ॥२॥ हे रोगिन ! अर्जुन-काष्ठ से निर्मित जौ के भुस और तिल सहित मजरी से बनाई मणि मेरे रोग को दूर करे तथा क्षेत्रिय रोगो को दूर करने वाली औषधि भी रोग का नाश करे ॥३॥ हे व्याधिग्रस्त पुरुष ! वृषभ सहित हल को और उसके अङ्गो को तेरे रोग निवारण के लिए नमस्कार है। क्षेत्रिय रोगो को निवारण करने वाली औपधि मेरे रोग का नाश करे ॥३॥ मिट्टी निकाल लेने के बाद त्याज्य गड्डो को नमस्कार। जिन घरो की खिडकी आदि कमजोर है और गिराऊ है उन जीर्ण घरो को तथा उन घरो के स्वामियो को नमस्कार है। यह क्षेत्रिय रोग नाशक औपधि तेरे रोग का निवारण करे ॥५॥

९ सूक्त

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा। देवता-वनस्पति। छन्द-पङ्क्ति अनुष्टुप्)

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥१

आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥२
अधीतीर ध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥३
देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ॥४
यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ॥५

हे मणे ! तू पलाश, गूलर आदि से निर्मित है जो ब्रह्म राक्षस एव ब्रह्म राक्षसी द्वारा ग्रहणीय है । उसने इसे अमावस्या को पकड लिया है उससे इसको मुक्त कर। इस पुरुष को मुक्त कर पुन: जीवन दान दे ॥१॥ हे मणे ! यह व्यक्ति तेरे प्रभाव से बन्धन से मुक्त हो जाय और इस लोक मे पुनः लौट आवे। यह अपने व्यापार सचालन मे समर्थ हो और अपने पुत्रो का पिता हो ॥२॥ ब्रह्म ग्रह से मुक्त होने पर इस व्यक्ति को विस्मरणीय विद्या पुनः याद आ जाय। यह प्राणियो के निवास स्थान को पुनः पहचान ले ॥३॥ हे मणे ! तू ग्रह जाल से रोगी को छुटकारा दिलाती है। तेरी इस शक्ति से इन्द्रादि देवता परिचित हैं। ब्राह्मण, औषधियाँ, वरुण, मित्र आदि देवता भी तेरी इस सामर्थ्य से परिचित हैं ॥४॥ जिन महर्षि अथर्वा ने इस मणि का निर्माण किया वह इस ग्रह दोष को दूर करें। वे महान् भिषक है। हे रोगिन ! पवित्र ज्ञान से पूर्ण वे ही तेरी चिकित्सा करें ॥५॥

---

१० सूक्त

(ऋषि–भृग्वङ्गिराः । देवता–निर्ऋतिद्यावापृथिव्यादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि-
वरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१

शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोति शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥२॥

शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥३॥

इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नी रभि सूर्यो विचष्टे ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्याजामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥४॥

तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥५॥

अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्था ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद द्रुहोमुञ्चामि वरुणस्य-
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे
स्ताम् ॥६॥

अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहोमुञ्चामि वरु
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी
स्ताम्

सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहोमुञ्चामिवरु
पाशात् अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी
स्ताम् ।

हे पुरुष ! तुझ रोगी को क्षेत्रीय रोगों से मुक्त करता
तुझे पाप से, दुष्टों को दण्ड देने वाले वरुणदेव के पाश से,
ब्रह्म दोष से भी मुक्त करता हूँ । मैं यह सब मंत्र बल से क
हूँ । यह द्यावा पृथ्वी तेरा कल्याण करे ॥ १ ॥ हे रोगिन !
भौतिक अग्नि जल के अभिमानी देवताओं सहित सुखदायक
कवीला आदि औषधियों सहित सोम तुझे आनन्द प्रदान क
मैं तुझे क्षेत्रीय रोगों और ब्रह्म दोष से छुड़ाता हूँ । वरुण के प
से मुक्तकर अपने मंत्र बल से मैं तुझे दोष रहित करता हूँ ।
द्यावा पृथ्वी तेरा कल्याण करे ॥ २ ॥ हे रोगिन ! अन्तरि
मे विचरण करने वाले वायुदेव तेरा कल्याण करे । चा
दिशाऐं तेरे लिए सुख प्रदान करने वाली हों । मैं तुझे क्रो
निर्ऋति, क्षेत्रीय रोग, गुरुद्रोह जन्य पाप और पापों
निरीक्षणकर्ता वरुणदेव के पाश से छुड़ाता हुआ पाप रहित करत
हूँ । द्यावा पृथ्वी तेरा कल्याण करे ॥ ३ ॥ दीप्यमान दिशा
वायु की पत्नी है उनको सवितादेव सब ओर से देखते हैं ।
दिशाऐं और सवितादेव तेरा मङ्गल करें । मैं तुझे क्रोध निर्ऋ
क्षेत्रीय रोग गुरुद्रोह जन्य पाप और पापों के निरीक्षण कर

पृथ्वी तेरा कल्याण करे ॥ ४ ॥ हे रोगिन ! मैं तुझे व्याधिमुक्त कर वृद्धावस्था पर्यन्त उन दिशाओ मे स्थापित करता हूँ । तू रोगरहित हो और पाप देवता पीछे लौट जांय । मैं तुझे बधुबा-धवो के आक्रोश क्षेत्रीय रोग पाप देवता निर्ऋति गुरुद्राह जन्य पाप और दुष्ट आत्माओ के नियामक वरुण देव के पाश से मुक्त करता हुआ दोप रहित करता हूँ । आकाश पृथ्वी तेरे लिए कल्याण कारी हो ॥ ५ ॥ हे रोगिन ! तू क्षेत्रीय व्याधि से मुक्त हो रहा है और अपने रोग के पाप बाँधवो के आक्रोश,गुरु द्रोह, वरुण के पाश और ब्रह्मराक्षसी आदि के बधनो से भी मुक्त हो रहा है । मैं भी तुझे इन सभी से मुक्त कराता हुआ मत्र शक्ति से पवित्र बनाता हूँ । द्यावा पृथ्वी तरे लिए कल्याण-कारी हो ॥ ६ ॥ हे रोगिन ! तू शत्रुवत् अनिष्टकारी व्याधि से मुक्त हो । तू अपने पुण्य फल से कल्याणमय पृथ्वी लोक मे आ गया है । मैं तुझे क्षेत्रीय रोग, आक्रोश देव द्रोह पाप वरुण के पाश आदि से मुक्त करता हूँ और मत्र शक्ति से पवित्र बनाता हूँ । द्यावा पृथ्वी तेरा कल्याण करें ॥ ७ ॥ सूर्य को राहू से छुडाते समय देवगणों ने पाप को भी दूर किया था उसी भाँति मैं तेरे क्षेत्रीय रोग दूर करता हूँ । तुझे पाप देवता निर्ऋति, बाधवो के आक्रोश देवद्रोह जन्य पाप और वरुणपाश से मुक्त करता हुआ मन्त्र शक्ति के द्वारा दोपरहित करता हूँ । द्यावा पृथ्वी तेरा कल्याण करे ॥८॥

११ सूक्त

(ऋषि— शुक्र देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—गायत्री, पंक्ति)

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।
आप्नुहि श्रेयासमति सम क्राम ॥१॥

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥२॥
प्रति तमभि चर योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥
सूररसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५॥

हे तिलक मणे ! तू अन्य के पापरूप कृत्या को दोषित करने की शक्ति रखती है । तू अन्य द्वारा प्रेरित आयुधों का विनाश करती है । वाणीरूप वज्र के लिए तू वज्ररूप है । अत. शत्रुओं द्वारा किए गये अभिचारादि के दोषों को दूर करती है । तू हमारे शत्रु का विनाश कर जिससे हम उसका बिना कुछ किए ही दमन कर डाले ॥ १ ॥ हे तिलक मणे ! तू आगत कृत्या को नष्ट करने वाली है तथा मन्त्र से युक्त रक्षात्मक सूत्र है । तू समान बलशाली शत्रु को पार करती हुई अधिक पराक्रमी शत्रु का नाश कर ॥ २ ॥ जो सपत्न शत्रु हमसे द्वेष रखता है तथा हम जिसे संहार करना चाहते हैं ऐसे शत्रुओं का नाश कर तू समान बलशाली शत्रु को पार करती हुई अधिक पराक्रमी शत्रु को नष्ट कर ॥ ३ ॥ हे मणे ! तू शत्रु द्वारा किये गये अभिचार को जानती है और अपने धारणकर्ता मे तेजस्विता प्रदान करती है । तू अन्य द्वारा प्रेरित अभिचारों से हमारे राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ है । तू समान बलशाली शत्रुओं को पार करती हुई अधिक बलशाली शत्रुओं का नाश कर ॥ ४ ॥ हे तिलक मणे ! तू संताप देने में समर्थ एव कृत्या आदि को भी अपने सूर्य समान तेज से सन्तप्त करने मे समर्थ है । तू समान

बलशाली शत्रु को लांघती हुई अधिक पराक्रमी शत्रु का विनाश कर ॥५॥

१२ सूक्त

(ऋषि–भारद्वाजः । देवता–द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं । छन्द–त्रिष्टुप्;)

द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥
इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२॥
इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इ हिनस्ति ॥३॥
अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४॥
द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५॥
अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभि सं तपाति ॥६॥
सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरङ्कृतः ॥७॥
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८॥

द्यावा पृथ्वी और उसके मध्य स्थित अन्तरिक्ष तथा उनके वास करने वाले अधिपति देवता वायु सूर्य आदि सब इस अभिचार कर्म द्वारा प्रेरणा पाकर शत्रुओं का विनाश करें ॥१॥ हे देवगण ! मेरी प्रार्थना सुनो । वषट्कार द्वारा देवों को हवि अर्पित करने वाले भरद्वाज ऋषि मुझे अभीष्ट फल के निमित्त

अभिचार योग्य मन्त्रो का उच्चारण कर रहे हैं। जो शत्रु हमारे यज्ञादि कर्मों मे विघ्न डाल हमे दुखी करते है, वह मेरे इस कृत्य द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम पान कर हर्षोन्मत्त होते हो, मेरी प्रार्थना को सुनो। मै शत्रुओ द्वारा किये गये उत्पातो के कारण तुम्हारा बारम्बार आह्वान करता हूँ। मैं अपने शत्रु को वृक्ष तुल्य काटता हूँ ॥३॥ इन्द्र और साम के उदगाता से प्रयुक्त स्तोत्र अगिरा ऋषि द्वादश आदित्य अष्टा वसु और रुद्रो सहित हमारे खडो की जो यज्ञ आदि कृत्यो की कामना है और स्मृति विहित कूप, तडाग आदि है, उन कामना पूर्तियो से प्रकट पुण्य हमारी रक्षा करे। मैं इस अमुक नाम के शत्रु को अपने अभिचार कृत्य द्वारा कृत्या रूप देव आकाश से नष्ट करता हूँ ॥ ४ ॥ हे द्यावा पृथिवी तुम शत्रु तिरस्कार निमित्त तेजस्वी बनो! हे विश्वेदेवाओ ! शत्रु सहार के लिए तुम तत्पर हो जाओ ॥ ५ ॥ हे मरुतो ! जो हमको तुच्छ समझ कर हमारे यज्ञादि को भी तुच्छ समझते हैं उनको तुम्हारा तेज रूप आयुध नष्ट करे। मेरे कार्य के प्रति दुर्भाव रखने वाले शत्रु को सविता देव पीडा दें ॥ ६ ॥ तेरे नेत्र आदि सप्त प्राण और कठ गत अष्ट नाडियाँ तथा अन्य अवयवो को अभिचार कृत्य द्वारा नष्ट भ्रष्ट करता हूँ। हे शत्रु ! तू शव रूप मे सज्जित होकर यम स्थान को प्रयाण कर ॥ ७ ॥ मैं तेरे चूर्णित शरीर सहित अग्नि मे पाँव की धूल डालता हूँ, इसके द्वारा यह अग्नि तेरे शरीर मे प्रविष्ट होकर तेरी वाणी और मन को भी व्याप्त करले ॥८॥

१२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-अग्नि, बृहस्पति विश्वेदेवा। छन्द-त्रिष्टुप्)

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥१॥
परि धत्त-धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ।
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३॥
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥४॥
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥

हे अग्निदेव ! तुम शतायु प्रदान करने वाले हो, घृत तुम प्रतीक हो और घृत तुम्हारे अङ्गों का आश्रयरूप है। अ इस अभिपुत गौघृत का पान कर सन्तुष्ट हो तथा इस बा की रक्षा करते हुए इसे शतायु प्रदान करो जैसे पिता पुत्र रक्षा करता है ॥ १ ॥ हे देवगणो ! इस बालक को व पहनाओ इसे तेजस्विता प्रदान करो तथा पूर्णायु वा बनाओ। इसे शतायु प्रदान करो। इन्द्रादि के स्वामी बृहस्प ने सोम के निमित्त भी वस्त्र पहनाया था ॥ २ ॥ हे बालक यह परिधान कुशलता के लिए धारण कराया गया है। इसके प्रभाव से गौओ की रक्षा करता हुआ उनका पालन एव सन्तानवान होकर शतायु प्राप्त कर। तू वैभवशाली हो ॥३ हे बालक ! अपना बांया पैर इस पत्थर पर रख और इसी सदृश्य दृढ और रोगरहित हो। विश्वेदेवा तुझे शतायु प्रद करें ॥ ४ ॥ हे माणवक ! तेरे उतारे हुए वस्त्र को हम धा करते है। तू वृद्धि को प्राप्त हो। तेरे जन्म के बाद पशु पुत्रा से वृद्धि को प्राप्त होते हुए सुन्दर भाई उत्पन्न हों और देवगण तेरी रक्षा करें ॥५॥

१४ सूक्त

(ऋषि–चातन । देवता-अग्निभूतपतीन्द्रा । छन्द-अनुष्टुप्,बृहती ।)

नि साला धृष्णु धिषणमेकवाद्या जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयाम सदान्वा ॥१॥
निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥
असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्य ।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्य ॥३॥
भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेत सदान्वा ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥
यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिता ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेत सदान्वा ॥५॥
परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरम् ।
अजैषं सर्वानाजीन् वो नश्यतेत सदान्वा ॥६॥

नि साला, धिषण एव एकवाद्या नामक राक्षसियो का हम विनाश करते हैं और चण्डनाम्नी राक्षसी को भी दूर भगाते हैं ॥ १ ॥ हे मगुन्दी राक्षसी की पुत्रियो ! हम तुम्हे गौशाला से बाहर निकालते है। वैभवशाली भवनो और निवास स्थानो से भी दूर भगाते हुए हम तुम्हारा नाश करते हैं ॥ २ ॥ पृथ्वी से दूर पुण्य कार्यों मे बाधक अरायि एव सहारकारिणी सदि-नाम्नी राक्षसिया इस लोक को त्याग कर पाताललोक मे जाकर रहे ॥ ३ ॥ रुद्र और इन्द्र इन क्रोधी राक्षसियो को मेरे निवास स्थान से दूर करें ॥ ४ ॥ हे पिशाचियो ! तुम क्षेत्रीय रोग यथा अपस्मार ग्रहणी आदि उत्पन्न करती हो। ऐसी तुम मेरे निवास स्थान से दूर होती हुई नष्ट हो ॥ ५ ॥ इन राक्षसियो

के आवास स्थान पर मैं उसी प्रकार आक्रमण कर चुका हूँ जैसे शीघ्रगामी अश्व अपने लक्ष्य पर आक्रमण कर रुक जाता है। हे पिशाचियो ! तुम सब युद्धों में हार चुकी हो और मैंने तुम्हारे गृह पर भी अपना अधिकार कर लिया है। अब तुम निराश्रय हो विनाश को प्राप्त हो ।।६।।

१५ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—प्राण। छन्द—गायत्री।)

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यत ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ।।१।।
यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ।।२।।
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभे ।।३।।
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ।।४।।
यथा सत्य चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ।।४।।
यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ।।६।।

जैसे द्यावा पृथ्वी मरणधर्म से रहित है ऐसे ही हे प्राण ! तुम भी उपजीव्य हो। तुम द्यावा पृथिवी के समान इस मन्त्र-शक्ति से अमर हो ।। १ ।। दिन और रात मरणधर्म से रहित है ऐसे ही हे प्राण ! तू इन्हीं की तरह मरणधर्म से रहित है। इस मन्त्र-बल से अमर हो ।। २ ।। जैसे सूर्य-चन्द्र न तो किसी से भयभीत होते है और न विनाश को प्राप्त होते है उसी

प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी इन्ही के समान किसी से न डर और नही मृत्यु का भय कर। तू भी इनके समान अमर हो ॥ ३ ॥ जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय जातियाँ अभयशील और मरणधर्म से रहित होती हैं, उसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी इन्ही के समान वन और अमर हो ॥ ४ ॥ जैसे सत्य असत्य अभयशील और मरणधर्म से रहित होते हैं, उसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी इन्ही के समान वन और अमर हो ॥ ५ ॥ जैसे भूत और भविष्य अभयशील और मरणधर्म से रहित होते है, उसी भाँति हे मेरे प्राण ! तू भी इन्ही के समान चिरकाल तक निर्भय हो जीवित रह ॥६॥

१६ सूक्त

(ऋषि –ब्रह्मा । देवता–प्राणपाना प्रभृति । छन्द–त्रिष्टुप् गायत्री)

प्राणापानौ मृत्योर्मा पात स्वाहा ॥१॥
द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पात स्वाहा । २॥
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥३ ।
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥४॥
विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५॥

प्राण और अपान के देवताओ ! मृत्यु से मेरी रक्षा करो एव यह आहुति स्वीकार करो ॥ १ ॥ हे द्यावा पृथ्वी में स्थित दिशाओ ! तुम श्रवण शक्ति प्रदान कर मेरा रक्षण करो तथा यह आहुति ग्रहण करो ॥ २ ॥ हे सूर्य ! मुझे दर्शन शक्ति प्रदान कर मेरी रक्षा करो एव यह आहुति स्वीकार करो ॥३॥ हे वैश्वानर अग्ने ! तुम वाक शक्ति प्रदान कर मेरा रक्षण करो एव यह आहुति ग्रहण करो ॥ ४ ॥ हे विश्वम्भर अग्ने ! अपनी पोषण शक्ति से मेरा रक्षण करो एव मेरे द्वारा अर्पित यह आहुति स्वीकार करो ॥५॥

१७ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ओज प्रभृतीनि । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥ सहोऽसि सहो मे दा. स्वाहा ॥२ बलमसि बल मे दाः स्वाहा ॥३॥ आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥ श्रोत्रमसि श्रोत्र मे दा. स्वाहा ॥५॥ चक्षुरसि चक्षुर्मे दा स्वाहा ॥७ परिपाणमसि परिपाण मे दा. स्वाहा ॥७॥

हे ओज ! तुम मुझे ओज प्रदान करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! मुझे तेज प्रदान करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हूँ ॥ २ ॥ हे बलरूप अग्ने ! मुझे बल प्रदान करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हूँ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! मुझ शतायु प्रदान करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हूँ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! मुझे श्रवण शक्ति प्रदान करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हू ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! मुझे दर्शन रूप नेत्र प्रदान करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हू ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! मेरा रक्षण करते हुए मेरा पोषण करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हैं ।६।

१८ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—चातन । देवता—अग्नि । छन्द—बृहती ।)

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातन मे दा स्वाहा ॥१॥
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातन मे दा॰ स्वाहा ॥२॥
अरायक्षयणमस्यरायचातन मे दा स्वाहा ॥३॥
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातन मे दा स्वाहा ॥४॥
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातन मे दा स्वाहा ॥५॥

हे अग्ने ! तुम शत्रुओ को नष्ट करने वाले हो अत॰ मुझे भी शत्रु-नाशक शक्ति प्रदान करो मैं तुमको हवि अर्पित करता

हूँ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम वैरियों को नष्ट करने वाले हो, अतः वैरियों को नाश करने वाली शक्ति प्रदान करो । मैं तुमको हवि अर्पित करता हूं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अराय नामक राक्षसो के हन्ता हो । मुझे भी अराय नाशक शक्ति प्रदान करो । मै तुमको हवि अर्पित करता हूँ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम पिशाचों के सहार करने वाले हो,मुझे भी पिशाच विनाशक शक्ति प्रदान करो । मैं तुम्हें हवि प्रदान करता हूँ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम राक्षसियों के महारक हो । मुझे भी वही सामर्थ्य प्रदान करो । मैं तुम्हे हवि अर्पित करता हूँ ॥५॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१
अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मः ॥२
अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३
अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥४
अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५

हे अग्ने ! तुम अपनी सन्तापप्रद शक्ति सहित शत्रु को लक्ष्य कर प्रज्वलित हो । हमारे विरुद्ध कृत्यादि कर्म करने वाले शत्रु को पीडित करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हमारे द्वेषी शत्रु पर अपने क्रोध रूपी शस्त्र से आक्रमण करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हमसे शत्रुता रखने वाले या जिसमे हम शत्रुता रखते है । उस शत्रु को अपने तेज से भस्म करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हमसे बैर करने वाले या जिससे हम बैर करते हैं उन पर अपनी सन्तप्त करने वाली शक्ति प्रयुक्त करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हमारे द्वेषी

शत्रुओ को दमन करने वाले तेज को उन पर फेंक कर उन्हे निस्तेज करो ॥५॥

२० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वायुः । छन्द—गायत्री ।)

वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१
वायो यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२
वायो यत् तेर्ऽचिस्तेन तं प्रत्यर्च योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३
वायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥४
वायो यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥५

हे वायु ! तुम अन्तरिक्ष मे विचरण करती हो । तुम अपनी कष्ट प्रदान करने वाली शक्ति को शत्रु के विरुद्ध प्रयोग मे लाओ । हमारे द्वेषी कृत्याकारी को कष्ट दो ॥ १ ॥ हे वायो ! हमारे द्वेषी अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं ऐसे शत्रुओ पर अपना क्रोध प्रकट करो ॥ २ ॥ हे वायो ! हमारे द्वेषी अथवा जिनसे हम द्वेष करते है ऐसे दोनो तरह के शत्रुओ का नाश करने के लिए तुम अपनी अर्चि से प्रज्वलित हो ॥ ३ ॥ हे वायो ! हमारे द्वेषी अथवा जिनसे हम द्वेष करते हैं, ऐसे दोनो प्रकार के शत्रुओ को अपने सन्ताप प्रद शक्ति से सन्तापित करो ॥ ४ ॥ हे वायो ! हमारे द्वेषी या जिनसे हम द्वेष करते हैं, इस प्रकार के दोनो शत्रुओ पर अपने अधीन करने वाली शक्ति प्रयुक्त करो और उन्हे तेजहीन बनाओ ॥५॥

२१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—सूर्य । छन्द—गायत्री ।)

सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

सूर्य यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥
सूर्य यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
सूर्य यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४
सूर्य यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५

हे सूर्य ! तुम अपनी सतापन शक्ति को शत्रु की ओर लक्ष्य करते हुए प्रकट हो तथा अपने तेज को शत्रु के विरुद्ध प्रयुक्त करो। जो हमारा द्वेषी है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं, उन्हें पीडित करो ॥ १ ॥ जो हमसे शत्रुता रखता है या जिससे हम शत्रुता रखते हैं, हे सूर्य, उस शत्रु पर अपने क्रोध रूप आयुध से प्रहार करो ॥ २ ॥ जो हमसे बैर रखता है अथवा जिससे हम बैर करते हैं, हे सूर्य ! अपनी दीप्ति से संयुक्त हो उस शत्रु को भस्म करो ॥ ३ ॥ हे सूर्य ! हमारे बैरियों को अपने शोकप्रद बल से सन्तापित करो ॥ ४ ॥ हे आदित्य! हमारे शत्रुओं को अपने वशीभूत करने वाले सामर्थ्य से वश में करते हुए उन्हें निस्तेज करो ॥५॥

२२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—चन्द्र । छन्द—गायत्री ।)

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१
चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२
चन्द्र यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोचि योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥४
चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥५

हे चन्द्र ! जो हमारा द्वेषी है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं उस शत्रु को अपने शोक-प्रद शक्ति से शोकाकुल करो ॥ १ ॥ हे चन्द्र ! जो हमारा द्वेषी है अथवा जिससे हम द्वेष

रखते हैं, उस शत्रु पर अपने क्रोध रूप आयुध को छोड़ो ॥ २ ॥ हे चन्द्र ! जो हमारा द्वेषी है अथवा जिससे हम द्वेष रखते हैं, उस शत्रु को अपनी दीप्ति से नष्ट करो ॥ ३ ॥ हे चन्द्र ! जो हमारा द्वेषी है अथवा जिससे हम द्वेष रखते हैं उस शत्रु को अपनी सतापन शक्ति से सन्तप्त करो ॥ ४ ॥ हे चन्द्र ! हमारे शत्रुओं को अपने वशीभूत करने वाले सामर्थ्य से वश में करते हुए निस्तेज करो ॥५॥

२३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-आपु । छन्द-गायत्री ।)

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१
आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२
आपो यद् वोर्ऽचिस्तेन तं प्रत्यर्चत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३
आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत योस्मानद्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥४
आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥५

हे जलो ! जो हमारा द्वेषी है अथवा जिससे हम द्वेष रखते है उस शत्रु को अपनी सतापन शक्ति से दग्ध करो ॥ १ ॥ हे जलो ! जो हमारा द्वेषी है अथवा जिससे हम द्वेष रखते है उस शत्रु पर अपना क्रोध रूपी आयुध छोडो ॥ २ ॥ हे जलो ! जो हमारा द्वेषी हे अथवा जिससे हम द्वेष रखते हैं, उस शत्रु को अपने तेज से नष्ट करो ॥ ३ ॥ हे जलो ! जो हमसे द्वेष रखता है अथवा जिससे हम द्वेष रखते हैं, उस शत्रु को अपनी शोक प्रद शक्ति से दुखी करो ॥ ४ ॥ हे जलो जो हमारा द्वेषी है, अथवा जिससे हम द्वेष रखते हैं उस शत्रु को अपने वशीभूत करने वाली शक्ति से वश में करते हुए निस्तेज करो ॥५॥

२४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आयु । छन्द—पङ्क्ति., बृहती ।)

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥१॥
शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिन ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥२॥
म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् स्वा मांसान्यत्त ॥३॥
सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥
जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनी. ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥
उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥
अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७॥
भरूजि पुनर्वो यन्तु यातव' पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८॥

हे शेरभक ! तुम शेरभ सदृष्य हिंसक राक्षसों के स्वामी हो । हमारी ओर तुम्हारे द्वारा प्रेरित यातना और राक्षस अपने आयुधों सहित वापिस लौट जाँय । तुम्हारे चोर आदि अनुचर भी हमारे पास से लौट जाँय । जिसने तुम्हे हमारी ओर प्रेषित किया है उन्ही दुष्टों का भक्षण करो । तुम और तुम्हारे आयुध उन्ही का माँस भक्षण करें ॥ १ ॥ हे शेवृधक ! तुम शेवृधकों के स्वामी हो । हमारी और तुम्हारे द्वारा प्रेषित यातनाएँ,

राक्षसियाँ अपने आयुधो सहित मेरे पास से वापिस लौट जाय। तुम्हारे चोर आदि अनुचर भी हमारे पास से लौट जाय। जिसने तुम्हें हमारी ओर प्रेपित किया है, उन्ही शत्रुओ के माँस का भक्षण करो। २॥ हे भ्रोक एव अनुभ्रोक ! तुम धन चुरा कर चुपचाप चले जाते हो। तुम्हारी यातना राक्षस और हिंसात्मक आयुध मेरे पास से वापिस लौट जाँय तथा तुम्हारे चोर आदि अनुचर भी यहाँ न रहे। जिसने तुम्हें यहाँ प्रेपित किया है, उन्ही शत्रुओ के माँस का भक्षण करो ॥ ३ ॥ हे सर्प एवं अनुसर्प ! हमारी ओर तुम्हारे प्रेपित किए गए यातना, राक्षस आदि अपने आयुधो सहित वापिस लौट जाँय। तुम्हारे किमीदन आदि अनुचर भी हमारे पास यहा न रहे। जिसने तुम्हे यहा प्रेपित किया है उन्ही शत्रुओ के माँस का भक्षण करो ॥ ४ ॥ हे जूर्णिनाम्नी राक्षसी ! तू शरीर को क्षीण करने वाली है। तेरे द्वारा भेजी हुई अलक्ष्मी रूप यातनाएँ, राक्षसिया आदि अपने आयुधो सहित मेरे पास से वापिस लौट जाँय। तुम्हारी किमीदिनी आदि अनुचरी भी मेरे पास यहा न रहे। हे जूर्णियी। जिसने तुम्हे हमारे पास प्रेपित किया है, उन्ही शत्रुओ का भक्षण करो ॥ ५ ॥ हे उपब्ध नाम्नी राक्षसी तू कर्कशा और क्रूर कर्मा है। तेरे द्वारा भेजी हुई यातनाएं, राक्षसियाँ आदि अपने आयुधो सहित यहाँ से वापिस लौट जाय। तुम्हारी किमीदिनी आदि अनुचरिया भी यहाँ न रहे। जिसने तुम्हे यहा भेजा है, उन्ही शत्रुओ का मास भक्षण करो ॥ ६ ॥ हे अर्जुनि नाम्नी राक्षसी ! तुम्हारे द्वारा भेजी गई यातनाएँ राक्षसियाँ आदि अपने आयुधो सहित हमारे पास से वापिस लौट जाय। तुम्हारी किमीदिनो आदि अनुचरिया, भी हमारे पास यहा न रहे। जिसने तुम्हे यहा भेजा है उन्ही शत्रुओ के

मास का भक्षण करो ॥ ७ ॥ हे भरूजी नाम्नी राक्षसी ! तुम्हारे द्वारा भेजी गई यातनाएँ राक्षसिया आदि अपने आयुधों सहित हमारे पास से वापिस लौट जाय । तुम्हारी किमीदिनी आदि अनुचरिया भी हमारे पास यहा न रहे । जिसने तुम्हे हमारे पास यहा प्रेषित किया है, उन्ही हमारे शत्रुओं के मास का भक्षण करो ॥८॥

२५ सूक्त

(ऋषि—चातनः । देवता—पृश्निपर्णी । छन्द—अनुष्टुप् ।)

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१॥
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्य जायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥२॥
अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३॥
गिरिमेनां आ वेशय कण्वाञ् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४॥
पराच एनान् प्र णुद कण्वाञ् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥५॥

यह पृश्निपर्णी नामक औषधि कुष्ठ आदि को शमन कर हमारे लिए सुखदायी हो । मैं इस औषधि का सेवन करता हूँ । प्रचण्ड बल धारण करती हुई यह औषधि पाप-नाशक है, यह निर्ऋति राक्षसी को दुख दे ॥ १ ॥ औषधियों मे सर्व प्रथम उत्पन्न यह पृश्निपर्णी है । यह दाद, खाजन, कुष्ठ आदि चर्म रोगों की अचूक औषधि है । मैं इसके द्वारा उक्त रोगो को पक्षियो के सिर के समान समूल नष्ट करता हूँ ॥ २ ॥ हे पृश्निपर्णी ! तू कुष्ठ आदि रोग-रूप शत्रु का तथा शारीरिक वृद्धि

मे बाधक व्याधियो का नाश कर। तू गर्भ नष्ट करने वाले तथा गर्भ न रहने देने वाले रोगो का भी नाश कर ॥ ३ ॥ हे पृश्निपर्णी ! यह कुष्ठ आदि रोग प्राणहन्ता हैं। इन रोगो के मूल-रूप पाप को सर्पादि को भस्म करने वाले दावानल के समान पहाड पर ले जाकर भस्म कर ॥ ४ ॥ हे पृश्निपर्णी ! सूर्योदय होने पर देश मे अन्धकार रहता है, उस अन्धकारपूर्ण स्थान मे धातुओ के भक्षक कुष्ठ को भेजता हूँ। तू अपने लेप द्वारा प्राणो को हनन करने वाले इन दुष्ट रोगो को वापिस लौटा दे ॥५॥

२६ सूक्त

(ऋषि—सविता। देवता—पशवः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्।)

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१
इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥२॥
सं सं स्रव तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः।
सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥४॥
आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥५॥

लौटे हुए पशु पुन इस गोष्ठ मे आवें। जिन पशुओ के रक्षण के लिए वायु साथ रहता है तथा जिन गर्भस्थ पशुओ के नाम और रूप को त्वष्टा निश्चित करता है, उन सब पशुओ को सूर्य इस गोष्ठ मे स्थित करें। ॥ १ ॥ बृहस्पति देव गौओ को गोष्ठ मे प्रेरित करे। गौ आदि पशु मेरे गोष्ठ मे आवे।

सिनीवाली और अनाभिमानी देवता-गण ! इन पशुओं को लौटा कर गोष्ठ में स्थित करो ॥ २ ॥ गौ अश्वादि पशु भली-भाँति आवें। अनुचर धन-धान्य आदि भी समुचित रूप में प्राप्त हों। मैं अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति हेतु घृताहुतिं अर्पित करता हूँ ।३। गौ मेरे पास रहे तथा हमारी सन्तति घृतादि से पुष्ट हो। मैं नवीन गौ के दूध को सिंचित करता हूँ। अन्न-जल रस को घृत से सिंचित करता हूँ ॥ ४ ॥ मैं अपने घर में इस प्रयोग द्वारा गौ-दुग्ध धन-धान्य और रसादि को लाता हूँ। अपनी पत्नी-पुत्रादि को भी घर में लाता हूँ ॥५॥

२७ सूक्त (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि-कपिञ्जलः । देवता-ओषधिः रुद्रः इन्द्रः । छन्द-अनुष्टुप्)

नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥१॥
सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२॥
इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥३॥
पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥४॥
तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकांइव ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥५॥
रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥६॥
तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥७॥

हे पाठा नाम्नी ओषधे ! तुझे सेवन करने वाले मुझको

मेरे शत्रु जीत न सकें। तू शत्रुओं का सामना कर उन्हें अपने वश में करती है। वाद-विवाद मेरे प्रश्न करने पर प्रतिवादी को पराजय प्रदान कर। तू वात पित्त जन्य दोषो को शान्त करने वाली है। हे पाठा ! तू मेरे विरोधियो को विवाद मे शुष्क कठ वाले और अटपटे वचन बोलने वाला बना ॥१॥ हे पाठा ! विषनाश के लिए तू गरुड की खोज है। तू मेरे विरोधियो को पराजित कर। उन्हे शुष्क कठ और अटपटे वचन बोलने वाला बना ॥ २ ॥ हे पाठा नाम्नी औषधे ! राक्षसो के सहार के लिए इन्द्र ने तुझे अपनी दाहिनी भुजा पर बाँधा था, वैसे ही मैं भी तुझे धारण करता हूँ। वाद-विवाद मे तू मेरे विरोधियो को पराजित कर उन्हे शुष्क कठ और अटपटे वचन बोलने वाला बना ॥ ३ ॥ हे औषधे ! राक्षसो को जीतने के लिए इन्द्र ने तुझे खाया था। मैं भी तुझे खाता हूँ। तू मेरे शत्रुओ को पराजित कर। उन्हे शुष्क कठ वाला बना जिनसे उनके मुख से असङ्गत वाक्य निकले ॥ ४ ॥ हे पाठे ! जिस भाति इन्द्र ने अपने शत्रु राक्षसों को निरुत्तर कर दिया था उसी प्रकार तुझे सेवन करने वाला मैं अपने विरोधियो को निरुत्तर करता हूँ। तू मेरे विरोधी शत्रुओ को पराजित कर। उनके कठो को सुखा दें जिससे वे असङ्गत वचन बोलने वाले बनें ॥ ५ ॥ हे रुद्र ! तुम्हारे स्मरण मात्र से जल औषधि रूप धारण करते हैं। हे नील वर्ण की शिखा वाले रुद्र ! मेरे द्वारा सेवन की गई इस पाठा को शत्रु तिरस्कारक शक्ति प्रदान करो। हे औषधे ! तू मेरे विरोधियो को पराजित कर। वे सूखे कठ वाले तथा असङ्गत वचन बोलने वाले बनें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! जिन शत्रु के तर्कों से हम क्षीण हो रहे हैं, उस प्रतिवादी को तर्कहीन कर मुझे अपनी शक्ति से तर्क मे प्रबल करो ॥७॥

२८ सूक्त

(ऋषि-शम्भु । देवता-जरिमा आयु प्रभृति । छन्द-जगती,त्रिष्टुप्)

तुभ्यमेव जरमिन् वर्धतामय मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषु शत ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एन मित्रियात् पात्वहस ॥१॥
मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्यु कृणुतां सविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥२॥
त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३॥
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्यु कृणुतां सविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपित शत हिमा ॥४॥
इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रिय रेतो वरुण मित्र राजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥५॥

हे अग्ने ! तुम्हारी उपासना के लिए ही यह बालक रोग-मुक्त हो वृद्धि को प्राप्त हो । रोगरूप राक्षस इसका अनिष्ट न कर पावें । मित्र देवता मित्र द्रोह के दोष से इस बालक की उसी प्रकार रक्षा करें जैसे माता पुत्र की रक्षा करती है ॥ १ ॥ मित्र वरुण देवता समान बुद्धि से इस बालक को वृद्धावस्था प्राप्त करने वाला बनायें । अग्नि देवताओ से इसकी दीर्घ आयु के लिए प्रार्थना करें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम पार्थिव प्राणियों के स्वामी हो । पैदा हुए और पैदा होने वालो के भी स्वामी हो। तुम्हारी कृपा से इस बालक के प्राण इसका त्याग न करें । मित्र और शत्रु भी इसकी हिंसा न कर सकें ॥ ३ ॥ हे बालक ! तू पृथ्वी की गोद मे सौ हेमन्त ऋतुओं तक जीवन प्राप्त करे । पिता रूप आकाश और माता रूप पृथ्वी तुझे वृद्धावस्था में मरने वाला करें ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! इस बालक को तेज प्रदान कर

शतायुष्य करो। हे मित्रावरुण! इस बालक को सतानदाता वीर्य प्रदान करो। हे विश्वेदेवाओ! इस बालक को सर्वगुण सपन्न और दीर्घायु करो। हे माता अदिति! तुम इसके लिए माता समान सुखदायी हो ओ ॥५॥

२६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-अग्नि, सूर्य प्रभृति। छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, पक्ति।)

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो बले ।
आयुष्य मस्मा अग्नि. सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१॥
आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजा त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥
आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥३॥
इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्र. प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥४॥
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५॥
शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चा ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूप परिधाय मायाम् ॥६॥
इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥७॥

पार्थिव रसो का पान करने वाले पुरुष को भग देवता के तेज से इन्द्रादि देवता पुष्ट करें, अग्नि इसे शतायु, सूर्य तेज तथा बृहस्पति बुद्धि प्रदान करें ॥१॥ हे अग्ने! इसे शतायुष्य करो। हे त्वष्टा! इसे सन्तान प्रदान करो। हे सूर्य! इसे

गोअश्वादि धन से पूर्ण करो। तुम्हारी कृपा से यह सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहे ॥ २ ॥ हे द्यावा पृथिवी! हमारी प्रार्थना पूर्ण हो। हमको अभीष्ट धन, बल, अन्न और सन्तान प्रदान करो। पूतभृत् मे छिड़का जाने वाला आशीर हमको अन्न, सन्तान वाला बनायें। यह तुम्हारी शक्ति से युक्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने मे समर्थ हो तथा उनकी सम्पत्ति को भी अपने अधिकार मे कर ले ॥ ३ ॥ इन्द्र से आयु, वरुण से शक्ति तथा मरुद्गणो से प्रेरणा प्राप्त कर यह पुरुष हमारे बीच आया है। हे द्यावा पृथिवी! तुम्हारी गोद का आश्रय पाकर यह भूख प्यास से पीडित न हो ॥ ४ ॥ हे द्यावा पृथिवी! इस पुरुष को अन्न-जल प्रदान करो। तुमने इसे अभीष्ट अन्न, धन आदि प्रदान किया है और विश्वेदेवा मरुदगणो और जलो न भी इसे शक्ति प्रदान की है ॥ ५ ॥ हे तृषित पुरुष! मैं तुझे आनन्दप्रद जल से सतुष्ट करता हूँ। तू सुन्दर कांतिवान और प्रसन्नतापूर्ण हो। एक परिधान वाला यह व्यक्ति अश्विद्वय की औषधि रूप मन्थ का पान करे ॥ ६ ॥ इन्द्र ने तृषा निवारणार्थ इस मन्थ को उत्पन्न किया था। हे रोगिन! प्रदत्त मन्थ द्वारा शक्ति सपन्न हो शतायुष्य हो, यह मन्थ तुझसे अलग न हो ॥७॥

३० सूक्त

(ऋषि—प्रजापति। देवता—मन अश्विनौ ओषधि, दम्पती।
छन्द—पङ्क्ति अनुष्टुप्।)

यथेद भूम्या अधि तृणं वातो मथायति।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१
स चेन्नयाथो अश्विना कामिना स च वक्षथ।
स वां भगासो अग्मत स चित्तानि समु व्रता ॥२॥

यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः ।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्यइव कुल्मलं यथा ॥३॥
यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।
कन्या नां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥४॥
एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्व कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ॥५॥

हे पत्नी ! जैसे वायु द्वारा चक्कर काटता हुआ तिनका घूमता है, वैसे ही मैं तेरे मन को हिलाता हूँ जिससे तू मुझे चाहे तथा मुझसे अलग न हो ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! मेरी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर मुझे प्रदान करो । तुम दोनो के मन मेरी ओर प्रेरित हो ॥ २ ॥ सुन्दर पक्षी के मन-मोहक स्वर और पराक्रमी पुरुष के प्रभावपूर्ण वचन के सदृश्य मेरी यह याचना बाण सदृश्य लक्ष्य को प्राप्त करे ॥ ३ ॥ भीतर बाहर से एक विचार वाली दोष-रहित अङ्गो वाली कन्याओ के मन को प्राप्त करने मे समर्थ हे औषधे ! तू उनके मन को प्राप्त कर ॥ ४ ॥ पति की चाहना करने वाली यह स्त्री मेरे पास आ गई मैं उसकी चाहना करते हुए उसे प्राप्त हो गया हूँ । मैं धन सहित इसके पास उसी भाँति आया हूँ जिस प्रकार श्रेष्ठ अश्व अपनी मादा के पास जाता है ॥५॥

३१ सूक्त

(ऋषि-काण्व । देवता-मही, क्रिमिजम्भनम् । छन्द-अनुष्टुप्, बृहती ।)

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँइव ॥१॥

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरुरुमतृहम् ।
अल्गण्डूत्सर्वान् छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥२॥
अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ॥३
अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥४॥
ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ॥५॥

कृमि नाशक इन्द्र की शिला द्वारा मैं समस्त कृमिया को चक्की स चना के पीसने के समान पीसता हूँ ॥ १ ॥ दीखते हुए और न दीखते हुए शरीर स्थित समस्त कृमियो को नष्ट करता हूँ। जाल सदृश्य, रक्त मास दूषित करने वाले तथा अन्य सभी प्रकार के कृमिया का नाश करता हूँ ॥२॥ मैं इन कृमियो का मत्र और औषधि द्वारा नाश करता हूँ। सब कृमि सूख कर नष्ट हो। इन सब कृमियो का मैं मत्र बल से नष्ट करता हूँ ॥ ३ ॥ आंता के सिर के, पसलिया के तथा अन्य समस्त प्रकार के कृमिया को मैं मत्र शक्ति से नष्ट करता हूँ ॥ ४ ॥ पर्वत, वन, औषधि, पशु आदि के जो कृमि घावो और खान पान द्वारा शरीर मे प्रवेश कर गए हैं मैं उन सबकी वृद्धि को रोकता हुआ नष्ट करता हूँ ॥५॥

३२ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि काण्व । देवता-आदित्य । छन्द गायत्री, अनुष्टुप,उष्णिक)

उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१॥

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमि सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥२॥
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥३॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥४॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५॥
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥६॥

बाल सूर्य गौओ के शरीर मे घुसे हुए क्रमियो को अपनी किरणो से नष्ट करे ॥ १ ॥ अनेक वर्ण और आकार वाले समस्त क्रमियों को नष्ट करता हूँ ॥ २ ॥ हे क्रमियो ! अत्रि, कण्व और जमदग्नि के मन्त्रो से मैं तुम्हे नष्ट करता हूँ । महर्षि अगस्त्य के पुनरुत्पत्ति न होने देने वाले मन्त्र से क्रमियों को नष्ट करता हूँ ॥ ३ ॥ क्रमियो का राजा, मन्त्री अपने माता, भ्रातादि सहित नष्ट हो गया । इस मन्त्र के प्रभाव से क्रमियो का वश ही नष्ट हो गया ॥ ४॥ इन क्रमियो के स्थान नष्ट हो गए एव बीज रूपी सूक्ष्म कीट भी नष्ट हो गए ॥ ५ ॥ हे सीगयुक्त कीट ! तेरे पीड़ा देने वाले सीग को काटता हूँ । तेरे कुषुम्भ को तोड़ता हूँ तथा तेरे विष पूर्ण अङ्ग को अलग करता हूँ ॥६॥

३३ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-यक्ष्मविवर्हणम् । छन्द-अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति ।)

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्याम् प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥३॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्याम् प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥४॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्या प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भससो वि वृहामि ते ॥५॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामंगुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥६॥
अंगेअंगे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वय कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥७

हे क्षय रोगी ! तेरे नेत्र, कान, नाक चिबुक और जीभ से क्षय रोग को अलग करता हूँ ॥ १ ॥ हे रोगिन ! तेरी गरदन की नाडियों से, उष्णिह नाम्नी नाड़ियों से, कंठ और वक्ष की नाडियो से अनूक्य से कन्धे और भुजाओं से तेरे क्षय रोग को पृथक करता हूँ ॥ २ ॥ हे रोगिन ! तेरे हृदय क्लोम हलीक्ष्ण, पार्श्व, उदर, प्लीहा, यकृत आदि से यक्ष्मा रोग को हटाता हूँ ॥ ३ ॥ तेरी आँतों मे उदर से कोखो से प्लाशि से और नाभि से क्षय रोग को हटाता हूँ ॥ ४ ॥ तेरी जाँघो से पाँवों के ऊपर के तथा आगे के भाग से, कमर मे, कमर के नीचे से और गुह्य प्रदेश मे क्षय रोग को दूर करता हूँ ॥ ५ ॥ तेरी अस्थि, मज्जा, सूक्ष्म-स्थूल नाडी, उङ्गली, नख आदि से क्षय रोग को प्रथक करता हूँ ॥ ६ ॥ हे रोगिन ! तेरे अन्य सभी अङ्गो मे रोम कूपों से सन्धियों से, त्वचा आदि से महर्षि कश्यप

के इस विवर्ह नामक मन्त्र के द्वारा क्षय-रोग को दूर करता हूँ ॥७॥

३४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-पशुपतिः प्रभृति । छन्द-त्रिष्टुप् ।)

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥१॥
प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥२॥
ये वध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥३॥
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराण. ॥४॥
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवय नैः ॥५॥

मनुष्य और पशुओ का स्वामी पशुपति पूर्ण-रूप से ज्ञात हुआ यज्ञ को प्राप्त हो । उसके अनुग्रह से यजमानो को धन एव बल प्राप्त हो ॥ १ ॥ हे देवताओ ! ससार के तत्व रूप उपदेश का दान करते हुए इस यजनकर्ता को सत्य मार्ग प्रदर्शित करो । सुसस्कृत सोम जो देवो का प्रिय अन्न है, हमे प्राप्त हो ॥२॥ जो प्रकाशमान जीव इस बन्धनयुक्त जीव को मन और आँख से देखते हैं, उनको यह परमेश्वर सर्व प्रथम मोक्ष प्रदान करे ॥३॥ ग्राम के विविध रूप वर्ण वाले पशु जो भिन्न होते हुए भी एक रूप दिखलाई पडते हैं उनको भी परमेश्वर मोक्ष प्रदान करे ॥ ४ ॥ विशिष्ट ज्ञान रखने वाले ज्ञानी चारो स्थानो से भ्रमण करने वाले प्राण को सब अवयवो से एकत्रित करके तथा अपने

वश मे करके स्वस्थ जीवनयापन करने है और फिर दिव्यमार्ग से सीधे स्वर्ग को प्रयाण करते है तथा दीप्यमान दैवीस्थान को प्राप्त होते हैं ।।५।।

३५ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिरा देवता—विश्वकर्मा । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ।।१।।
यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध स नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ।।२।।
अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः ।
यदेनश्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ।।३।।
घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् ।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान् ।।४।।
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ।।५।।

यज्ञादि-कर्म से अन्यत्र धन व्यय करने के कारण हम समृद्धिशाली न बन सके । इसी कारण अग्नि हमारे प्रति शोक प्रकट करते हैं । अत हम अयष्टा और दुर्यष्टा हैं । यज्ञ करने की हमारी सुन्दर इच्छा को परमात्मा पूर्ण करे ।। १।। अतीन्द्रिय ऋषि याज्ञवैकल्प वाले पाप से स्वय भी सन्तापित यजमान को पापी बताते हैं । जिन प्रजापति ने सोम की बूदो को अन्तरित किया है वे प्रजापति उन बूदो से हमारे यज्ञ को सपन्न करें ।।२।। रणक्षेत्र को प्राप्त योद्धा अन्य वीरो के स्वरूप से परिचित उन्हे नगण्य समझता है वैसे ही मैं इस यज्ञ के स्वरूप से परिचित हूँ । विद्या मद के कारण अन्य विद्वानो को नगण्य समझ उनका

अपमान कर पाप किया है, उस पाप से हे प्रजापते ! मुझे मुक्त करो ॥ ३ ॥ सत्य दर्शन ऋषि चक्षु, बृहस्पति और प्रजापति को प्रणाम करता हूँ । ये सब क्रूर दृष्टि से उत्पन्न पाप को नष्ट कर हमारे रक्षक हों ॥ ४ ॥ यज्ञ को यह अग्नि चक्षु के समान दिखाते हैं । सभी यज्ञ अग्नि द्वारा ही सम्पन्न होते हैं । देवों से भी वे अधिक स्तुत्य हैं । ऐसे अग्निदेव को मैं घृताहुति अर्पित करता हूँ । इस प्रजापति द्वारा अनुष्ठीयमान् यज्ञ में इन्द्रादि देव अपनी अनुग्रह पूर्ण बुद्धि सहित पधारें ॥५॥

३६ सूक्त

(ऋषि-पतिवेदनः । देवता-अग्निः प्रभृति । छन्द-त्रिष्टुप,अनुष्टुप्)

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यं ॥१॥
सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम् ।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥२॥
इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥३॥
यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी सम्प्रिया पत्याविराधयन्ती ॥४॥
भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ॥५॥
आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु ।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ॥६॥
इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥७॥
आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः ।
त्वमस्यै धेह्योषधे ॥८॥

हे अग्ने ! कन्या को स्वीकार करने की कामना रखने वाला सुन्दर वर हमारे दृष्टिगत हो। वह इस कन्या को प्राप्त करने की इच्छा लेकर अपने वैभव सहित इस कुमारी को प्राप्त हो। तत्पश्चात् वरातियों को कन्या का वरण रुचिकर हो तथा यह कन्या पति के साथ सौभाग्यवती हो ॥ १ ॥ सोम गंधर्व अर्यमा नामक विवाहाग्नि से स्वीकृत कुमारि का रूप धन को धाता देवता की अनुमति से मनुष्य रूप पति को प्राप्त करने वाली बनाता हूँ ॥२॥ यह कुमारी पति को प्राप्त हो सोम इसे सौभाग्य प्रदान करें। यह पति को प्राप्त कर तेजस्विनी हो और पुन उत्पन्न करने वाली श्रेष्ठ भार्या बने ॥ ३ ॥ सुन्दर स्थान जैसे मृगों को रुचिकर होता है और वे वहाँ प्रेम से रहते हैं, उसी भाँति यह स्त्री पतिगृह में आनन्द से निवास करती हुई सौभाग्यवती हो ॥ ४ ॥ हे कुमारिके ! तू अभीष्ट फलों से लदी हुई नौका पर सवार होकर और इसके द्वारा अपने मन चाहे वर को प्राप्त हो। जो वर तुझे चाहे उसके पास अपने को पहुँचा ॥ ५ ॥ हे वरुण ! वर को इस कन्या के सामने बुला कर उसके मन को इसकी ओर प्रेरित करो और उसे विवाहानुकूल व्यापार वाला बनाओ। उससे यह कथन कराओ कि यह कन्या मेरी पत्नी हो ॥ ६ ॥ हे कुमारिके ! यह स्वर्ण आभूषण यह लेप द्रव्य औक्ष और वस्त्रादि के स्वामी भग देवता यह सब तुझे सोम गन्धर्व अग्नि नामक रक्षकों से युक्त मनुष्य पति प्राप्न हेतु प्रदान करते हैं ॥ ७ ॥ हे ब्रीहि आदि औषधे ! इस कन्या को प्रति प्रदान करो। हे कन्ये ! सूर्य पति को तेरे पास लावें। नियत वर तेरे साथ विवाह करके तुझे अपने ग्रह ले जाय ॥८॥

॥ इति द्वितीय काण्ड समाप्तम् ॥

तृतीय काण्ड

प्रथम अनुवाक

—ॐ—

१ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-अग्नि मरुत इन्द्र। छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स सेना मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२॥
अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३॥
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४॥
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥५॥
इन्द्रः सेना मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

यह अग्निदेव ! सेनापति के सहयोग से विनाश निमित्त तत्पर शत्रुओं के मन को विचलित करते हुए उसे हथियार उठाने मे सामर्थ्यहीन करे। यह अग्नि देवासुर संग्राम मे देवसेना के सेनापति हैं, यह शत्रुओं के शरीरो को भस्म करते हुए आगे

बढे ॥ १ ॥ हे मरुद्गणो ! तुम युद्ध मे मेरी सहायतार्थ निकट रहो और पशुओं पर प्रहार करो । वसु देवता भी हमारी प्रार्थना पर पशु सहार मे आगे बढे । वसु प्रधान अग्नि भी शत्रु की ओर अग्रसर हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हम दोष रहितो के प्रति शत्रु समान व्यवहार करने वाली आक्रमणकारी सेना के सन्मुख जाओ तथा तुम और अग्नि दोनो ही शत्रु के विरुद्ध होकर उन्हें नष्ट कर डालो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! आप शत्रु सेना के बीच पहुँच कर अपने वज्र द्वारा उनका पूर्ण सहार करो । चारो ओर से आगे पीछे और भागते हुए शत्रुओ को नष्ट करो । शत्रु विनाश के अतिरिक्त अन्य कोई विचार मन मे न लाओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! शत्रु सेना को विमूढ बनादो । अग्नि और वायु मिलकर भस्म करने की जो विकराल गति उत्पन्न करते है, उस गति से तुम शत्रु सेना को पराङ्मुख करते हुए नष्ट करो ॥ ५ ॥ हे देवताओ के स्वामी ! शत्रु सेना को विवेक शून्य बना उसको अपने मित्र मरुद्गणो द्वारा विनाश करादो । अग्निदेव शत्रुओ के नेत्रो को विकल करदें । इस तरह सब प्रकार से हार कर शत्रु सेना वापिस लौट जाय ॥६॥

२ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अग्नि ,इन्द्रादि । छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥
अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥
इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥३॥

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यदद्येषा मृदि तदेषा पि निर्जहि ॥४॥
अमीषा चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्प्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥५॥
असौ या सेना मरुत परेषामस्मानैत्यम्योजसा स्पर्धमाना ।
ता विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्य न जानात् ॥६॥

देवदूतो मे अग्रणीय अग्नि शत्रुओ को भस्म करें। उनको विमूढ कर और उन्हे हथियार उठाने की सामर्थ्य से हीन कर डालें ॥ १ ॥ हे शत्रुओ ! तुमने जो हमको पराजित करने का विचार किया है, उन विचारो को यह अग्नि भ्रमित करे और तुम्हे अपने लक्ष्य से च्युत करदे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! शत्रुओ को विमूढ बनाते हुए तुम उनकी सेना के सामने विचरण करो और अग्नि वायु के योग से भस्म करने की जो प्रचड गति होती है, उसके द्वारा शत्रु सेना का नाश करो ॥ ३ ॥ हे शत्रुओ के मनो ! तुम भ्रमित हो, तुम्हारे सङ्कल्प, तुम्हारे विरोधी बन। हे देवगण ! तुम इनके मन को भ्रमित करो। हे इन्द्र ! युद्ध के लिए तत्पर शत्रुओ के उत्साह को तुम नष्ट करो ॥ ४ ॥ हे सुख विनाशिनी 'अप्वा नाम्नी पाप देवी ! तू हमारे शत्रुओ के मनो को भ्रमित करती हुई उनके शरीरो मे निवास कर। तू शत्रुओं की ओर जाकर उनकी बुद्धि का हरण कर एव उन्हे भय शोकादि से पूर्ण करती हुई उन्हे मोह रूपा राक्षसो के द्वारा नष्ट कर दे ॥ ५ ॥ हे मरुदगणो ! अपने बलाभिमान मे हमसे शत्रुता करती हुई यह शत्रु सेना हमारी ओर अग्रसर हो रही है, इसे अपनी माया से नष्ट करदो। इनमे से किसी व्यक्ति को अपने अतिरिक्त अन्य किसी का बोध न रहे ॥६॥

३ सूक्त

(ऋषि अथर्वा । देवता-अग्न्यादया मन्त्रोक्ता । छन्द-त्रिष्टुप पङ्क्ति-अनुष्टुप् ।)

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥१॥
दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवा ॥२॥
अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्य ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्य श्येनो भूत्वा विश आ पतेमा ॥
श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्था कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥४॥
ह्वयन्तु त्वा प्रतिजना प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नि विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥५॥
यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्य ।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वायेममिहाव गमय ॥६॥

हे अग्ने ! यह राजा अपना राज्य खोकर, पुन राज्य प्राप्ति हेतु तुम्हारा आह्वान करता है । प्रजापालक राजा तुम्हारे अनुग्रह से सफल हो । तुम इसके अर्थ द्युलोक और पृथ्वी मे व्याप्त होओ । इस कार्य म मरुद्गण तुम्हारी सहायता करें। तुम इस राजा को पुन राज्य का स्वामी बनाओ ॥ १ ॥ हे ऋत्विजो ! इन्द्र को इस राजा की सहायतार्थ हवि अर्पित करो। देवताओ न इन इन्द्र को गायत्री, बृहती आदि छन्दो स परम बलशाली बना दिया है । अत इन इन्द्र को ही यहाँ लाओ ॥२॥ हे राजन् ! तेरा राज्य दूसरा ने अपहरण कर लिया है । उस राज्य म स्थित करने के लिए वरुण जल से, सोम पर्वत से,

तथा इन्द्र तुझे तेरी प्रजाओं के द्वारा निमन्त्रित करे। तत्पश्चात् तू बाज पक्षी के समान तीव्र-गति से आता हुआ, शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर पुन अपनी पूर्व प्रजाओ मे शोभायमान हो ॥ ३ ॥ स्वर्ग स्थित देवो ! तुझ दूसरो के आश्रित को अपने राज्य मे पहुँचावें। हे राजन् ! तेरे आने से पथ को अश्विनी कुमार शत्रु-विहीन करें। हे बन्धुओ ! इस पुन. प्राप्त राजा को मिल कर तुम इसको सेवा करने वाले होओ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे विरोधी अब तुम्हारे अनुगत हो जाँय और तुमसे स्नेह करते हुए तुम्हारे आज्ञाकारी हो। इन्द्र अग्नि और विश्वेदेवा प्रजापालन की शक्ति तुम्हे प्रदान करें ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तेरे पुन राज्य मे आने से जो भी व्यक्ति सहमत न हो, उस शत्रु को हे इन्द्र ! तुम निकाल बाहर करो और उस राजा के राज्य की घोषणा करो ॥६॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्।)

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥
त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२॥
अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३॥
अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु।
अधा मनो वसुदेवाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥४॥
आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥५॥

इन्द्रेन्द्र मनुष्या. परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदान. ।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥६॥
पथ्या रेवती बंहुधा विरूपाः सर्वाः सङ्गत्य वरीयस्ते अक्रन् ।
तारत्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥७॥

हे राजन्! शत्रुओ द्वारा अपहरण किया तुम्हारा राज्य तुम्हें पुनः प्राप्त हो गया। तुम प्रजावत्सल और शत्रुविहीन होते हुए सुशोभित होओ। सब दिग्पाल, सर्व लोक निवासी तुम्हें अपना अधीश्वर समझें और तुम उनके अभिवादन को प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे राजन्! यह श्रेष्ठ दिशाएँ तुम्हारे लिए शुभकारी हों, तुम अपने देश के महान् सिंहासन पर आसीन होओ और फिर हम सेवकों को योग्यतानुसार धन प्रदान करो। तुम्हारी प्रजा तुम्हारे राज्य शासन के निमित्त वरण करती हुई तुम्हारे शासन मे कालयापन करे ॥ २ ॥ - हे राजन्! तुम्हारे अन्य बांधव राजा तुम्हारे बुलाने पर तुम्हारे सामने आवें। तुम्हारा दूत अग्नि के समान अवाध रूप से विचरण करने वाला हो। तुम्हारी स्त्री, पुत्रादि सब पुनः राज्य प्राप्ति से आनन्दित हो प्राप्त उपहारों से तुष्ट हो ॥ ३ ॥ हे राजन्! अश्विनीकुमार मित्र वरुण और मरुद्गण तुम्हें राज्य मे प्रवेश करायें, फिर तुम अपने मन को दान मे स्थित कर महान् पराक्रम पूर्ण होओ ॥ ४ ॥ हे राजन्! यदि तुम दूरस्थ प्रदेश मे होओ तो भी त्वरागति से अपने देश मे लौट आओ। तुम्हारे राज्य प्रवेश के समय द्यावा पृथ्वी कल्याणकारी हों। यह वरुण तुम्हें पुकारते हैं, तुम अपने राज्य में प्रविष्ट हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! मनुष्यो के पास आओ। तुमने वरुण की अनुमति से इस राजा को बुलाने का आदेश दिया है, अत. यहाँ आओ। हे राजन्! इन्द्र तुम्हें

बुलाते हैं, अतः अपने राज्य मे प्रवेश करो और इन्द्रादि देवों का यजन करते हुए प्रजाओ को अपने कार्यों मे लगाओ ॥ ६ ॥ हे राजन्! ये समस्त जल देवता, तुम्हारे लिए मङ्गलमय हों। यह समस्त देवगण तुम्हें राज्य मे प्रवेश करने के लिए बुलावें। तुम अपनी शतायु पर्यन्त राज्य-सुख को भोगो ॥७॥

५ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा सोम, देवता-पर्णमणि । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् ।)

आयमगन् पर्णं मणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥
मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तम ॥२॥
यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥३॥
सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥
आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५॥
ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥६॥
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥७॥
पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥८॥

सब औषधियो की सारभूत शत्रुविनाशिनी पलाश-मणि

मुझे प्राप्त हो और अपने तेज से मुझे तेजस्वी बनाये ॥ १ ॥ हे पलाशमणि ! मुझे धन, बल प्रदान कर जिससे अपने राज्य को मुक्त करने में दूसरों का आश्रय लेने को विवश न होऊँ ॥ २ ॥ इन्द्रादि देवों ने अभीष्ट दायिनी होने के कारण इस रहस्यमयी मणि को पलाश में स्थापन किया । देवगण उस मणि को हमारे पालन-पोषण और आयु वृद्धि के लिए हमें प्रदान करें ॥ ३ ॥ सोम मणि दूसरों को तिरस्कृत करने की सामर्थ्य रखती है, अतः मुझे प्राप्त हो । इन्द्र द्वारा प्रदान की हुई और वरुण द्वारा अनुशिष्ट उस सोम के पर्ण की मणि को मैं दीर्घ जीवी होने के लिए धारण करता हूँ ॥ ४ ॥ यह पर्ण मणि चिरपर्यन्त मेरे पास रहती हुई मेरे लिए मङ्गलमयी हो । मैं शत्रुहन्ता महा पराक्रमी अर्यमा के अनुग्रह से अपने बराबर वाले से श्रेष्ठ होने के लिए इसे अपने हाथ पर धारण किये रहूँ ॥ ५ ॥ कर्मकार तथा धोबी सारथि आदि एव बुद्धिजीवी विद्वानों को हे पलाशमणि ! मेरे आधीन कर ॥ ६ ॥ राज्याभिषेक करने वाले मंत्री, अन्य देश के नृप, सारथि और ग्राम नेता इन सबको हे मणे ! तू मेरी सेवा में लगा ॥ ७ ॥ हे मणे ! तू सोम के पर्ण का विकृत रूप है, अतः शरीर की रक्षा करती है । तू वीर्यवान् मेरे समान जन्म धारण करने वाली है। तू सूर्य समान तेजस्विनी है । मैं तेरा तेज प्राप्त करने के निमित्त तुझे धारण करता हूँ ॥८॥

६ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि–जगद्बीज पुरुषः । देवता–अश्वत्थः । छन्द–अनुष्टुप्)

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रुन् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥१॥

तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाध दोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥२॥
यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥३॥
यः सहमानश्चरसि सासहानइव ऋषभ ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥४॥
सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥५॥
यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च ॥६॥
तेऽधराञ्चः प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्त्तनम् ॥७॥
प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥८॥

महान् वीर्यवान् 'पुरुष वृक्ष' पीपल और गायत्री सारोत्पन्न, महानबली खदिर वृक्ष के संयोग से निर्मित 'अश्वत्थमणि' ग्रहण करने पर वह मेरे शत्रुओं का विनाश करे ॥ १ ॥ हे खदिरोत्पन्न पीपल से निर्मित मणे ! तेरा वृत्र संहारक इन्द्र और वरुण के साथ स्नेह है, तू शत्रुओं का पूर्णतया विनाश कर ॥ २ ॥ हे पीपल ! तू मणि का उपादान रूप है। तू जैसे खदिर की छाल को भेद कर उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार हमारे शत्रुओं को छेद डाल ॥ ३ ॥ जैसे पीपल अन्य वृक्षों को दबाता हुआ बैल के समान वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार तेरी विकार रूप मणि को ग्रहण करने वाले हम शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हों ॥ ४ ॥ हे पीपल ! पाप देवी निर्ऋति मेरे शत्रुओं को किसी प्रकार भी न छुटा सकने

मुझे प्राप्त हो और अपने तेज से मुझे तेजस्वी बनाय ॥ १ ॥ हे पलाशमणि ! मुझे धन, बल प्रदान कर जिससे अपने राज्य को मुक्त करने में दूसरो का आश्रय लेने को विवश न होऊँ ॥ २ ॥ इन्द्रादि देवो ने अभीष्ट दायिनी होने के कारण इस रहस्यमयी मणि को पलाश मे स्थापन किया। देवगण उस मणि को हमारे पालन पोषण और आयु वृद्धि के लिए हमे प्रदान करें ॥ ३ ॥ सोम मणि दूसरा को तिरस्कृत करने की सामर्थ्य रखती है, अत मुझे प्राप्त हो। इन्द्र द्वारा प्रदान की हुई और वरुण द्वारा अनुशिष्ट उस सोम के पर्ण की मणि को मैं दीर्घ जीवी होने के लिए धारण करता हूँ ॥ ४ ॥ यह पर्ण मणि चिरपर्यन्त मेरे पास रहती हुई मेरे लिए मङ्गलमयी हो! मैं शत्रुहन्ता महा पराक्रमी अर्यमा के अनुग्रह से अपने बराबर वाले से श्रेष्ठ होने के लिए इसे अपने हाथ पर धारण किये रहूँ ॥ ५ ॥ कर्मकार तथा धोबी सारथि आदि एव बुद्धिजीवी विद्वानों को हे पलाशमणि ! मेरे आधीन कर ॥ ६ ॥ राज्याभिषेक करने वाले मन्त्री, अन्य देश के नृप, सारथि और ग्राम नेता इन सबको हे मणे ! तू मेरी सेवा मे लगा ॥ ७ ॥ हे मणे ! तू सोम के पर्णं का विकृत रूप है, अत शरीर की रक्षा करती है। तू वीर्यवान् मेरे समान जन्म धारण करने वाली है। तू सूर्य समान तेजस्विनी है। मैं तेरा तेज प्राप्त करने के निमित्त तुझे धारण करता हूँ ॥८॥

६ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि-जगद्वीज पुरुप । देवता-अश्वत्थ । छन्दअनुष्टुप्)
पुमान् पुस परिजातोऽश्वत्थ खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥१॥

तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाध दोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥२॥
यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥३॥
यः सहमानश्चरसि सासहानइव ऋषभ ।
तेनाश्वत्थ त्वया वय सपत्नान्त्सहिषी महि ॥४॥
सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥५॥
यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च ॥६॥
तेऽधराञ्चः प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनाद् ।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥७॥
प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥८॥

महान् वीर्यवान् 'पुरुष वृक्ष' पीपल और गायत्री सारोत्पन्न, महानवली खदिर वृक्ष के संयोग से निर्मित 'अश्वत्थमणि' ग्रहण करने पर वह मेरे शत्रुओं का विनाश करे ॥ १ ॥ हे खदिरोत्पन्न पीपल से निर्मित मणे! तेरा वृत्र संहारक इन्द्र और वरुण के साथ स्नेह है, तू शत्रुओं का पूर्णतया विनाश कर ॥ २ ॥ हे पीपल! तू मणि का उपादान रूप है। तू जैसे खदिर की छाल को भेद कर उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार हमारे शत्रुओं को छेद डाल ॥ ३ ॥ जैसे पीपल अन्य वृक्षों को दवाता हुआ बैल के समान वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार तेरी विकार रूप मणि को ग्रहण करने वाले हम शत्रुओं को नष्ट करने मे समर्थ हों ॥ ४ ॥ हे पीपल! पाप देवी निर्ऋति मेरे शत्रुओं को किसी प्रकार भी न खुल सकने

वाले वचनों से जकड़ ले ॥ ५ ॥ हे पीपल ! जैसे तुम वृक्षों पर चढ़ कर उन्हें नीचा करते जाते हो, उसी प्रकार मेरे शत्रुओं का मस्तक चूर्ण करते हुए, उन्हें तिरस्कृत कर, विनाश को प्राप्त कराओ ॥ ६ ॥ जिन तटवर्ती वृक्षों से नौकाएँ बाँधी जाती हैं, उनसे खुलने पर नौका नदी के बहाव में नीचे की ओर बह जाती है, उसी भाँति मेरे शत्रु प्रवाह में रहें, वे पार न लग पावें क्योंकि खदिरोत्पन्न पीपल के प्रभाव में ग्रस्त शत्रु फिर लौट नहीं पाता ॥ ७ ॥ मैं शत्रुओं पर उच्चाटन मंत्र प्रयुक्त करता हूँ और शत्रु विनाश के निमित्त मंत्र अभिपुत पीपल की शाख से उनको नष्ट करता हूँ ॥८॥

७ सूक्त

(ऋषि-भृग्वङ्गिराः । देवता-हरिणः प्रभृति । छन्द-अनुष्टुप् ।)

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१॥
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३॥
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४॥
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५॥
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६॥

अपयाते नक्षत्राणामपवास उपसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भू तमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७॥

शीघ्रगामी काले मृग के सिर मे जो रोग नाशिनी सीग रूप औषधि है, वह क्षेत्रीय रोग यथा क्षय कुष्ट अपस्मार आदि रोगो का विनाश करे ॥ १ ॥ हे मृग ! तुझे क्षेत्रीय रोग नाशार्थ मणि रूप से ग्रहण किया है । तू हृदयस्थ स्थित क्षेत्रीय रोग का दमन कर ॥ २ ॥ यह चार कोने वाला मृग चर्म परिच्छद के समान शोभित है । उसके द्वारा मैं तेरे अनेक प्रकार के क्षेत्रिय रोगों का विनाश करता हूँ ॥ ३ ॥ क्षेत्रीय रोगो को आकाश मे स्थित विचृत नामक तारे शरीर के विभिन्न अङ्गो से अलग करें ॥ ४ ॥ जल ही औषधि है जल ही समस्त रोगो का नाश करने मे समर्थ है । हे रोगिन ! ऐसे जल तुझे क्षेत्रिय रोगो से मुक्त करायें ॥ ५ ॥ हे रोगिने ! अन्नादि के, सेवन से जो क्षेत्रिय रोग तेरे शरीर मे उत्पन्न हो गये है, उसे नष्ट करने के लिए अपनी ज्ञातव्य औषधि द्वारा तुझे रोग मुक्त करता हूँ ॥ ६ ॥ रोगादि का मूल पाप उषाकाल मे किये गये अभिषेक आदि से नष्ट हो, फिर हमारा क्षेत्रिय रोग नष्ट हो जाय ॥७॥

८ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-मित्रादयो विश्वेदेवा । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती ।)

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशन् पृथिवीमुस्त्रियाभिः ।
अथास्मभ्य वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥१॥
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यं तु मे वच ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रा सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥२॥

हुवे सोम सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्यां अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दोर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥३॥
इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपा पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥४॥
सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥५॥
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥६॥

मृत्यु से रक्षण करने मे समर्थ और सखावत मङ्गलरूप मित्र देवता वसंतादि ऋतुओ से हमको दीर्घ जीवी करें । फिर वरुण वायु, अग्नि हमको विशाल राज्य पर आसीन करें ॥१॥ धाता, अर्यमा और सविता देव मेरी आहुतिया को स्वीकार करें । ये सभी देव एव इन्द्र और त्वष्टा देव मेरी स्तुति सुनें । मैं देवमाता अदिती को भी हवि अर्पित करता हूँ । इनके अनुग्रह से मैं अपन समवक्ष व्यक्तिया मे मान प्राप्त करूँ ॥ २ ॥ मैं यजमान को श्रेष्ठ पद प्राप्त कराने के लिए सोम, सविता तथा अदिति के सब अन्य पुत्रा को स्तुति मत्रा से आहूत करता हूँ । इस आहुति के आश्रयभूत अग्ने अपना तेज बढावें । मैं अपने सजातीय व्यक्तियो म श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करूँ ॥ ३ ॥ हे स्त्रिया ! तुम कन्या के समीप ही रहो । इस वर की इच्छा के निमित्त विश्वेदेवा तुम्हें निकट ही रखें । पूषादेव तुम्हें सद्भावना से प्रेरित करें ॥ ४ ॥ हे विराधियो ! मैं तुम्हारे मना को अपने अधीन करता हूँ । तुम भी मेरे मन के अनुकूल हुए मन सहित प्राप्त हो ओ । तुम वही करो जो मैं चाहूँ ॥ ५ ॥ मैं तुम्हारे हृदयगत भावो को अपने अधीन करता हूँ । मेरे विचार और इच्छा के अनुसार ही तुम्हारे विचार और इच्छाएँ हो । मैं

तुम्हारे हृदयों को अपने साम्राज्य का सिंहासन बनाता हूँ। तुम वही करो जो मैं चाहूँ ॥६॥

९ सूक्त

(ऋषि-वामदेव.। देवता-द्यावापृथिवी ,विश्वेदेवा। छन्द-बृहती)

कर्शफस्य विशफस्य द्यौष्पिता पृथिवी माता। -
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ॥१॥
अश्लेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम्।
कृणोमि वध्रि विष्कन्ध मुष्काबर्हो गवामिव ॥२॥
पिशंगे सूत्रे खृगल तदा बध्नन्ति वेधस ।
श्रवस्यु शुष्म काबव वधि कृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥
येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया।
शुना कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥४॥
दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम्।
उदाशवो रथाइव शपथेभि. सरिष्यथ ॥५॥
एकशत विष्कन्धानि विस्ठिता पृथिवीमनु।
तेषा त्वामग्र उज्जहरुर्मणि विष्कन्धदूषणम् ॥६॥

कर्षफा और विशफा नामक भयङ्कर व्याधि रूप पशुओं को वृष्टि आदि से पोषण करने के कारण आकाश पिता और आश्रय रूप होने से पृथ्वी माता है। हे देवगण! तुमने जिस भाँति इन विघ्नों के कारणों को यहाँ प्रेषित किया है, वैसे ही इनको दूर करो ॥ १ ॥ अभीष्ट फल की प्राप्ति से रहित दूषित शरीर वाले देवताओं ने विघ्न शमन के लिए अरलु वृक्ष की मणि को धारण किया। मनु ने भी ऐसा ही किया था। मैं भी मणि को ग्रहण कर उपद्रवों को शुष्क चर्म की रस्सी द्वारा

विनष्ट करता हूँ ॥ २ ॥ कवच सदृष्य गुथी हुई पीत वर्ण की डोरी अरल् को विघ्न नाश के लिए धारण करती है। हमारे द्वारा ग्रहण की गई यह मणि श्रवस्य, शोसक कुर्वर आदि विघ्नों का दमन करती है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो! तुम शत्रु को जीत कर अन्न, धन को प्राप्त करना चाहते हो। राक्षसों की माया से भ्रमित तुम देवगण के समान विघ्नो से भ्रमित हुए घूम रहे हो जैसे कुत्तों का दूषण वानर है उसी भाँति विघ्नों का दमन करने वाला खड्ग आदि हो ॥ ४ ॥ हे अरल् मणि! उपस्थित विघ्नो के शमनार्थ मैं तुझे ग्रहण करता हूँ। कार्बव नामक विघ्न का दमन करता हूँ। हे मनुष्यो! इस भाँति विघ्न दमन के बाद तुम निर्भय हो अपने कार्यों में संलग्न हो ॥ ५ ॥ हे मणे। पृथ्वी स्थित एक सौ विघ्नों के शमनार्थ ही देवताओं ने तुझे उत्पन्न किया था। इसी कारण विघ्नो को दूर करने वाली अरल्-मणि को मैं भी ग्रहण करता हूँ ॥६॥

१० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-अष्टका। छन्द-अनुष्टुप्; त्रिष्टुप; जगती)

प्रथमा ह व्यु वास सा धेनुरभ-द् यमे।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥१॥
यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम्।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२॥
संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥३॥
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥४॥

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५॥
इडायास्पद घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां मयि रन्तिरस्तु ॥६॥
आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥७॥
आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥८॥
ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान भूतस्य पतये यजे ॥९॥
ऋतुभ्यस्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥१०॥
इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं स विशेमोप गोमतः ॥११॥
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥१२॥
इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥१३॥

सृष्टि के आदि में उत्पन्न अन्धकार विनाशक एकाष्टका उषा हमारे लिए दूध वाली हो तथा हमें श्रेष्ठ फलों की प्राप्ति कराये ॥ १ ॥ जिस एकाष्टकात्मक रात्रि को निकट आते देख देवतागण आनन्दित हो उठते हैं, वह संवत्सर की पत्नी रूपा है। वह हमारे लिए मङ्गलमयी हो ॥ २ ॥ हे रात्रे! तुम्हारी हम स्तुति करते है, तुम हमारी सन्तति को दीर्घजीवी करो और गौ आदि पशु धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ यह एकाष्टका

उषा सृष्टि के आदि में उत्पन्न होकर अन्धकार का विनाश कर चुकी है। यह अन्य उषाओं से मिलकर नित्य प्रकट होती है। इसमें सूर्य सोम अग्नि आदि निवास करते हैं। सूर्य की पत्नी रूप यह उषा जीवधारियों को प्रकाश प्रदान करती हुई श्रेष्ठ भाव से स्थित रहती है ॥४॥ हे एकाष्टके! वृक्षों के विकृत रूप उखल मूसल आदि तथा पत्थरों ने तेरे लिए जौ आदि अन्नों का कूटन पीसने तथा दही आदि से युक्त स्तुति की है। तेरी दया से हम सुन्दर सन्तति अनुचरों और धन धान्यादि से सम्पन्न हों ॥ ५ ॥ हे जात वेद! तुम आहुति स्वीकार करो और प्रसन्न होकर सातों प्रकार के पशुओं को हमें स्नेह करने के लिए प्रेरित करो ॥ ६ ॥ हे रात्रे! मुझे धन पुत्र-पौत्रादि से सपन्न करो। हम तेरे अनुग्रह से देवों की कृपा प्राप्त करें। हे तू आहूत हुई देवों को प्राप्त हो और फिर काम्यवर्षक हो हमारे निकट उनसे हमारे निमित्त धन, बल लेकर यहाँ आ ॥ ७ ॥ हे एकाष्टक! यह संवत्सर तेरा स्वामी है यह आ गया है। तू इसके साथ रहती हुई हमारे पुत्र, पौत्रादि को दीर्घजीवी कर और धन धान्य से हमें पूर्ण कर ॥ ८ ॥ वसंतादि ऋतुओं और उनके अधिपति देवों को हवि अर्पित कर उनकी उपासना करता हूँ। संवत्सर के दिन रात्रि का यज्ञ करता हुआ हवि देता हूँ। ऋतु के अङ्ग रूप काष्ठादि चौबीस पक्ष द्वादश मास आदि का भी यजन करता हूँ। संसार के अधिपति काल की भी उपासना करता हूँ ॥ ९ ॥ ऋतुओं दिवस रात्रि और संवत्सर की प्रसन्नता के लिए विधाता, धाता, समृद्ध देवता की जगत के अधिपति-काल देव के निमित हे एकाष्टके! मैं तेरा यज्ञ करता हूँ ॥ १० ॥ हम घृतादि युक्त आहुति से देवों का यजन करते हैं। उन देवगणों की कृपा से हम असीमित गौओं को प्राप्त

करते हुए सब कामनाओ से पूर्ण हों ॥ ११ ॥ एकाष्टका ने यज्ञ द्वारा वैभवशाली इन्द्र को प्रकट किया। उस इन्द्र के बल से देवो ने असुरो को पराजित किया। वे इन्द्र शत्रुओ का विनाश करने में समर्थ हों ॥ १२ ॥ हे इन्द्र पुत्रे, हे सोम पुत्रे, हे एकाष्टके! तू प्रजापति की पुत्री है। अत तू हमारी हवि को स्वीकार करते हुए हमारी प्रजा और पशुओ की कामना को पूर्ण रूपेण तुष्ट करने वाली हो ॥१३॥

११ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च। देवता–इन्द्राग्नि प्रभृति। छन्द–त्रिष्टुप् जगती।)

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेन तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिक नी त एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेन शतशारदाय ॥२॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैन शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥
शत जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान।
शत त इन्द्रो अग्नि सविता बृहस्पति शतायुषा हविषाहार्षमेनम्॥४
प्र विशत प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥५॥
इहैव स्त प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहत पुन ॥६॥
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥७॥
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा।

यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८॥

गोपनीय रूप से शरीर में प्रविष्ट क्षय रोग से मैं तुझे आहुति द्वारा मुक्त करता हूँ। सोम को सर्व प्रथम पान करने वाले क्षय रोग से तुझे मुक्त कर दीर्घजीवी बनाता हूँ। हे इन्द्राग्ने! जिस राक्षसी ने इस बालक पर अपना अधिकार कर रखा है, उस राक्षसी से इसे स्वतंत्र कराओ ॥ १ ॥ रोग के कारण इस पुरुष की आयु कम हो गई हो और यदि यह मृत्यु को भी प्राप्त हो गया हो तो भी मैं इसे मृत्यु पाश से मुक्त करता हुआ दीर्घजीवी होने का बल युक्त करता हूँ ।२। जिस हवि का फल असीम दर्शन शक्ति एवं श्रवण शक्ति रूप बल प्राप्त कराना है, उस आहुति के बल से मैं इस रोगी व्यक्ति को मृत्यु पाश से मुक्त करता हूँ। मैं इन्द्र को आहुति इसलिए अर्पित करता हूँ जिससे वह प्रसन्न होकर इस पुरुष को आयु क्षीण करने वाले पापों से मुक्त करे जिससे यह शतायु हो ॥३॥ मैंने इस व्यक्ति को शतायु प्राप्त कराने वाले हवि द्वारा जीवित कर लिया। हे निरोगी! तू शतायु हो। इन्द्र अग्नि सविता और बृहस्पति तुझे शतायु प्रदान करें ॥ ४ ॥ हे प्राणापान! वृषभों के अपने गोष्ठ में प्रविष्ट होने के समान तुम इस यक्ष्मा पीड़ित के शरीर में प्रविष्ट होओ। मृत्यु के कारण रूप रोगों को नष्ट करो ॥ ५ ॥ हे प्राणापान! तुम असमय में ही इस शरीर को मत छोड़ो। बुढ़ापे तक इस रोगी के शरीर में स्थित रहो ॥ ६ ॥ हे निरोगी! मैं तुझे वृद्धावस्था तक जीवन यापन करने वाला बनाता हूँ। वृद्धावस्था तक रोगों से मेरा तेरा रक्षण करता हूँ। समस्त मृत्यु कारक रोगों से मैं तेरा रक्षण करता हूँ ॥ ७ ॥ हे रोग मुक्त! जैसे सेचनसमर्थ वृषभ को

रस्सी द्वारा बाँधा जाता है, उसी भाँति वृद्धावस्था तुझे नियत समय पर प्राप्त हो। तुझे असमय में ही मृत्यु ने अपने बन्धन में जकड़ लिया है, उस बन्धन से बृहस्पति तुझे मुक्त करें ॥८॥

१२ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-शाला, वास्तोष्पति. । छन्द-त्रिष्टुप जगती, बृहती ।)

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१॥
इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥
धरुण्य सि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्यन्दमानाः ॥३॥
इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥४॥
मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितस्यग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥
ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीरा ॥६
एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥७॥
पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥८॥
इमा आपः प्र भराम्यक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९॥

मैं इस स्थान में स्तम्भों के सहारे शाला का निर्माण

करता हूँ। यह शाला घृतादि प्रदान करती हुई भयमुक्त हो। तुझमे सुन्दर गुण सपन्न रोग और विघ्नो से रहित तथा सन्तति से सपन्न हम वर्तमान रहे ॥ १ ॥ हे शाले ! तू असीम पशु आदि तथा बच्चो की प्रियवाणी से मुक्त हो तथा धन, पशु आदि से पूर्ण हो यही स्थित रह हमे मङ्गलमयी हो ॥ २ ॥ हे शाले ! तू देवताओ से सपन्न अनेक ऐश्वयो को धारण कर्त्री है तुझमे पशुवत्स और पुन आगमन करें ॥ ३ ॥ शाला निर्माण के ज्ञाता बृहस्पति सविता देव वायु और इन्द्र इस शाला को स्तम्भ आदि रखकर निर्माण करें। मरुद्गण घृत और जल से इसे सिंचित करें और फिर भगदेवता इसकी भूमि को कृषि योग्य बनावें ।४। धान्यादि पोषक शाले ! तू जीवधारियो को सुख प्रदान करने वाली है। देवताओ ने तेरी रचना मनुष्यो के उपभोग के लिए की थी। तू तृणो से आच्छादित शुभ आशाओं वाली हो तथा हमको गौ अश्वादि धन एव सन्तति प्रदान कर ॥५॥ हे बांस ! तू शाला के मध्य वाले खम्भे मे रह। हे शाले ! तुझमे निवास करने वाले कभी दुखी न हो और धन आदि से सपन्न हो शतायु प्राप्त करें ॥ ६ ॥ इस शाला मे युवा पुत्रो एव गमनशील गौ, बछडो सहित का आगमन हो। मधु एव दुग्ध से पूर्ण कलश भी यहाँ आवें ॥ ७ ॥ हे स्त्री ! इस शाला मे जल द्वारा सम्पादित मधुघृत की धारा वाले कलश को लेकर आगमन कर। इसे अमृत रूप जल से भली-भाँति स्वच्छ कर। इस शाला मे चोर और अग्नि के डर से श्रौत और स्मार्त कर्म हमारा रक्षण करें ॥ ८ ॥ मैं यक्ष्मा मुक्त और तुम्हारे अनुचरो के यक्ष्मा विनाशक कलश के जलो को अक्षय अग्नि के सहित लाता हूँ ॥ ९ ॥

---

१२ सूक्त

(ऋषि–भृगु । देवता–सिन्धु, आपः, वरुण। छन्द–अनुष्टुप्, जगती।)

यददः संप्रयतीरहावनदता हते ।
तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥१॥
यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तमादापो अनुष्ठन ॥२॥
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हिकम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ॥३॥
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४॥
आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५॥
आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥६॥
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरी ।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७॥

हे जलो ! मेघों द्वारा ताडित करने पर इधर-उधर होकर घोष करने के कारण तुम्हारा नाम नदी हुआ है और न तुम्हारे अप्, उदक नाम भी अर्थानुकूल ही हैं ॥ १ ॥ तुम्हारा अप् नाम जब हुआ जब हम इन्द्र द्वारा प्रेरित हो नृत्य करते हुए इन्द्र से मिले ॥ २ ॥ अनचाहते इन्द्र ने तुम्हें [illegible] किया अतः तुम वार कहलाये ॥ ३ ॥ उदक नाम तुम्हें जब मिला जब इन्द्र ने तुम पर अपना आधिपत्य जमाया और तुमने

ने ही घृत का रूप धारण किया अग्नि में डालने पर घृत जल रूप ही जाता है। यह जल ही अग्नि और सोम के धारण कर्ता है। ऐसे जलो का मधुमय रस मुझे कभी नष्ट न होने वाला बल और प्राण युक्त प्राप्त हो ॥५॥ फिर मैं देखूं और सुनूं कि उद्घोषित शब्द मेरे समीप मेरी वाणी को प्राप्त हो रहा है। वह रस के आने से मुझे प्राप्त हुआ है। हे जलो! तुम सुन्दर वर्ण वाले और अमृत सदृश्य हो। तुम्हें पान कर मैं तृप्त हो गया हूँ ॥६॥ जलो में पतन होता हुआ सुवर्ण तुम्हारा हृदय है। हे जलो! यह मेढक गावत्स के समान है। जिस खाद में तुम्हें प्रविष्ट करता हूँ, उसमें तुम मण्डूक पर फेंको 'अवका' समान कठोर होओ ॥७॥

१४ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–गोष्ठ अर्यमादयो मन्त्रोक्त। छन्द–अनुष्टुप्)

स वो गोष्ठेन सुषदा स रय्या स सुभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः स सृजामसि ॥१॥
स वः सृजत्वर्यमा स पूषा स बृहस्पतिः।
समिन्द्रो यो धनञ्जयो मयि पुष्यत यद् वसु ॥२॥
सजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥३॥
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४॥
शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥५॥
मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥६॥

हे धेनओ! तुम्हें हम आनन्दपूर्ण गोष्ठों से युक्त करते हुए

चारे आदि से सपन्न करते हैं। हम तुम्हें समृद्धि पुत्र, पौत्रादि से भी सपन्न करते हैं ॥ १ ॥ हे गौओ ! अर्यमा पूषा इन्द्र बृहस्पति तुम्हे उत्पन्न करें फिर तुम अपने दूध, घी आदि के द्वारा मुझ साधक को शक्ति सपन्न करो ॥ २ ॥ हे गौओ ! इस गोशाला में तुम निर्भय तथा सतति से सपन्न वण्डो से युक्त हो तथा निरोग दुग्ध धारण मे समथ स्थून ऐन वाली होकर प्राप्त होओ ॥ ३ ॥ हे गौओ ! मक्खियाँ जैसे कुछ क्षणों में ही असख्य हो जाती हैं वैसे ही तुम भी वृद्धि को प्राप्त हुई यहाँ आगमन करो। इस गोशाला मे पुत्र, पौत्रादि से सपन्न हो और अपने साधक मे प्रीति बनाये रहो ॥ ४ ॥ हे गौओ ! तुम्हारा रहने का स्थान सुखमय हो तथा तुम शारिशाक के समान समृद्धिवान् हो। तुम यहाँ निवास करती हुई पुत्र पौत्रादि के रूप मे अपने को प्रकट करो ॥ ५ ॥ हे गौओ ! मैं तुम्हारा स्वामी हूँ, तुम मेरे गोष्ठ मे आओ। चारे और धन सहित असख्य होती हुई चिरपर्यन्त जीवित रहो तथा हम भी दीर्घ जीवी हो ॥६॥

१५ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा (पण्यकाम) । देवता–इन्द्राग्नी । छन्द–त्रिष्टुप् जगती ।)

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नराति परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी सञ्चरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥२॥
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्य तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धिय शतसेयाय देवीम् ॥३॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् ।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥४॥
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ।५
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ।६
उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः ।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥७॥
विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥८॥

व्यापारी भाव से मैं इन्द्र की उपासना करता हूँ। वह इन्द्र यहाँ पधारे और व्यापार नष्ट करने वाले, शत्रु मार्ग को रोकने वाले डाकू तथा हिंसक पशुओं को नष्ट करते हुए आगे बढ़ें। हे इन्द्र ! मुझे व्यापार में लाभरूप धन प्रदान करें ॥१॥ जिन देशों से हमारा व्यापार है, उन देशों के मार्ग हमारे लिए सुगम हों जिससे हम क्रय, विक्रय कर अपने धन को लाभ सहित घर ला सकूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! व्यापार द्वारा लाभ की इच्छा लिए मैं शीघ्र गमन की शक्ति प्राप्ति हेतु तुम्हारी उपासना करते हुए धनवान् बनूँ इसीलिए मैं तुम्हें आहुति देता हूँ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! दूरस्थ यात्रा के कारण जो व्रत भङ्ग हुआ है, उस दोष को क्षमा करो। मुझे इस दूरस्थ प्रदेश में कष्ट सहन की शक्ति प्रदान करो। हे देवगण ! मूलधन से वृद्धि को प्राप्त धन लाभ हमारे लिए सुखकारी हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! लाभ प्राप्ति में बाधक देवों को इस हवि से तृप्त करके वापिस करदो। हे देवगण ! जिस मूलधन द्वारा मैं धन वृद्धि का इच्छुक हूँ, वह

धन तुम्हारे अनुग्रह से सतत वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ५ ॥ इन्द्र सवितादेव प्रजापति और अग्नि मेरे मन को उस धन की ओर प्रेरित करें जिस धन से धन वृद्धि की कामना करता हुआ व्यवहार मे लाना मुझे अभीष्ट है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! हम आहुति अर्पित कर तुमसे प्रार्थना करते है कि तुम हमारे पुत्र, पौत्रादि की सावधानी से रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अपने घर मे स्थित अश्व को जैसे हम प्रतिदिन तृणादि देते हैं, उसी तरह हम तुम्हे प्रदान करते है । हम तुम्हारे अनुचर धन-धान्य से सम्पन्न हो ॥८॥

१६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अग्नीन्द्रादयो मन्त्रोक्त । छन्द–आर्षी, त्रिष्टुप् ।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रात सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥२
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमा धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृ वन्तः स्याम ॥३॥
उतेदानीं भगवन्त स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितो मघवन्त्सूर्यस्य वय देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम् ।
त त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वत प्रपीता यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

अभीष्ट फल प्राप्ति हेतु हमे प्रात काल इन्द्र मित्रावरुण अश्विद्वय, पूषा भग, ब्रह्मणस्पति सोम और रुद्र का आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ सबके धारण और पोषण कर्ता सूर्य को काम्यवर्षक जान निर्धन व्यक्ति अभीष्ट फल की प्राप्ति हेतु उनकी उपासना करता है, राजा भी उनकी उपासना की इच्छा रखता है। उन अदिति पुत्र सूर्य की हम भी प्रात.काल हवि अर्पित करने की इच्छा रखते हैं ॥ २ ॥ हे सूर्य ! तुम्हारा धन अक्षय है हमको बुद्धि प्रदान करो जिससे हम अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर सकें। हे भग ! हम पशुधन सपन्न हो तथा सन्तति, अनुचर आदि से भी पूर्ण हो ॥ ३ ॥ हम कर्म प्रधान रहते हुए भग देवता के कृपापात्र रहे। दिवस के तीनो काल हे इन्द्र ! हम सूर्य और अग्नि आदि देवो की अनुग्रह बुद्धि मे ही रहे ॥४॥ हम धनवान् भग देव की कृपा से समृद्धिशाली हो। हे भगदेव ! हमारे कार्यों मे तुम हमारे मार्ग दर्शक हो हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ जैसे अश्व पर पुरुष के आरूढ होने पर ही अश्व आगे बढता है, उसी भाँति उषादेवी धन प्रदान करने वाले भगदेवता को मेरे पास लाने को तैयार हो और जैसे अश्व रथ को लाते हैं, उसी भाँति उन्हे मेरे निकट लावे ॥ ६ ॥ अश्व गौ से पूर्ण उषादेवी हमारे घरो मे सदा उदय हो। हे उषे ! अपने अक्षय कर्मो द्वारा हमारा सर्दव रक्षण करो। तुम सर्वगुण सपन्न हो एव जल प्रदान करने वाली हो ॥८॥

१७ सूक्त

(ऋषि— विश्वामित्र। देवता—सीता। छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्।)

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२॥
लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥३॥
इन्द्रः सीता नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥४॥
शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥५॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥६॥
शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥७॥
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥८॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥९॥

कुशल कृषक हवि रूप अन्न की प्राप्ति हेतु बैलो के कन्धो पर जूओ को रखते है ॥ १ ॥ हे कृषको ! हलो को जूओ मे जोड कर बैलो के कन्धो पर रखो । इस जोते हुए खेत मे व्रीहि जौ आदि बोओ । जौ आदि शीघ्र ही उत्पन्न हो फिर वह पक कर शीघ्र ही काटने योग्य हो ॥ २ ॥ कृषि-जन्य खेत को लोहे के फल वाला हल सुखकारी होता है । यह अन्न आदि का उत्पन्नकर्ता होने से सोमयाग का करने वाला है । इसका अवयव भूमि मे रहता हुआ गतिशील होता है । यह हल गौ आदि पशुओ की उन्नति का साधन हो ॥ ३ ॥ खेत पंक्ति को इन्द्र ग्रहण करे पूषादेव उसकी रक्षा करे तथा यह पंक्ति अभीष्ट फल

से पूर्ण हो प्रति वर्ष सुख प्रदान करे। यह जल से पूर्ण अन्न धन की देने वाली हो ॥ ४ ॥ सुन्दर लौह फल भूमि को विदीर्ण करते हुए बैलों के पीछे चलें। हे सूर्य एवं वायो ! हमारी आहुतियों से तृप्त हुए तुम अन्नादि को सुन्दर श्रेष्ठ फल वाला बनाओ ॥ ५ ॥ कृषक सुखपूर्वक खेत जोतें वृषभ उनके लिए सुखकारी हो हल और रस्सियां उनके अनुकूल हों। हे शुन देव ! तुम चाबुक में भी सुख भर दो ॥ ६ ॥ हे सूर्य एवं वायो ! मेरी आहुति को स्वीकार करो। द्युलोक स्थिति जलदेव इस बोई हुई भूमि को वृष्टि जल से सिंचित करें ॥ ७ ॥ हे सीते, हम तुझे नमस्कार करते हैं। सुन्दर फल से युक्त हो, हमारे सामने आ ॥ ८ ॥ हे सीते ? मधु रस में डूबी तथा घृत युक्त अन्न को सिंचित करने वाली, विश्वे देवा और मरुतो द्वारा प्रेरित हो तू जल सहित हमारे सम्मुख आ ॥ ९ ॥

१८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वनस्पति। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम्।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥२॥
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥३॥
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः
अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥४॥
अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६ ॥

सौत को बाधा रूप तथा स्त्री को पति प्राप्त कराने वाली पाठा नाम्नी महान शक्तिशालिनी परमौषधि को खोदकर मैं प्राप्त करता हूँ ॥ १ ॥ ऊपर मुख वाले पत्ते से युक्त पाठा-नाम्नी औषधि मेरी सौत को पति से दूर कर तथा मेरे स्वामी को मेरे लिए अपरिमित बलशाली बना ॥ २ ॥ हे सौत तू मेरे पति से रति रहित हो मुझे तेरे नाम से भी घृणा है, मैं तुझे बहुत दूर भेजती हूँ ॥ ३ ॥ हे पाठा नाम्नी औषधे ! मेरी सौत अधमगति को प्राप्त हो तथा मैं परम श्रेष्ठ होऊं ॥ ४ ॥ हे पाठे! तू शत्रु का तिरस्कार करने की सामर्थ्य रखती है। मैं तेरे बल से अपनी सौत को वश मे करूं । हम दोनो ही एक होकर सौत को अपने वश मे करे ॥ ५ ॥ हे सौत ! मैं तेरे पर्यंक के चारो ओर तथा पर्यंक पर इस औषधि को रखती है। औषधि के प्रभाव से मुग्ध हुआ तेरा मन मेरे पीछे उसी प्रकार दौडे जैसे स्नेह के वशीभूत हो गाय बछडे के पीछे दौडती है ॥ ६ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ । देवता–विश्वेदेवा, इन्द्र । छन्द–बृहती, अनुष्टुप्)

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु येषामस्मि पुरोहितः ॥१॥
समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३॥
तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४॥

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवा : ॥५॥
उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ।६॥
प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥७॥
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्यें षां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ।८ ॥

जाति से भ्रश करने वाले दोष के निवारण से मेरा ब्राह्मणत्व प्रभावी हो और यह मत्र प्रभावी होकर अचूक फल देने वाला हो। मत्र बल से शारीरिक शक्ति मे वृद्धि हो तथा मेरा क्षत्रिय यजमान जाति क्षीणता रहित हो ॥ १ ॥ मैं अपने राजा के राज्य को समृद्ध करता हैं। शत्रु पराजय की शक्ति और सेना को भी मत्र शक्ति से दृढ करता हूँ। मैं शत्रुओ के भुजबल को आहुति द्वारा नष्ट भ्रष्ट करता हूँ ॥२॥ हमारे शुभ अशुभ कर्म के ज्ञाता, विजय निमित्त सेना एकत्रित करने मे सलग्न हैं। उनके शत्रु सामने आकर गिरे तथा पावो के नीचे कुचलकर मर जाँय। इसके लिए मैं मत्र द्वारा शत्रु को कमजोर करता हुआ अपने राजा को विजय श्री प्राप्त कराता हूँ ॥३॥ मैं जिस राजा का पुरोहित हूँ वह राजा शत्रु का सहार करने के लिए लकडी काटने वाली कुल्हाडी से भी अधिक तीक्ष्ण हो। सपूर्ण विश्व को भस्म करने की शक्ति रखने वाले अग्निदेव प्रज्वलित हो शत्रु सेना को भस्म करें ॥ ४॥ मैं अपने राजा के आयुधो को तेज बनाता हुआ वीरो से युक्त करता हूँ। इस राजा का क्षत्रियपन विजयी हो देवगण इसके मन की

रक्षा करें ।।५।। हे इन्द्र ! तुम्हारे अनुग्रह से रण क्षेत्र मे हमारे वाहन प्रसन्न रहे । हमारी पराक्रमी सेना सिंह घोष करती रहे । चहुँ ओर हमारा विजय सूचक नाद व्याप्त हो जाय ।।६।। हे वीरो ! रणभूमि की ओर अग्रसर हो । अस्त्र-शस्त्रों से सपन्न तुम्हारे भुजदड शत्रु पर चोट करें और तुम निस्तेज शत्रुओं का सहार करने मे समर्थ हो । वे इन्द्र जो मरुद्गणों मे श्रेष्ठ एव अग्रणी हैं, वे अपनी सेना सहित तुम्हारी सहायता करें ॥ ७ ॥ हे बाण ! तू मत्र से तीक्ष्ण हुआ मारण कर्म से कुशल है । तू शत्रुओं की ओर जाकर उन्हें जीत । उनके श्रेष्ठ हाथी अश्व पैदल आदि सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर तथा उनमे से एक भी बचकर न जा सके ॥ ८ ॥

२० सूक्त

(ऋषि –वसिष्ठ. । देवता–अग्नि प्रभृति । छन्द–अनुष्टुप् पक्ति)

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥१॥
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२॥
प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥३॥
सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४॥
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥५॥
इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवद् ॥६

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८॥
दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९॥
गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माम्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥

हे अग्ने ! यह यमराज यज्ञ में तेरा उत्पति कारण रूप है । इसे जान कर तू इसमें प्रविष्ट होते हुए हमारी धन सम्पत्ति की बढ़ाने वाली हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हमको मिलने वाले फल के संबंध मे सन्मुख जाकर बताओ । वैश्वानर रूप से तुम प्रजा का पालन करने वाले हो । तुम धनदाता हो अत हमें अभीष्ट धन प्रदान करो ॥ २ ॥ अर्यमा भग बृहस्पति देवता हमको सम्पत्ति प्रदान करें । इन्द्राणी सरस्वती भी हमको धन दें ॥ ३ ॥ हम अपने रक्षण के निमित्त सोम और अग्नि को आहुति अर्पित करते हैं । अदिति पुत्र विष्णु सूर्य और ब्रह्मा को भी आहुति अर्पित करते है । बृहस्पति को भी अपनी अभीष्ट पूर्ति के निमित्त आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम अन्य सब अग्नियो सहित हमारी स्तुतियों और यज्ञ को फल युक्त करो । यज्ञ करने वाले यजमान को धन के लिए प्रेरणा दो ॥५॥ इस कार्य निमित्त हम इन्द्र और वायु को आहुति प्रदान करते हैं । हमारी संगति से सब मनुष्य श्रेष्ठ विचारो वाले तथा हमको दान देने की इच्छा रखने वाले हों, इसके निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥ हे स्तोता तुम अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, सरस्वती, विष्णु और सूर्य को अभीष्ट

फल प्राप्ति के लिए स्तुति द्वारा प्रेरित करो ॥७॥ अन्न उत्पति रूप कर्म को हम शीघ्र प्राप्त करे। यह सभी दृश्य प्राणी वृष्टि से अन्न उत्पन्न करने वाले वाज प्रसव देवता के मध्य स्थित है। वे अदाता को भी दान देने के लिए प्रेरित करें। वे हमारे धन को हमारे पुत्र पौत्रादि में चिरकाल के लिए स्थापित करें ॥८॥ पृथ्वी आकाश दिन रात्रि जल और औषधि हमको अभीष्ट फल प्रदान करे। दिशाये भी हमारे लिए काम्यवर्षक हो। मैं अभीष्ट फलो को प्राप्त करूं ॥९॥ सर्व धन प्रदाता वाणी को मैं उच्चारण करता हूँ। हे वाणी! तेज युक्त हो मुझमें प्रकट होओ। वायु मेरे शरीर में प्राण सचार करे और त्वष्टा मुझे बलशाली बनायें ॥१०॥

२१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ। देवता—अग्निः सवित्रादयो मन्त्रोक्ताः।
छन्द—त्रिष्टुप, जगती)

ये अग्नयो अप्स्वन्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु।
य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥
यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥२॥
य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥३॥
यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४॥
यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥५॥
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६॥

दिव पृथिवीमन्वन्तरिक्ष ये विद्युतमनुसचरन्ति ।
ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७॥
हिरण्यपाणि सवितारमिन्द्र बृहस्पति वरुण मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इम क्रव्याद शमयन्त्वग्निम् ॥८॥
शान्तो अग्नि क्रव्याच्छान्त पुरुषरेषण ।
अथो यो विश्वदाव्यस्तक्रव्यादमशीशमम् ॥९॥
ये पर्वता सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरी ।
वात पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥१०॥

विद्युत रूप अग्नि, बडवाग्नि देवाग्नि आदि, वैश्वानररूप अग्नि तथा अन्य सभी प्रकार की अग्नियो को यह हवि प्राप्त हो ।१। जो अग्नि सोम के अमृत रूप रस को पकाती है, जो अग्नि गवादि पशुओ मे दूध को परिपक्व करती है तथा जो अग्नि जीवधारियो मे है उन सबको यह हवि प्राप्त हो ॥२॥ दानादि गुण सपन्न अग्नि जो इन्द्र के साथ रथगामी होते हैं वैश्वानर तथा दावाग्नि आदि अग्नियो की मैं स्तुति करता हूँ । यह हवि उन सबको प्राप्त हो ॥३॥ विश्व के भक्षण कर्ता अग्नि काम्य-वर्षक शत्रु सहारक आदि सब प्रकार के अग्नियो को यह हवि स्वीकार हो ॥४॥ जिससे प्राणी सत्ता को ग्रहण करते हैं उन सवत्सर के तेरह माह और पीछे ऋतुएँ देवो का आह्वान करने वाले समझे जाते हैं, उन अग्नियो के लिए यह हवि प्राप्त हो ॥५॥ जिस अग्निदेव के हवि रूप अन्न वृषभ हैं तथा सोम जिनके पिछले हिस्से पर स्थित है जो ससार के नियामक और वैश्वानर रूप से ज्येष्ठ हैं ऐसी अग्नि के लिए यह आहुति स्वीकार हो ॥६॥ आकाश पृथ्वी और प्रकाश म स्थित होकर गतिशील अग्नि विद्युत रूप अग्नि,प्रकाश चक्र मे गतिमान अग्नि समस्त दिशाओ मेव्याप्त अग्नि, विश्व की प्राण भूत अग्नि इन सब अग्नियो को यह आहुति

स्वीकार हो ॥७॥ हम अंगिरा ऋषि उन सूर्य, इन्द्र, मित्र, वरुण तथा अग्नि का आह्वान करते हैं जिनके हाथों में 'स्त्रोता' को देने के लिए सदैव स्वर्ण विद्यमान रहता है। ये सब इस क्रव्यादि अग्नि को शान्त करें ॥८॥ क्रव्यादि अग्नि का देवों के अनुग्रह से शमन हो, पुरुषों की हिंसक अग्नि का भी शमन हो और सबको भस्म करने वाली अग्नि का मैंने शमन कर दिया है ॥ ६ ॥ सोम धारक पर्वतों के ऊपर शयन करने वाले जल ने इस माँस भक्षी क्रव्यादि अग्नि का शमन कर दिया है ॥ १० ॥

२२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता–विश्वेदेवा बृहस्पति, वर्च ।
छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्व: सम्बभूव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥१॥
मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु ।
देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२॥
येन हस्ती वर्चसा सम्बभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः ।
येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वचसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥३
यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्ता पुस्करस्रजा ॥४॥
यावच्चतस्र. प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥५॥
हस्ती मृगाणा सुपदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाऽभि षिञ्चामि मामहम् ॥६॥

मुझे हाथी जैसी अपरिमित शक्ति प्राप्त हो। अदिति के

शरीर से उत्पन्न महान तेज से सब देवता और देवमाता अदिति मुझे तेजस्वी बनायें ॥ १ ॥ मित्र वरुण और इन्द्र मुझ पर कृपा करें। ये मित्र वरुण आदि देव विश्व के पालन कर्ता हैं, वे मुझे अभीष्ट तेज प्रदान करें ॥ २ ॥ जिस तेज को प्राप्त कर राजा जलों में जीव, हाथी, अन्तरिक्ष में यक्ष गन्धर्व इन्द्रादि देवता वर्चस्वी और तेजस्वी होते हैं, वही तेज हे अग्ने ! मुझे प्रदान कर तेजस्वी बनाओ ॥ ३ ॥ हे जातवेद अग्निदेव ! तुम्हारा समस्त तेज तथा सूर्य का समस्त तेज अश्विद्वय मुझमें स्थित करें ॥ ४ ॥ चारों दिशाएँ जितने स्थान को घेरती हैं, तथा जितने स्थान तक नेत्र देख पाते हैं, महान् वैभवशाली इन्द्र का इतना बड़ा चिह्न मुझ प्राप्त हो तथा पूर्व कथित तेज भी मुझे प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हाथी अधिक पराक्रमी होने के कारण वनों में स्थित मृगादि पशुओं का शासक होता है, उस हाथी के भाग्य रूप यश से मैं भी अपने को सिंचित करता हूँ ॥६॥

२३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—योनिः । छन्द—अनुष्टुप्; बृहती ।)

येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् ।
इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि ॥१॥
आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाणइवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥२॥
पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥३॥
यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥४॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते ।
विन्दत्व त्व पुत्र नारि यस्तुभ्य शमसच्छमु तस्मै त्व भव ॥५॥
यासा द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूल वीरुधा बभूव ।
तास्त्वा पुत्राविद्याय दैवो प्रावन्त्वोषधय ॥६॥

हे स्त्री ! तू जिस पाप जन्य रोग से वन्ध्यत्व को प्राप्त हुई है, हम तुझे उस पाप रोग से मुक्त करते हैं। यह रोग पुन प्रकट न हो हम ऐसा ही करते हैं ॥१॥ हे स्त्री जिस प्रकार वाण सीधा तरकस मे जाता है उसी भाँति तेरे प्रजननाग से वीर्ययुक्त गर्भ स्थित हो। यह गर्भ पुन रूप मे दस मास तक प्रसवकाल मे प्रकट हो ॥ २ ॥ हे स्त्री ! तू पुत्र उत्पन्न करने वाली हो पुन के पुन ही हो, ऐसी तू पुत्रवती हो ॥३॥ हे स्त्री ! जिन अचूक वीर्यों से बैल, गौओ से बछडे पैदा करते है, उस भाँति तू भी पुन उत्पन्न कर। गौ के समान पुत्र उत्पन्न करती हुई तू वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे स्त्री ! प्रजापति द्वारा स्थापित जनन सबन्धी नियमानुसार ही मैं तेरे लिए यह विधान करता हूँ। तेरे गर्भ मे सुखदायक पुत्र की प्राप्ति हो ॥ ५ ॥ औषधियो का पिता आकाश है और पृथ्वी माता है क्योकि वह बीजधारण करती है। वे औषधियाँ जल से वृद्धि को प्राप्त होती हैं। वही औषधियाँ तुझे पुत्र प्राप्ति के निमित्त गर्भ की रक्षण करने वाली हो ॥६॥

२४ सूक्त

(ऋषि-भृगु । देवता-वनस्पति प्रजापति । छन्द-अनुष्टुप, पङ्क्ति)
पयस्वतीरोषधय पयस्वन्मामक वच ।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽह सहस्रश ॥१॥

वेवाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु ।
सम्भृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे ॥२॥
इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥३॥
उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् ।
एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥४॥
शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥५॥
तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ॥५॥
उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
ता विहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥७॥

यव धान्यादि सारयुक्त हो तथा मेरा कथन भी सारयुक्त हो। मैं उन सारयुक्त यवादि अन्न को प्राप्त करूँ ॥ १ ॥ मैं उन सारयुक्त देव को जानता हूँ। वे धान्यादि की वृद्धि करने वाले हैं धान्यादि को इकट्ठा करने वाले देवता को हम आहूत करते हैं। अयजनकर्ता धनवान् का समस्त धन, गवादि सहित सभृत्वा देव मुझे प्रदान करें ॥ २ ॥ यह पंच दिशाएँ तथा पच प्रकार के *मनुष्य यजमान को धन-धान्य* से पूर्ण करें जैसे नदी का प्रवाह अपने मे स्थित जीवो को एक जगह से दूसरी जगह ले जाता है ॥ ३ ॥ सहस्रो धाराओ से पूर्ण होने पर भी जल का उद्‌गम स्थान कमी को प्राप्त नही होता, उसी भाँति यह एकत्रित धान्य अनेक प्रकार से खर्च होता हुआ भी क्षीणता रहित हो ।४। हे देव ! तुम सहस्रो भुजाओ वाले हो, उनके द्वारा धन लाकर हमे प्रदान करो। हे सहस्र भुजी ! अपने सभी हाथो से धन लाकर हमे प्रदान करो तथा हमारे किये गये कार्यों को पूर्ण कर

इमे संपद्य बनाओ ॥ ५ ॥ गन्धर्वों की समृद्धि की कारणरूप तीन कलाएँ हैं तथा अप्सराओं की समृद्धि-मूलक चार कलाएँ हैं इन सातों कलाओं में जो श्रेष्ठ कला है, उससे हे धान्य! हम तेरा स्पर्श करते हैं ॥ ६ ॥ हे प्रजापते! उपोहदेव एवं समूहदेव जो तुम्हारे सारथि रूप हैं, उन दोनों को अनेकों प्रकार के धन-धान्य को लाने एवं बढ़ाने के लिए लाओ ॥७॥

२५ सूक्त

(ऋषि–भृगु । देवता–कामेषु, मित्रा वरुणौ । छन्द–अनुष्टुप् ।)

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषु. कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१॥
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं सङ्कल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसन्नतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥२॥
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसन्नता ।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३॥
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा ।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥४॥
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥५॥
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् ।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥६॥

हे स्त्री! अत्यधिक सतापित करने वाले उत्तुददेव तुझे काम से पीडित करे। तू कामशर से पीडित पलङ्ग पर सोना पसन्द न कर। मैं तुझ पर कामवाण का प्रयोग करता हूँ जिससे तू भयभीत हो॥ १ ॥ सभोगेच्छा जिसका फल और मनस्ताप जिसका पूर्ण है, ऐसी रतिभोग सम्बन्धी इच्छा काष्ठ-

और फल जोड़ने वाले मसाले के समान है। कामदेव इसी प्रकार के कामशर का प्रयोग कर तेरे हृदय को विदीर्ण करते हैं ॥ २ ॥ कामदेव का तीक्ष्ण बाण प्लीहा रोग का नाश करें। तीक्ष्ण फल वाले एवं बहुभाँति व्याकुल करने वाले शर से मैं तेरे हृदय को चुटीला करता हूँ ॥ ३ ॥ इस शोककारी बाण से तेरा रण्ड शुष्क हो, काम से पीड़ित तू अपनी कामेच्छा को प्रकट करने में असमर्थ मुझे प्राप्त हो। दाम्पत्य कलह को छोड़कर मिष्टभाषिणी बन और मेरे मन की इच्छानुसार व्यवहार कर ॥ ४ ॥ कुशा से तुझे ताड़ित करता हुआ मैं तुझे अपने सन्मुख लाता हूँ। तुझे माता-पिता गृह से भी अपने सन्मुख बुलाता हूँ जिससे तू मेरे कहे अनुसार कार्यरत हो मुझे प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! इस स्त्री के हृदय को ज्ञानशून्य करो। इसे कर्माकर्म का ज्ञान न रहे, तथा यह मेरे आधीन हो ॥ ६ ॥

२६ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वा। देवता-मान्न यो हेतयः प्रभृति। छन्द-जगती।)

येस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा: ॥१॥
येस्या स्थ दक्षिणायां दिश्य विष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा: ॥२॥

❀ टिप्पणी—उपर्युक्त सूक्त के सभी मन्त्रों में विरुद्ध परिणामी अलंकार का प्रयोग किया गया है; जिससे इसमें कथित आशय का अर्थ उल्टा हो जाता है। उपर्युक्त मन्त्रों का आशय यही है कि कामवासना अच्छी प्रवृति नहीं है तथा स्त्री पुरुषों को इसका दमन करना चाहिए समझ से काम लेना चाहिए।

येस्थां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषव ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो व स्वाहा ॥३॥
येस्थां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषव ।
ते ना मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो व स्वाहा. ॥४॥
येस्थां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषव
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो व स्वाहा ॥५॥
येस्थां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषव. ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो व स्वाहा ॥६॥

हे गन्धर्वो ! दानादि गुणो से सम्पन्न तुम पूर्व दिशा मे निवास करते हो, अग्नि अग्नि समान तीक्ष्ण शरा से तुम हमारा रक्षण करने मे पूर्ण समर्थ हो, अत हमको सुखकारी हो एव हमारे शत्रु सर्पादि से हमारी रक्षा करो। हम तुम्हे नमस्कार करते है, हमारे द्वारा अर्पित यह हवि तुम्हे प्राप्त हो ॥ १ ॥ हे गन्धर्वो ! तुम हमारे दक्षिणाङ्ग निवास करते हो। तुम अपने तीक्ष्ण शरा से हमारी इच्छा पूरी करने मे पूर्ण समर्थ हो। तुम हमारे लिए सुखकारी हो हम तुम्हे नमस्कार करते हैं। हमारे द्वारा अर्पित यह हवि स्वीकार करो ॥२॥ हे देवगणो ! तुम पश्चिम दिशा के निवासी हो। तुम वैराज नाम से भी प्रख्यात हो। वृष्टि रूप जल तुम्हारे शर हैं। तुम हमारे लिए सुखकारी हो। हम तुम्ह नमस्कार करते है। हमारे द्वारा अर्पित यह हवि ग्रहण करो ॥ ३ ॥ हे गन्धर्वो ! दानादि गुण से सपन्न तुम प्रविध्यन्त नामक उत्तर दिशा मे निवास करते हो। तुम्हारे बाण वायु के समान तीव्रगामी है। तुम हमारे लिए सुखकारी हो। हम तुम्हें प्रणाम करते है। यह आहुति तुम्हें प्राप्त हो ॥ ४ ॥ निलिम्पा नामक देवताओ ! नीचे की दिशा तम्हारा निवास स्थान है। धान्य, जौ वृक्ष आदि ही तुम्हारे

शर है। तुम हमारे लिए सुखकारी हो। नमस्कार युक्त यह हवि तुम्हें अर्पित है, इसे स्वीकार करो ॥ ५ ॥ अवस्वत नाम्ने देवगणा ! ऊपर की दिशा तुम्हारा निवास स्थान है। वृहस्पति तुम्हारे शर है। तुम हमारे लिए सुखकारी हो। नमस्कार पूर्वक यह हवि तुम्हें समर्पित है, इसे स्वीकार करो ॥६॥

२७ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–प्राची प्रभृति। छन्द–अष्टि, पचपदा।)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥
दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म ॥२॥
प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म ॥३॥
उदीची दिक् सोमोऽधिपति स्वजो रक्षिताशनिरिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मत वो जम्भे दध्म ॥४॥
ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।

योस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मतं वो जम्भे दध्मः ॥५॥
ऊःर्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वितो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

पूर्व दिशा हम पर अनुग्रह करने वाली हो। पूर्व दिशा के स्वामी इन्द्र और ससार के रक्षक पूर्व दिशा के निवासी सर्प, धाता अर्यमा आदि अदिति के पुत्र रूपवाण अग्नि आदि देवगण अदिति आदि सबको प्रणाम स्वीकार हो और वे हम पर प्रसन्न हो। हे अग्नि आदि देवगण ! हम अपने पीडक शत्रु को तुम्हारे भक्षणार्थ तुम्हारे दांतो तले डालते है ॥१॥ दक्षिण दिशा हमारे लिए मङ्गलमयी हो। उस दिशा के स्वामी इन्द्र और जगत रक्षक दक्षिण निवासी सर्प आदि अदिति के पुत्र रूप वाण आदि सबको प्रणाम स्वीकार हो और वे हम पर प्रसन्न हो। हमारा द्वेषी शत्रु अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं, उसे भक्षणार्थ दांतो तलो डालते है ॥ ३ ॥ उत्तर दिशा हम पर कृपालु हो। उस दिशा के अधिपति सोम, दिशा रक्षक स्वज नामक सर्प और दुष्टो वा विधायव अशनि रूपवाण है। इन सबको प्रणाम है। हमारा यह आनन्दप्रद नमस्कार इन सबको प्रसन्न करे। जो हमसे बैर करते है या जिससे हम बैर करते हैं, उसे हम अग्नि आदि देवो के जभ मे भक्षणार्थ डालते है ॥ ४ ॥ नीचे की दिशा ध्रुव मुझ पर अनुग्रहशील हो। उसके स्वामी विष्णु, कल्माष ग्रीव नामक सर्प रक्षक, औषधि ही शर है। इन सब ो मेरा नमस्कार है। यह आनन्दप्रद नमस्कार इन्हे प्रसन्न करे। जो हमारा द्वेषी है, अथवा जिससे हम द्वेष करते है, ऐसे शत्रु को अग्नि आदि देवताओ के भक्षणार्थ उनके जभो मे डालते है ॥.॥

ऊपर स्थित दिशा अभीष्ट पूरक है। इस दिशा के स्वामी बृहस्पति देव हैं, तथा श्वेत वर्ण के सर्प इस दिशा के रक्षक हैं। दुष्टजनों का दमन करने वाला वृष्टि रूप जल इस दिशा का बाण है। इन सबको मेरा प्रणाम है। मेरा यह आनन्ददायक प्रणाम इन्हें तुष्ट करे। जो हमसे द्वेष रखता है अथवा हम जिससे द्वेष रखते हैं, ऐसे शत्रु को अग्नि आदि देवों के भक्षणार्थ जभों में डालते है ॥६॥

२८ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-यमिनी। छन्द-अनुष्टुप्; ककुप्; त्रिष्टुप्।)

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥१॥
एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् ॥२॥
शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥४॥
इहि पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव।
पशून् यमिनि पोषय ॥४॥
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
तं लोकं यमिन्यभिसबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥५॥
यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥६॥

सृष्टि के रचयिता भूतकृत नामक ऋषियों ने विभिन्न वर्ण वाली गौ की रचना की। यही सृष्टि विधाता द्वारा रची गई। इस सृष्टि में यदि कोई गौ विकृत रजवीर्य के सयोग से युगल सन्तान उत्पन्न करती है तो वह यजमान के लिए अशुभ-

सूचक होती है। ऐसी गौ उसके पशुधन का नाश करने वाली होती है ॥ १ ॥ इस प्रकार की यमसू गौ माँस भक्षी जीवो के समान ही नाशकारी होती है। वह यजमान की गौओ की मृत्यु का कारण होती है। यदि यजमान ऐसी गौ को ब्राह्मण को दान करे तो वह सन्तति वाली होकर सौभाग्यशाली होती है ॥ २ ॥ हे यमसू गौ ! तू पुरुषो के लिए सुखकारी हो ॥ ३ ॥ इस घर मे धन-धान्य एव पशु आदि की वृद्धि हो और यजमान को अनेको प्रकार का अपरिमित धन प्रदान कर ॥ ४ ॥ जिस देश मे हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर मन कर्म वाले व्यक्ति निवास करते हैं यदि वहाँ यमसू गाय सामने आ जाय तो वह हमारे पुरुषो एव पशु आदि के लिए हिंसक न हो ॥ ५ ॥ जिस देश मे हृष्ट-पुष्ट सुन्दर मन और कर्म वालो के यज्ञादि से श्रेष्ठ कर्म होते हैं, यदि वहाँ यमसू गौ आ गई है तो वह हमारे पुरुषो और पशुओ का नाश न करे ॥६॥

२६ सूक्त

(ऋषि-उद्दालक. । देवता-अवि· कामः भूमि. । छन्द-पंक्ति·,अनुष्टुप्)

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः ।
अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा ॥१॥
सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन् ।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥२॥
यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥३॥
पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति पितॄणां लोकेऽक्षितम् ॥४॥
पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥५॥

इरेव नोप दस्यति समुद्रइव पयो महत् ।
देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति ॥६॥
क इद कस्मा अदात् काम. कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥७॥
भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिद महत् ।
माहं प्राणेन म त्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८॥

अन्तरिक्ष मे दक्षिगत यम के सभासद दुष्टो को दण्ड तथा सज्जनो पर कृपा करने वाले हैं । ये पूर्ति रूप कर्म के अधिष्ठाता है तथा यजन आदि तथा निर्माण कार्यों मे हो जाने वाले पाप पुण्य को अलग अलग करते हैं ।१। यह यज्ञ सब प्रकार से समृद्धि लाने वाला और अभीष्ट फल प्रदान करने मे समर्थ है । इस प्रदत्त 'अवि' का कभी विनाश नही होता ।।२।। जो यजमान फलदायिनी भेड का दान करता है, वह सुखपूर्वक स्वर्ग का अधिकार प्राप्त कर लेता है । उस लोक मे कमजोर मनुष्य को सशक्त पुरुष का शासन नही मानना पडता ।। ३ ।। जिस पशु के चार पैरो और नाभि पर पाँच अपूप रखते है उस पाँच अपूप युक्त श्वेत पाँव वाले भेड का दान करने वाला वसु आदि पितृलोकों मे अक्षय पुण्य का भागी होता है ।।४।। जिस पशु के चार पैरो और नाभि पर पाँच अपूप रखते है उस पाँच अपूप युक्त श्वेत पाद भेड का दान कर्ता सूर्य चन्द्र लोको मे निवास करता हुआ अक्षय पुण्य का भागी होता है ।।५।। दान की गई श्वेत पाद भेड का कभी विनाश नही होता । जैसे समुद्र का गम्भीर जल और उसमे निवास करने वाले अश्विद्वय कभी विनाश को प्राप्त नही होते वैसे ही यह भेड भी अक्षय होती है ।।६।। प्रजापति ही दान देने वाले तथा वही ग्रहण करने वाले हैं । परलोक मे फल का

इच्छुक दानदाता तथा इस लोक में फल की कामना करने वाला प्रतिग्रहीता दोनो की कामात्मा है। अतः काम ने काम की उत्पत्ति की जिससे आत्मा को पृथक रखने से प्रतिग्रह का दोष नही लगता ॥७॥ हे दान योग्य द्रव्य ! पृथ्वी और अन्तरिक्ष तुझे प्राप्त करें। मैं प्रतिग्रह के दोष द्वारा प्राणो को न खो बठूं तथा पुत्र आदि से न अलग हूँ ॥८॥

३० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-सामनस्यम्। छन्द-अनुष्टुप्,जगती,त्रिष्टुप्)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्त.।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् व समनसस्कृणोमि॥५
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६॥
सध्रीचीनान् व समनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवनेन् सर्वान्।
देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥

हे विवाद-रत पुरुषो ! तुम्हारे लिए मैं विद्वेष नाशक प्रीतिपूर्ण सामनस्य कर्म करता हूँ। गौएँ जिस प्रकार अपने वत्सो से प्रीति करती हैं वैसे ही तुम भी पारस्परिक स्नेह करो। ॥१॥ पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता भी पुत्र के

अनुकूल मन वाली हो पत्नी पति के लिए मिष्ट भाषिणी हो ॥२॥ भाई-भाई बटवारे पर एक दूसरे का बुरा न सोचे बहिन भाई से विद्वेष न करें। यह सब लोग एक मत हो काम करें तथा उनके सभी परस्पर कार्य कल्याणकारी हों ॥३॥ जिस मन्त्र शक्ति द्वारा देवता एक मत होते हैं तथा उनमें परस्पर वैर भाव का विनाश होता है उसी समानता मूलक मन्त्र द्वारा सवन्धित सामनस्य को हम तुम्हारे लिए करते हैं ॥४॥ तुम एक मन और समान कार्य करने वाले बनकर छोटे बड़े का ध्यान रखते हुए परस्पर मधुर भाषण करते हुए आओ। हे पुरुषो ! मैं तुम्हें समान कार्य के लिए प्रेरित करता हूँ ॥५॥ सामनस्य के इच्छुक ! तुम अन्न-जल का मिल-बाँटकर उपयोग करो। मैं तुम्हे स्नेह रज्जु मे एक साथ बाँधता हूँ। जैसे पहिये के अरे नाभि के आश्रित होते हैं, उसी प्रकार तुम सब एक अग्नि के आश्रयभूत हुए उनकी उपासना करो ॥६॥ मैं तुम्हे एक मत बनाकर मिल जुल कर कार्य करने के लिए प्रेरित करता हूँ। इसी कर्म से मैं तुम्हे अपने वश मे करता हूँ। स्वर्ग मे अमृत की मिल जुल कर रक्षा करने वाले इन्द्रादि देवताओं के मन जैसे स्वच्छ और निर्मल होते हैं उसी भाँति प्रति क्षण तुम्हारा मन भी उज्ज्वल रहे ॥७॥

३१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्न्यादय पाप्महनो मन्त्रोक्ताः
छन्द—अनुष्टुप् पंक्तिः)

वि देवा जरासावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१॥
व्यार्त्या पवमानो वि शक्र पापकृत्यया।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२॥

वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्या परतृष्णयासरन् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥३॥
वीमे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४॥
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥५॥
अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥६॥
प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥७॥
आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥८॥
प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथः
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९॥
उद युषा समायुषोदोषधीना रसेत ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०॥
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११॥

हे अश्विद्वय ! तुम इस बालक को आयु क्षीण करने वाली जरावस्था से दूर रखो । हे अग्ने ! तुम इसका लोभीपन और पशुओं से रक्षा करो । मैं इसे पाप से बचाकर क्षय मुक्त करता हुआ दीर्घ जीवी बनाता हूँ ॥१॥ वायु इसे रोग उत्पादन दुख से बचावे । इन्द्र इसकी पाप से रक्षा करें । मैं इसे पाप से बचाकर क्षय मुक्त करता हुआ दीर्घजीवी बनाता हूँ ॥२॥ सिंहादि हिंसक पशुओं से जैसे गाव के पशु स्वभाव से ही अलग रहते हैं, जैसे प्यासे जन जल से पृथक ही रहते हे

उसी भाँति इसे मैं पाप से पृथक ही रखता हूँ यक्ष्मा रोग से मुक्त करते हुए इसे मैं दीर्घ आयुष्य बनाता हूँ ॥३॥ जिस भाँति विभिन्न दिशाओं को जाने वाले मार्ग अलग अलग होते हैं, जैसे आकाश और पृथ्वी भी स्वभाव से ही अलग-अलग होते हैं, उसी प्रकार मैं इस स्वभावजन्य पाप से दूर रहने वाला बनाता हूँ ॥४॥ त्वष्टा ने अपनी पुत्री के विवाह पर दिये दहेज को भेजने के लिए स्थान देने के कारण ही यह पृथ्वी और आकाश अलग अलग हुए। इसी भाँति मैं इसे पाप से पृथक कर क्षय मुक्त करता हुआ दीर्घ आयु से युक्त करता हूँ ॥५॥ भोजन का पाचक जठराग्नि नेत्र और प्राण को रस प्रदान करता हुआ उन्हें अपने-अपने कार्य करने की क्षमता देता है। उसी प्रकार चन्द्रमा प्राण वायु से सम्पन्न हो अमृत रूप रस से आत्मा को सिंचित करता है। मैं इसे समस्त पापों से अलग कर यक्ष्मा रहित बना दीर्घ आयुष्य बनाता हूँ ॥६॥ देवताओं ने सूर्य को प्राण रूप से प्रकट किया। मैं ऐसे सूर्य को इस बालक की आयु वृद्धि के निमित्त इसमें स्थापित करते हुए पापों से इसे पृथक करता हुआ तथा यक्ष्मा रहित बना दीर्घ आयुष्य बनाता हूँ ॥७॥ दीर्घ जीवियों की दीर्घायु से और देवगणों के अक्षय प्राण वायु से हे बालक तू अपने को दीर्घ-आयुष्य बना। मैं तुझे समस्त पापों से पृथक कर क्षय रहित बना दीर्घ आयुष्य करता हूँ ॥८॥ हे बालक जीवधारियों के श्वास से तू श्वास ले। तू मृत्यु पाश से मुक्त हो इसी लोक में रह। मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त कर, यक्ष्मा रहित बना दीर्घ आयुष्य करता हूँ ॥९॥ हम आयु के बल पर ही मृत्यु से अपनी रक्षा करते हैं और उसी के द्वारा इस लोक में रहते हुए धान्यादि के रस से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। मैं तुझे समस्त रोगों

के उत्पादक पाप से पृथक कर क्षय रहित बना दीर्घ आयुष्य बनाता हूँ ।।१०।। हम पर्जन्य देव द्वारा प्रदत्त जल वृष्टि से अमरत्व पाकर जी उठते हैं। यह वृष्टि जल ससार का प्राणाधार है। हे बालक ! मैं तुझ समस्त रोगों के उत्पादक पाप से पृथक कर क्षय रहित बना दीर्घ आयुष्य बनाता हूँ ।।११।।

।। इति तृतीय काण्ड समाप्तम् ।।

चतुर्थ काण्ड

प्रथम अनुवाक

—※—

१ सूक्त

(ऋषि–वन । देवता–बृहस्पति, आदित्य । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

ब्रह्म जज्ञान प्रथम पुरस्ताद् वि सीमत सुरुचो वेन आव ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठा सतश्च योनिमसतश्च वि व ।।१।।
इय पित्र्या राष्ट्रयेत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठा. ।
तस्मा एत रुच ह्वारमह्य धर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ।।२।।
प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवाना जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चं स्वधा अभि प्र तस्थौ ।।३।।
स हि दिव स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेम रोदसी अस्कभायत् ।
महान् मही अस्कभायद वि जातो द्या सद्म पार्थिव च रज ।।४।।

स बुध्न्या दाष्ट जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५॥
नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६॥
योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥७॥

समस्त संसार का कारणभूत परमात्मा सृष्टि के आदि मे हिरण्य गर्भ रूप सूर्य मे प्रकट हुआ । सत एवं असत के उत्पत्ति स्थान को प्रकट करने वाला तेजस्वी सूर्य है जो पूर्व दिशा मे उदय होता है ॥ १ ॥ अखिल ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति कर्ता पिता प्रजापति से प्राप्त होने वाली वाणी ससार के समस्त कर्मों की अधिष्ठात्री है । यह प्रथम शब्दोच्चारण स्तुति रूप से सूर्यात्मक ईश्वर को प्राप्त हो ॥ २ ॥ इस प्रपंच को अवलम्बित कर बन्धु के समान हितकारी ससार के ज्ञाता आदि उत्पन्न देव इन सूर्य इन्द्रादि देवताओ की उत्पत्ति अन्यो को बनाते हैं । उन सूर्य ने वेद का ऊपरी और मध्य भाग से उद्धार किया । ततपश्चात् हवि रूप अन्न देवताओ को प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ वह परमब्रह्म सूर्यात्मक रूप से आदि उत्पन्न आकाश और पृथ्वी मे कारण एव सत्यरूप से स्थित हो द्यूलोक और पृथ्वी लोक मे विनाशहीनता का स्थापन करते हैं ॥ ४ ॥ परमब्रह्म सूर्यात्मक रूप से उत्पन्न पाताल आदि लोको मे व्याप्त होते हैं । बृहस्पति इस लोक के अधीश्वर हैं । जब सूर्य के द्वारा दिन उत्पन्न हो तब ऋत्विज आहुति अर्पित कर देवगणो की उपासना करें ॥ ५ ॥ ऋत्विजो विषयक यज्ञ सूर्य को उदयाचल पर प्रकट होने की प्रेरणा देता है । पूर्व दिशा स्थित देशो मे यह सूर्य देव हवि रूप अन्न का ध्यान करते हुए शीघ्र उदय होते हैं ॥ ६ ॥ देवताओं के बन्धु

बृहस्पति, प्रजापति अथर्वा को प्रणाम स्वीकार हो। जैसे तू सब जीवधारियों को उत्पन्न करने वाला हो वैसे ही अन्न से संपन्न हो। वे बृहस्पति हविष्यान्न से युक्त हो सब पर अनुग्रह करते है ॥७॥

२ सूक्त

(ऋषि—वेन । देवता—आत्मा । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।
यस्यच्छायामृत यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥
य क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेताम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥३॥
यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४।
यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥
आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥
हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥
आपो वत्सं जनयन्तीगर्भमग्रे समैरयन् ।
तस्जोत जायमानस्योल्व आसीद्धिरण्यय- कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

प्रजापति समस्त पदार्थों को शक्ति प्रदान करते है। उनको शासक मानते हुए समस्त देवगण भी इनकी उपासना

करते हैं। वे सपूर्ण जगत के नियामक है। हम उन प्रजापति की हवि द्वारा उपासना करते हैं ॥ १ ॥ सब प्राणियों के अधिष्ठाता मृत्युनाश के मूल श्रोत जिनके अधीन समस्त जीवधारियां की मृत्यु हैं, ऐसे प्रजापति देव की हम द्वारा उपासना करते हैं ॥२॥ क्रन्दसी क्रन्दनशील प्राणियो के देवता हैं, जिनके प्रताप से आकाश पृथ्वी नीचे नही गिरते। इनके नीचे गिरने के भय से प्रजापति के रुदन करने से इन्हें रोदसी कहते हैं। इस आकाश, पृथ्वी ने अपनी रक्षा के लिए जिन प्रजापति का आह्वान किया, उनको हम हवि अर्पित करते हैं ॥ ३ ॥ उन प्रजापति की हम हवि अर्पित कर उपासना करते हैं जिनकी महिमा से द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष का विस्तार हुआ तथा यह सूर्य स्पष्ट दृष्टिगत हुए ॥ ४ ॥ हम उन प्रजापति की हवि अर्पित कर उपासना करते हैं, जिनकी महिमा से पवन, नदी, समुद्र आदि की उत्पत्ति हुई तथा जिनकी चार दिशाएँ चारो भुजाएँ हैं ॥५॥ विश्व के रक्षार्थ सृष्टि के आरम्भ में जल प्रकट हुए। इन्होने हिरण्यगर्भ को धारण कर ब्रह्म को जानते हुए ससार की रक्षा की। उन जलो के गर्भभूत प्रजापति देव को हम हवि अर्पित कर प्रसन्न करते हैं ॥ ६ ॥ सृष्टि से पहले प्रपच के स्वामी हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई जिन्होने द्यावा पृथ्वी को धारण किया। उन प्रजापति को हम हवि अर्पित कर पूजते है ॥ ७ ॥ जलो द्वारा सृष्टि की रचना करने के लिए ईश्वर प्रदत्त वीर्य को गर्भाशय मे स्थापन किया, उन हिरण्यगर्भ का अण्डा भी स्वर्ण सदृश्य था। उन प्रजापति की हम हवि अर्पित कर उपासना करते हैं ॥८॥

३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-व्याघ्र. । छन्द-पङ्क्ति , अनुष्टुप्, गायत्री)

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥१
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥२॥
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥३॥
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥४॥
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥५॥
मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६॥
यत् संयमो न वि यमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७॥

गूढाशय वाली नदियाँ जैसे लोप होकर फिर प्रवाहित होती है वैसे ही व्याघ्र आदि छिप जांय। व्याघ्र, चोर एव भेडिया यह तीनो ही उठ कर चले जांय। इनके शत्रु भी इन्हे छिप जाने को विवश करें॥ १॥ हमारे विचरण मार्ग मे कुत्ते, भेडिये न चलें तथा चोर आदि उनसे भी दूर चले। सर्प तथा दूसरे हिंसक शत्रु तथा अन्य हिंसक प्राणी हमारे पथ से हट कर अन्य पथगामी हो ॥ २॥ हे व्याघ्र! हम तेरे मुख एव नेत्रों को नष्ट कर तेरे समस्त बीसो नखो को भी उखाडते हैं ॥ ३॥ व्याघ्र को हम सबसे पहले नष्ट करते है तत्पश्चात् चोर सर्प राक्षस भेडिया आदि को

संहार करते हैं ॥ ४ ॥ इस क्षण आने वाला चोर हमसे मार खाकर भागे तथा जिस मार्ग से वह भागे इन्द्र उस पर अपने वज्र से प्रहार कर उसको नष्ट कर डालें ॥ ५ ॥ व्याघ्रादि हिंसक पशुओं के दाँत कमजोर हो, सींग वाले पशुओं के सींग नष्ट हो तथा इन सबकी हड्डी पसली भी नष्ट हो जाँय। हे पथिक! गोधा नामक जीव तेरे सन्मुख न आवे तथा शयन प्रकृति का हिरण भी तेरा पथ छोड अन्य मार्ग से चला जाय। ॥ ६ ॥ इन्द्र एवं सोम से उत्पन्न सयभन कभी उल्टा नहीं होता। हे *क्रिया कलाप!* तू *अथर्वा द्वारा दृष्टव्य है*। तू व्याघ्र आदि भयङ्कर पशुओं का निश्चित ही संहारक है ॥७॥

४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-वनस्पति, प्रभृति। छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक्)

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभजे ।
यां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥१॥
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ।
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति ।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥३॥
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४॥
अपां रस प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥५॥
अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥६॥

प्राहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्शइव रोहितमनवग्लायता सदा ॥७॥
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥८॥

वरुण का पुरुषार्थ नाश होने पर जिस गन्धर्व ने पुनः वीर्य प्राप्ति के निमित्त जिस कैंथ नामक परम शक्ति वर्धक औषधि को खोद कर प्राप्त किया था, हम भी उसे खोदते हैं ॥ १ ॥ सूर्य उत्तम वीर्य पूर्ण करें तथा उनकी पत्नी उषा वीर्य स उदवृत करे। वीर्य सपन्न करने वाला मेरा यह मत्र हो एव प्रजापति वीर्य सपन्न जनेन्द्रिय को पुष्ट और स्वस्थ करें ॥ २ ॥ हे वीर्य के इच्छुक पुरुष ! तेरे पुत्र, पौत्रादि का कारण रूप पुव्यजव नागफन के समान गतिशील हो, इसी कारण यह औषधि तुझे अत्यधिक वीर्य से पूर्ण करे ॥ ३ ॥ यह औषधि इम पुरुष को वीर्य सम्पन्न करें । यह ओषधि महान् वीर्य वाली है। यह वृषभो मे भी सार रूप से विद्यमान है। हे इन्द्र ! इस पुरुष के शरीर मे वीर्य स्थापित करो ॥ ४ ॥ हे कैंथ की जड ! तू सोम की सजातीय अमृतोपम है। तू अगिराओ के मन्त्र बल से स्वय वीर्य रूप मे प्रकट हुई है ॥५॥ हे अग्ने ! इस वीर्य इच्छुक पुरुष के शारीरिक अवयवो को वीर्य सपन्न कर पुष्ट करो। हे सूर्य ! हे सरस्वते ! हे ब्रह्मणस्पते ! तुम इस वीर्याभिलाषी के शरीराङ्ग को रोग रहित करो ॥ ६ ॥ हे वीर्य के इच्छुक पुरुष ! मैं तेरे शरीर को वीर्य से पूर्ण करता हूँ। अतः तू वृषभ समान नृत्य करता हुआ हृदय से अपनी पत्नी को प्राप्त हो ॥ ७ ॥ हे औषधे ! अश्व, अश्वगर्दभ, वृषभ, मेढा आदि मे जो वीर्य है, वैसा ही वीर्य इस पुरुष के शरीर मे स्थापित करो ॥८॥

५ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-वृषभ स्वापनम् । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

सहस्रशृङ्गो वृषभो समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्ये ना वय नि जना त्स्वापयामसि ॥१॥
न भूमि वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वा स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥२॥
प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरी ।
स्त्रियो या पुण्यगन्धयस्ता सर्वा स्वापयामसि ॥३॥
एजदेजदग्रभ चक्षु प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभ सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥४॥
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषा स दध्मो अक्षीणि यथेद हर्म्यं तथा ॥५॥
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पति ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातय स्वप्त्वयमभितो जन ॥६॥
स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् ।
ओत्सूर्यमन्या त्स्वापयाव्युष जागृतादहमि द्रइवारिष्टो अक्षित ॥७॥

वाम्यवपक सहस्रो किरणो वाले सूय आकाश से प्रकट होते हैं । शत्रु को अधीन करन वाले सूय द्वारा ही हम उपस्थित जन समूह को निद्राशीन बनाते हैं ॥ १ ॥ वायु का अधिक प्रसार न हो, कोई मनुष्य देख न सके हे वायो ! तुम इन्द्रसखा हो । समस्त स्त्रिया और कुकरो को निद्रायुक्त करो ॥२॥ जो स्त्रियाँ निद्रायुक्त हैं, जो स्त्रियाँ पालकी वाहक हैं तथा जो स्त्रियाँ पुण्य गन्धा कहलाती है ऐसी सब स्त्रिया का हम निद्रा युक्त करते हैं ॥३॥ सभी चन जीवा को मैंने निद्रायुक्त कर दिया व देख नही सकते तथा उनके सूघन की शक्ति भी मेरे वश म है । मन इनके समस्त शारीरिक अवयवो को अधरात्रि

से पूर्व ही अपने अधिकार मे कर लिया है ।।४।। हमारे गमन के समय जो व्यक्ति घूमता है अथवा इधर-उधर देखता है उन सबके नेत्रो को हम उसी भाँति बन्द करते हैं जैसे यह घर देखने की शक्ति से रहित है ।।५।। जिस स्त्री को हम सुलाना चाहते हैं उसके समस्त कुटुम्बी जन, ग्रह रक्षक, श्वान, गृहस्वामी आदि सभी निद्राशील हो ।।६।। हे स्वप्नाभिमानी देव ! इन्हे सूर्योदय तक सुलाये रखो । सबके निद्रामग्न होने पर मुझे कोई मान न सके तथा मैं उषा काल तक जगता रहूँ ।।७।।

६ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान । देवता—ब्राह्मण. प्रभृति । छन्द—अनुष्टुप)
ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकाराररसं विषम् ।।१।।
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ।।२।।
सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् ।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ।।३।।
यस्त आस्यत् पञ्चांगु रिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ।।४।।
शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधे. ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ।।५।।
अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ।।६।।
ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ।।७।।
वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वम स्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ।।८।।

दस फन और दस मुख वाले तक्षक सर्प ब्राह्मण हैं। क्षत्रियों से प्रथम उत्पन्न होने के कारण इन्होंने द्युलोक स्थित सोम का पान किया। ये सोमपायी ब्राह्मण कन्द-मूल फल से उत्पन्न इस विष को प्रभावहीन बनावें ॥१॥ द्युलोक जितने क्षेत्र में व्यापक है समुद्र जितने परिमाण में व्याप्त है, उन समस्त क्षेत्रों के कन्द मूलफल की विष नाशक मंत्र युक्त वाणी का प्रयोग करता हूँ ॥२॥ हे विष! गरुड़ ने सर्वप्रथम तेरा पान किया था इसी कारण तू निस्तेज हुआ अब इस विष प्रभावित पुरुष के ज्ञान को नष्ट न कर। तू इसके लिए अन्नवत हो ॥३॥ पाँच उंगली वाले जिस हाथ ने तुझे मुख द्वारा उदरस्थ किया है, उस विष और विष देने वाले हाथ को मैं सुपारी वृक्ष के टुकड़े द्वारा मंत्र शक्ति से प्रभावहीन करता हूँ ॥४॥ बाण फलक से व्याप्त होने वाले विष को मैं मंत्र शक्ति से नष्ट करता हूँ। प्रलेप से पत्ते द्वारा सींग अथवा मल आदि जो विष उत्पन्न हुआ है उसे भी मंत्र शक्ति से अलग करता हूँ ॥५॥ हे शर! तेरा विषाक्त फलक प्रभावहीन हो फिर तेरा धनुष भी व्यर्थ हो जाय ॥६॥ विषाक्त औषधि देने वाले दूर से विष फेंकने वाले निकट से अन्न जल में विष मिलाने वाले ऐसे सब विष देने वालों को तथा विष की उत्पत्ति कारण रूप पर्वतादि को भी मैंने निर्वीर्य कर दिया ॥७॥ हे विषाक्त औषधे! तुझे खोदने वाले निर्वीर्य हों, तू मंत्र शक्ति से प्रभावहीन हो एवं जिस पर्वत पर ये विषाक्त कन्द मूल फल आदि उत्पन्न होते हैं, वे सभी पर्वत निर्वीर्य और निस्तेज हो जाँय ॥८॥

---

७ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मन् । देवता—वनस्पति । छन्द—अनुष्टुप्)

वारिद वारयातै वरणावत्यामधि ।
तत्रामृतस्यासिक्त तेना ते वारये विषम् ॥१॥
अरस प्राच्य विषमरस यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्भ करम्भेण वि कल्पते ॥२॥
करम्भ कृत्वा तिर्यं पीबिस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुप ॥३॥
वि ते मद मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव येषन्त वचसा स्थापयामसि ॥४॥
परि ग्राममिवाचित वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्षइव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुप ॥५॥
पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।
प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुप ॥६॥
अनाप्ता ये व. प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥७॥

जिस वरुणावती के जल से द्युलोक स्थित अमृत, विद्यमान है, वह जल हमारे विष को नष्ट करे। इस अमृतोपम जल के द्वारा कन्दमूल फल से उत्पन्न तेरे विष को दूर करता हूँ ॥ १ ॥ पूर्व, पश्चिम आदि सब दिशाओ का विष मन्त्र बल से प्रभावहीन हो जाय ॥ २ ॥ हे विष ! तू शरीर को दोष-पूर्ण बनाने वाला है। तुझ पीडा-जनक को मन्थ जाने का ही इसने तुझे खाया था। तू इसे ज्ञान शून्य न कर ॥ ३ ॥ हे ज्ञानशून्य ! करने वाली औषधे ! तेरे विष को धनुष से छूटने वाले तीर के समान शरीर से हटाते हैं। हे विष गोपनीय ढङ्ग से प्रस्थान

करने वाले दूत के सदृश्य तुझे गोपनीय ढङ्ग से शरीर के प्रत्येक अवयव में समाये हुए को मंत्र-बल के द्वारा नष्ट करता हूँ ॥४॥ हे औषधे ! तू वृक्ष सदृश्य अपनी जगह स्थिर रह इस व्यक्ति को चेतना रहित न कर। हम तेरे विष को मंत्र-शक्ति से दूर करते हैं ॥ ५ ॥ हे विषमयी औषधे ! ऋषियों ने तुझे शुद्ध करने के के लिए खरीदा है। तू हरिण चर्म के बदले में खरीदी गई है। अत तू खरीदी हुई यहाँ से दूर हो और इस पुरुष को ज्ञान-शून्य न कर ॥६॥ हे पुरुषो ! यज्ञानुष्ठान करने वाले शत्रु अपने यज्ञादि कर्मों के द्वारा हमारी सन्तति के नाश के कारण न बनें। इससे रक्षण पाने के लिये मैं चिकित्सा रूप कार्य को प्रस्तुत करता हूँ ॥७॥

८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वाङ्गिरा । देवता–राज्याभिषेक आप ।
छन्द–त्रिष्टुप, अनुष्टुप ।)

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥१॥
अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रवन् ॥२॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ् छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचि ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३॥
व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४॥
या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा । ५॥
अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥६॥

करने वाले दूत के सदृश्य तुझे गोपनीय ढङ्ग से शरीर के प्रत्येक अवयव मे समाये हुए को मंत्र-बल के द्वारा नष्ट करता हूँ ॥४॥ हे औपधे ! तू वृक्ष सदृश्य अपनी जगह स्थिर रह इस व्यक्ति को चेतना रहित न कर। हम तेरे विष को मन्त्र-शक्ति से दूर करते हैं ॥ ५ ॥ हे विषमयी औषधे ! ऋषियों ने तुझे शुद्ध करने के के लिए खरीदा है। तू हरिण चर्म के बदले मे खरीदी गई है। अत. तू खरीदी हुई यहाँ से दूर हो और इस पुरुष को ज्ञान-शून्य न कर ॥६॥ हे पुरुषो ! यज्ञानुष्ठान करने वाले शत्रु अपने यज्ञादि कर्मों के द्वारा हमारी सन्तति के नाश के कारण न बनें। इससे रक्षण पाने के लिये मैं चिकित्सा रूप कार्य को प्रस्तुत करता हूँ ॥७॥

८ सूक्त

(ऋषि-अथर्वाङ्गिरा. । देवता-राज्याभिषेकः आप ।
छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् ।)

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥१॥
अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ् छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३॥
व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४॥
या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ।५॥
अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥६॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ॥७॥

राज्याभिषेक होने पर ऐश्वर्यवान् प्रजा को अन्नदान करने वाला राजा ही जीवधारियो का अधीश्वर होता है। यमराज दुष्टो को दण्डित करने और प्रजा पर शासन करने हेतु राजा के द्वारा राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कराते हैं ॥ १ ॥ हे राजन्! तुम इस प्राप्त वैभव के प्रति उदासीन न होओ। तुम कर्म, अकर्म को समझने वाले तथा परम पराक्रमी हो। इन्द्रादि देवता तुम्हे अपना ही समझें ॥ २ ॥ राजा के सब अनुगत हों तथा राजा भी तत्परता से प्रजा का पालन करे। राजा या राज तेज दशो दिशाओ मे फैल जाय तथा शत्रु भयभीत हो भाग जाय। यह राजा शत्रुमित्र स्त्री आदि से विभिन्न प्रकार का व्यवहार करता हुआ दण्ड युद्ध और अध्ययन आदि कार्यों मे अपने को सलग्न करे ॥ ३ ॥ हे राजन्! व्याघ्र चर्म पर आसीन हो समस्त दिशाओ को जीत कर अपने अधीन करो। तुम तेज युक्त हो तथा यह सब प्रजा तुम्हे अपना स्वामी अङ्गीकार करे। तुम्हारे अधीनस्थ राज्य मे अनावृष्टि रूप अकाल का अभाव हो ॥ ४ ॥ हे राजन्! स्वर्ग पृथ्वी और अन्तरिक्ष स्थित तीनो लोको के जलो के असीम शक्तिवान् रस से मैं तुझे अभिषित करता हूँ ॥ ५ ॥ हे राजन्! दिव्य जल तुम्हे अपने तेज से सिंचित करे। तुम अपने प्रियजनो की जिस प्रकार भी समृद्धि कर सको, सूर्यदेव उसी भाँति तुम्हे सामर्थ्य प्रदान करें ॥ ६ ॥ पराक्रमी राजा को जल माता के समान हर्षित करने वाले है और सुख सौभाग्य प्राप्त करने के लिए वीर्य से तुष्ट करते है। नदी रूप जल जैसे समुद्र को पूर्ण करते

हैं, वैसे ही राज्याभिषेक के समय राजा को तृप्त करते हैं। अनुचर वस्त्राभूषणों से राजा को अलंकृत करते हैं ॥७॥

६ सूक्त

(ऋषि-भृगुः । देवता-त्रैककुदाञ्जनम् छन्द-अनुष्टुप्; पङ्क्तिः ।)

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥१॥
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२॥
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३॥
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५॥
असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६॥
इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८॥
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥९॥
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥१०॥

हे अंजन मणे ! तू त्रिककुद नामक पर्वत की चक्षु रूप है।

न प्राणियो की रक्षक वन हमे प्राप्त हो। इन्द्र आदि समस्त देवगणो ने निरोग रहने के लिए तुझे परिधि के रूप मे प्रदान किया है ॥ १ ॥ हे अजन ! तू मनुष्यो गौ अश्व और अश्व मादा इन सबकी रक्षा करने के लिए स्थित रहता है ॥२॥ हे द्यु लोक स्थित अमृत के ज्ञाता अजन ! तू नेत्रो को स्वच्छ करने वाला है एव राक्षसादि द्वारा प्रदत्त पीडा को भी नाश करता है। तू प्राणधारी जीवो के क्लेशो को भी दूर करने वाला है। तू पाण्डु आदि रोगो से भी प्राणियो को मुक्त करने मे समर्थ है ॥ ३ ॥ हे अजन ! तू जिसके शरीर मे प्रविष्ट होता है उसके शरीर से प्रचण्ड वायु वेग के समान क्षय रोग का विनाश करता है ॥ ४ ॥ हे अजन ! जो व्यक्ति तेरा प्रयोग करता है, वह शाप मुक्त हो जाता है। उसे अन्यो द्वारा किया गया अभिचार रूप कृत्या, शोक सन्ताप और विघ्न बाधाएं कभी नही सताती ॥ ५ ॥ हे अजन मणे ! अन्यो द्वारा अभिचार युक्त गलत मन्त्रो से प्राप्त क्लेश पीडा से उनके दूषित मन और क्रूर नेत्रो से हमारी रक्षा कर ॥ ६ ॥ हे अजन ! मैं तेरी महिमा से परिचित हूँ। मैं झूँठ नही बोलता। अत मैं दास गौ अश्व और प्राणिमात्र की सेवा करू ॥ ७ ॥ कष्ट, साध्य, ज्वर, सन्निपात सर्प आदि का विष, ये प्राणनाशक विकार अजन के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। हे अजन ! तुम्हारी त्रिक्कुद पर्वत से उत्पत्ति है ॥ ८ ॥ हिमालय स्थित त्रिक्कुद नामक पर्वत का अजन राक्षसियो के नाश मे सदैव तत्पर रहता है। अत यह अजन हमारे रोग आदि विकारो को नष्ट करे ॥ ६ ॥ हे अजन ! चाहे तू त्रिक्कुद पर्वत का हो या चाहे यमुना का पर दोनो ही स्थानो का तेरा नाम मङ्गलमयी है। तू अपने दोनो नामो से ही हमारा रक्षण कर ॥१०॥

---

१० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-शङ्खमणिः कृशनः । छन्द-अनुष्टुप्,पङ्क्तिः)

यातञ्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिपस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शंखःकृशनः पात्वंहसः ॥१॥
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे ॥२॥
शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥३॥
दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरन्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४॥
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५॥
हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

अन्तरिक्ष, वायु, ज्योतिमंडल से भी ऊपर तथा स्वर्ण से उत्पन्न शंख शत्रुओं को क्षीण करने वाला है, वह पापो से हमें बचावे ॥१॥ हे शख ! तू समुद्र से उत्पन्न होने वाला है । तुझ दीप्त शंख से हम राक्षसादि दुष्टजनो को अपने वश मे करते हैं ॥२॥ मणि रूप मे प्राप्त होने वाले शंख से रोग और अज्ञान को भी वशीभूत करते तथा राक्षसियों का तिरस्कार करते हैं। यह स्वर्णोत्पन्न शोक विनाशक शख हमारी पापो से रक्षा करे ॥३॥ सर्व प्रथम शंख वायु मे, तत्पश्चात् समुद्र मे उत्पन्न हुआ । स्वर्ण से उत्पन्न शंख की विकृत रूप मणि हमारी आयु वृद्धि का कारण बने ॥४॥ अन्तरिक्ष या समुद्र से उत्पन्न शंख मणि का उपादान रूप है । ये मेघोत्पन्न सूर्य के समान दीप्यमान होता है । इस शंख की विकार रूप मणि देवता एवं दैत्यो के

उत्पातों से हमारी रक्षा करे ॥५॥ हे शख तू स्वर्ण आदि से भी श्रेष्ठ है क्योकि तू अमृतोपम चन्द्र-मण्डल से उत्पन्न हुआ है। सग्रामो मे तू रथो पर दृष्टिगोचर होता है। ऐसी शख मणि हमारी आयु वृद्धि का कारण बने ॥६॥ शख का कारण रूप सुवर्ण शख रूप देह से युक्त हो जल मे निवास करता है। हे यज्ञोपवीत धारण करने वाले ! ऐसे शख को तेरी आयु, शरीर कांति और शक्ति-युक्त होने के लिए बांधता हूँ। यह मणि तुझे शतायु प्रदान करती हुई तेरी रक्षा करे ॥७॥

११ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा। देवता-अनड्वान् इन्द्ररूप। छन्द-जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अनडवान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
अनड्वान् दाधार प्रदिश षडुर्वीन ड्वान् विश्व भुवनमा विवेश ॥१
अनड्वानिन्द्र स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो मिमीतो अध्वन।
भूत भविष्यद् भुवना दुहान सर्वा देवाना चरति व्रतानि ॥२॥
इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचान।
सुप्रजा सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥३॥
अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐन प्याययति पवमान पुरस्तात्।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञ पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥४॥
यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता।
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा धर्मं नो ब्रूत यतश्चतुष्पात् ॥५॥
येन देवा स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोक धर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यव ॥६॥
इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापति परमेष्ठी विराट्। विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत। सोऽदृहयत सोऽधारयत ॥७॥

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥८॥
यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥९॥
पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥१०॥
द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनडुहो व्रतम् ॥११॥
दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यन्दिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः ॥१२॥

वृषभ जो गाडी को खीचता है अपने भार ढोने और जोतने के कारण रूप पृथ्वी का पोषक तथा वही चार पुरडाश की उत्पत्ति मे सहायक होने के कारण आकाश का भी पोषण करता है। वही अन्तरिक्ष और पूर्वादि दिशाओ का भी धारण-कर्ता है। इस भाँति वह अनड्वान वृषभ सब भुवनो मे उनकी रक्षा निमित्त प्रविष्ट होता है॥ १ ॥ यह वृषभ इन्द्र रूप मे दिखाई देता है। जैसे इन्द्र जलवृष्टि द्वारा इस जड चेतन विश्व का पोषक है, उसी भाँति यह अनड्वान वृषभ अपने वीर्य द्वारा पशु जगत की उत्पत्ति करता हुआ दूध दही धान्य आदि प्राप्त कराता हुआ ससार का पालन करता है। यह तीनो कालो म पदार्थो को उत्पन्न करता और यज्ञादि कर्मों को पूर्ण कराता है॥ २ ॥ मनुष्यो मे इन्द्र समान यह वृषभ सूर्य रूप से इस विश्व को प्रकाशित करता हुआ विचरण करता है। हमारे वृषभ की इस महिमा को जानने वाला पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न होता है और फिर इस जन्म के बाद दूसरा जन्म धारण नही करता अर्थात मोक्ष को प्राप्त होता है॥३॥ यज्ञादि कर्म करने वाले पुरुषो को यह वृषभ अक्षय पुण्य प्रदान करता है। सोम

यज्ञ मे सस्कारित सोम अपने रस से वृषभ को पूर्णता प्रदान करता है। वृष्टि वर्षक देव इसके धारा रूप तथा मरुत इसमे ऐन होते है। यह पूरा यज्ञ ही दुहने योग्य दुग्ध और दोहन क्रिया इसकी दक्षिणा है। अत अनडवान का दुहना ही अक्षय फल का दाता है ॥ ४ ॥ यजमान इस अनडवान का स्वामी नही है यज्ञ क्रिया, दान देने वाला और प्रति ग्रेहीता भी इसके स्वामी नही हैं। यह सपूर्ण विश्वविजेता वायु रूप विश्व का पालन कर्ता है। ससार मे किये जाने वाले सभी कर्म इसके है। यह चार पादोवाला हमको सूर्य की प्ररणा देता है ॥५॥ इस अनडवान् वृषभ के द्वारा हम सूर्योपासना करते हुए सुखेच्छा से उसी भाति पुण्य फल की प्राप्ति करते हैं जैसे इस भौतिक शरीर को त्याग कर यह देवता इसी वृषभ के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर स्वर्ग मे प्रविष्ट होते हैं ॥६॥ यह अनडवान् वृषभ इन्द्राकार अग्निरूप प्रजापति के समान हैं। यह तीनो ही वैश्वानर अग्नि मे एकाकार हो प्रविष्ट हो गये ॥७॥ वैश्वानर अग्नि म ब्रह्मा प्रविष्ट हुए और अनड्वान् वृषभ मे विराट एकाकार रूप होकर प्रविष्ट हुए अत यह वृषभ विराट तुल्य है ॥ ८ ॥ वृषभ के सप्त रहस्यमय दोहनो का जानकार पुरुष सन्तति एव शुभ कर्मो के फलस्वरूप स्वर्गादि लोको को प्राप्त करता है। इस समस्त तथ्य से सप्त ऋषि ही परिचित हैं ॥९॥ यह अनडवान् वृषभ अलक्ष्मी को उल्टे मुंह जमीन पर गिराकर उस पर सवारी करता है और अपनी जांघो से भूमि को खोदता हुआ अपने सामने चलने वाले किसान को अन्न प्रदाम करता है ॥ १० ॥ प्रजापति के यज्ञानुष्ठान सम्बन्धी व्रतोपयोग द्वादश रात्रियां विद्वाना के मनानुसार मानी गई है। इस अवधि मे प्रजापति रूप वृषभ को जो जानता है वही इस अनुड्व्रत का अधिकारी है। प्रजापति

सम्बन्धी यह ज्ञान ही अनुद्व्रत नाम का यज्ञ है ॥११॥ उपरोक्त वर्णित गुणो से युक्त वृषभ को मैं प्रातः एवं मध्याह्न-काल में दुहता हूँ। मत्र यजन कर्त्ताओं के फलो को भी दुहता हूँ। इस तरह इस दोहन क्रिया से जो सम्बन्धित होते हैं, उन अक्षय दोहन कर्मों से मैं भली-भाँति परिचित हूँ ॥१२॥

१२ सूक्त

(ऋषि–ऋभु. । देवता–रोहिणी वनस्पतिः । छन्द–गायत्री; अनुष्टुप्; वृहती ।)

रोहण्यसि रोहण्यनस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । रोयदेमरुन्धति ॥१॥
यद् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ॥२॥
सं ते मज्ञा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३॥
मज्ञा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४॥
लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ॥५॥
स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सेनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥६॥
यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥७॥

हे लालवर्ण की लाख ! तू घाव को भरने की सामर्थ्य रखती है। अतः तीक्ष्ण अस्त्र आदि के कटने से प्रवाहित होने वाले रक्त को तू वहीं रोक। इस गिरते हुए रक्त को शरीर में ही स्थिर रख ॥ १ ॥ हे पुरुष ! शस्त्रादि से घायल होने के

कारण पीडा से मेरा शरीर जलता है तथा मुद्गर के प्रहारों से तेरा शरीर चकनाचूर हो गया है। तेरे इन टूटे हुए अवयवों को विधाता लाख की मदद से जोड-जोड को मिला कर ठीक करदें ॥ २ ॥ हे पुरुष ! चोट के कारण तेरे शरीर से मज्जा पृथक हो गई है अथवा तेरी हड्डी टूट गई है। वह मज्जा और टूटी हड्डी पुन ठीक हो जाय तथा कटा हुआ मांस पहले जैसा हो जाय ॥ ३ ॥ मज्जा-मज्जा से युक्त हो, त्वचा-त्वचा से युक्त हो तथा हड्डी पर से गिरता हुआ रक्त पुन हड्डी को प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे लाख ! चोट के कारण अलग हुए, बाल को बाल से मिलाकर ठीक कर, त्वचा को त्वचा से मिला जिससे हड्डियों पर रक्त का उचित सचार हो। इस प्रकार जो भी शरीर का अवयव क्षत् हुआ हो उसे पुन स्वस्थ कर ॥ ५ ॥ हे पुरुष ! यदि अस्त्रादि की चाट से तेरे शरीर का कोई अवयव पृथक हो गया है तो तू मन्त्र तथा औषधि के सहारे उठ कर खडा हो। तू उसी भाँति सुदृढ शरीर वाला हो और उठ कर कार्यरत हो जिस प्रकार रथ भागता हुआ कार्यरत रहता है ॥ ६ ॥ शरीर का कटा हुआ कोई अङ्ग अथवा चोट के कारण शरीर में पीडा हो तो टूटी हुई हड्डी इस मन्त्र शक्ति से जुड जाय। यह अथर्व मन्त्र शरीर के क्षतविक्षत अङ्गो को जोड कर उसी भाँति ठीक करता है जैसे ऋभु रथ के विभिन्न भागो का जोड कर एक बनाता है ॥७॥

१३ सूक्त

(ऋषि—शन्ताति । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—अनुष्टुप् ।)

उत देवा अवहिन देवा उन्नयथा पुन ।
उतागश्चक्रुप देवा देवा जीवयथा पुन ॥ १॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः ॥२॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥
आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६॥
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७॥

हे देवताओ ! धर्म के विषय में इस बालक को आलस्यरहित बनाओ । विद्या और ज्ञानादि फल से इसे पूर्ण करो । अज्ञानता में इसके द्वारा कृत्य पापों से भी इसकी रक्षा करो । आयु-विनाशक पापों से इसकी रक्षा करते हुए इसे शतायु प्रदान करो ॥ १ ॥ प्राण और अपान दोनों ही प्रकार की वायु चर्म रोगों तथा उससे भी दूर शरीर में प्रवेश करें । वायु में स्थित प्राण तुझे शक्तिशाली बनाएं तथा अपान वायु तेरी पापों से रक्षा करे ॥ २ ॥ हे वायो ! समस्त रोग-विनाशक औषधि हमारे लिए लाओ । रोगोत्पन्न पापों से हमारा रक्षण करो । तुम सब रोगों को दूर करने की क्षमता रखते हो । देवताओं के दूत बन कर तुम विश्व रक्षार्थ विचरण करते हो और इन्द्रिय दूत बन कर उनका पोषण कर्म करते हो ॥ ३ ॥ इस उपनीत बालक की सब देव रक्षा करें । इन्द्रियों के स्वामी देवगण इन्द्रियों को कर्म-रत रखें । मरुद्गण, प्राण-अपान के गण तथा अन्य सभी प्राणी

इसकी उसी प्रकार रक्षा करें जिससे इसका पाप-कर्मो की ओर झुकाव न हो ।। ४ ।। हे उपनीत बालक ! मैं तुझे सुखकारी मन्त्रों एवं मङ्गलमय कार्यों द्वारा प्राप्त हुआ हूँ । मैंने तुझे असीम शक्ति से सम्पन्न किया है । तेरे शरीर से मैं यक्ष्मादि रोगों को भी दूर करता हूँ ।। ५ ।। मेरा यह ऋषि हस्त परम सौभाग्य प्रदान करने वाला है इस हस्त मे समस्त रोग-विनाशक औषधियों का प्रभाव विद्यमान है । मेरे इस गुणयुक्त हस्त के स्पर्श से तुझे सुख प्राप्त हो ॥ ६ ॥ हे उपनीत ! जिन प्रजापति द्वारा निर्मित वाणी रूप इन्द्रिय की आश्रयरूप जिह्वा प्रथम कार्यरत होती है, उन प्रजापति के हस्तों से तुझे स्पर्श कराता हूँ ।।७।।

१४ सूक्त

(ऋषि-भृगु । देवता-अग्नि. आज्यम् । छन्द-त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, जगती ।)

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ।।१।।
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिरादध्वम् ।।२।।
पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ।।३।।
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ।।४।।
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ।।५।।

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥६॥
पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥७॥
प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥८॥
शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः सम्भृतं विश्वरूपम् ।
स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रतितिष्ठ दिक्षु ॥६

पवित्र अग्नि ताप से उत्पन्न अज ने सर्वप्रथम अग्नि को देखा। इसी प्रथम उत्पन्न अज से इन्द्रादि देवगणों ने देवत्व प्राप्त किया तथा इसी साधन से ऋषिगणों ने उच्च लोकों की प्राप्ति की। इस प्रकार का अजात्मक यज्ञ देवत्व एवं उच्चलोकों की प्राप्ति को प्रदान करता है॥ १॥ हे मनुष्यो! अग्नि द्वारा यज्ञ करके तुम स्वर्ग समान श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त करो। फिर स्वर्ग में पहुँचकर देवों में स्थान ग्रहण करते हुए उनके समान ही वैभवशाली हो॥ २॥ मैं पृथ्वी से अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से स्वर्गलोक में चढ़ता हूँ जिसमें दुख का अभाव है। स्वर्गलोक के ऊपर व्याप्त सूर्य-मण्डल की ज्योति में अपने को मैं तल्लीन रखता हूँ॥ ३॥ यज्ञानुष्ठान से स्वर्ग प्राप्ति की कामना रखने वाले भौतिक सुखों की ओर ध्यान नहीं देते। जो यजमान, यज्ञ से परिचित हैं तथा उसे करते हैं, वे निश्चित ही तीनों लोकों पर विजयशील होते है॥ ४॥ हे अग्ने! तुम देवों के प्रमुख हो, इस यज्ञ में पधारो। यह अग्नि देव दूत होने से देवों को समान प्रिय है तथा नेत्रवन् है क्योंकि यह संसार के मनुष्यों

को श्रेष्ठ लोकों के दिखाने वाले हैं। इस अग्नि की यज्ञ उपासना करने वाले स्वर्ग प्राप्त करे ॥ ५ ॥ हविरूप अज घृत से युक्त यजमान को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने वाला है। इस प्रकार के अज द्वारा हम भी स्वर्गलोक को प्राप्त करें तत्पश्चात् सूर्य रूप परम ज्योति मे लीन हो जाय ॥ ६ ॥ पाँच भागो मे बँटने वाले इस अज के सिर रूप भाग को पूर्व दिशा मे तथा पाश्व भाग को दक्षिण दिशा म रखो ॥ ७ ॥ कटि भाग का पश्चिम म, उत्तर पाश्व को उत्तर मे पृष्ठ भाग को ऊपरी दिशा मे उदर भाग का नीचे की दिशा मे तथा अज के मध्य भाग की मध्य दिशा मे स्थापना करो ॥ ८ ॥ इस प्रकार सब अङ्गो से विश्व रूप बने सम्पूर्ण अज को परमात्मा के आच्छादन से आच्छादित कर। हे अज ! तू इस लोक से स्वर्गलोक की ओर प्रयाण करता हुआ समस्त दिशाओ मे व्याप्त होजा ॥९॥

१५ सूक्त

(ऋषि अथर्वा। देवता दिश प्रभृति। छन्द जगती त्रिष्टुप प्रभृति)

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वती समभ्राणि वातजूतानि यन्तु।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आप पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१॥
समीक्षयन्तु तविषा सुदानवोऽपा रसा ओषधीभि सचन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमि पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपा ॥२
समीक्षयस्व गायतो नभास्यपा वेगास पृथगुद् विजन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमि पृथग् जायन्ता वीरुधो विश्वरूपा ॥३॥
गणास्त्वोप गायन्तु मारुता पर्जन्य घोषिण पृथक।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४॥
उदीरयत मरुत समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आप पृथिवी तर्पयन्तु ॥५॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥६॥
सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥७॥
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८॥
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९॥
अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१०

पूर्व आदि दिशाएं बादलों सहित प्रकट हों । जलवर्षक बादल वायु से प्रेरणा पाकर तथा एकत्र होकर गरजते हुए पृथ्वी को तुष्ट करें ॥ १ ॥ मरुद्गण वृष्टि प्राप्त के हेतु बनें । जिससे पृथ्वी में बोये हुए जौ, धान्य आदि अन्नों के बीजों को वर्षा जल प्राप्त हो । वृष्टि धाराएं पृथ्वी को सिञ्चित करें जिससे नाना प्रकार के अन्न तथा औषधियाँ उत्पन्न हों ॥ २ ॥ हे मरुद्गणो ! हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हुए तुम जल युक्त मेघों का हमें दर्शन कराओ । जल धाराएं भिन्न-भिन्न मार्गों से प्रवाहित होते हुए पृथ्वी को भली-भाँति सिञ्चित करें जिससे पृथ्वी पर नाना प्रकार के धन-धान्य तथा औषधियाँ उत्पन्न हों ॥ ३ ॥ हे पर्जन्य ! गड़गड़ाते हुए मरुद्गण तुम्हारे स्तुति करने वाले हों । तुम वृष्टि बूंदों से पृथ्वी को सिञ्चित करदो ॥४॥ हे मरुद्गण ! वर्षा के जल को समुद्र से ऊपर उठने के लिए प्रेरित करो । वृषभ के समान दहाड़ने वाली जल धाराएं पृथ्वी को सिञ्चित करें ॥ ५ ॥ हे पर्जन्य ! चहुँ ओर से घोर गर्जना करो । मेघों में घुम कर घोष ध्वनि करो । तुम्हारी प्रेरणा

पाकर मेघ जल बरसावे। सूर्य अपनी किरणो को समेटते हुए छिप जाँय ।। ६ ।। हे मनुष्यो ! उत्तम दानशील मरुद्गण तुम्हे तुष्ट करे। अजगर सदृश्य मोटी धाराएं प्रवाहित हो तथा तुमसे प्रेरणा पाये हुए मेघ पृथ्वी पर जल वर्षा करें ।। ७ ।। मेघो को प्रेरित करने वाली वायु प्रत्येक दिशा मे प्रवाहित हो तथा प्रत्येक दिशा मे विद्युत प्रकाशित हो तथा वायु द्वारा प्रेरित मेघ पृथ्वी पर जल बरसाने के उद्देश्य से एकत्रित हो ।। ८ ।। हे श्रेष्ठ दानशील मरुद्गण ! जल युक्त मेघ, जल, विद्युत वर्षा का जल तथा अजगर सदृश्य मोटी धाराएँ विश्व को तृप्त प्रदान करने वाली हो। मरुद्गणो से उत्पन्न विद्युत रूप अग्नि वनस्पतियो का स्वामी है। वह अग्नि जीवधारियो को प्राणदायिनी और अमृतोपम वृष्टि प्रदान करे ।।१०।।

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नु दधिमर्दयाति ।
प्र प्यायता वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ।।११।।
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपा वरुणाव ।
नीचीरप सृज । वदन्तु पृश्निवाहवो मण्डूका इरिणानु ।।१२।।
सवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाच पर्जन्यजिन्विता प्र मण्डूका अवादिषुः ।।१३।।
उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि ।
मध्ये ह्रदस्य स्रवस्य विगृह्य चतुर. पदः ।।१४।।
खण्वखाइ खैमखाइ मध्ये तदुरि ।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुता मन इच्छत ।।१५।।
महान्त कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युत भवतु वातु वातः ।
तन्वता यज्ञ बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ।।१६।।

हे प्रजापति रूप सूर्य ! समुद्र से वर्षा युक्त जलो को

प्रेरित करो । वे अश्व के समान तीव्रगामी व्यापन शील वर्षारूप वीर्य समृद्धि को प्राप्त हो । हे पर्जन्य ! इस वृद्धि को प्राप्त हुए वीर्य सहित तुम हमारे सन्मुख पधारो ॥ १ ॥ वृष्टि का जल प्रदान करते हुए सूर्य तिर्यक वृष्टि कर प्राणी को तुष्ट करें । फिर बजर भूमि पर श्वेत भुजाओ वाले मेढक सुन्दर घोष करें ॥२॥ सदाचारी ब्राह्मण के समान समस्त वर्ष ग्रीष्म शीत आदि का कष्ट सहन करते हुए निद्रा मग्न मेढक वृष्टि जल से निद्रा युक्त हो मेघो के प्रति सुन्दर श्रेष्ठ स्वरो मे घोष करें ॥ १३ ॥ हे मेढक ! तू हर्षोन्मत्त हो श्रेष्ठ शब्द उच्चारित कर । हे मेढक ! वृष्टि जल से युक्त सरोवर मे तैरता हुआ तू जल वपरा के समान ही घोष कर ॥ १४ ॥ हे खण्वखे ! हे कमख ! हे तादुरि ! तुम तीनो प्रकार के मेढक अपने शब्द घोष से जल वृष्टि प्रदान करा । हे मेढको ! तुम मरुद्गण के हृदय म जो जल वर्षण की कामना रखते हैं अपने शब्द घोषो से वृष्टि करने के लिए प्रेरित करा ॥ १५ ॥ हे पर्जन्य ! तुम समुद्र से मेघो का लाकर पृथ्वी को चहुँओर से सिञ्चित करो । वायु वृद्धि करने योग्य हो अन्तरिक्ष विद्युत से युक्त हो तथा जल अनेक प्रकार के यज्ञ कर्मों को बढावें । जल-वृष्टि से जौ,धान्य तथा औषधियाँ परिपुष्ट हो ॥१६॥

१६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वरुण । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् जगती)

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदु ॥१॥
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति य प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीय ॥२॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३॥
उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्याते वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४॥
सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि
ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६॥
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं स्रंसयित्वा कोशइवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७
यः समाम्यो वरुणो यो व्याम्यो यः सन्देश्यो वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८॥
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥९॥

समस्त अक्षय एवं नाशवान पदार्थों के ज्ञाता महान वैभवशाली पापाचारी शत्रुओं के नियंत्रण कर्ता एव नियामक वरुणदेव अतीन्द्रिय ज्ञानवान होने के कारण सब कुछ जानने वाले हैं ॥१॥ राजा वरुण सर्वज्ञ होने के कारण पापाचारी लोगो को दण्ड देने में समर्थ हैं क्योंकि वे ठगों को छिपकर या दृश्यारूप से विचरण करने वाले शत्रु अथवा कठिनता से जीवनयापन करने वालों को पहचानते है ॥२॥ यह पृथ्वी यह विस्तृत द्युलोक वरुण के अधीन हैं तथा पूर्व पश्चिम दिशाओं के दोनों समुद्र भी वरुण देव के दक्षिण उत्तर में पार्श्व समान स्थित हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि को व्याप्त करने वाले वरुण देव सरोवर के थोड़े जल में भी मौजूद हैं ॥३॥ पापाचारी कुपथ पर चलने वाला शत्रु वरुणदेव के पाश से कभी मुक्त न होने पावे। वरुण

के दूत इस पृथ्वी पर घूमते हुए सब वृतान्तों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने की सामर्थ्य रखते है ।।४।। द्यावा पृथ्वी के मध्य निवास करने वाले तथा अपने सामने रहने वाले प्राणियों को वरुणदेव भली भाँति जानते है। इसी कारण उनके सभी अच्छे बुरे कर्मानुसार पापियों को जुआरी द्वारा पाँसा फेंकने के समान उठाकर फेंकते हैं ।।५।। हे वरुण ! तुम्हारे उत्तम मध्यम और अधम सात-सात पाश पापाचारियों को बन्धन-ग्रस्त करने के लिए चारो ओर फैले हुए है ये सत्य पाश असत्य भाषी पापी शत्रु को संतापित करने वाले हो तथा पुण्यशील व्यक्तियों को सुखकारी हो ।। ६ ।। हे वरुण ! इस असत्य भाषी शत्रु को बाँधकर दण्ड दो यह तुम्हारे दण्ड से बच न पावे तथा इसका उदर जलोदर से नष्ट होता हुआ क्षीणता को प्राप्त हो ।।७।। वरुण का साधारण पाश साधारण रूप से रोगी बनाता है, व्याम्य नामक पाश विविध रूपों से रोगी बनाता है, सदेश्य नामक पाश, समान देश में, विदेश्य विदेश में, देवपाश देवताओ मे तथा मनुष्य पाश मनुष्यों पर प्रभाव डालता है ।।८।। हे अमुक नाम, अमुक गोत्र, अमुक माता के पुत्र। पूर्व माला मे वर्णित वरुण देव के समस्त पाशो से मैं तुझे बाँधता हूँ और तुझ शत्रु को उन पाशो के अधीन करता हूँ ।।९।।

१७ सूक्त

(ऋषि—शुक्र. । देवता—अपामार्गो वनस्पतिः ।छन्द—अनुष्टुप्)

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ।।१।।
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्वाय्योषधीरितो नः पारयादिति ।।२।।
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।

या रसस्य हरणाय जातमारेमे तोकमत्तु सा ॥३॥
यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४॥
दौःष्वप्न्यं दौर्जिवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥
क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥६॥
तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७॥
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म अस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८॥

हे सहदेवी ! तू औषधि रूप से ली जाने वाली समस्त औषधियों की अधीश्वरी है। शत्रु द्वारा कृत्य अभिचार दोष विनाशार्थ हम तुझे छूते हैं तथा समस्त दोष निवारणार्थ तुझे सामर्थ्य प्रदान करते हैं ॥१॥ अभिचार दोष विनाशक सत्याजित अभिचारों को सहन करने वाली सहनामा दूसरो के क्रोध को दूर करने वाली शपथयावनी और विविधि रोग नाशिनी पुनः सरा इन औषधियो को अन्य औषधियाँ कृत्या दोष निवारणार्थ प्राप्त होती है ॥२॥ क्रोधपूर्ण शाप द्वारा सज्ञा शून्य करने वाली पिशाची अथवा शरीर का रक्त चूसने के उद्देश्य से जो पिशाची पुत्र का आलिंगन करे, ऐसी सब पिशाची अभिचार करने वाले के पुत्र का ही भक्षण करें ॥३॥ हे कृत्ये ! अभिचार करने वालो ने धुँएं से नीली और ज्वालाओ से लाल तुझे अग्निस्थान में स्थापित किया है कच्चे मृतपात्र या मांस आदि में स्थापित किया है तो तू अभिचारो का हो विनाश कर ॥४॥ हम इस कृत्या दोष पीडित व्यक्ति से दु.स्वप्नो को, राक्षस राक्षसियों

को तथा कृत्या से उत्पन्न भीषण भय को दूर करते हैं ॥५॥ भोजन और पानी के अभाव में भूख प्यास से मरते हुए अथवा भूख प्यास नष्ट होने के कारण मरते हुए, गौ और सन्तति के नष्ट होने पर हे उपामार्ग ! तुझ साधन रूप द्वारा हम इन दुखों से त्राण पाते हैं ॥६॥ भूख या प्यास से प्राण त्यागना, जूए में हारना आदि दुखों को हे अपामार्ग ! तेरे द्वारा दूर करतेहैं ॥७॥ हे कृत्या दोष पीडित पुरुष ! अभिचार द्वारा उत्पन्न व्याधियों को हम अपामार्ग से नष्ट करते हैं फिर तू स्वस्थ होकर दीर्घकालतक जीवन यापन कर । यह अपामार्ग अन्य सब औषधियों का शिरोमणि है ॥१८॥

१८ सूक्त

(ऋषि-शुक्रः । देवता-अपामार्गो वनस्पतिः । छन्द-अनुष्टुप्)

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तुकृत्वरीः ॥१॥
यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२॥
अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ॥३॥
सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ्छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां या ते पुरुषेषु ॥५॥
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमंगुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥६॥
अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥७॥

अपमृज्य यातुधानाप सर्वा अराय्यः।
अपामार्ग त्वया वयं सर्व तदप मृज्महे ॥८॥

चन्द्रमा की रोशनी सूर्य की बराबरी करती है तथा रात्रि-दिन की प्रतिद्वन्दिनी है अर्थात् इस पूर्णचन्द्र से प्रकाशित रात्रि मे जो दिन के समान प्रकाशमान है, मैं यह औषधि रूप जड़ी प्राप्त करता हूँ जो हिंसात्मक कृत्या दोषो को नष्ट करने मे पूर्ण समर्थ है ॥ १ ॥ हे देवताओ ! जो शत्रु संतापदायिनी कृत्या को गाढता है, कृत्या लौट कर उस अभिचारी को ही इस प्रकार आलिगन करे जैसे गौ वत्स दूध, पीने के लिए अपनी माता गौ से चिपट जाता है ॥ २ ॥ जो साथी विश्वासघात करता हुआ कृत्या गाढ कर हमे मारना चाहता है, उस शत्रु की कृत्या विरोधी कर्म द्वारा नष्ट हो जाय तथा मन्त्र शक्ति से उत्पन्न पाषाणो द्वारा उस दुष्ट का सहार हो ॥ ३ ॥ हे सहदेवी ! अनेक स्थानो मे उत्पन्न तू हमारे शत्रुओ की गर्दन काट तथा उन्हे केशरहित कर नष्ट कर डाल। तू शत्रुओ द्वारा प्रेषित कृत्या को उन्ही पर लौटा दे ॥ ४ ॥ जो कृत्या खेत मे, गौशाला मे हमारे चलने वाले मार्ग मे अथवा वायु चलने के मार्ग मे गाढी गई हो, ये सब कृत्याएँ इस सहदेवी के प्रभाव से विनष्ट हो जाँय ॥ ५ ॥ जो अभिचारी कृत्या द्वारा एक पाँव व एक उँगली को नष्ट करना चाहता है, वह अपने उद्देश्य मे विफल हो और उसका दूषित कर्म औषधियाँ और मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से विनष्ट होकर हमारे लिए कल्याणकारी होता हुआ उसी अभिचारी को कष्टकारी सिद्ध हो।६। हे अपामार्ग ! क्षेत्रिय रोगो को तथा शत्रु के क्रोध को हमसे दूर रख। पिशाची आदि राक्षसियो को बाँध कर हमसे दूर कर ॥ ७ ॥ हे अपामार्ग !

तू यक्षादि राक्षसों, पिशाचनियों और पाप देवताओं को हमसे अलग कर ॥८॥

१६ सूक्त

(ऋषि-शुक्रः। देवता-अपामार्गो वनस्पतिः। छन्द-अनुष्टुप्,पङ्क्तिः)

उतो अस्यबन्धुनकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम् ॥१॥
ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२॥
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥३॥
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥
विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५॥
असद् भूम्याः समभवत् तद् यामेति महद् व्यचः।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥६॥
प्रत्यङ् हि सम्बभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम्।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७॥
शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८॥

हे सहदेवी! तू शत्रु विनाशिनी है। तू अभिचार करने वाले शत्रु की सन्तति को वर्षा में पैदा होने वाली नड घास के समान ही काट कर नष्ट करदे ॥ १ ॥ हे सहदेवी! नृपद पुत्र कण्व ऋषि ने तुझे यज्ञ द्वारा सशक्त बनाया। तू यजमान के रक्षार्थ धनुष से छोड़े गए तीर के समान गमन करती है। जहाँ

तक तेरा प्रभाव क्षेत्र है, वहां किसी प्रकार का भय अथवा खतरा उपस्थित नही होता ॥ २ ॥ जैसे प्रकाशों मे सूर्य का प्रकाश सर्वोपरि है, उसी प्रकार औषधियो मे हे सहदेवी ! तू सब श्रेष्ठ है । तू सीधे सच्चे मनुष्या की रक्षक है तथा राक्षसो का सहार करने वाली है ॥ ३ ॥ एक बार आवश्यकता पडने पर देवगणो ने तेरी सहायता से असुरो पर विजय प्राप्त की थी । तू अन्य औषधिया से श्रेष्ठ होती हुई अपामार्ग से उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥ हे सहदेवी ! तू सहस्त्रा शाखाओ वाली विभिन्दती भी कहलाती है क्योकि तेरे पिता का नाम विभिदन है । अत तू उस व्यक्ति का जो हमारे साथ शत्रुवत् व्यवहार करता है विनाश कर ॥ ५ ॥ हे औषधे ! चहुँ ओर फैला हुआ तेरा तेज जिस भूमि को प्राप्त होता है, उसमें अभिचारी द्वारा गाढी हुई कृत्या प्रभावहीन हो जाती है तथा यह प्रभावहीन कृत्या वहां से निकल कर उस अभिचारी को ही नष्ट करे ॥६॥ हे सहदेवी ! तू अभीष्ट दाता है । तू शत्रु के उत्पातों को हमसे दूर रख तथा उन्ह उसी शत्रु के पास प्रेषित कर । शत्रु की कृत्या को हमसे दूर ही रख ॥ ७ ॥ हे अपामार्ग ! तू रक्षा के समस्त साधनो सहित हमारी रक्षा कर एव कृत्या दोष से मुक्त कर । परम तेजस्वी इन्द्र देव मुझे तेज प्रदान करें ॥८॥

२० सूक्त

(ऋषि—मातृनामा । देवता—औषधि । छन्द—अनुष्टुप् ।)

आ, पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिव्यमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥१॥
तिस्रो दिवस्तिस्र. पृथिवी षट् चेमा प्रदिश पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२॥

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३॥
ता मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४॥
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥
उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥८॥
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥९॥

हे सदम्पुष्प ! तेरी मणि को धारण कर यह व्यक्ति आगत वर्तमान तथा दूरस्थ भय को देखता है । द्यु वा पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष म निवास करने वाले समस्त प्राणियो को यह मणि धारण करने वाला देखने मे समर्थ होता है ॥ १ ॥ हे सदम्पुष्पा नाम्नी औषधि ! तीन स्वर्ग, तीन पृथ्वी, तीन ऊपर तथा तीन नीचे की दिशाएँ तथा इन सबके निवासियों को भी मैं तेरी धारण की हुई मणि के प्रभाव से स्पष्ट देखता हूँ ॥ २ ॥ हे औषधे ! तू दिव्य रूप सुन्दर पङ्खा वाले गरुण के नेत्रो की कनीनिका रूप है । जैसे थकित स्त्री पालकी पर चढती है, उसी भाँति तू गरुण के नख से भूमि पर अवतीर्ण हुई है ॥ ३ ॥ परम वैभवशाली इन्द्र ने सदम्पुष्पा को मेरे सीधे हाथ म धारण कराया । हे औषधे ! मैं तेरे प्रभाव से ब्राह्मण आदि चारो वर्णों

को अपने वश मे करता हूँ, साथ ही अपने शत्रु राक्षसादि को भी पराभूत करने का यत्न करता हूँ ॥ ४ ॥ हे सदम्पुष्पे ! गुप्त रूप से रहने वाले राक्षसो पर ध्यान रखती हुई हमारी रक्षा कर । तू अपने रूप को रहस्यमय मत बना अपितु उस रूप को दिखा जिसके द्वारा तू राक्षसादि का सहार करती है ॥५॥ हे ओषधे ! तू मुझे उन राक्षसो को दिखा जो गुप्त रह कर हमे पीडा देते है । उन राक्षसियो को भी दिखा। इसी उद्देश्य से मैं तुझे धारण करता हूँ ॥ ६ ॥ हे सदम्पुष्पे ! तू कश्यप ऋषि एव कुक्कुरी सरमा का नेत्र रूप है । अन्तरिक्ष मे सूर्य समान विचरणशील राक्षसो को हमसे न छुपा ॥७॥ मैंने रक्षा साधन द्वारा पिशाच को वश मे कर लिया है । अब इसके प्रभाव से मैं नीच और उच्च जाति के समस्त ग्रहो को देखने की सामर्थ्य रखता हूँ ॥ ८ ॥ जो राक्षस अन्तरिक्ष मे गतिमान होता हुआ पृथ्वी को अपने अधिकार क्षेत्र मे समझता है ऐसे तीनो लोको मे स्थित पिशाच को मुझे दिखा । इसका मैं उपाय करता हूँ ॥६॥

२१ सूक्त (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—गाव । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती ।)

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रत्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥
इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम ॥२॥
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभि सचते गोपतिः सह ॥३
न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गाव सोमस्य प्रथमस्य भक्ष ॥
इमा या गाव स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥
यूय गावो मेदयथा कृश चिदश्रीर चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्र गृह कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥६॥
प्रजावती सूयवसे रुशन्ती शुद्धा अप सुप्रपाणे पिबन्ती ।
मा व स्तेन ईशत माघशस परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥७॥

गौएँ आवें और हमारा कल्याण करें । वे गौशाला म रह कर हमे दुग्धादि प्रदान कर तृप्त करें । सन्ततिवान विभिन्न वर्णों की गाए यजमान के घर म वृद्धि को प्राप्त हो और अनेक उषा वालो म दुग्ध प्रदान करती हुई इन्द्रदेव का आह्वान करने वाली हो ॥ १ ॥ इन्द्र अपनी स्तुति करने वाले को गौए प्राप्त करने का साधन बताते है तथा गौए भी प्रदान करते है । वे स्तुतिकर्ता तथा यजमान का धन कभी हरण नही करत । सूर्य इस यजमान और स्तुतिकर्ता को स्वर्ग म स्थापित करते हैं, उस स्वग मे जिसम अयाज्ञिक का प्रवेश वर्जित है ॥ २ ॥ इन्द्र द्वारा दी हुई गायें नष्ट न हो, चोर भी उन्हें न चुरा सकें । शस्त्रो द्वारा भी इन्हे कोई आघात न पहुँचे । यजनकर्ता जिन गौओ के दुग्ध से देवगणो का पूजन करते हैं तथा जिन गायों को दक्षिणा मे दान देते हैं,वह यजनकर्ता बहुत काल तक गौधन से परिपूर्ण रहे ॥ ३ ॥ हिंसक जन्तु इन गौओ के समीप न आ पावें । गौए कसाई की ओर न जा पावें । वे इस यजमान के निर्भय स्थान की ओर प्रयाण करें ॥ ४ ॥ इन्द्र ऐसा उपाय करें कि मैं अनेक गौओ का स्वामी बनूं क्योकि गौए ही मनुष्य का धन हैं । अभिषुत सोम दुग्ध म ही मिश्रित किया जाता है । हे मनुष्यो ! यह गौए ही इन्द्र हैं । इनके दुग्ध घृतादि रूप

आहुति द्वारा मैं हृदय से इन्द्र की उपासना करता हूँ ॥ ५ ॥ हे गौओ ! तुम अपने दुग्ध से इस शक्तिहीन पुरुष को पुष्ट एवं सशक्त बनाओ । विकृताङ्ग को सुन्दर अङ्ग वाला बनाओ एव हमारे घरो को सज्जित करो । तुम्हारे द्वारा प्रदन्त दुग्ध घृतादि परम प्रशसनीय है ॥ ६ ॥ हे गौओ ! सुन्दर घास चरती हुई स्वच्छ जल पीओ । तुम सन्ततिवान हो तथा हिंसक जन्तु तुम्हे न पा सकें तथा चोर भी तुम्हे न चुरा सकें । रुद्रदेव के क्रोधरूपी अस्त्र से भी तुम बची रहो ॥ ॥

२२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ अथर्वा व । देवता—इन्द्रः क्षत्रियो राजा । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वास्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥१॥
एम भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥२॥
अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥३॥
अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघेइव धेनू ।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४॥
युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्र येन जयन्ति न पराजयन्ते ।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥५॥
उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥६॥
सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥७॥

हे इन्द्र ! इस राजा को सन्तति, पशुधन, रथ अन्य धन-धान्य से पूर्ण करो। यह राजा वीर पुरुषो मे अग्रणी हो तथा इसके समस्त शत्रुओ को तेज-हीन कर, इसके अधीन करो। मैं अपने मन्त्र-शक्ति से इसे श्रेष्ठ पृथ्वीपति बनाता हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! इस राजा को प्रजा के साथ मेल से रहना सिखाओ एव इसके शत्रुओं को धन-हीन करो। यह राजा सब राजाओ का शिरोमणि हो। सब राष्ट्र और शत्रु इसके अधीन हो ॥ २ ॥ यह राजा स्वर्ण आदि धनो का एव अपनी प्रजा का अधिपति हो। हे इन्द्र ! इस राजा को शत्रु विनाशक तेज प्रदान करो ।३। हे द्यावा पृथ्वी ! हमारे राजा को परम वैभव प्रदान करो। जैसे दोहनकर्ता को गौ पर्याप्त दुग्ध प्रदान करती है, उसी भाँति इसे धन प्रदान करो। धन वृद्धि होने पर यह राजा यज्ञादि कर्म करके इन्द्र का स्नेह-भाजन बनें तथा वृष्टि होने पर औषधियो और पशुओ का भी स्नेह-भाजन बने ॥ ४ ॥ हे राजन् ! महान् वैभवशाली इन्द्र को मैं तेरा मित्र बनाता हूँ। इन्द्र से प्रेरित हो तेरे मित्र शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करें। मैं उन इन्द्र को तेरा मित्र बनाता हूँ, जो मुझे वीरो मे परम श्रेष्ठ बनाने की सामर्थ्य रखते है तथा जिन्होंने पुरुखा आदि राजाओ को अत्यन्त पराक्रमी और वैभवशाली बनाया था ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे शत्रु तुमसे पराभूत हो तथा महान् और श्रेष्ठ पद प्राप्त करो। इन्द्र की मित्रता प्राप्त कर वृषभ सदृश्य पराक्रमी बन शत्रुओ के धन-धान्य को छीन कर लाने मे समर्थ हो ॥ ६ ॥ हे राजन् ! अपनी प्रजा पर सुन्दर सुचारु ढङ्ग से शासन करो। तुम हिंसक जन सदृश्य शत्रु पर आक्रमण कर उन्हे सन्तापित करो तथा उनके समस्त वैभव को ध्वस करदो ॥७॥

---

२३ सूक्त

ऋषि–मृगार । देवता–अग्नि । छन्द–त्रिष्टुप, अनुष्टुप् पंक्ति)
अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतस पांचजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहस ॥१॥
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञ कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥
यामन्यामन्नुपयुक्त वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृध घृताहुत स नो मुञ्चत्वंहस. ॥३॥
सुजात जातवेदसमग्निं वैश्वानर विभुम् ।
हव्यवाह हवामहे स नो मुचत्वहसः ॥४॥
येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुरामयुवन्त भाया ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५॥
येन देवा अमृत मन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
येन देवा स्व राभरस्स नो मञ्चत्वहस. ॥६॥
यस्येद प्रदिशि यद् विरोचते यज्जात जनितव्य च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वहसः ॥७॥

मैं उस अग्नि के प्रति अपने ध्यान को केन्द्रित करता हूँ जो महान मेधावी है तथा जिसकी आराधना पचयागी एव गन्धर्व अप्सरा देवता राक्षस आदि सभी करते है। हम उस अग्नि की स्तुति करते है जो जठराग्नि के रूप मे सब प्राणियो मे विद्यमान है। यह अग्नि हमारा शत्रुओ से रक्षण करे ॥ १ ॥ जिस प्रकार तुम हवि को देवो तक पहुँचाते हो तथा जातवेद होने के कारण यज्ञो को सुचारु रूप से सपन्न कराते हो उसी भाति हमारे द्वारा की गई प्रार्थना को देवो तक पहुँचाओ। अग्नि हमारी शत्रुओ से रक्षा करे ॥२॥ यज्ञस्तम्भ देवदूत अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। यह अग्नि

राक्षसों के सहारक एव यज्ञों को सपन्न करने वाले है। उस अग्नि को हम घृताहुतियो से प्रज्वलित करते हैं वे पापो से हमारी रक्षा करें ।।३।। हम उस जातवेद, हविवाहक मनुष्यो का कल्याण करने वाले अग्निदेव का आह्वान करते हैं, वे हमारी शत्रुओ से रक्षा करें ।।४।। जिन अगिरा ऋषियो ने अग्नि के साथ मित्रता स्थापित कर आत्म शक्ति प्राप्त की तथा जिन देवगणो ने आसुरी माया से मुक्ति पाई तथा पणि नामक असुरो को जीता वे अग्नि पापो से हमारी रक्षा करें ।।५।। इन्द्र आदि देवताओ ने जिस अग्नि की सहायता से अमृत को प्राप्त किया और जिनके द्वारा वनस्पतियो को मधुर रसयुक्त बनाया तथा जिस अग्नि की उपासना कर यजमान व स्तोता स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं वे अग्नि हमें पापो से मुक्त करें ।।६।। मैं उस अग्निदेव का पुनः पुन आह्वान करता हूँ जो ससार का विनायक है, जगत के प्राणियो का स्वामी है तथा जिसके तेज से समस्त ग्रह नक्षत्र आदि प्रकाशित होते है ।।७।।

२४ सूक्त

(ऋषि-मृगार । देवता-इन्द्र । छन्द-शक्वरी, त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुष सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वहस. ।।१।।
य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवाना बलमारुरोज ।
येन जिता. सिन्धवो येन गाव स नो मुञ्चत्वंहस. ।।२।।
यश्चर्षणिप्रो वृषभ स्वर्विद् यस्मै ग्रावाण· प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वर· सप्तहोता मदिष्ठ स नो मुञ्चत्वंहस ।।३।।
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयते स्वरव स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्र पवते ब्रह्मशुम्भित· स नो मुञ्चत्वंहसः ।।४।।

यस्य जुष्टिं सोमिन. कामयते यं हवंत इषुमन्त गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्का शिश्रिये यस्मिन्नाज स नो मुञ्चत्वंहस. ॥५॥
य प्रथमः कर्म कृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहस ॥६॥
य सङ्ग्रामान् नयति सयुधे वशी य. पुष्टानि ससृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्र नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहस. ॥७॥

मैं सदैव अकेले इन्द्र का ही ध्यान करता हूँ जो शत्रु-विनाशक है। मेरी यह उच्च घोषित स्तुतियाँ इन्द्र को प्राप्त हो जो सदैव ही पवित्र स्तोताओ की स्तुतियो को सुनने को तत्पर रहते हैं। वे इन्द्र हमारी पापो से रक्षा करें ॥१॥ ये इन्द्र जिन्होने अपनी पराक्रमी भुजाओ से अपने शक्तिशाली शत्रुओ पर विजय प्राप्त की तथा जिन्होने असुरो की शक्ति को ध्वस किया, जिन्होने वृत्र का सहार कर नदियो और समुद्रो को उससे प्राप्त किया, वे इन्द्र हमारी पापो से रक्षा करे ॥२॥ वे इन्द्र जो अभीष्ट फल प्रदाता हैं, जो स्वर्ग की प्राप्ति कराने मे समर्थ है, तथा जिनके पानार्थ सोम अभिषुत किया जाता है तथा जिनका सोमयाज्ञ सात होताओ द्वारा सपन्न किया जाता है वे इन्द्र हमे पापो से मुक्त करे ॥३॥ जिन इन्द्र के यज्ञ के निमित्त वृषभ और वन्ध्या गौ होते है तथा अवटो मे यूपो की स्थापना की जाती है जिनके लिए सोमरस निष्पन्न किया जाता है, वे इन्द्र हमारी पापो से रक्षा करें ॥४॥ सोम अर्पित करने वाला यजमान जिन इन्द्र की कृपा प्राप्त हेतु कामना करता हूँ तथा गौओ को पणियो द्वारा चुरा ले जाने पर जिनका आह्वान किया जाता है तथा जो परम वीर हैं वे इन्द्र हमे पापो से मुक्त करें ॥५॥ जो इन्द्र कर्म केलिए प्रख्यात हैं जिनके वृत्रासुर सहार आदि कार्य स्तुत्य है जिनके वज्र ने वृत्र को नष्ट किया वे इन्द्र हमारी पापो से रक्षा करें ॥६॥ वे इन्द्र जो महान पराक्रमी हैं

तथा जो युद्ध क्षेत्र में सेनाका नायकत्व ग्रहण करते हैं, मैंउन इन्द्र की पुनः पुन. स्तुति करता हूँ, वे हमारी पापो से रक्षाकरे ॥७॥

२५ सूक्त

(ऋषि–मृगारः । देवता–वायुसवितारौ । छन्द–त्रिष्टुप्; पथ्याबृहती)

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशयो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चत मंहसः ॥१॥
ययोः सङ्ख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे
ययोः प्रायं नांवानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहस ॥२॥
प्र सुमतिं सविशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यू र्जया सृजयः सं वलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मताति मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयथाः ।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७॥

वायु और सूर्य के कार्य कलापो से हम परिचित हैं। हे वायो ! हे सूर्य ! तुम समस्त जीवधारियों में स्थित रह ससार का रक्षण करते और उसे धारण करते हो। तुम हमारा सब अनर्थों की जड़ पाप से रक्षण करो ॥१॥ वायु और पृथ्वी के महान कार्य प्रख्यात हैं। वे आकाश मे जल को धारण करते हैं तथा कोई देवता श्रेष्ठ ढङ्ग से चलने मे उनकी बराबरी नहीं कर सकता। वे दोनों हमें पापो से मुक्त करें॥ २ ॥ हे सूर्य ! मनुष्य नियमाधीन रहकर तुम्हारी उपासना करते हैं। तुम्हारे उदय

होते ही समस्त प्राणी अपने-अपने कार्यों मे सलग्न हो जाते है। हे वायो एव सूर्य ! तुम दोनो ही प्राणियो के रक्षक हो अत. पापो से हमे मुक्त करो ॥ ३ ॥ हे वायो ! हे सूर्य, तुम दोनो राक्षसो और कृत्यादि से हमारी रक्षा करो। हम पुष्टिवान एव सशक्त हो तथा तुम हमारी पापो से रक्षा करो ॥४॥ सविता देव मुझे वैभव प्रदान करें, शरीर मे शक्ति दें तथा सुखी बनायें। वायु और सूर्य इस यजमान को स्वस्थ एव तेजवान बनायें ॥५॥ हे सूर्य एव वायो ! इस आनन्दकारी सोम का पान कर हमे हमारी रक्षा के निमित्त सुबुद्धि प्रदान करो एव हमारी पापो स रक्षा करो ॥६॥ वायु और सूर्य के निमित्त हमारी श्रेष्ठ फल युक्त स्तुतियाँ अर्पित हैं। ये दोनो देवता हमारा पापो से रक्षण करें ॥७॥

२६ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि-मृगार । देवता-द्यावापृथिवी । छन्द-जगती; त्रिष्टुप्)

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता ।
योजनानि प्र तिष्ठे ह्यभवतं वसूना ते नो मुञ्चतमंहसः ॥१॥
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूना प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवत मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥२॥
असन्तापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवत मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥३॥
ये अमृत बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवत मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४॥
ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवत मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवत मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६॥

यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृत पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहस ।।७।।

हे ऐश्वर्य मपन समचित्त वाले द्यावा पृथ्वी ! मैं तुम्हारे वैभव से परिचित तुम्हारी उपासना करता हूँ । तुम देवता और मनुष्य दोनो के ऐश्वर्य के निमित्त रूप हो एव असीम पथो वाले और महान व्यापक हो । तुम दोनो पापो से हमे मुक्त करो ।।१।। हे पृथ्वी एव द्युलोक ! तुम धनो को स्थापित करने वाले हो, सब प्राणियो के स्वामी हो महान दानी एव सब प्रकार से कल्याण रूप हो । तुम मेरे सुख मे कारण रूप बनो और हमको पापो से मुक्त करो ।। २ ।। सब प्राणियो के दुखहरण कर्ता गम्भीर, व्यापक, स्तुत्य ऐसे गुणयुक्त द्यावा पृथ्वी का मैं आह्वान करता हूँ कि वे मुझे सुखकारी हो एव पापो से मेरी रक्षा करें ।।३।। हे द्यावा पृथ्वी ! तुम समस्त जीवधारियो मे प्राणो को स्थापित करने वाले हो एव चरु पुरोडाश आदि हवियो के ग्रहण कर्ता हो । तुम नदियो को भी धारण करते हो । मेरे निमित्त सुख के कारण बनो एव पापो से मुझे मुक्त करो ।।४।। हे द्यावा पृथ्वी ! तुम गौवो को स्वस्थ बनाने वाले हो, वनस्पतियो के पोषक हो । तुम्हारे मध्य निवास करने वाले समस्त प्राणी तुम दोनो सहित मेरे सुख के कारण बने एव मेरी पापो से रक्षा करें ।। ५ ।। हे द्यावा पृथिवी ! तुम विश्व के पालन कर्ता हो एव प्राणियो को अन्न जल प्रदान कर तुष्ट करते हो । तुम्हारे अभाव मे कोई भी प्राणी कोई कार्य नही कर सकता । तुम हमारे लिए सुख के कारण बनो और पापो से हमारी रक्षा करो ।।६।। जिन मनुष्य कृत अथवा देव कृत पापो से मैं दुख ग्रस्त हूँ अथवा मेरे द्वारा किये गये अन्य सभी पापो

के शपनार्थ मैं द्यावा पृथ्वी की स्तुति करता हूँ। वे दोनो पापों से मुझे मुक्त करें ॥७॥

२७ सूक्त

(ऋषि—मृगारः। देवता—मरुतः। छन्द—त्रिष्टुप्।)

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥१॥
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄंस्ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥२॥
पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥३॥
अपः समुद्राद् दिवमुद् वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥४॥
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥५॥
यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥६॥
तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन् मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम्।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुंचन्त्वंहसः ॥७॥

मैं मरुद्गणों की श्रेष्ठ महिमा से परिचित हूँ। वे मुझे अपना समझ कर हमारे धन-धान्य की रक्षा करें। हम उनकी कृपा से युद्ध-भूमि में कुशलता प्राप्त करें। मैं उन्हें अपनी रक्षा हेतु आह्वान करता हूँ। वे पापों से हमारी रक्षा करें ॥१॥ जिन मरुद्गणों द्वारा मेघ अन्तरिक्ष में व्यापक होते हैं तथा जिनके कारण अन्न, वृक्ष वनस्पति आदि जल वृष्टि से सिञ्चित होते हैं,

मैं उन मरुद्गणों की स्तुति करता हूँ। वे मेरी पापों से रक्षा करें ॥ २ ॥ हे मरुद्गणो! तुम गौओ के समस्त शरीर मे दूध को स्थापित करते हो। औषधि रूप रस को भी शरीर मे प्रविष्ट कराते हो इन गुणों से युक्त तुम मुझे आनन्द प्रदान करो एव पापो से मुक्त करो ॥ ३ ॥ मरुद्गण अन्तरिक्ष मे मेघो को प्रेरित कर जल-वृष्टि करते हैं तथा उन जलो को समुद्र में पहुँचाते हैं, वे जलो के स्वामी, हमारी पापा से रक्षा करें ॥४॥ जो मरुद्गण मेद से पक्षियों की रचना करते हैं तथा धान्यादि से प्राणिया का पोषण करते हैं, जो मेघस्थित जलों के स्वामी होकर वृष्टि प्रदान करते हैं, वे हमारी पापो से रक्षा करें ॥५॥ मरुतो के अपराधो के फलस्वरूप अनुभव प्राप्त पापों को मरुद्गण नष्ट करने मे पूर्ण समर्थ हैं। हे मरुद्गणो! तुम हमारी पापो से रक्षा करो ॥ ६ ॥ सेना के सम्बल महान् भयकर मरुतो से उत्पन्न बल रणक्षेत्र मे असहनीय होता है। ऐसे बलशाली मरुतो की उपासना करता हुआ मैं उनको आह्वान करता हूँ। वे हमारी पापो से रक्षा करें ॥७॥

२८ सूक्त

(ऋषि—मृगार। देवता—भवाशर्वौ। छन्द—त्रिष्टुप्।)

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्त ययोर्वामिद प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमहस. ॥१॥
ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहस ॥२॥
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहस ॥३॥

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमंहसः ॥४॥
ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमंहसः ॥५॥
यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमंहसः ॥६॥
अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतः किमीद ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुंचतमंहसः ॥७॥

हे जगत के रचयिता एव सहारक मैं तुम्हारी महान् महिमा से परिचित हूँ । तुम समस्त जीवधारियों के स्वामी हो । सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे वशीभूत दो रूप धारण करने वाले हे शिव ! हमारी पापो से रक्षा करो ॥ १ ॥ जिन भव शर्व देवा के पास या दूरस्थ प्रदेशो मे जो कुछ है उसके वही एक मात्र अधीश्वर हैं, वे धनुर्विद्या मे पाराङ्गत हैं । वे पशु और मनुष्यो के स्वामी हमारी पापो से रक्षा करें ॥ २ ॥ सहस्राक्ष, वृत्रासुर नाशक, भव और शर्व से गोचरभूमि अलग रहती है । मै उन दो रूप धारण करने वाले शिव का आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥ हे भव और शर्व । सृष्टि के आदि मे तुम दोनो ने अनेक प्राणियो की रचना की थी । उन मनुष्यो मे शत्रुभाव और उनके पापो के अनुसार अभिदीप्ति का तुम्ही निर्माण करते हो । तुम द्वय पाद और चार पाद वाले प्राणियो के स्वामी हो । तुम हमें पापो से मुक्त करो ॥ ४ ॥ जिन भव-शर्व के हिंसक आयुधो से कोई जीवित नही बच सकता वे द्वय पाद और चार पाद प्राणियो के स्वामी हमारी पापो से रक्षा करें ॥ ५ ॥ जो शत्रु अभिचार द्वारा दुष्कर्म करता है और जो हमारी सन्तति और धन-नाश की कामना रखता है, इन दोनो प्रकार के शत्रुओ को भव और

मैं उन मरुद्गणों की स्तुति करता हूँ। वे मेरी पापों से रक्षा करें॥ २॥ हे मरुद्गणो! तुम गौओं के समस्त शरीर में दूध को स्थापित करते हो। औषधि रूप रस को भी शरीर में प्रविष्ट कराते हो इन गुणों से युक्त तुम मुझे आनन्द प्रदान करो एवं पापों से मुक्त करो॥ ३॥ मरुद्गण अन्तरिक्ष में मेघों को प्रेरित कर जल-वृष्टि करते हैं तथा उन जलों को समुद्र में पहुँचाते हैं, वे जलों के स्वामी, हमारी पापों से रक्षा करें॥४॥ जो मरुद्गण मेद से पक्षियों की रचना करते हैं तथा धान्यादि से प्राणियों का पोषण करते हैं, जो मेघस्थित जलों के स्वामी होकर वृष्टि प्रदान करते हैं, वे हमारी पापों से रक्षा करें॥५॥ मरुतों के अपराधों के फलस्वरूप अनुभव प्राप्त पापों को मरुद्गण नष्ट करने में पूर्ण समर्थ हैं। हे मरुद्गणो! तुम हमारी पापों से रक्षा करो॥ ६॥ सेना के समान महान् भयंकर मरुतों से उत्पन्न बल रणक्षेत्र में असहनीय होता है। ऐसे बलशाली मरुतों की उपासना करता हुआ मैं उनका आह्वान करता हूँ। वे हमारी पापों से रक्षा करें॥७॥

२८ सूक्त

(ऋषि—मृगार। देवता—भवाशर्वौ। छन्द—त्रिष्टुप्।)

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥१॥
ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥२॥
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥३॥

यावारेभाये बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमंहसः ॥४॥
ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुचतमंहसः ॥५॥
यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्त वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुचतमंहसः ॥६॥
अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ स वज्रेण सृजतय. किमीद ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुंचतमंहसः ॥७॥

हे जगत के रचयिता एव सहारक मैं तुम्हारी महान् महिमा से परिचित हूँ । तुम समस्त जीवधारियो के स्वामी हो । सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे वशीभूत दो रूप धारण करने वाले हे शिव ! हमारी पापो से रक्षा करो ॥ १ ॥ जिन भव शर्व देवो के पास या दूरस्थ प्रदेशो मे जो कुछ है उसके वही एक मात्र अधीश्वर हैं, वे धनुर्विद्या मे पाराङ्गत है । वे पशु और मनुष्यो के स्वामी हमारी पापो से रक्षा करें ॥ २ ॥ सहस्नाक्ष, वृत्रासुर नाशक, भव और शर्व से गोचरभूमि अलग रहती है । मैं उन दो रूप धारण करने वाले शिव का आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥ हे भव और शर्व । सृष्टि के आदि मे तुम दोनो ने अनेक प्राणियो की रचना की थी । उन मनुष्यो मे शत्रुभाव और उनके पापो के अनुसार अभिदीप्ति का तुम्ही निर्माण करते हो । तुम द्वय पाद और चार पाद वाले प्राणियो के स्वामी हो । तुम हमे पापो से मुक्त करो ॥ ४ ॥ जिन भव-शर्व के हिंसक आयुधो से कोई जीवित नही बच सकता वे द्वय पाद और चार पाद प्राणियो के स्वामी हमारी पापो से रक्षा करें ॥ ५ ॥ जो शत्रु अभिचार द्वारा दुष्कर्म करता है और जो हमारी सन्तति और धन-नाश की कामना रखता है, इन दोनो प्रकार के शत्रुओ को भव और

शर्व वज्र प्रहार द्वारा नष्ट करें तथा हमारी पापो से रक्षा करें ॥ ६ ॥ हे भव और सर्व ! तुम हमारे शत्रुओ का शस्त्रो से सामना कराओ, हिंसक राक्षसो के साथ भी ऐसा ही करो। हमारी बात का अनुमोदन करो । मैं तुम्हारी स्तुति करता हुआ तुम्हारा आह्वान करता हूँ । मेरी पापो से रक्षा करो ॥७॥

२६ सूक्त

(ऋषि-मृगारः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-त्रिष्टप्, जगती ।)

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुंचतमंहस ॥१॥
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणां सुत तौ नो मुंचतमंहसः ॥२॥
यावङ्गिरसमवथो यावगस्ति मित्रावरुणा. जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठ तौ नो मुंचतमंहसः ॥३॥
यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रि तौ नो मुञ्चतमहसः ॥४॥
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्व तौ नो मुंचतमंहसः ॥५॥
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुंचतमहस ॥६॥
ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथिता जोहवीमि तौ नो मुचतमंहसः ॥७॥

हे मित्र और वरुणदेव ! तुम जल और यज्ञ की वृद्धि करने वाले हो, मैं तुम्हारा यशोगान करता हूँ । तुम शत्रुओ का पतन तथा सज्जनो की रक्षा करते हो । तुम हमारी अनर्थों की

जड पापों से रक्षा करो ॥ १ ॥ हे मित्र एव वरुण तुम सम ज्ञानी, एव सम अर्थ हो। तुम शत्रुओ का पतन तथा सत्पुरुषों की रक्षा करते हो। तुम दिन और रात के स्वामी हो, अत प्राणियो के समस्त कर्मों से परिचित हो। तुम अभिपुत सोम का पान करने वाले हो। हमारी पापो से रक्षा करो ॥२॥ हे मित्र एव वरुण ! तुम अङ्गिरा, अगस्त्य, अत्रि, कश्यप और वशिष्ठ नामक ऋषियो के रक्षक हो। अत पापों से हमारी भी रक्षा करो ॥ ३ ॥ हे मित्र एव वरुण ! तुम श्यावाश्व, वध्र्यश्व, पुरुमीद, विमद, अत्रि और सप्त ऋषियो की रक्षा करने वाले हो। तुम हमारी पापो से रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे मित्र एव वरुण ! भरद्वाज, गविष्ठित, विश्वामित्र, कुत्स कक्षीवन और कण्व नामक ऋषिया के तुम रक्षक हो। तुम हमारी भी पापो से रक्षा करो ॥ ५ ॥ हे मित्र वरुण ! तुमने मेधातिथि, त्रिशोक, उशना गौगम और मुदगल नामक ऋषियो की रक्षा की है। अत तुम मेरी भी पापों से रक्षा करो ॥ ६ ॥ मैं उन मित्रावरुण का स्तोत्रो द्वारा आह्वान करता हूँ, जिनका सत्यरूपी रथ दुष्टाचरण करने वाले लोगो के मार्ग मे बाधक बन कर सामने आता है। वे मेरी पापो से रक्षा करें ॥७॥

३० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वाक् । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती ।)

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः । [illegible]
अहं मित्रा वरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥
अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधु. पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्त ॥२॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३॥
मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४॥
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥५॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या यजमानाय सुन्वते ॥६॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥
अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥८॥

मैं ब्रह्मवादिनी पर ब्रह्मात्मिका, रुद्रों, वसुओं, आदित्यों तथा विश्वेदेवा रूपों को धारण कर विचरण करती हूं। मैं मित्रावरुण का पोषण करती, इन्द्र, अग्नि और अश्वद्वय को धारण करने वाली हूँ ॥ १ ॥ मैं ब्रह्मवादिनी, दृष्टिगत होने वाले समस्त विश्व की अधीश्वरी हूँ। अतः अपने उपासकों को समृद्धि प्रदान करने में समर्थ हूँ। ऐसी मुझ गुण सम्पन्न को देवतागण अनेक स्थानों में स्थापित करते हैं। उनके द्वारा किया हुआ समस्त कर्म मेरे निमित्त ही होता है। २॥ स्वयं आत्मरूपी मैं देवगणों और मनुष्यों को प्रिय ब्रह्मात्मक रूप का ज्ञान-प्रदान करती हूँ। जिस पुरुष की रक्षा मुझे अभीष्ट होती है। उसे सशक्त बना कर रक्षण प्रदान करती हूँ। मैं उसे ईश्वर सृष्टा और ऋषि पद प्रदान कर श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न बनाती हूँ ॥ ३ ॥ अन्न खाने वाला मेरे द्वारा ही खाता है, देखना, सुनना बोलना, श्वांस लेना आदि जितने भी कार्य हैं, सब मेरे द्वारा

ही सम्पन्न होते हैं। इस तरह मैं ईश्वर रूप हूँ। जिन्हे मेरा बोध नही, वे उपेक्षित ही रह जाते हैं। हे मित्र! भक्ति योग्य जो कुछ मैंने कहा है, उसे ध्यानपूर्वक सुन ॥४॥ त्रिपुरासुर पर विजय प्राप्त करने हेतु मैं ही धनुष धारण करती तथा स्तोताओ के निमित्त रणक्षेत्र मे लडती हूँ। मैं स्वर्ग और आकाश को गुप्त रूप से व्याप्त करती हूँ ॥५॥ शत्रु रहित स्वर्ग मे निवास करने वाले देवताओ से सबधित सोम तथा त्वष्टा पूषा और भग देवता का मैं ही पोषण करती हूँ। मैं ही आहुति कर्ता यजमान को अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ ॥६॥ विधाता को उत्पन्न करने वाली मैं ही हूँ। इस समस्त विश्व की कारण रूप भी मैं ही हूँ। समुद्र मे बडवाग्नि और विद्युत रूप तेज भी मेरा ही स्वरूप है। मैं सब जीवधारियो का प्राकट्य करती हुई स्वर्ग और ब्रह्म मे अध्यस्त विकारो को मायात्मक शरीर से स्पर्श करती हुई द्युलोक को प्रेरणा देता हुई तथा अन्तरिक्ष मे जल के विकार रूप देवताओ मे व्याप्त जो ब्रह्म हैं उसके द्वारा मैं सबको स्पर्श करती हूँ ॥ ७ ॥ मैं बिना किसी सहायता के प्राणियों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान विचरती हूँ। द्युलोक पृथ्वी और सपूर्ण दोषो से रहित ब्रह्म चैतन्य स्वरूपा मैं अपनी ही महत्ता से ऐसी पराक्रम पूर्ण हो गई हूँ ॥८॥

३१ सूक्त (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि-ब्रह्मास्कन्द । देवता-मन्यु । छन्द-त्रिष्टुप, जगती)

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपा ॥१॥
अग्निरिव मन्यो त्विषित: सहस्व सेनानीर्न: सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥३॥
एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४॥
विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥
संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्यु ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अव नि लयन्ताम् ॥७॥

हे मन्युदेव ! तुम स्फूर्ति के स्वामी और मरुद्गणो के समान तीव्रगामी हो । तुम्हारे रक्षण साधनो के द्वारा हमारे वीर सैनिक रथारूढ शत्रुओ को पीडित करते हुए अग्नि के समान तेजस्वी होकर एव अपने आयुधो को तीक्ष्ण करते हुए शत्रु के सम्मुख पहुँचें ॥१॥ हे मन्युदेव ! तुम अग्नि समान तेज प्राप्त कर शत्रुओ को अपने अधीन करो । तुम हमारी सेना के सेनानायक बनकर युद्ध मे पधारो । तुम शत्रुओ का सहार करके उनके धन को हमे प्रदान करो ॥ २ ॥ हे मन्युदेव ! तुम्हारा बल अपारजेय है । तुम सभी मनुष्यो को अपने अधीन कर लेते हो । अत इस राजा के शत्रुओ के हाथी घोडे आदि को नष्ट करते हुए उनके सैनिको का तिरस्कार करो ॥३॥ हे मन्युदेव ! स्तुति से प्रसन्न होकर तुम शत्रुओ को अपने अधीन करने मे पूर्ण समर्थ हो । तुम हमारे प्रजाजनो मे प्रविष्ट होकर उन्हे कुशल सैनिक बनाओ । हम तुम्हारी सहायता के बल पर यह विजय घोष उच्चारित करते हैं ॥ ४ ॥ हे मन्युदेव ! हम उस स्थान को जानते हैं जहाँ से तुम उत्पन्न होते हो, हम तुम्हारे उस

उत्पति स्थान की स्तुति करते हैं। तुम इन्द्र सदृश्य प्राचीन साधनो को बताते हो। इस युद्ध मे हमारी रक्षा करो ॥५॥ हे मन्युदेव! तुम असीम बल सपन्न हो, तुम शत्रु का सहार करने मे पूर्ण समर्थ हो। तुम अनेक यजन कर्ताओ द्वारा आह्वान किये जाते हो। तुम महान वैभव प्राप्त कराने वाले कर्म रूप मे हमे प्राप्त हो ॥६॥ मन्युदेव और वरुण दोनों ही प्राप्त धन को एकत्र कर हमे प्रदान करें। हमारे शत्रु हमसे भयभीत होकर पराजय स्वीकार करें तथा भागकर कही दूर जा छिपें ॥७॥

३२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मास्कन्दः। देवता—मन्युः। छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह,ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वय सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युं विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥
अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३॥
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणि सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतानासु धेहि ॥४॥
अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥५॥
अयं ते अस्म्युप न,एह्यर्वाङ् प्रतीचीन सहुरे विश्वदावन्।
मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूंरुत बोध्यापेः ॥६॥
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ॥७॥

हे मन्युदेव! तुम्हारे उपासक शत्रु तिरस्कारक युक्त बल को पुष्ट करते हैं। तुम्हारी सहायता से वे उपासक पीडक

शत्रु को अपने अधीन करने में समर्थ होते हैं ॥१॥ इन्द्र समस्त देवगण देवदूत अग्नि वरुण आदि सब मन्यु ही हैं। सब प्राणी मन्युदेव की ही उपासना करते हैं क्योंकि समस्त देव मन्यु रूप में ही विद्यमान हैं। हे मन्यु! तुम हमारे कष्ट निवारण करते हुए हमारी रक्षा करो ॥२॥ हे मन्युदेव! तुम विरोधियों के दमन करने वाले तथा शत्रु सहारक हो। तुम हमारे सन्मुख आकर हमारे शत्रुओ का विनाश करो तथा उनकी समस्त सम्पत्ति हमे प्रदान करो ॥३॥ हे मन्युदेव! तुम स्वयं अपनी आत्मा मे प्रकट होते हो, सर्वदर्शी हो और शत्रुओ को वशीभूत करने वाले हो। सब प्राणी तुम्हारे ही अधीन रहते हैं। तुम युद्ध काल मे हमे शक्ति प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे मन्युदेव! तुम श्रेष्ठ ज्ञानी हो स्तुति न किये जाने के कारण ही तुम युद्ध से विरत रहते हो। मैंने स्तुति न कर तुम्हे कुपित किया है। तुम हमे शक्ति प्रदान करते हुए पधारो ॥ ५ ॥ हे मन्युदेव! मैं तुम्हारी उपासना करने मे सलग्न हूँ। तुम मेरे सन्मुख होते हुए पशुओ की ओर गमन करो। मैं और तुम दोनो मिलकर शत्रु का विनाश करें ॥६॥ हे मन्युदेव! तुम हमारे सन्मुख पधारो तथा हमे सलाह देने के लिए हमारे दक्षिणांग मे प्रतिष्ठित हो। हम शत्रुओ का पूर्णतया विनाश करें। मैं तुम्हे सोम रूप हवि अर्पित करता हूँ। तुम और हम रहस्यात्मक ढङ्ग से सोमरस का पान करें।

३३ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–अग्नि.। छन्द–गायत्री)

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् ॥१॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥३॥
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥४॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वत. परिभूरसि । अप नः शोशुच घम् ॥६॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥७॥
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

हे अग्ने ! तुम्हारे अनुग्रह से हम पाप दोष से मुक्त हो। तुम हमे सब प्रकार से धनवान बनाओ। तुम्हारे अनुग्रह से हमारे पाप दूर हो ॥ १ ॥ सुन्दर आवास, सुन्दर मार्ग और धन प्राप्त करने की कामना करते हुए हे अग्नि देव ! हम तुम्हे आहुतियो द्वारा प्रसन्न करते हैं। तुम्हारे अनुग्रह के फलस्वरूप हम पाप दोष से मुक्त हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी उपासना करने वाले समस्त स्तोताओ मे मैं अग्रणी हूँ। मेरी सन्तति भी तुम्हारी अनन्य उपासक है। अत तुम्हारे अनुग्रह से हम पाप दोष से मुक्त हो ॥३॥ हे अग्ने ! तुम अपने स्तोताओ को धन धान्य और सन्तान से पूर्ण सम्पन्न करते हो अत. तुम्हारी महिमा से परिचित हम भी धन धान्य और पुत्र पौत्रादि से सपन्न हो तथा तुम्हारी कृपा से पाप दोषो से मुक्त हो ॥४॥ महान पराक्रमी अग्निदेव की प्रज्ज्वलित दीप्तियाँ चहुँ ओर से हमारा कल्याण करती हैं। अत अग्नि के तेज से हम पाप दोषो से मुक्त हो ॥५॥ हे अग्ने ! तुम सब जगह व्याप्त हो। समस्त ससार तुम्हारे अधीन है तुम्हारे अनुग्रह से हमारे पाप दूर हो ॥६॥ हे अग्ने ! जैसे नाव समुद्र को पार करती है वैसे ही तुम हमको शत्रुओ से पार करो। तुम्हारे अनुग्रह से हम पाप दोषो से मुक्त हो ॥७॥ हे अग्ने ! जैसे नौका द्वारा समुद्र पार कर दूसरी ओर पहुँचते हैं उसी भाँति हमारी रक्षा करते

हुए हमें पाप सागर से पार करो। तुम्हारी कृपा से हम पाप दोष से मुक्त हों ॥८॥

३४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-ब्रह्मौदनम्। छन्द-त्रिष्टुप्, जगती,शक्वरी)

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य ।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥१॥
अनस्थाः पूता पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥२॥
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥३॥
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥४॥
एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश ।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना ।
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥५॥
घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वा स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ता ॥६॥
चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वा स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना ।
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ता ॥७॥
इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ।८

रथन्तर साम इस अन्न का सिर, बृहत्साम इसका पृष्ठ भाग वामदेव द्वारा देखा हुआ भाग इसका उदर, गायत्री आदि

छन्द इसके पङ्ख तथा सत्य नाम दूसरा मुख है। इस भाँति पूर्ण गठित अङ्गो वाला यह यज्ञ ब्रह्म से भी उच्चता रूप मे प्रकट हुआ ॥ १ ॥ जो शरीर अस्थि मुक्त पटकोष वाला नही है वे सब यजनकर्ता वायु द्वारा पवित्र होकर श्रेष्ठ लोक को गमन करते हैं। इनके भाग साधन रूप इन्द्रिय को अग्नि देव भस्म नही करते। वहाँ पुण्य-फल के भोग-रूप अनेक प्रकार के भोग इन्हे प्राप्त होते है ॥ २ ॥ जो यजनकर्ता उपर्युक्त रीति से चावल पका कर ब्राह्मणो को दान करते हैं, वह कभी निधनता को प्राप्त नही होता। वह मृत्यु के पश्चात् यमलोक मे आनन्द-पूर्वक निवास करता है और उनकी अनुमति से देवताओ का सामीप्य ग्रहण करता हुआ सोम पान कर आनन्दित होता है ॥३॥ जो यजमान उपरोक्त विधि से ओदन पका कर ब्राह्मणो को दान मे देते है, यमराज उस सर्व-यज्ञ करने वाले को वीर्य रहित नही करते। वह पृथ्वी पर रथारूढ हो, विचरण करता और अन्तरिक्ष मे पङ्खयुक्त हो, उच्चलोको को प्राप्त कर भोग और ऐश्वर्यो को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ उपरोक्त ढङ्ग से ओदन को तैयार कर यजनकर्ता उसके फलस्वरूप स्वर्ग को प्राप्त होता है। अण्डाकार कन्द से उत्पन्न श्वेत कमल को तालाब मे स्थापित करे तथा पद्म कन्द उत्पल-कन्द तथा खुर की आकृति समान वाले जल से उत्पन्न पदार्थ को भी तालाब मे स्थापित करे। दही, मधु एव घृतादि की ये मधुमयी धाराएँ स्वर्ग मे तुझे प्राप्त हो तथा जल पूर्ण पुष्करिणी तेरे समीप ही प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे सब यज्ञो के करने वाले ! घृतपूर्ण सरोवर वाली मधुयुक्त तट वाली, दुग्ध, दही आदि से परिपूर्ण धाराएँ पदार्थों को मधुमय करती हुई तुझे स्वर्गलोक मे प्राप्त हो ॥ ६ ॥ दुग्धादि से परिपूर्ण चार पात्रो को मैं चार दिशा मे स्थापित करता हूँ। यह घृतादि

की मधुमयी धाराएँ तथा जल से युक्त पुष्करिणी तुझ प्राप्त हो ॥ ७ ॥ हे पका हुआ ओदन विस्तृत एव व्यापक स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त कराने वाला है। मैं इसकी ब्राह्मणा मे स्थापना करता हूँ। यह नष्ट न हो अपितु अभीष्ट फल देने वाली गौओं का रूप धारण करलें ॥८॥

३५ सूक्त

(ऋषि—प्रजापति। देवता—अतिमृत्यु। छन्द—त्रिष्टुप्।)

य मोदन प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।
यो लोकाना विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥१॥
येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्यु यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण।
य पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥२॥
यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजस यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥३
यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदरा सवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशार।
अहोरात्रा य परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४॥
य प्राणदा प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवत क्षरन्ति।
ज्योतिष्मती प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणिमृत्युम् ॥५॥
यस्मात् पक्वादमृत सम्बभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥६
अव बाधे द्विषन्त देवपीयु सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु।
ब्रह्मौदन विश्वजित पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवा ॥७॥

जिस प्रकार के ओदन को हिरण्यगर्भ नामक प्रजापति ने अपने निमित्त तैयार किया, जिस प्रकार नाभि प्राणियो को धारण करने मे समर्थ है, उसी भाँति ओदन भी पृथ्वी आदि को धारण करता है। उस ओदन के द्वारा मैं मृत्यु के पार होता हूँ ॥ १ ॥

जिस ओदन को देवगणों ने तपस्या करके प्राप्त किया है, जिस ओदन के द्वारा वे अमर हैं, जिस ओदन को हिरण्यगर्भ ने अपने निमित्त बनाया था, उसके द्वारा मैं मृत्यु को लाँघता हूँ ॥ २ ॥ पृथ्वी लोक जिस ओदन पर आधारित है, वह ओदन जो अपने मधुमय रस से अन्तरिक्ष को सम्पन्न करता है तथा स्वर्गलोक को अपनी महिमा से अचम्भे मे डालता है, उस ओदन के द्वारा मैं मृत्यु से डरता हूँ ॥ ३ ॥ जिस ओदन से माह और दिवस तथा संवत्सर उत्पन्न होते हैं, उसके द्वारा मैं मृत्यु से पार होता हूँ ॥४॥ जिस ओदन के निमित सर्वलोक घृतादि की धाराओ से सिञ्चन करते हैं, जिस ओदन के तेज को प्राप्त कर दिशाएं दीप्यमान होती हैं उस ओदन के द्वारा मैं मृत्यु के पार होता हूँ ॥ ५ ॥ पके हुए जिस ओदन से आकाश मे अमृत की उत्पत्ति हुई गायत्री छन्द का स्वामी देवता जिस ओदन द्वारा होता है, मैं उसी ओदन के द्वारा मृत्यु से पार होता हूँ ॥ ६ ॥ मैं द्वेषी शत्रुओ और देवो के हिंसको के कार्य मे बाधा डालता हूँ। मेरे शत्रुओ नष्ट हो, इस कारण ब्रह्मरूप ओदन को सस्कृत करता हूँ। श्रद्धास्पद देव मेरी स्तुति पर ध्यान दें ॥७॥

३६ सूक्त [आठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—चातन । देवता—सत्यौजा अग्नि । छन्द—अनुष्टुप् ।)

तान्त्सत्यौजा प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथ यो नो अरातियात् ॥१॥
यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२॥
य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वां स्तान्त्सहसा सहे ॥३॥

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४॥
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५॥
तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥६॥
न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७॥
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८॥
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशकाइव ।
तानहं मन्ये दुर्हिताञ्जने अल्पशयूनिव ॥९॥
अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०॥

हमारे वे शत्रु जो हमारी हिंसा करना चाहते हैं, जो हम पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं, ऐसे इन शत्रुओं को महान्लोक उपकारक अग्निदेव अपने प्रचण्ड तेज से नष्ट कर डालें ॥ १ ॥ वे शत्रु जो हमारे पीडक हैं, जो हमारी हिंसा करना चाहते हैं, ऐसे इन दोनो प्रकार के शत्रुओ को हम सबके उपकारी अग्निदेव की दाढो मे डालते हैं ॥ २ ॥ जिस सग्राम मे माँस और रुधिर का विनाश किया जाता है, जिस सग्राम मे पिशाच राक्षस आदि हमे मार कर भक्षण करने की तलाश मे रहते हैं, तथा शत्रुओ द्वारा सिखाये जाकर अमावस्या की अर्धरात्रि मे हमारी जान लेना चाहते हैं ऐसे इन सब शत्रुओ की शक्ति से परिचित हूँ तथा उसे अपने मन्त्रबल से कमजोर करता हूँ। मैं अपने दुष्ट शत्रुओ को भी नष्ट करता हूँ। हमारा अभीष्ट विचार आनन्दमय

और ऐश्वर्य से सम्पन्न हो ॥ ४ ॥ जो राक्षस मायावी रूप धारण कर हसते और सूर्य सदृश्य दमकते हैं, जो राक्षस पर्वत नदी आदि स्थानो मे विचरण करते हैं,मैं उन सबसे अपनी रक्षा करता हुआ गौ अश्वादि पशुओ से सम्पन्न होऊँ ॥ ५ ॥ जैसे गौ पालको के लिए सिंह चिन्ता का कारण होता है, वैसे ही मैं अपनी मन्त्र शक्ति से राक्षसो को दुख देने वाला बनूँ। जैसे शेर से डरे हुए कुत्ते छिप जाते है, उसी भाँति वे राक्षसादि हमारे मन्त्र बल से नष्ट हो जाँय ॥ ६ ॥ मेरा चोर डाकुओ से कोई मेल नही, पिशाच मुझ पर अपना प्रभाव नही डाल सकता। मैं जिस गाँव मे प्रविष्ट होता हूँ, उस गाव के पिशाचादि नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ मेरी मन्त्र शक्ति का प्रभाव जिस गाँव मे रहता है वहाँ पिशाच विनाश को प्राप्त होत है। इसी कारण उस गाँव के निवासी उनके हिंसक कार्यो से अपरिचित ही रहते हैं ॥ ८ ॥ जैसे क्षुद्र कीट मनुष्यो के पैरो के नीचे आकर नष्ट हो जाते हैं, जैसे विशालकाय हाथी को मच्छर उसके शरीर से लग कर बाधित करते हैं, वैसे ही मैं अपनी मन्त्र शक्ति से अपने शरीर पर लगे पिशाचादि को नष्ट हुआ ही समझता हूँ ॥ ९ ॥ जिस प्रकार दुष्ट-जन अश्वो को रस्सी स बाँध कर रखते है, वसे ही पापो के देव निभृति उस शत्रु को बन्धन ग्रस्त करे जो मुझसे क्रुद्ध है, वह उनके बन्धन स मुक्त न हो पावें ॥१०॥

२७ सूक्त

(ऋषि बादरायणि। देवता ओषधि, प्रभृति। छन्द अनुष्टुप,प्रभृति)

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्य ॥१॥

त्वया वयमप्सरसो गंधर्वांश्चातयामहे ।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥२॥
नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौक्षगंधिः प्रमन्दनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४॥
यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटा कर्कर्यः संववंति ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥
एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्या वती ।
अजशृङ्ग्य् राटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥६॥
आनृत्यतः शिखण्डिनो गंधर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७॥
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गंधर्वानवकादान् व्यृषतु ॥८॥
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीहिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गंधर्वानवकादान् व्यृषतु ॥९॥
अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०॥
श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृशइव भूत्वा गंधर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ।
ब्रह्मणा वीर्यावता ॥११॥
जाया इद् वो अप्सरसो गंधर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥१२॥

हे औषधे ! अथर्वा कश्यप कण्व अगस्त्य आदि ऋषियों ने तेरा सहारा लेकर राक्षसों का विनाश किया था वैसा ही मैं

भी करता हूँ ॥ १ ॥ हे ओषधे ! तुझ साधन रूप से मैं उत्पाती गन्धर्वों और अप्सराओं को नष्ट करता हूँ। तेरी तीव्र गन्ध से हम राक्षस पिशाच आदि को दूर भगाते हैं ॥ २ ॥ जैसे पार उतारने के लिए कुशल नाविक के पास पहुँचा जाता है, उसी भाँति गुगल, पीला, नलदी, ओक्षगन्धी, प्रमंदनी इन पञ्च हवि पदार्थों से भय खाकर गन्धर्व पत्नियाँ अपने स्थान को वापिस लौट जाँय ॥ ३ ॥ हे अप्सराओ ! तुम पीपल, बड, पिलखन, मयूर आदि से युक्त अपने स्थान को वापिस लौट जाओ और वहाँ चेष्टा रहित हुई पडी रहो ॥ ४ ॥ हे अप्सराओ ! जहाँ श्यामल अर्जुन् वृक्ष है जहाँ तुम्हारे मनो-विनोद के लिए वाद्य यंत्र बज रहे हैं तथा तुम्हारे नृत्य करने के लिए झूले आदि पडे हैं, ऐसे अपने स्थान को तुम वापिस लौट जाओ तथा वहाँ चेष्ट-रहित हुई पडी रहो ॥५॥ यह परम शक्तिशालिनी अज शृङ्गी हिंसक शत्रुओ को नष्ट करने मे पूर्ण समर्थ है। तीव्र-गन्ध और शृङ्गाकार वाली यह औषधि राक्षसादि शत्रुओ को नष्ट करे ॥६॥ मोर सदृश्य नृत्य करते हुए मधुर वाणियो से युक्त हमारी हिंसा के इच्छुक गन्धर्वो के अण्डकोषो को मैं चूर-चूर करता हूँ तथा उनके उपस्थो को वीर्य-रहित करता हूँ ॥ ७ ॥ इन्द्र के जिन लौह निर्मित अस्त्र-शस्त्रो से जीवधारी भय खाते है, जो सहस्रों धार वाले हैं, ऐसे आयुधो के द्वारा इन्द्र उन गन्धर्वो का विनाश करें जो सरोवरो पर आकर सिवार का भक्षण करते हैं ॥ ८ ॥ इन्द्रदेव अपने सहस्रो धार वाले स्वर्ण निर्मित आयुधो से सिवार भक्षण करने वाले गन्धर्वों का विनाश करें ॥ ९ ॥ हे अजशृंगे ! चहुँओर से चमकते हुए सन्तापप्रद सिवार भक्षक गन्धर्वों को जल मे दिखा और उत्पाती राक्षसादि को सब प्रकार से नष्ट कर अपने अधीन कर ॥ १० ॥ मायावी गन्धर्व अपनी माया

से कुत्ता, बन्दर और बालक का रूप धारण कर लेता है। सुन्दर दिखाई पडने वाला गन्धर्व ग्रहलक्ष्मियों को लग जाता है। हम अपनी मन्त्र-शक्ति से उस गन्धर्व को इस स्त्री के पास से भगाते हैं ॥ ११ ॥ हे गन्धर्वो ! तुम्हारे उपभोग के योग्य अप्सरायें ही हैं वही तुम्हारी पत्नियाँ हैं। अत. उन्हीं से सङ्गत-युक्त हो। तुम मरणधर्म से रहित हो अतः नाशवान् व्यक्तियों के सहवास से अपने को पृथक रखो ॥१२॥

३८ सूक्त

(ऋषि-बादरायणि । देवता-अप्सरा; ऋषभ. । छन्द-अनुष्टुप् प्रभृति ।)

उद्भिन्दतीं सञ्जयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानिकृवानामप्सरां तामिह हुवे ॥१॥
विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरः साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥२॥
यायैः परिनृत्यत्यादवाना कृतं ग्लहात् ।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिद धनम् ॥३॥
या ग्रक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।
ग्रानन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥४॥
सूर्यस्य रश्मीननु या.संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्येति रक्षन् ।
स न ऐतु होममिमं जुषाणोन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥५॥
अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङ्यं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥६॥
अयं घासो अयं व्रज इह व त्सा नि बध्नीमः ।
यथानाम व ईश्महे स्वाहा ॥७॥

द्यूत विद्या की स्वामिनी, विजयशील, अक्षश्लाका आदि से सुन्दर क्रीडा करने वाली अप्सरा का मैं इस द्यूत विजय के निमित्त आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ द्यूत पाशो को एकत्रित कर उन्हे अनेक खानो मे विजय हेतु डालती हुई अक्षश्लाका आदि से सुन्दर क्रीडा करने वाली अप्सरा को मैं इस द्यूत विजय कर्म के निमित्त निमन्त्रित करता हूँ ॥ २ ॥ जो अप्सरा कृतादि शब्दो से कथित अक्षो से विजय प्राप्त होने के कारण नृत्य करती है वह ग्रहण योग्य पासो मे कृत नामक चार सख्यक अयो को बचाती हुई फेकने योग्य पासो पर अपनी माया सहित प्रतिष्ठित हो और हमको विजय दिलाती हुई गौ आदि धन प्राप्त हो । दाँव पर रखे हमारे धन को अन्य द्यूत खेलने वाले न जीत पावे ॥३॥ जो अप्सरा पराजय होने के कारण शोक उत्पन्न करती है तथा पुन विजय करने के अभिप्राय से क्रोध को पैदा करती है वह अप्सरा द्यूत-साधन अक्ष से प्रसन्न होती है मैं उसका आह्वान करता हूँ ॥ ४ ॥ अन्तरिक्ष मे विचरणशील, उपायुक्त अप्सराओ का स्वामी सूर्य सब लोकों का रक्षण करता हुआ सब दिशाओ मे विचरण करता है । वह सूर्य अप्सराओं सहित हमारे समीप आकर इस हवि को ग्रहण करें ॥ ५ ॥ हे सूर्य ! तुम अप्सराओ से युक्त एव उपावान् हो । इस गौ के श्वेत बछडो की रक्षा करते हुए उनका पोषण करो । तुम्हारे दूध आदि की बूँदें वृद्धि को प्राप्त होकर हमे प्राप्त हो । यह श्वेत वर्ण वाली तुम्हारी गाय इस गोष्ठ मे है । तुम हमारा प्रणाम ग्रहण करो और हमारे सन्मुख पधारो ॥ ६ ॥ हे अप्सराओ से युक्त उपावान् सूर्य ! यहाँ के श्वेत वर्ण वाले गो वत्सो का रक्षण करते हुए उनका पोषण कर वृद्धि को प्राप्त कराओ । यह घास उन्हे पुष्ट बनावे । यह गोशाला गो-धन से सपन्न हो । इस

गोशाला मे हम बछड़ों को बांधते है। जिस भाँति तुम्हारे स्वामी रहें, उसी प्रकार तुम्हें बांधते रहें ॥७॥

३९ सूक्त

(ऋषि-अङ्गिरा ब्रह्मा। देवता–पृथिव्यग्नीः प्रभृति। छन्द-बृहती, पङ्क्तिः त्रिष्टुप्)

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आप्नर्नोत्।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥१॥
पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः। सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं।
कामं दुहाम्। आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥२॥
अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आप्नोंत्।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥३॥
अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः। सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं।
कामं दुहाम्। आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४॥
दिव्या दित्याय समनमन्त्स आप्नोंत्।
यथा दिव्या दित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥५॥
द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः। सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं।
काम दुहाम्। आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥६॥
दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आप्नोंत्।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥७॥
दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः।
ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥८॥
अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥
दा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
उपास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यमम् ॥१०॥

अग्निदेव भूतमय हैं। जैसे अग्नि को सब प्राणी प्राप्त होते हैं, उसी भाँति मुझे अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो ।।१।। पृथ्वी गौ रूप है तथा अग्नि उसके वत्स है। वह पृथ्वी अग्नि रूप वत्स के द्वारा अन्न पशु और शतायु आदि सभी इच्छित वस्तुएँ प्रदान करें ।।२।। अन्तरिक्ष मे स्वामी समान रहने वाले वायु के समीप वहाँ के यक्ष गन्धर्व आदि निवासी एकत्र होते है तथा उनके द्वारा वायु भी ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं उसी भाँति मैं भी ऐश्वर्यवान होऊँ ।।३।। अन्तरिक्ष अभीष्ट फलदाता होने के कारण दूध देने वाली गाय के समान है और उसका वायु रूप बछडा है। वह अन्तरिक्ष अपने वायु रूप बछडे के द्वारा अन्न, अन्न रस, पुत्र पशु शतायु प्रजा आदि की पुष्टि द्वारा अभीष्ट पदार्थ प्रदान करें ।।४।। सूर्य के समक्ष जिस प्रकार सूर्य मण्डल के निवासी नमन करते हैं और वह सूर्य उन आकाशवासियो से ही प्रवृद्ध होते हैं उसी प्रकार अभीष्ट फल मेरी ओर आने वाले हो ।।५।। काम्यवर्षक होने के कारण आकाश धेनु सदृश्य है और सूर्य उसके वत्स हैं। यह आकाश अपने सूर्य रूप वत्स द्वारा अन्न अन्नरस पुत्र पशु शतायु प्रजा आदि की पुष्टि द्वारा अभीष्ट पदार्थ प्रदान करें ।।६।। पूर्वादि दिशाओ के प्राणी स्वामी रूप से स्थित चन्द्रमा से प्रसन्न होते हैं और चन्द्रमा उनके द्वारा ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं, उसी भाँति मैं भी ऐश्वर्य संपन्न होऊँ ।।७।। दिशाएं गौ रूप हैं और चन्द्रमा उनका वत्स है। वे दिशा रूप गौ अपने चन्द्र रूप वत्स द्वारा अन्न, अन्नरस पुत्र पशु, शतायु आदि प्रदान करते हुए मुझे ऐश्वर्यवान बनायें ।। ८ ।। अग्निदेव मन्त्र शक्ति के द्वारा अगार रूप मे स्थित अग्नि मे वास करते हैं। वे चक्षु, अथर्वा अंगिरा आदि के पुत्र हैं। वे झूंठे आरावों से रक्षा करते हैं। ऐसे अग्निदेव को हम अन्नरूप हवि प्रदान करते हैं। हम देव भाग

गौशाला मे हम बछड़ो को बांधते हैं। जिस भांति तुम्हारे स्वामी रह, उसी प्रकार तुम्हे बांधते रहें ॥७॥

३९ सूक्त

(ऋषि-अङ्गिरा ब्रह्मा। देवता-पृथिव्यग्नी प्रभृति। छन्द बृहती, पङक्ति त्रिष्टुप)

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा पृथिव्यानाग्नये समनमन्नेवा मह्य सनम स नमन्तु ॥१॥
पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्स । सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्ज ।
काम दुहाम्। आयु प्रथम प्रजां पोष रयिं स्वाहा ॥२॥
अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्य सनम स नमन्तु ॥३॥
अन्तरिक्ष धेनुस्तस्या वायुर्वत्स । सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्ज।
काम दुहाम्। आयु प्रथम प्रजा पोष रयिं स्वाहा ॥४॥
दिव्या दित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा दिव्या दित्याय समनमन्नेवा मह्य सनम स नमन्तु ॥५॥
द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्स । सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं ।
काम दुहाम्। आयु प्रथम प्रजा पोष रयिं स्वाहा ॥६॥
दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स,आर्ध्नोत्।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्य सनम स नमन्तु ॥७॥
दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्स ।
ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्ज काम दुहाम् ।
आयु प्रथम प्रजा पोष रयिं स्वाहा ॥८॥
अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवाना मिथुया कर्म भागम् ॥
हृदा पूत मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यमम् ॥१०॥

अग्निदेव भूतमय हैं। जैसे अग्नि को सब प्राणी प्राप्त होने हैं, उसी भाँति मुझे अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो ॥१॥ पृथ्वी गौ रूप है तथा अग्नि उसके वत्स हैं। वह पृथ्वी अग्नि रूप वत्स के द्वारा अन्न पशु और शतायु आदि सभी इच्छित वस्तुएँ प्रदान करें ॥२॥ अन्तरिक्ष मे स्वामी समान रहने वाले वायु के समीप वहाँ के यक्ष गन्धर्व आदि निवासी एकत्र होते हैं तथा उनके द्वारा वायु भी ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं उसी भाँति मैं भी ऐश्वर्यवान होऊँ ॥३॥ अन्तरिक्ष अभीष्ट फलदाता होने के कारण दूध देने वाली गाय के समान है और उसका वायु रूप बछड़ा है। वह अन्तरिक्ष अपने वायु रूप बछड़े के द्वारा अन्न, अन्न रस, पुत्र पशु शतायु प्रजा आदि को पुष्टि द्वारा अभीष्ट पदार्थ प्रदान करें ॥४॥ सूर्य के समक्ष जिस प्रकार सूर्य मण्डल के निवासी नमन करते हैं और वह सूर्य उन आकाशवासियो से ही प्रवृद्ध होते हैं उसी प्रकार अभीष्ट फल मेरी ओर आने वाले हो ॥५॥ काम्यवर्षक होने के कारण आकाश धेनु सदृश्य है और सूर्य उसके वत्स हैं। यह आकाश अपने सूर्य रूप वत्स द्वारा अन्न अन्नरस पुत्र पशु शतायु प्रजा आदि की पुष्टि द्वारा अभीष्ट पदार्थ प्रदान करें ॥६॥ पूर्वादि दिशाओं के प्राणी स्वामी रूप से स्थित चन्द्रमा से प्रसन्न होते हैं और चन्द्रमा उनके द्वारा ऐश्वर्य को प्राप्त होते है, उसी भाँति मैं भी ऐश्वर्य सपन्न होऊँ ॥७॥ दिशाएँ गौ रूप हैं और चन्द्रमा उनका वत्स है। वे दिशा रूप गौ अपने चन्द्र रूप वत्स द्वारा अन्न, अन्नरस पुत्र पशु, शतायु आदि प्रदान करते हुए मुझे ऐश्वर्यवान बनायें ॥ ८ ॥ अग्निदेव मंत्र शक्ति के द्वारा अंगार रूप मे स्थित अग्नि मे वास करते हैं। वे चक्षु, अथर्वा अंगिरा आदि के पुत्र हैं। वे झूंठे आरोपो से रक्षा करते हैं। ऐसे अग्निदेव को हम अन्नरूप हवि प्रदान करते है। हम देव भाग

को मिथ्या नहीं करते ॥९॥ हे अग्ने ! तुम समस्त प्राणियों के स्वामी हो, दानादि गुणों से सम्पन्न हो । तुम्हारे मुख में जिह्वायें हैं । मैं उस मुख को खोलने के लिए पवित्र हृदय से घृत की आहुति प्रदान करता हूँ ॥१०॥

४० सूक्त

(ऋषि–शुक्र: । देवता–जातवेदः प्रभृति । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेद प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१॥
ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२॥
ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ।३
य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥
येऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥५॥
येऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥६॥
य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥७॥
ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान् ।
ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथंतां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥८॥

हे अग्निदेव ! तुम समस्त जीवधारियों को जानने वाले हो । जो शत्रु अभिचार कर्म द्वारा हमें पूर्व दिशा से नष्ट करने की कामना करते हैं वे शत्रु अग्नि में जाकर भस्म हों । मैं इन

अभिचारी शत्रुओं का इस प्रतिशर कर्म द्वारा विनाश करता हूँ ॥१॥ हे अग्ने ! जो शत्रु अभिचार कर्म द्वारा हमें दक्षिण दिशा से नष्ट करने की कामना करते हैं वे शत्रु दक्षिण दिशा के स्वामी यम के निकट जा संतापित हों। मैं इन अभिचारी शत्रुओं का इस प्रतिशर कर्म द्वारा विनाश करता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो। जो शत्रु अभिचार कर्म द्वारा हमें पश्चिम दिशा से नष्ट करने की कामना करते हैं वह उस दिशा के स्वामी वरुण के पास जाकर सन्तापित हों। उन अभिचार कृत्य करने वाले शत्रुओं का मैं इस प्रतिसर कर्म द्वारा नाश करता हूँ ॥३॥ हे अग्ने ! जो शत्रु अभिचार कर्म द्वारा उत्तर दिशा से हमारे विनाश की कामना करता है वह उस दिशा के स्वामी सोम के पास जाकर सन्तापित हो और हमारे पास से वापिस लौट जाय। मैं इन अभिचारी शत्रुओं का इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनाश करता हूँ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो। जो शत्रु अभिचार कृत्य द्वारा नीचे की दिशा से हमें नष्ट करना चाहता है वह उस दिशा के स्वामी पृथ्वी के पास पहुँचकर घोर व्यथा को प्राप्त हो। मैं उस शत्रु का प्रतिसर कर्म द्वारा विनाश करता हूँ ॥५॥ हे अग्ने ! जो शत्रु अभिचार कर्म के द्वारा हमें द्यावा पृथ्वी के मध्य स्थित अन्तरिक्ष से हमें नष्ट करना चाहता है वह शत्रु उस दिशा के स्वामी वायुदेव के पास पहुँचकर घोर कष्ट को प्राप्त हो। मैं उन शत्रुओं को प्रतिसर कर्म द्वारा निर्वीर्य करता हूँ ।६। हे अग्ने ! जो शत्रु ऊपर की दिशा मे अभिचार कर्म द्वारा हमको मारना चाहे, वे शत्रु उस दिशा के स्वामी सूर्य के पास जाकर यंत्रणा प्राप्त करें और हमसे दूर हो जांय। मैं उन शत्रुओं को प्रतिसर कर्म के द्वारा नष्ट करता हूँ ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! जो शत्रु

पूर्व आदि दिशाओं के कोणों से अभिचार कर्म प्राप्त करते हुए हमको क्षीण करते है, वे सब शक्तिहीन हों और हमसे विमुख होकर सबको वशीभूत करने वाले परब्रह्म के पास जाकर व्यथित हों। मैं उन शत्रुओं को प्रतिसर कर्म द्वारा नष्ट करता हूँ ॥८॥

॥ इति चतुर्थ काण्डम् समाप्तम् ॥

पंचम काण्ड

—※—

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि-बृहद्दिवोऽथर्वा। देवता-वरुण, । छन्द-त्रिष्टुप् अष्टि ।)

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥१॥
आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥२॥
यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥३॥
प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदः सद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥४॥
तदू षु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत् सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यं हुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥
उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्वस्तत् सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ॥७॥
उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि ॥८॥
अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥९॥

दिन के समान प्रकाशित, तीनो लोको का पालक, रक्षक एव धारक वह अहिंसित और अमर, सुन्दर जन्म लेकर बढने वाला योनि द्वारा उत्पन्न हुआ है ॥ १ ॥ प्रथम जीवात्मा धर्म-कर्म को करने से शरीरो को धारण करता है। सज्ञाओं द्वारा अस्पष्ट वाणी का कर्त्ता, अन्न की इच्छा से योनि को पाता है ॥ २ ॥ जो धर्म-पालन द्वारा कष्ट सहता हुआ, सुवर्ण-समान अपनी धर्म कान्ति को फैलाने के लिए तेरे शरीर मे आया है उसे अमर नाम द्यावा पृथ्वी देते है, और प्रजाएँ वस्त्र देती हैं ॥ ३ ॥ जो हर स्थान मे बैठ कर ब्राह्मण-हितैषी परमात्मा का चिन्तन करते हुए उन्हे प्राप्त हो गए है, उनके समान ही परमात्मा की उपासना कर प्रजा रूप भगि ी का भार वहन करने वाले इस राजा को ईश्वर की प्राप्ति करावें ॥ ४ ॥ क्योकि पृथ्वी को सुस्थिर रखने वाले दो राजा चक्र के समान गति से बढ रहे हैं। अत हे पृथिव्याभिमानी देव ! मैं अथर्व-पारङ्गत व्यक्ति तुम्हारे निमित्त अन्नादि हव्य भेट करता हूँ ॥ ५ ॥ मनु आदि ऋषियो ने चोरी, गुरु पत्नी-गमन, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, मद्य-पान, मिथ्या भाषण एव पाप कर्मो का करना इनके निषेध रूप मे जो मर्यादा

निश्चित की है उसे न मानने वाला पापी है। मर्यादा को मानने वाला पुरुष मृत्यु-काल मे सूर्य मण्डल स्थित आदित्य के स्थान को महाप्रलय पर्यन्त प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ देह से सम्बन्धित स्वय प्रकाश, अमरात्मायुक्त व्रती, मैं बल सहित आ रहा हूँ। जो बल सहित हवि दान करता है उसे इन्द्र रत्नादि प्रदान करते हैं ॥ ७ ॥ पुत्र अपने क्षत्रिय पिता को पूजे, ज्येष्ठ कल्याण के निमित्त धर्म मे लगे। हे वरुण ! तुम अपने अनेक स्थानो को दिखाते हुए सासारिक जीवो की देह रचना करते हो ॥ ८ ॥ अदिति पुत्र मित्र वरुण का हम बढाते हैं। हे वरुण ! तुम इस सेना दल को दुग्धादि से वृद्धि करते और आधे से स्वय बढते हो। हे आकाश पृथिवी के देवो ! विद्वान् ऋषियो के द्वारा प्रशसित देहो को हम इनसे वर्णन करते हैं ॥९॥

२ सूक्त

(ऋषि—बृहद्दिवोऽथर्वा। देवता—वरुण । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठ यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्ण ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेन मदन्ति विश्व ऊमा ॥१॥
वावृधान शवसा भूर्योजा शत्रुर्दासाय भियस दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि स ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमा ।
स्वादो स्वादीय स्वादुना सृजा समद सु मधु मधुनाभि योधी ॥३
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्त रणेरणे अनुमदन्ति विप्रा ।
ओजीय शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन दुरेवास कशोका ॥४
त्वया वय शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभि स ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५

नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ।।६।।
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्त्यामा प्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ।।७।।
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ।।८
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ।।९

यह इन्द्र धनवान् एवं बली होने से श्रेष्ठ माने जाते हैं। यह प्रकट होते ही शत्रु का संहार करने लगते है। इसीलिए इनके रक्षक सैनिक हर्ष मे निमग्न रहते है।।१।। अत्यन्त बली वृद्धि प्राप्त शत्रु, दासो को त्रास देता है। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म मे लीन हो जाता है। वैतनिक वीर युद्धादि मे परमात्मा की प्रार्थना करते हैं।। २ ।। जन्म, संस्कार और युद्ध-दीक्षा यह तीन जन्म से उत्पन्न हुए, विशाल यज्ञ को तुमसे मिलाते हैं। तुम पदार्थो को सुस्वादु बनाने वाले, इन्हें स्वादयुक्त पदार्थ वाले बनाओ। हे इन्द्र! सुन्दर रीति से युक्त करो।। ३ ।। सब युद्धो मे तुम धनविजेता की ब्राह्मण यदि स्तुति करें तो हे बली! तुम उन्हे स्थिर बल दो। सुख मे दुःख का वातावरण फैलाने अथवा बुरी गति वाले मनुष्य आपको न मिलें।। ४ ।। तुम्हारे द्वारा हम सभी विपक्षियों को समाप्त कराये देते हैं। मै तपस्या से सिद्ध अपनी वाणी से तुम्हारे शस्त्रो को प्रेपित करता हुआ तुम्हारे गतियुक्त वाणो को तीक्ष्ण किए देता हूँ।। ५ ।। जिस घर मे श्रेष्ठ साधारण प्राणियो का पालन हुआ, जिस घर मे वे अन्न से रक्षित हुए उसमे गतिमान कालिका माता की शक्ति को स्थापित करो और फिर उसे अद्भुत पदार्थों से पूर्ण करो।। ६ ।। हे

देहधारी पुरुष ! विचरण-शील, तेजस्वी, स्वामी एवं आप्त जनों के गुणों से युक्त राजा की स्तुति कर। यह पृथिवी का प्रतिरूप, युद्ध में जुट रहा है ॥ ७ ॥ स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा करता हुआ यह राजा, महान् स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करता है और स्वर्ग का राजा इन्द्र मेघ-वृष्टि द्वारा संसार को जल से पूर्ण करता है ॥ ८ ॥ अपने देह को इन्द्र मानते हुए महर्षि अथर्वा ने कहा था कि पाप-रहित भगिनियाँ इसे बल से बढ़ाती हुई प्रसन्न करती हैं ॥९॥

३ सूक्त

(ऋषि-बृहद्दिवोऽथर्वा। देवता-अग्नि प्रभृति। छन्द-त्रिष्टुप् जगती)

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥२॥
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥३॥
मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥४॥
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः।
दैवा होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥५॥
दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम्।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥६
तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम्।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥७॥
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सवितानिमातियाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥९॥
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव वाधामहे एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥१०॥
अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।
इम नो यज्ञ विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥११॥

हे अग्ने ! युद्धो मे तेजस्वी होऊँ । हम तुम्हें प्रकट करते हुए अपने देह को बलवान् बनावें । सब दिशाएँ मेरे सामने झुकें । तुम्हारे संरक्षण मे हम इस सेना पर विजय प्राप्त करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओ के क्रोध का शमन करते हुए सब ओर से हमारी रक्षा करो । हमको दु ख देने वाले, नम्र होकर हमारे पास से हट जावें । इन युद्धाकाक्षियो के चित्तो पर अन्धकार छा जावे ॥ २ ॥ इन्द्र सहित मरुत्, विष्णु और अग्नि आदि देवगण समरभूमि मे मेरे अनुकूल हो, अन्तरिक्ष मे मेरा यश-गान हो और वायु मेरे लिए अनुकूल गति वाला हो ॥ ३ ॥ मेरे इच्छित सङ्कल्प सत्य हो, मैं किसी प्रकार के पाप को प्राप्त न होऊँ, विश्वेदेवा मेरे रक्षक हो ॥ ४ ॥ मैं देवताओ का आह्वान करता हूँ, वे मुझे धन युक्त करें । देवताओ के होता हमारे पास बैठें । हम निरोग एव बलवान् बनें ॥ ५ ॥ पृथिवी, आकाश, जल, औषधि, दिन, रात इन छै उर्वियो को हमारे लिए बढाइये । हे देवगण ! प्रसन्न होओ । हमको तिरस्कृत, निन्दा और पाप की प्राप्ति न हो ॥ ६ ॥ भारती, पृथिवी और सरस्वती तीनो हमारे लिए कल्याणकारी हो । पुष्ट पदार्थ हमारी प्रजाओ और शरीरो को प्राप्त हो । हम सन्तान एव पशुओ से रहित न हो । हे सोम ! शत्रुओ से हमे दुःख न मिले ॥७॥ नदी के समान गतिशील, गुणवान्, अन्नवान्, इन्द्र ! हमको इस यज्ञ

म मुख दो। हमारी सन्तान को नाश न कर और हम न त्यागें ॥ ८ ॥ धाता, विधाता, शत्रु हता, सूर्य, आदित्य, रुद्र और अश्विद्वय यजमान की पाप से रक्षा करें ॥ ९ ॥ हमारे शत्रु नष्ट हो, इन्द्राग्नि द्वारा हम इनको बांधते हैं। आदित्य और रुद्रा ने हमें सावधान करने वाला राजा प्रदान किया है ॥१०॥ भूमि विजेता, धन एवं अश्वों के विजेता शत्रुओं से सामना करने वाले इन्द्र का हम आह्वान करते हैं। वे हमारी स्तुति को सुनें। हे इन्द्र ! तुम हमसे स्नेह करने वाले बनो ॥११॥

४ सूक्त

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा । देवता-कुष्ठस्तवमनाशन । छन्द-अनुष्टुप गायत्री ।)

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तम ।
कुष्ठेहि तवमनाशक तवमान_नाशयन्नित ॥१॥
सुपर्णसुवने गिरौ जात हिमवतस्परि ।
धनरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तवमनाशनम् ॥२॥
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षण देवा कुष्ठमवन्वत ॥३॥
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्प देवा कुष्ठमवन्वत ॥४॥
हिरण्यया पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभि कुष्ठ निरावहन् ॥५॥
इम मे कुष्ठ पूरुष तमा वह त निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ॥६॥
देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हित ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥७॥
उदङ् जातो हिमवत स प्राच्या नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥८॥

उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं ∂ रसं कृधि ॥६॥
शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वोरप. ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥१०॥

पर्वतों में उत्पन्न बलवान् औषधि कूट ! तू कठिन रोगों की नाशक है। हमारे कष्टकारक रोग का नाश करती हुई तू यहां आ ॥ १ ॥ गरुड़ के प्राकट्य स्थान हिमालय में उत्पन्न इस औषधि को लोगों ने सुना और वहां धनों के साथ जाकर उसे प्राप्त किया ॥ २ ॥ तीसरे आकाश में देव-स्थान अश्वत्थ है वहां देवगण ने अमृत के गुण वाले कूट को जाना ॥३॥ सुवर्ण-बन्धन वाली स्वर्ग की नौका द्वारा अमृत के पुष्परूप कूट को देवगण ने पाया ॥ ४ ॥ सुवर्णमय मार्ग, स्वर्ण नौकाओं और स्वर्ण के डांडों द्वारा ही कूट लाया गया ॥ ५ ॥ हे कूट मेरे इस पुरुष को यहां ले आ और इसे रोग से मुक्त करके आरोग्य प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे कूट ! तुम देवताओं के संरक्षण में उत्पन्न एवं सोम के हितैषी मित्र हो। तुम मेरे इस पुरुष के प्राण-व्यान एवं नेत्र को सुख देने वाले होओ ॥७॥ हिमालय के उत्तर में कूट उत्पन्न हुआ, पूर्व में मनुष्यों के पास आया। तब उसके श्रेष्ठ नामों का विभाग हुआ ॥ ८ ॥ शिर रोग, नेत्र-व्याधि और रोगोत्पत्ति का निमित्त पाप इन सबको कूट ने दव-बल प्राप्त कर नष्ट कर दिया ॥६॥

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—लाक्षा । छन्द—अनुष्टुप् ।)

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥१॥

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥२॥
वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥३॥
यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥४॥
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद् धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५॥
हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ॥६॥
हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ॥७॥
सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥८॥
अश्वस्यास्न. सम्पतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९॥

हे लाख ! चन्द्रमा की किरणो द्वारा, पुष्ट होने से रात्रि तेरी माता और वर्षा द्वारा उत्पन्न होने से आकाश तेरा पिता है। आकाश मे मेघ लाने से सूर्य पितामह हैं। तू देवताओ की सिलाची नाम्नी भगिनी है ॥ १ ॥ तुझे पीने वाला जीवित रहता है । तू रक्षा करने वाली, भरण करने वाली एवं 'न्यञ्चनी' है ॥ १ ॥ तू वृषयन्ती कन्यला के समान हरेक वृक्ष पर चढ जाती है। तू जीतती, खड़ी होती है, इसीलिए तेरा नाम स्परणी है ॥ २ ॥ हे लाख ! तू घावो के लिए उपाय रूप है, इसलिए इस पुरुष को क्षत-रहित कर ॥ ४ ॥ तू

कादम्ब, पाकड़, पीपल, खैर, धौ, भद्र, न्यग्रोध एवं पर्ण से उत्पन्न होती है। हे व्रण शोधक एवं पूरक औषधे ! हमको प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे सुवर्ण एवं सूर्य के समान वर्ण और कान्ति वाली औषधे ! तू घाव पर पहुँचती है, सौभाग्यवती जलो की भगिनी के समान है। हे लाख ! वायु तेरी आत्मा के समान है ॥ ७ ॥ सिलाची और कानीन तेरे नाम है। वकरियो का पालक तेरा पिता है। यम के पीले रङ्ग के अश्व के रक्त से तेरा सिञ्चन हुआ है ॥ ८ ॥ हे व्रण पूरक। तू अश्व रक्त के वर्ण वाली है, वृक्षो को सीचती है। तू सरकने वाली है अतः पतत्रिणी-सी होती हुई हमको प्राप्त हो ॥९॥

६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि–अथर्वा। देवता–ब्रह्म, आदित्य। छन्द–त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्।)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥२॥
सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥३॥
पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः॥४॥
न्वेतेनारात्सीरसौ स्वाहा।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥५॥
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥६॥

अर्वतेनारातसीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥७॥
मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथा यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८॥
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तहसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु येस्माँ अभ्यघायन्ति ॥९॥
योस्माश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्व प्र विशामि सर्वगु.।सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥११॥
इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये त त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः ।
सर्वात्मा सर्वतनू. सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१२॥
इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुष ।
सर्वात्मा सर्वतनू सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१३॥
इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुष।
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४॥

अखिल विश्व का कारण रूप परब्रह्म सृष्टि के आदि मे सूर्य रूप से प्रकट हुआ । उसका तेज 'वेग' है, जो सब दिशाओ और लोकों को व्याप्त करता है ॥ १ ॥ हे पुरुषो ! तुम्हारे प्रतिगामी शत्रुओं ने जिन उत्तम कर्मों को किया है, उन कर्मों से वे हमारी सन्तान रूप वीरों को नष्ट न करें, इस निमित्त मैं इस अभिचार कर्म को प्रस्तुत करता हूँ ॥ २ ॥ आकाश स्थित अनेक मार्ग-युक्त स्वर्ग के वासी यह घोषित कर चुके हैं कि युद्ध मे जाने से आनाकानी करने वालों को बाँधने के लिए यमदूत पाश लिए सदा तत्पर रहते हैं, वे अपने नेत्रों को कभी नही मूंदते ॥ ३ ॥ हे सूर्य ! अन्न के निमित्त मेघो के पास जाने

वाले तुम उन्हे ताडना देकर समुद्र रूप मे प्राप्त कराते हो अत तुम्हारा नाम सनिस्रस है। तेरहवाँ महीना भी इन्द्र का गृह है, उसमे भी वर्षा कराने को तत्पर रहो॥ ४॥ इस अभिचार कर्म द्वारा ही इसने सिद्धि पाई थी, यह स्वाहुत हो। हे सोम और रुद्र! तुम तीक्ष्णास्त्र युक्त हो। इस युद्ध मे हमको सुखी करो॥ ५॥ इस अभिचार-कर्म द्वारा ही इस राजा ने शत्रु नाश कर सिद्धि प्राप्त की थी, यह हवि स्वाहुत हो। हे सोम, रुद्र! तुम तीक्ष्णायुध वाले हो, इस युद्ध मे हमे सुख दो॥ ६॥ इस अभिचार-कर्म द्वारा ही प्रतिलोम रूप से शत्रु दमन करते हुए इस राजा ने सिद्धि प्राप्त की थी यह हवि स्वाहुत हो। अत्यन्त सुख एव तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रयुक्त सोम और रुद्र! हमको इस युद्ध मे सुखी करो॥ ७॥ हे सोम-रुद्र देवो! अकथनीय पाप से हमको बचाओ। इस यज्ञ को प्राप्त होते हुए इसमे अमृतत्व की स्थापना करो॥ ८॥ हे नेत्र, मन एव मन्त्र सम्बन्धी सहारक शक्ति! तुम आयुधो मे भी श्रेष्ठ आयुध हो। जो हमे नष्ट करना चाहते हैं वे आयुधहीन हो॥ ९॥ हमारी हत्या रूप पाप करने की इच्छा वाला अघायु हमको वक्र दृष्टि मन एव चित्त-वृत्ति से क्षीण करने की इच्छा करता है उसे हे अग्ने! अपने आयुध द्वारा आयध-हीन कीजिए। यह आहुति स्वाहुत हो॥ १०॥ हे अग्ने! तुम इन्द्र के गृहरूप, सर्वगामी, सब की आत्मा, सबके शरीर एव सर्वपुरुष रूप हो। मैं अपने सब साथियो सहित आपका शरणागत होता हुआ आपमे प्रविष्ट होता हूँ॥ ११॥ हे अग्ने! तुम इन्द्र के सुख रूप हो। तुम सर्वगामी, सर्वात्मा, सर्वदेह और सर्वपुरुष रूप हो। मैं अपने समस्त वैभव कुटुम्ब सहित तुम्हारी शरण को प्राप्त होता हूँ॥ १२॥ हे अग्ने! तुम इन्द्र के कवच रूप, सर्वगामी, सर्वात्मा

आदि हो। मैं अपनी समस्त निधि सहित आपकी शरण को प्राप्त होता हूँ ॥ १३ ॥ हे अग्ने! तुम इन्द्र के वरूथ, सर्वगामी, सर्वतनू और सर्वपुरुष रूप हो। मैं तुम्हारी शरण लेता हुआ, तुममें प्रविष्ट होता हूँ ॥१४॥

७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-अरातय· सरस्वती। छन्द-पंक्तिः *अनुष्टुप्, बृहती।*)

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम्।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥१॥
यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम्।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥२॥
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम्।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥३॥
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥४॥
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥५॥
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽराति प्रति हर्यत ॥६॥
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥७॥
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम्।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥८॥
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥९॥

हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्राप्येऽरात्या अकरं नमः ॥१०॥

हे अराते (अदानी) ! हमको धनयुक्त कर । हमारे चारों ओर स्थित न हो । हमारी लाई हुई दक्षिणा को प्रभावित न कर । अदान की अधिष्ठात्री देवी की अवृद्धि की इच्छा के लिए यह हव्यान्न प्राप्त हो ॥ १ ॥ हे अराते ! केवल बोलने वाला जो पुरुष तेरे सम्मुख रहता है, उसे हम दूर से प्रणाम करते हैं। तू हमारी इस इच्छा को मत टालना ॥२॥ देवताओं को भक्ति दिन-रात बढ़े । हम अराति की शरण ग्रहण करते है, यह हवि उसे प्राप्त हो ॥ ३ ॥ देव-आह्वाक यज्ञों मे, उन्हे प्रसन्न करने वाली वाणी का मैं उच्चारण कर चुका हूँ । हम सब अनुमति, सरस्वती और भग देवता की शरण प्राप्त करते हुए उन्हे बुलाते हैं ॥ ४ ॥ मनोद्भूत सरस्वती की वाणी से मैं जिस वस्तु की प्रार्थना करता हूँ, उसे सोम देवता द्वारा दी हुई श्रद्धा प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे अराते ! तू हमारी वाणी और भक्ति को अवरुद्ध न कर । इन्द्राग्नि हमको सर्व धन दें । हमारे शत्रुओ के लिए वे अनुकूल न हों ॥ ६ ॥ हे अराते ! मैं तुझे दुर्बलता कारक और पीडाप्रद जानता हूँ । इसलिए हमसे दूर हो । तेरी विनाशक शक्ति को हम दूर करते है ॥ ७ ॥ हे अराते ! मनुष्य की कामनाओ को असफल करती हुई तू सदा प्रमाद रूप मे मनुष्य को प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ जो असमृद्धि हमारी आशाओ को असमृद्ध कर रही है, उस हिरण्यकेशी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ जिसकी व्याप्ति से हिरण्यवर्णा पृथिवी हिरण्यकशिपु के वशीभूत हो असमृद्ध हो गई थी उस रमणीयता की नाशक असमृद्धि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अग्नि. प्रभृति । छन्द–अनुष्टुप् जगती. पंक्ति ।)

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।
अग्ने तां इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥१॥
इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु ।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे ।
तेभिः शकेम वीर्यं जातवेदस्तनूवशिन् ॥२॥
यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ॥३॥
अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृकइव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत॥४
यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥५॥
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥६॥
यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।
त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ॥७॥
यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वेऽहमधरांस्तथामून्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥
अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र ।
मेद्यहं तव अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥९॥

हे अग्ने ! तुम बलवती औषधि के ईंधन से देवगण को घृत प्राप्त कराओ । इस कर्म से उन्हें प्रसन्न करो । इस यज्ञ में सब देवता मेरे आह्वान पर आगमन करें ॥ १ ॥ हे इन्द्र !

मेरे यज्ञ मे आओ। मेरी स्तुति सुनो को । वह ऋत्विज
इच्छानुकूल रहे । हे उत्पन्न हुओं के ज्ञाता इन्द्र ! पु
ऋत्विजों के प्रयत्न से हम वीर्यवान् बनें ॥ २ ॥ हे देवग
भक्ति न करने वाले पुरुष के हव्य को अग्नि न पहुँच
देवगण उसके यज्ञ मे न जाकर, मेरे यज्ञ को प्राप्त हो ॥
तुम इन्द्र के वचनो से बढ़ो और शत्रुओं का नाश करो। भे
द्वारा भेड को मथने के समान शत्रु को मथो। वह जीवि
रहे, उसे नष्ट कर डालो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हमारी दुर्ग
लिए इन शत्रुओ ने जिसे अपना पुरोहित बनाया है, उ
अध-पतन हो। मैं उसे मरने के निमित्त फेंकता हूँ ॥ ५ ॥
देव ! उन्होने तनूनपान और परिपाण कर्म के समय
मन्त्रमय कवच सिद्ध कर लिए हो तो उस समय के उनके मन्त
असफल करिये ॥ ६ ॥ हे वृत्रनाशक इन्द्र ! हमारे शत्
जिन योद्धाओ को आगे किया है, उन्हे तुम पीछे करदो, जि
मैं शत्रु की सेना का सहार कर सकूं ॥ ७ ॥ जैसे इन्
स्तुतिरूप श्रेष्ठ वचन से शत्रु को रौद डाला वैसे ही मैं
शत्रुओं का तिरस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥ हे वृत्रनाशक इ
तुम इस युद्ध मे उग्र होकर शत्रु के मर्मो को छेद डालो
तुम्हारा स्नेही हूँ, इसलिए इन शत्रुओ का सामना करो।
तुम्हारे अनुगत तुम्हारी सुन्दर मति के अनुसार रहे ॥९॥

९ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-वास्तोष्पति । छन्द-बृहती
त्रिष्टुप्, जगती ।)

दिवे स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ।
अन्त रिक्षाय स्वाहा ॥४॥ दिवे स्वाहा ॥५॥ पृथिव्यै स्वाहा ।

मे चक्षुर्वातः प्राणोन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतो
ाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥७
युरुद् बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।
रकृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्त गोपायतं मा ।
पसदो मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥८॥

आकाश के अधिष्ठात्र देव के लिए स्वाहा ॥१॥ पृथिवी
ाधिष्ठात्र देव के लिए स्वाहा ॥२॥ अन्तरिक्ष के अधिष्ठाच
ा के लिए स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्ष के देवता के निमित्त स्वाहा
। स्वाहा के लिए स्वाहा ॥५॥ पृथिवी के लिए स्वाहा ॥६॥
मेरे चक्षु, वायु प्राण, अन्तरिक्ष आत्मा और पृथिवी देह
अनाच्छादित नाम वाला मैं द्यावा पृथिवी से रक्षा प्राप्त
ा के निमित्त उनकी शरण मे जाता हूँ ॥ ७ ॥ तुम मेरी
, बल,कृत्या, बुद्धि और इन्द्रियों को बढाओ । हे आयुकारक
रक्षक द्यावा पृथिवी ! तुम स्वधायुक्त मेरे रक्षक हो । नष्ट
से मेरी रक्षा करो ॥८॥

१० सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–वस्तोष्पति. । छन्द–गायत्री, पङ्क्ति, जगती)

ावर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
[स ऋच्छात् ॥१॥
ावर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
[स ऋच्छात् ॥२॥
ावर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् .
[स ऋच्छात् ॥३॥
ावर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
[स ऋच्छात् ॥४॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥५॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥६॥
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥७॥
बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षु रन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥८॥

हे पत्थर के घर ! तू मेरा है। जो हत्या रूप पाप वाला पूर्व दिशा से हमको नष्ट करना चाहता है, वह नाश को प्राप्त हो ॥ १ ॥ हे पत्थर के घर तू ! मेरा है। जो दक्षिण से हम को नष्ट करने की इच्छा करता है, वह यहाँ आने ही नष्ट हो ॥ २ ॥ हे घर ! तू मेरा है। जो पश्चिम दिशा से हमारी हत्या करना चाहता है, वह तेरे पास आते ही नष्ट हो ॥ ३ ॥ हे घर ! तू मेरा है। जो पापी मुझे उत्तर दिशा से नष्ट करने की इच्छा करता है, वह यहाँ आकर नाश को प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे घर ! तू मेरा है। जो पापी ध्रुव दिशा से मुझे नष्ट करना चाहता है, वह तुझे प्राप्त होकर नाश को प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे पत्थर के घर ! तू मेरा है। जो दुष्ट मुझे ऊपर से नष्ट करना चाहता है, वह यहाँ आकर नाश को प्राप्त हो ॥ ६ ॥ हे पत्थर के घर ! तू मेरा है। जो पापी अन्तर्दिशाओं से हमारी हत्या करना चाहता है, वह इस घर को पाकर नाश को प्राप्त हो जाय ॥ ७ ॥ चन्द्रमा से मन का आह्वान करता हूँ। वायु से प्राणापान, सूर्य से चक्षु, अतरिक्ष से श्रोत्र, पृथिवी से देह और सरस्वती से वाणी की प्रार्थना करता हूँ ॥८॥

११ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–वरुण । छन्द–त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, अष्टि ।)

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।
पृश्नि वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥१
न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेन सि जातवेदाः ॥२॥
सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३॥
न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥४॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥५॥
एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा
उप सर्पन्तु भूमिम् ॥६॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणींरभ्येतावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥७॥
मा मा वोचन्नराधसं जनास, पुनस्ते पृश्नि जरितर्ददामि ।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥८॥
आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९॥
समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥१०॥
देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धु ॥११॥

हे पराक्रमी वरुण! तुमने पोषणकर्ता सूर्य से क्या कहा था? हे धन-प्रदाता! तुम सूर्य को दक्षिणा प्रदान करते और मन से चिकित्सा करते हो ॥ १ ॥ मैं अपनी इच्छा मात्र से ही धनवान् नही बनता अपितु सूर्य से प्रार्थना करने पर ही इस सुख को प्राप्त करता हूँ। हे ऋत्विज! तुम किस कौशल से अग्नि समान हो गये हो? ॥ २ ॥ मैं अथर्वा से प्राप्त कौशल के द्वारा ज्ञानवान् हो गया हूँ और अग्नि सदृश्य ही सबके लिए पथ-प्रदर्शक बन गया हूँ। मैं जिस व्रत को धारण करूँगा, उसे कोई भङ्ग नही कर सकता ॥ ३ ॥ हे वरुण! तुम महान् धैर्यवान् और सब भूतो के ज्ञाता हो, अत दुष्ट प्रपञ्ची-जन तुमसे डरते हैं ॥ ४ ॥ हे स्वधायुक्त नीतिवान् वरुणदेव! तुम उत्पन्न प्राणियो के ज्ञाता हो और मोह-रहित हो। इस रजोगुणयुक्त धन से श्रेष्ठ अन्य कौन वस्तु है? ॥ ५ ॥ इस रजोगुण से श्रेष्ठ सत्त्वगुण तथा सत्वगुण से भी परम श्रेष्ठ ब्रह्म है। हे वरुण! मैं इस विषय के जानकार तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि दुष्ट-जन मेरे सामने 'डरते हुए बोले तथा दास झुक कर चलने वाले हो ॥ ६ ॥ हे वरुण! तुम बार-बार धन प्राप्ति के अवसरो के निमित्त वाणी का प्रयोग करते हो। तुम इन व्यवहारियो के प्रति उदासीन न हो, जिससे ये लोग तुम्हे धन-विहीन न समझ लें ॥ ७ ॥ दूसरे लोग मुझे भी धन-विहीन या कजूस न समझें। मैं तुम्हे यह छोटी भेंट अर्पित करता हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम्हारा यह स्तोत्र समस्त विश्व मे व्याप्त हो ॥ ८ ॥ हे वरुण! प्राणियो से व्याप्त समस्त दिशाओ मे तुम्हारे स्तोत्र फैलें। तुमने जो मुझे न दिया हो, वह दो। तुम मेरे सप्तपदा मित्र हो ॥ ९ ॥ हे वरुण! हम दोनो एक ही हैं। हमारी सन्तान भी एक-सी हैं, यह बात मुझे ज्ञात है, जो तुम्हे

नही दिया, वह अब देता हूँ। मैं तुम्हारा सप्त-पदा मित्र हूँ ॥ १० ॥ अन्न धारणकर्ता देव, देवताओ के स्तुति करने वाले हैं। मेधावी ब्राह्मण विप्र की स्तुति करते है। हे वरुण ! तुमने देव प्रिय एव हमारे पिता के समान अथर्व के जानकार को उत्पन्न किया है। तुम हमको श्रेष्ठ धन मे स्थापित करो। तुम हमारे बन्धु और प्रिय सखा हो ॥११॥

१२ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्ः पङ्क्ति।)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देव न् यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वर नः ॥२॥
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥
व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणा ॥५॥
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रिय शुक्रपिशं दधाने ॥६॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञ मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥८॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥६॥
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृत हविरदन्तु देवा ॥११॥

हे अग्ने ! मनुष्यो द्वारा किए यज्ञ मे तुम प्रज्ज्वलित होकर देवगणो से मिलते हो । तुम मित्रो के पूजनीय और उनके जानने वाले हो । देवगणो का आह्वान करो । तुम देवो के दूत और महान् ज्ञानवान् हो ॥ १ ॥ हे शरीर रक्षक एव श्रेष्ठ जिह्वा वाले अग्निदेव ! सत्यलोक के प्रापक मार्गों को मधुमय बना उनसे आनन्द प्राप्त करो । तुम यज्ञ की वृद्धि करते हुए उसे देवगणो तक पहुँचाओ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुत्य और प्रार्थनीय हो । हमारे इस यज्ञ मे वसुओ सहित पधारो। तुम देवगणो के आह्वानकर्ता हो । हमारी प्रार्थना पर देवो की उपासना करो । तुम मनुष्यो द्वारा यजन करने योग्य हो ॥ ३ ॥ यज्ञभूमि मे वेदी को ढकने वाला आह्वान करने योग्य अग्नि मध्यान्ह-काल से पूर्व मे वृद्धि को प्राप्त होता है । यह ज्योतिपियो मे महान् और यजनकर्ता तथा पृथ्वी के लिए सुखकारी है ॥ ४ ॥ अग्नि की लपटें हवि-वाहक और व्याधियों को रोकने वाली होने के कारण द्वार सदृश्य हैं । जिस प्रकार नारियाँ अपने स्वामियो का आदर-मान करती है, वैसे ही हवि को ले जाने वाली दीप्यमान ज्वालाओ तुम देवताओ के लिए मङ्गलमयी हो ॥ ५ ॥ अग्नि की प्रकाशित उषा और हवि-दीप्ति नक्ता-यज्ञ को सुचारु-रूप से क्रियान्वित करती हैं और देवगणो से मिलती है । यह स्वर्गिक परस्पर रूप से सयुक्त

होने वाली श्रेष्ठ दीप्तियाँ यजमान के लिए धन प्रदान करने वाली हो ॥ ६ ॥ वायु और अग्नि दिव्य स्वरूप हैं। मनुष्य होताओं से मुख्य हैं, सुन्दर वाणी वाले यज्ञ प्रेरक एव यज्ञ करने वाले हैं। होताओं पर कृपा करते और देवदूत अग्नि की उपासना की आज्ञा देते है। अत यह यज्ञ के सफल सञ्चालक मुझ पर भी अनुग्रह करे ॥ ७ ॥ पृथ्वी और सरस्वती के आह्वान करने पर समस्त भूतो को जल से नष्ट करने वाले अग्निदेव का तेज सावधान होकर यहाँ आवे। ये सुन्दर कर्मरत त्रिदेवियाँ कुशा निर्मित आसन पर आसीन हो ॥ ८ ॥ जो त्वष्टा देव द्युलोक, पृथ्वीलोक और समस्त भूतो को विभिन्न रूप प्रदान करते हैं, हे आह्वानीय अग्ने! हमारी प्रार्थना पर उस त्वष्टा की उपासना करो ॥ ९ ॥ हे देव! देवताओ के भाग इस पशु-रूप अन्न और आहुतियो को प्रत्येक ऋतु मे अर्पित करो। वनस्पति, शमिता और अग्नि इस हवि सामग्री को जल और घृत मिलाकर स्वादिष्ट बनावें ॥ १० ॥ यह अग्नि प्रकट होते ही यज्ञ का आरम्भ करते हैं, यह प्रकट होते ही, देवताओ के अग्रणी बनते हैं। इन देवदूत अग्नि के मुख मे स्वाहाकार युक्त हवि को देवगण स्वीकार कर ॥११॥

१३ सूक्त

(ऋषि-गरुत्मान्। देवता-सर्पविषनाशनम्। छन्द-जगती, पङ्क्ति, अनुष्टुप्।)

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिव कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम्।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥१॥
यत् ते अपोदक विष तत् त एतास्वग्रभम्।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तम रसमुतावम भियसा नेशदादु ते ॥२॥

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमसइव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥३॥
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥४॥
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥५॥
असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथांइव ॥६
आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥७॥
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥८॥
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥९॥
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् ।
ताबुवेनारसं विषम् ॥१०॥
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् ।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥११।

वरुणदेव ने मुझे मन प्रदान किया, उस मन के प्रभाव से मैं तेरे विष को पृथक् करता हूँ । जो विष मांस में अथवा उससे ऊपर है उसे मैं ग्रहण करता हूँ । तेरा विष उसी भांति नष्ट हो गया, जिस प्रकार जल की बूंद रेत में गिरने से नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥ जल को सुखा देने वाले तेरे विष को मैंने अपने अन्दर ही रोक लिया । तेरे उत्तम मध्यम एवं अधम विष को मैं ग्रहण करता हूँ । वह मेरे भय से नाश को प्राप्त हो ॥ २ ॥ मेरा वचन वृष्टि वर्षक और मेघ सदृश्य गर्जनशील है । मैं अपने

गम्भीर वचनों से तुझ सर्प को बन्धन ग्रस्त करता हूँ। अन्धकार मे सूर्योदय की भाँति यह व्यक्ति विष प्रभाव से रहित हो जावित हो उठे ॥३॥ हे सर्प ! अपनी नेत्र शक्ति से मै तेरी नेत्र शक्ति नष्ट करता हूँ। विष को विष के द्वारा प्रभावहीन करता हूँ। तू मृत्यु को प्राप्त हो तथा तेरा विष तुझे ही प्राप्त हो ॥४॥ हे कृष्णवर्ण और निष्कृष्ट सर्पो ! मेरे सखा के निवास स्थान के समीप न रहो। मेरे इस वचन को दूसरा तक पहुँचाते हुए अपने विष को स्वय ही प्राप्त करो ॥५॥ कृष्णवर्ण वाले, नम स्थान मे रहने वाले, दभ्रु वर्ण वाले, शुष्क स्थान मे रहने वाले और साम्रासाह नामक सर्प के आक्रोश को उसी प्रकार दूर करता हूँ, जिस भाँति मरभूमि मे रथ अथवा धनुष से डोरी उतारी जाती है ॥ ६ ॥ हे सर्पो ! तुम्हारे माता-पिता आलिगी प्राण मे और विलगी-द्रुतगति वाले हैं। तुम्हारे बन्धुओ को हम जानते हैं। तुम निस्तेज हमारा कुछ नही बिगाड सकते ॥ ७ ॥ विशाल गूला वृक्ष से प्रकट उसकी पुत्री सर्पिणी काली सर्पिणी की दासी है। दाँत से क्रोध करने वाली इन सब सर्पिणियो का दुखदायी जहर प्रभाव रहित हो ॥ ८ ॥ पर्वत समीप विचरण करने वाली सेहों ने यहा कि खोदे हुए स्थाना मे रहन वाली सर्पिणियो का विष प्रभाव रहित हो ॥ ९ ॥ तू तस्तुव नही है क्योकि तस्तुव के प्रभाव से विष प्रभाव रहित हो जाता है ॥ १० ॥ तू तस्तुव नही है क्योकि तस्तुव के प्रभाव से विष निष्प्रभावी हो जाते है ॥११॥

१४ सूक्त

(ऋषि-शुक्र । देवता-वनस्पति । छन्द-अनुष्टुप् बृहती त्रिष्टुप्)

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्व दिप्सन्तमव कृत्याकृत जहि ॥१॥

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृत जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तम त्व जह्योषधे ॥२॥
रिश्यस्येव परीशास परिकृत्य परि त्वच ।
कृत्या कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३॥
पुन कृत्या कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि कृत्याकृत हनत् ॥४॥
कृत्या सन्तु कृत्याकृते शपथ शपथीयते ।
सुखो रथइव वर्तता कृत्या कृत्याकृत पुन ॥५॥
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्या चकार पाप्मने ।
ताम् तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६॥
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषै कृता ।
ता त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७॥
अग्ने पृतनाषाट् पृतना सहस्व ।
पुन कृत्या कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८॥
कृतव्यधनि विध्य त यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय स शिशीमहि ॥९॥
पुत्रइव पितर गच्छ स्वजइवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृत पुन ॥१०॥
उदेणीव वारण्य भिस्कन्द मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥११॥
इष्वा ऋजीय सततु द्यावापृथिवी त प्रति ।
सा त मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृत पुन ॥१२॥
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथइव वर्तता कृत्या कृत्याकृत पुन ॥१३॥

हे औषधे ! सुन्दर पङ्ख युक्त गरुण न तुझे प्राप्त किया आदि वाराह ने तुझ नाक से खोदा । अभिचार कर्म द्वारा हमारी हिंसा करने वाले शत्रु का तू विनाश कर ॥ १ ॥ तू

कष्टदायी राक्षसों का संहार कर अभिचारी का नाश कर तथा जो हमारे हिंसक शत्रु है, उनका भी विनाश कर ॥ २ ॥ हे देवगणो ! हिंसाकारी के आयुध को नष्ट करो, कृत्या को कृत्या कर्म करने वाले पर वापिस लौटा दो । स्वर्ण को लालच करके प्राप्त करने के समान कृत्या करने वाला अभिचारी कृत्या को स्वयं ग्रहण करे ॥३॥ हे औषधे ! तू कृत्याकारी के पास ही कृत्या को लेजा और उसे उसी के सम्मुख रखदें, जिससे वह उसी का नाश कर डाले ॥ ४ ॥ कृत्याकारी को ही कृत्या प्राप्त हो, शाप देने वाले को ही शाप व्याप्त हो । जैसे सुन्दर मार्ग मे रथ घूमता है, वैसे हो कृत्या प्रेषक के ऊपर प्रेषित कृत्या घूमे ॥ ५ ॥ यदि किसी स्त्री अथवा पुरुष ने तुझे अभिचार कर्म के लिए प्रेरित किया हो तो अश्व पर रस्सी छोडने के समान कृत्या प्रेषक पर ही हम उस कृत्या को छोडते हैं ।६। हे कृत्ये ! यदि तुझे देवो ने या पुरुषो ने प्रेषित किया है, तो भी हम इन्द्र के मित्र होने के नाते तुझे वापिस लौटाते हैं ॥७॥ हे राक्षस वाहिनी का सामना करने वाले इन्द्र ! इन कृत्याओ का सामना करो । हम इस कृत्या लौटाने के कर्म द्वारा कृत्या प्रेरित करने वाले को ही वापिम लौटाते है ॥ ८ ॥ हे कृत्ये ! जिसने तुझे प्रेरित किया है, उसे ही वेध कर मार डाल । जिस व्यक्ति ने तुझे प्रेरित नही किया, उसे नष्ट करने के लिए हम तुझे तीक्ष्ण नही करते ॥ ९ ॥ हे कृत्ये ! जैसे पुत्र पिता के पास जाता है उसी भांति तू अपने उत्पत्तिकर्त्ता पिता के पास जा और दबने पर सर्प दंश के समान कृत्याकारी को डस ले । बन्धन के मध्य मे टूटने पर अपने शरीर पर लगने के समान तू अभिचारी के पास लौट जा ॥ १० ॥ जैसे हस्तिनी मृगी पर झपटती है वैसे ही कृत्याकारी पर कृत्या झपट पड़े ॥ ११ ॥ हे द्युलोक और पृथ्वी ! कृत्याकारी को कृत्या बाण

मट्प्य वेध डाल। यह उसे मृग के समान पकड ले ॥१२॥ वह कृत्या, कृत्याकारी के विपरीत आचरण करती हुई मिले। जैसे जल किनारे को ढाता हुआ मिलता है, उसी भाँति कृत्याकारी के ऊपर रथ के समान घूमे ॥१३॥

१५ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्र । देवता-मधुला ओषधि । छन्द-अनुष्टुप् बृहती)

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुला कर· ॥१।
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥२॥
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥३॥
चतस्रश्च मे च वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥४॥
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर· ॥५॥
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर ॥६॥
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर· ॥७॥
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर· ॥८॥
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर· ॥९॥

दश च मे शतं मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१०॥
शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥११॥

हे ओषधे ! मेरी निन्दा करने वाले एक दश या ग्यारह हों, तू मधुर है मेरी वाणी को भी मधुमय बना ॥१॥ हे ऋतु अनुसार उत्पन्न होने वाली ओषधि ! मेरे निन्दक दो हों या बीस तू मेरी वाणी को मधुर बना क्योंकि तू मधुर है ॥ २ ॥ हे ऋतावारि ओषधे ! मेरे निन्दक तीन हों या तीस, तू मेरे शब्दों को मधुर बना, क्योंकि तू भी मधुर-है ॥ ३ ॥ हे जलोत्पन्न ओषधे ! मेरी निन्दा करने वाले चार हों, या चालीस तू मेरे वचनों को मधुर बना क्योंकि तू स्वयं भी मधुर है ॥ ४ ॥ हे ऋतु अनुसार उत्पन्न ओषधे ! मेरे निन्दक पांच हों या पचास तू मधुर है मुझे भी मिष्टभाषी बना ॥ ५ ॥ हे ऋतुजात ओषधे ! मेरे निन्दक छै हों या साठ तू मधुर है अतः मुझे भी मिष्टभाषी बना ॥ ६ ॥ हे ओषधे ! मेरे निन्दक सात हों या सत्तर तू मुझे मिष्टभाषी बना क्योंकि तू स्वयं मधुर है ॥ ७ ॥ हे ऋतु अनुसार उत्पन्न ओषधे ! मेरे निन्दक आठ हों या अस्सी तू मेरी वाणी को मधुर बना, क्योंकि तू स्वयं मधुर है ॥ ८ ॥ हे ऋतु जात ओषधे ! मेरे निन्दक नौ हों या नब्बे मुझे मिष्टभाषी बना क्योंकि तू स्वयं मधुर है ॥ ६ ॥ हे ऋतावरे ! मेरी निन्दा करने वाले दस हों या सौ तू मुझे मिष्टभाषी बना क्योंकि तू स्वयं मधुर है ॥ १० ॥ हे ऋतुजात ओषधे ! मेरे निन्दक, सौ हों या हजार तू मधुर है अत. मुझे मिष्टभाषी बना ॥११॥

---

१६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-विश्व मित्र । देवता-एकवृष । छन्द-उष्णिक् अनुष्टुप्)
गायत्री ।)

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१॥
यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥२॥
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥३॥
यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥४॥
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५॥
यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥६॥
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥७॥
यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥८॥
यदि नव वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥९॥
यदि दसवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१०॥
यद्यकादिशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥११॥

हे लवण ! यदि तू एक वृषभ समान शक्तिशाली है तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर, नहीं तो तू प्रभावहीन समझा जायेगा ॥ १ ॥ हे लवण ! यदि तू दो बैलों के समान शक्तिशाली है तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर, नहीं तो तू प्रभावहीन समझा जायगा ॥ २ ॥ हे लवण ! यदि तुझमें तीन बैलों की शक्ति है तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर नहीं तो तू प्रभाव रहित समझा जायगा ॥ ३ ॥ हे लवण ! यदि तू चार वृषभ के समान पराक्रमी है तो इस गौ को सन्तानशालिनी बना अन्यथा तू प्रभावहीन समझा जायेगा ॥ ४ ॥ हे लवण ! यदि तू पाँच वृषभ के समान बलशाली है, तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर, अन्यथा तू निष्प्रभाव माना जायेगा ॥ ५ ॥ हे

लवण ! यदि तू छः बैलों के समान बल रखता है, तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर, नहीं तो तू प्रभावहीन समझा जायेगा ॥६॥ हे लवण ! यदि तू सात वृषभों के समान शक्तिशाली है तो इस गौ को सन्तानवती बना अन्यथा तू निष्प्रभाव समझा जायेगा ॥ ७ ॥ हे लवण ! यदि तू आठ बैलों के समान बलशाली है तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर, अन्यथा तू प्रभावरहित माना जायेगा ॥ ८ ॥ हे लवण ! यदि तू नौ बैलों की शक्ति रखता है तो इस गौ के सन्तान उत्पन्न कर, अन्यथा तू निष्प्रभाव समझा जायेगा ॥ ९ ॥ हे लवण ! यदि तुझमें दस बैलों की शक्ति है, तो इस गौ को सन्तानवती बना, नहीं तो तू निष्फल समझा जायेगा ॥ १० ॥ हे लवण ! यदि तू ग्यारह बैलों के समान बल वाला है, तो भी निष्प्रभावी है ॥११॥

१७ सूक्त

(ऋषि-मयोभू । देवता-ब्रह्मजाया । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप ।)

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥१॥
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥
यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥४
ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५॥

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमेन ॥६॥
ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥७॥
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥८॥
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्य ।
तत् सूर्यं प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥९॥
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजाया पुनर्ददुः ॥१०॥

ब्रह्मा से पूर्व उत्पन्न देवताओ ने ब्राह्मण का अपराध करने के विषय मे कहा है ॥ १ ॥ पहले सोम ने ब्रह्म को उत्पन्न करने वाली गौ को दे दिया, उस समय वरुण और सूर्य उनके सहगामी एव अग्नि होता थे ॥ २ ॥ 'यह ब्रह्म का उत्पन्न करने वाला है, ऐसा कहने वाले का सङ्कल्प हाथ मे ले। इसे दूत के द्वारा न दे। इसके द्वारा क्षत्रिय राज्य का रक्षण होता है ॥ ३ ॥ उल्का का शब्द जहाँ गिरता है, उस राज्य का विनाश हो जाता है। इस तरह ब्रह्मजाया राज्य का विनाश करती है ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी देवगणो का अङ्ग रूप है जो ब्रह्मचर्य मे रमण करता प्रजा मे विचरण करता है। जैसे सोम के चमस को देवा ने प्राप्त किया, उसी भाँति जाया को ब्रह्मचारी द्वारा बृहस्पति ने प्राप्त किया ॥ ५ ॥ स्वर्ग स्थित सप्त ऋषियो और देवताओ ने ब्रह्मजाया की चर्चा की थी—'ब्राह्मण की चुराई गई स्त्री स्वर्ग मे भयङ्कर रूप धारण कर बुरी गति मे डालती है" ॥ ६ ॥ ससार मे उथल-पुथल, मार-काट तथा

गर्भपात आदि कर्म ब्रह्मजाया द्वारा ही किये जाते है ॥ ७ ॥ ब्रह्मजाया के पालक चाहे दस हों, पर जो ब्राह्मण उससे शादी करता है, वही उसका पति होता है ॥ ८ ॥ इस गौ का स्वामी ब्राह्मण है, क्षत्रिय या वैश्य नही भगवान् पाँच मनुष्यों से यही बात कहते हुए चले जाते है ॥ ९ ॥ राजा मनुष्य और देवताओं ने सत्य को स्वीकार कर बार-बार गौ को प्रदान किया ॥ १० ॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥११॥
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या ॥१२॥
न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१३॥
नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१४॥
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१५॥
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१६॥
नास्मै पृश्नि वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥१७॥
नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥१८॥

देवताओं द्वारा मस्वारित अन्न का विभाग कर ब्रह्मजाया को देते हुए महान् वैभवशाली परमात्मा की पूजा करते हैं ॥११॥ जिस राज्य मे ब्राह्मण स्त्री और गौ रोकी जाती है, वहाँ नाना

प्रकार के मङ्गलमय कार्यों को करने वाली नारी अपने पलङ्ग पर सुख पूर्वक नहीं सो पाती ॥ १२ ॥ जिस राज्य मे ब्राह्मण को स्त्री रोकी जाती है, वह राज्य विशाल मस्तक वाले पुरुष से रहित होता है ॥ १३ ॥ जिस राज्य मे ब्राह्मण पत्नी सज्ञा शून्य कर रोकी जाती है, उस राजा का छत्तानिष्क धारण करने पर सूना के आगे नही पहुँचता ॥ १४ ॥ जिस राज्य मे ब्राह्मण नारी मोह वश रोकी जाती है, उस राजा का श्वेत अश्व जुत कर भी प्रशसा को प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥ ब्राह्मण नारी जिस राज्य मे मोहवश रोकी जाती है, उसमे पुष्करिणी नही रहती और वहाँ कमल और पद्मकन्द भी पैदा नहीं होते ॥१६॥ जिस राज्य मे गौ मोहवश रोकली जाती है, वहाँ दुहने वाले, किञ्चित भी नही दुह पाते ॥ १७ ॥ स्त्री से रहित और पाप बुद्धि से जो ब्राह्मण रात्रि निवास करता है उसके स्वामी के यहाँ गौ मङ्गलकारी नही होती तथा बैल भी बोझ नही ढो पाते ॥१८॥

१८ सूक्त

(ऋषि—मयोभू । देवता-ब्रह्मगवी । छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।)

नैता ते देवा अददुस्तुभ्य नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गा जिघत्सो अनाद्याम् ॥१॥
अक्षद्रुग्धो राजन्य पाप आत्मपराजित ।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥२॥
आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा ।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥३॥
निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥४॥
य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।

सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥५॥
न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥६॥
शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥७॥
जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥८॥
तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥९॥
ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥१०॥

हे राजा ! यह गाय तुझे खाने के लिए देवताओं ने नही दी । तू इस अभक्षणशील गौ को खाने की इच्छा मत कर ॥1॥ आत्म पराजित, इन्द्रिय द्रोही राजा यदि ब्राह्मण की गौ का भक्षण करे तो वह दुष्ट कल तक जीवित न रहे ॥ २ ॥ ब्राह्मण की गौ केंचुली से युक्त तृषित सर्पिणी के समान है । हे राजन् ! यह भक्षण योग्य नही है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण के पदार्थों को भक्षण करने वाला विष को पीता है तथा अपने क्षात्र तेज को खोता है । वह क्रोधयुक्त अग्नि के समान अपना सब कुछ गँवा बैठता है ॥४॥ जो मूर्ख ब्राह्मण को कोमल समझ कर उसकी हिंसा करना चाहता है, वह देव हिंसक है । इन्द्र उस दुष्ट के हृदय मे अग्नि जलाते है तथा द्यावा पृथ्वी उसके शत्रु बन जाते है ॥५॥ अपने स्वयं को कोई भी नष्ट नही करता उसी प्रकार अग्नि रूप ब्राह्मण का नाश नही करना चाहिये । सोम ब्राह्मण का दायाद है । इन्द्र ब्राह्मण के शाप को पूरा करते हैं ॥ ६ ॥ ब्राह्मण के अन्न को स्वादिष्ट समझ कर भक्षण करने वाला पापी अनेक

कष्टों को भोगता है और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करने प
भी निवारण नही कर पाता ॥ ७ ॥ ब्राह्मण की जिह्वा धनु
की डोरी सदृश्य है। उसकी वाणी कुल्मल के समान तथा उस
तपयुक्त दाँत तीर के समान होते हैं। देवताओं से प्रेरणा प्रा
कर ब्राह्मण इन्ही धनुषों से देवहिंसको को नष्ट करता है ॥८
ब्राह्मण अपने तप और क्रोध रूपी तीक्ष्ण शरों का प्रयोग कर
है और दूर से ही अपने शत्रुओं को बींध डालते है ॥९॥ वीत
हव्य वंशज जो सहस्त्रों राजा पृथ्वी के एक क्षत्र सम्राट थे
ब्राह्मण की गौ का अपहरण करने के कारण नष्ट भ्र
हो गये ॥१०॥

गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्यां अवातिरत् ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामवेचिरन् ॥११॥
एकशतं ता जनता या भूमिर्व्य धूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥१२॥
देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥१३
अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते ।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ॥१४॥
इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥१५॥

जिन्होंने 'केसरप्रावधा' चर्म अजा का पाक किया उ
हव्यों को पिटती हुई गौ ने ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥११
सहस्त्रों लोग जिनके भय से पृथ्वी कम्पायमान होती थी, वह
ब्राह्मण की सन्तान को मारने के कारण पराजित हो
गये ॥१२॥ ब्राह्मण की हिंसा करने वाला विष से क्षीण होता
हुआ अस्थिमात्र रूप से रहता है। जो देव प्रिय ब्राह्मण को

हत्या करता है, वह पितृयान द्वारा प्राप्त होने वाले लोक से वंचित ही रहता है ॥१३॥ हमारे पदों को पहुँचाने वाला अग्नि है, सोम हमारा दायाद है तथा हमारी ओर से लड़ने वाले इन्द्र हैं, यह तथ्य ज्ञानवान लोग ही जानते हैं ॥१४॥ हे राजा। ब्राह्मण का वाणी रूप बाण विष युक्त बाण के समान भयंकर होता है। कष्टदायी दुष्टों का ब्राह्मण इन्हीं के द्वारा नष्ट करता है ॥१५॥

१६ सूक्त

(ऋषि—मयोभू । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—अनुष्टप्, बृहती)

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् ।
भृगु हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्या पराभवन् ॥१॥
ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जना ।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥२॥
ये ब्राह्मण प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे ।
अस्नस्ते मध्ये कुल्याया केशान् खादन्त आसते ॥३॥
ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥४॥
क्रूरमस्या आशसन तृष्टं पिशितमस्यते ।
क्षीर यदस्या पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम् ॥५॥
उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मण यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्र ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥६॥
अष्टापदी चतुरक्षी चतु श्रोत्रा चतुर्हनु ।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥७॥
तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नाव भिन्नामिवोदकम् ।

ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥८॥
तं वृक्षा अप सेधन्ति च्छायां नो मोप गा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥६॥
विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् ।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥१०॥

सृञ्जय ऐश्वर्य को प्राप्त हुए किन्तु उन्होने ब्राह्मण भृगुओ को मार डाला परिणामत वे हारे और स्वर्ग प्राप्ति से वचित रहे ॥१॥ जिन लोगो ने वृहत साम वाले अगिराओ को भीषण कष्ट दिये घृत ने उन्हे दुष्ट पुत्र प्रदान किया तथा देवताओ ने उनकी सन्तान को दूर फेंक दिया ॥२॥ ब्राह्मणो से कर की इच्छा रखने वाले तथा उन पर थूकने वाले रक्त की नदी मे बालो को खाते हुए अब तक पडे हुए है । ३॥ जिस देश मे ब्राह्मण की गौ कष्ट पाती है वह उसके तेज को विनष्ट कर देती है । वहाँ वीर्य सिंचित करने वाले वीर उत्पन्न नह होते ॥४॥ गाय का काटना हिंसक कृत्य है । इसका माँ प्यास बढाता है । हिसा की इच्छा से रखी हुई गौ का पिय जाने वाला दूध पितरो मे पाप उत्पन्न करने वाला होत है ॥५॥ जो राजा ब्राह्मण की हत्या करता है जिस राज्य ब्राह्मण दुखी रहता है, वह राजा और राज्य दोनो ही न भ्रष्ट हो जाते है ॥६॥ ब्राह्मण पर डाली हुई विपत्ति, उस पा के राज्य को चार नेत्र चार कान चार ठोडी आठ पैर मुख और दो जीभ वाली बन कर नष्ट कर देती है ॥७॥ पा उस राष्ट्र को छेद वाली नौका को जल द्वारा डुबोने के समा स्वय ही डुबाता है । जिस राष्ट्र मे ब्राह्मण की हत्या होती उसे ब्राह्मण पर डाली हुई विपत्ति ही नष्ट कर देती है ॥८ हे नारद ! जो ब्राह्मण के धन को अपना समझता है, उसे वृ

भी अपनी छाया मे आने देना नही पसद करते ।।९।। वरुण के कथनानुसार ब्राह्मण का धन छीनना विष तुल्य है । ब्राह्मण का धन लेकर जीवित बच रहना सम्भव नही ।।१०।।

नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्य पराभवन् ।।११।।
या मृतायानुबध्नन्ति कूद्य पदयोपनीम् ।
तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन ।।१२।।
अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतु: ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ।।१३।।
येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ।।१४।।
न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समिति: कल्पते न मित्रं नयते वशम् ।।१५।।

जिन आठ सौ दस पुरुषो से पृथ्वी कम्पायमान रहती थी वे ब्राह्मण की सन्तान को नष्ट करने के दोष से पराजय को प्राप्त हुए ।।११।। जिस रस्सी द्वारा मृत पुरुष का शव बाँधा जाता है उसी को हे ब्राह्मण को कष्ट देने वाले । देवगणो ने तेरा बिछौना बताया है ।।१२।। कृपाभाजन ब्राह्मणो का अश्रु-जल ही तेरे लिए देवो ने निश्चित किया है ।।१३।। जो जल मृतक के स्नान और मूछें भिगोने के लिए है, वही जलभाग तेरे निमित्त निश्चित है ।।१४।। उस राजा के राज्य मे जहाँ ब्राह्मणो को कष्ट दिया जाता है सूर्य और वरुण प्रदत्त वर्षा नही होती । उसकी सभा पुरुषार्थ विहीन होती है तथा उसकी सेना मित्रो को भी अपने वश मे नही रख पाती ।।१५।।

— o —

२० सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-वानस्पत्यो दुन्दुभि । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

उच्चैर्घोषो दुन्दु भिः सत्वनायन् वानस्पत्य: संभृत उस्रियाभिः।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंहइव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ।१।
सिंहइवास्तानीद् तवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वाशितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥२॥
वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित् ।
शुचा विध्य हृदय परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३॥
सजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाच दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४॥
दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५॥
पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥६॥
अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥७॥
धीभिः कृत प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥८॥
सक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेण प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्ति बहुभ्यो वि हर द्विराजे ।९।
श्रेय:केतो वसुजित् सहीयान्त्सग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः । १०॥
शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं साग्रमजित्यायेषमुद् वदेह ॥११॥
अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषता याहि शीभम्।१२।

वनस्पतियो से निर्मित एव उच्च स्वरो से युक्त हे दुन्दुभि ! तू अपने स्वरूप के अनुसार ही बलवानो के समान आचरण कर। उच्च गर्जन से तू शत्रुओ का मान मर्दन कर तथा विजय कामना से सिंह के समान दहाड ॥१॥ हे वृक्ष समान दीर्घ आयु वाली दुन्दुभे ! तू गौ पर रँभाते हुए वृषभ के समान गरजने वाली विशेष प्रकार से बँधी हुई है। तू वीर्य वर्षक है जिससे तेरे शत्रु निस्तेज होते हैं। इन्द्र के सदृश तेरा बल वीरो के सहन योग्य है ॥२॥ गौ की इच्छा करने वाला वृषभ झुण्ड मे ही पहिचान लिया जाता है वैसे ही तू धन विजय की कामना से घोष कर और शत्रुओ के हृदय का शोकाकुल बना जिससे वे हार कर गाँव छोड कर भाग जाँय ॥३॥ तू सेनाओ को ग्रहण करती हुई अनेक प्रकार के शब्द कर तथा युद्धो मे विजय प्राप्त कर। तू वेधा है, अत दिव्य वाणी का प्रयोग कर तथा शत्रुओ की सम्पत्ति को मुझे प्राप्त करा ॥४॥ दुन्दुभि के भयकर गर्जन को सुनकर शत्रु की सचेष्ट पत्नी युद्ध भूमि मे भीषण नर सहार देखकर भयभीत हुई अपने पुत्र का हाथ थाम कर प्रार्थना करती हुई भाग जाय ॥५॥ हे दुन्दुभि ! तेरा स्वर पहले निकलता है अत शत्रु वाहिनी का नाश कर और पृथ्वी की पीठ पर अपने सत्य वचनो का प्रसार कर ॥६॥ तेरी स्वर लहरियाँ द्युलोक और पृथ्वी लोक के मध्य अनेक रूप से व्याप्त हो। तू शब्द से वृद्धि को प्राप्त होती हुई मित्रा मे गति करने के लिए उच्च घोष कर ॥७॥ हे दुन्दुभि ! तू सुचारू रूप से बजाने पर सुन्दर स्वर उत्पन्न करती है, तू पराक्रमी पुरुषो के हाथो को ऊँचा कर उन्हे आनन्द प्रदान कर। तू वीरो को आनदित करती हुई हमारे मित्रो द्वारा शत्रुओ को निर्वीर्य करा। तू इन्द्रदेव की प्रिय है ॥८॥ हे

दुन्दुभे ! तू अपनी गर्जना से गावों को गुंजायमान करने वाली धन प्रदात्री एव सेना मे जोश भरने वाली है। तू मगनमय है एव श्रेष्ठ पुरुषो की ज्ञाता है। इन दो राजाओ के मध्य अनेक वीरो को कीर्ति प्रदान कर ॥९॥ हे विजयशील दुन्दुभे। तू मङ्गलमयी, धन विजय करने वाली, मन्त्र शक्ति से तीक्ष्ण की हुई तथा शक्तिशालिनी है। जैसे अधिपवरण-काल मे पर्वत अपने छोटे खण्डो को चूर्ण करता हुआ नृत्य करता है, उसी भाँति तू भी अपने शत्रुओ की सम्पत्ति पर आधिपत्य जमाती हुई नृत्य कर ॥ १० ॥ तू शत्रुओ का सामना करने मे समथ स्वरो को ऊपर निकालने वाली, खोज करने वाली, वाग्मी पुरुष के समान युद्ध विजय के लिए स्वरो को भरती हुई गुन्जायमान हो ॥ ११ ॥ हे दुन्दुभि ! तू हर्षोन्मत्त होकर भी चलायमान नही होती। त सन्मुख आकर वीरो को बढाने वाली तथा सग्राम को विजय करने वाली है। इन्द्र तेरी रक्षा करते है, अत शत्रुओ के हृदयो को जलाती हुई उन्हे प्राप्त हो ॥१२॥

२१ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–वानस्पत्यो दुन्दुभि। छन्द–पङ्क्ति अनुष्टुप् प्रभृति।)

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥१॥
उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते॥२॥
वानस्पत्यः संभृतः उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥३॥

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥४॥
यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५॥
यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥६॥
परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥७॥
यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥८॥
ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥९॥
आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत ।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥१०॥
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥११॥
एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥१२॥

हे दुन्दुभे ! तू शत्रुओं में परस्पर वैर-भाव फैला । हम उनमें विद्वेष का प्रसार चाहते हैं । तू उनका अपमान करती हुई नाश कर दे ॥ २ ॥ हमारे शत्रु घृताहुति से कम्पायमान हों और मन-नेत्र तथा हृदय से भयभीत हुए भागते खड़े हों ।२। हे वनस्पति से निर्मित दुन्दुभि ! तू चर्म से मढ़ी हुई है, तू घनघोर मेघों समान गर्जन करती है । तू धृत से अभिधारित है । तू अपने त्रास-जन्य स्वरों से शत्रुओं को पीड़ित कर ॥ ३ ॥ हे दुन्दुभे ! जिस प्रकार मृग शिकारी से भय खाते हैं, उसी भांति

भयकर घोष करती हुई तू शत्रुओं के मन को मोहित करती हुई उनके लिए कष्ट-दायक बन ॥ ४ ॥ जैसे भेडिए के डर से भेड, बकरियाँ भागती हैं, वैसे ही घोर गर्जन करती हुई तू शत्रुओं को त्रासित कर ॥ ५ ॥ जैसे बाज से पक्षी तथा शेर से प्राणी भय खाते है, वैसे ही तू घोर गर्जना करती हुई शत्रुओ के मन को भ्रमित करते हुए उनके लिए कष्ट-दायक बन ॥ ६ ॥ युद्ध के स्वामी देवता ने हरिण चर्म से मढी हुई दुन्दुभि द्वारा शत्रुओं को भासित कर पराजित किया ॥ ७ ॥ इन्द्र जिन पैरछलो से क्रीडा करते हैं उनसे हमारी यह शत्रु सेना भयभीत हो ॥ ८ ॥ शत्रु सेना पराजित होकर जिस ओर भाग रही है, उस ओर हमारी दुन्दुभि और धनुष टङ्कार सम्मिलित स्वरो मे घोर गर्जन करने वाले हों ॥ ९ ॥ हे सूर्य ! शत्रुओ की नेत्र-शक्ति को छीन लो। हे रश्मियो ! तू शत्रुओं के पृष्ठ भाग पर दौडो। शत्रुओ का बाहुबल क्षीण होने पर उनके पैरो की जूतियाँ भी उनका साथ न दें ॥ १० ॥ हे मरुद्गणो ! तुम उग्रकर्मा प्रख्यात हो। राजा सोम, वरुण, महादेव मृत्यु और इन्द्र के साथ मिल कर शत्रुओ का विनाश करो ॥ ११ ॥ मम-चित्त वाली सूर्य पताका धारण करने वाली देव सेनाएँ हमारे शत्रुओ पर विजय प्राप्त करें। यह हवि ग्रहणीय हो ॥१२॥

२२ सूक्त [पाँचवाँ अनुवाक]

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा । देवता-तक्मनाशन । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती ।)

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥१॥
अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।

अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्य ङ्ङधराङ् वा परेहि ॥२
यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंसइवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥३॥
अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् । ४॥
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५॥
तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥६॥
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥७॥
महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥८॥
अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि न. ।
अ प्रायद्दुर्भूस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ॥९॥
यत् त्वं शीतोऽयो रूरः सह कासावेपयः ।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि न ॥१०॥
मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् ।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ॥११॥
तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥१२॥
तृतीयकं वितृतीय सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीत रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥१३॥
गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यो ङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥१४॥

अग्नि, सोम इन्द्र, वरुण वेदी उहि और समिधायें दीप्त

होकर ज्वर को रोकें तथा हमारे शत्रु यहाँ से पलायन कर जांय ॥ १ ॥ हे ज्वर ! तू शरीर नाशक है। तू सब मनुष्यो को अग्नि समान दुःख देता हुआ हो वर्ण का बना देता है। अतः तू तिरस्कृत कमजोर एवं अधम स्थान को प्राप्त हो ॥ २ ॥ हे पराक्रमी ! तुम कठोर अध्वस के समान लाल ज्वर को दूर करो ॥ ३ ॥ मैं ज्वर का नमन करता हूँ एव उसे अधम स्थान में जाने को प्रेरित करता हूँ। घूँसे के समान प्रहारक ज्वर महान् वर्षको को पुन प्राप्त हो ॥ ४ ॥ ज्वर का स्थान मूँजयुक्त है, अधिक मात्रा मे वीर्य-पात करने वाले पुरुष इसके ग्रहरूप हैं। हे तक्मन् ! वाल्हिको मे तू जितना है, उसी मात्रा मे मिला रहता है ॥ ५ ॥ मनुष्य को सर्वत्र कष्टदायी ज्वर। तू चोर दासो से वज्ररूप से मिलता हुआ हमसे अपने को दूर कर ॥ ६ ॥ हे ज्वर ! तू जीवन का दुखप्रद बनाने वाला है। तू मूँजयुक्त प्रदेश को अथवा उससे भी दूर चला जा और हे तक्मन् ! तू नवयौवना शूद्रा से मिलता हुआ उसे ही कम्पित कर ॥ ७ ॥ हम मूँजयुक्त स्थानो पर ज्वर को जाने के लिए कहते हैं। तू वहाँ पहुँच कर भाइयो का भक्षण कर ।८। ज्वर हमसे दूर होकर मूँजयुक्त स्थानो को जायेगा। तू अन्य क्षेत्रो मे फैल रहा है, अत हमको सुखप्रान कर ॥ ९ ॥ तू शीत के साथ होने वाला ज्वर है, तू कास के साथ कम्पायमान करने वाला है। तू अपने इन भयङ्कर आयुधा सहित हमसे दूर चला जा ॥ १० ॥ हे तक्मन् शीत ज्वर ! तुम खाँसी और शक्ति कम करने वाले रोगो को हमारा मित्र न बनाओ। मैं तुमसे बार-बार कहता हूँ कि उस स्थान से गिर कर हमारे पास न आ ॥ ११ ॥ हे तक्मन् ! शक्ति का क्षीण करने वाला रोग रूप तेरा बन्धु और खाँसी तेरी भगिनी तथा पाप रूप तेरा

भतीजा है। इन सबको लेकर तू दुष्ट पुरुषों के पास जा ॥१२॥ हे देव ! तिजारी, चौथैया वर्षा शरद् और ग्रीष्म के तथा शीत एवं रूर ज्वर को विनाश करें ॥ १३ ॥ मूंजयुक्त अङ्ग मगध गन्धार प्रदेशों में कष्टदायी रोग को भगाते हुए हम मनुष्यों को सुख प्रदान करते हैं ॥१४॥

२३ सूक्त

(ऋषि—काण्व । देवता—इन्द्रादय । छन्द—अनुष्टुप् ।)

श्रोते मे द्यावापृथिवी श्रोता देवी सरस्वती ।
श्रोतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१॥
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि ।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥२॥
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥४॥
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५॥
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥६॥
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥७॥
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँइव ॥८॥
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारंगमर्जुनम ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥९॥
अत्त्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।

अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२॥
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणां ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३॥

द्युलोक आकाश, सरस्वती इन्द्र एवं अग्नि मुझमे पूर्ण रूपेण मिले हुए है, वे कीटो को नष्ट करें ॥ १॥ हे समृद्धिवान् इन्द्र ! इस बालक के शत्रुरूप कीटो को तुम मेरे उग्र वचनो से नष्ट करो ॥ २ ॥ नेत्रो मे घूमने वाले, नाक मे घूमने वाले, तथा दाँतो मे रहने वाले कीटो को हम नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥ दो एक रूप वाले, दो भयङ्कर रूप वाले, दो रक्त वर्ण वाले एक खाकी वर्ण वाला, एक खाकी कान वाला, एक गृध्र नामक तथा एक कोक नामक यह समस्त कृमि मन्त्र शक्तिसे विनाश को प्राप्त हुए ॥४॥ तीक्ष्ण कोख वालेतीक्ष्ण भुजा वालेकाले एवं अनेक रूप वाले कृमियोको हम मन्त्र शक्तिसे विनष्ट करते हैं ॥५॥ दर्शनीय सूर्य, न दिखाई पडने वाले कीटो का नाश करते है । वे दृश्य अदृश्य सभी प्रकार के कीटो को नष्ट करते हुए पूर्व दिशा से उदय हो रहे है ॥ ६ ॥ तीव्रगामी, शोकप्रद कम्पायमान करने वाले तीक्ष्ण कृमि दिखाई पडने वाले और न दिखाई पडने वाले, सभी प्रकारके कृमियाको तू मन्त्र-बलसे विनष्ट कर ॥७॥तीक्ष्ण-गामी कीट मन्त्र बल से नष्ट हुआ । मैंने नदनिमा आदि कृमियो को उसी भाँति पीस डाला जैसे चक्की चनो को पीस डालती है ॥ ८ ॥ तीन सिर, तीन कुकुद, शवल वर्ण और श्वेत वर्ण वाले कीटो को मन्त्र-बल से विनष्ट करता हुआ मैं इनके सिर

और पसलियो को उखाड फेंकता हूँ ॥ ९ ॥ अत्रि कण्व, और जमदग्नि ऋषि जिस भाँति मंत्र बल से तुम्हारा विनाश करते है, उसी भाँति मैं भी करता हूँ । अगस्त्य के मंत्र के बल से मैं तुम्हे नष्ट करता हूँ ॥ १० ॥ कीटो का राजा और मंत्री भी हमारे मंत्र और औषधि के प्रभाव से विनाश को प्राप्त हुए । माता भाई और बहिनो के साथ कृमियो का पूरा परिवार पूर्णतया विनष्ट हुआ ॥ ११ ॥ इनके बैठने की जगह नष्ट होगई । लघु कीट भी नष्ट हुए ॥ १२ ॥ सब नर और मादा कीटो को पाषाण से नष्ट करता हुआ मैं उनके मुख को अग्नि द्वारा जलाता हूँ ॥ १३ ॥

२४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—सविता प्रभृति । छन्द—शक्वरी जगती)

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ १ ॥
अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ २ ॥
द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ४ ॥

मित्रावरुणौ वृष्ट्या अधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्स्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामास्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ५ ॥

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ६ ॥

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ७ ॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ८ ॥

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकू यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ ९ ॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां

प्रतिष्ठायामस्या चित्यामस्ययामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्या स्वाहा ॥ १० ॥

सभी पदार्थों के स्वामी सूर्य हैं। वह वेदोक्त कर्म में प्रतिष्ठा और सकल्प मे देवताओ का आह्वान करने तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करें ॥ १ ॥ वनस्पतियों के स्वामी अग्नि हैं। वह वेदोक्त कर्म मे प्रतिष्ठा और सकल्प मे देवताओ का आह्वान करने तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ २ ॥ दाताओ के स्वामी द्यावा पृथ्वी हैं। वे वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ ३ ॥ जल के स्वामी वरुण हैं। वे वेदोक्त कर्म प्रतिष्ठा सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ ४ ॥ पर्वतो के स्वामी मरुद्गण हैं। वे इस वेदोक्त कर्म प्रतिष्ठा, सकल्प देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ ५ ॥ वृष्टि के अधिपति मित्र एव वरुण है। वे मेरे इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, सकल्प देव आह्वान आशीर्वादात्मक आदि कार्यों मे रक्षा कर ॥ ६ ॥ लताओ के अधिपति सोम मेरे इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कर्मों मे रक्षा करे ॥ ७ ॥ अन्तरिक्ष के स्वामी वायुदेव हैं। वे मेरे इस वेदोक्त, सकल्प, प्रतिष्ठा, देव आह्वान, एव आशीर्वादात्मक कार्यों मे रक्षा करने वाले हो ॥ ८ ॥ नेत्रो के स्वामी सूर्यदेव मेरे इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ १० ॥

...न्द्रो दिवोऽधिपति स मावतु ।
...स्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्या पुरोधायामस्यां
...तिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
...वहूत्यां स्वाहा ॥ ११ ॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ १२ ॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ १३ ॥

यमः पितृणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ १४ ॥

पितर परे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ १५ ॥

तता अवरे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ १६ ॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ १७ ॥

स्वर्ग के स्वामी इन्द्र मेरे इस वेदोक्त कर्म, प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान एव आशीर्वादात्मक कार्यों मे रक्षा करे ॥ ११ ॥ पशुओ के स्वामी मरुद्गण के पिता हैं, वे मेरे वेदोक्त, प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे रक्षक हो ॥ १२ ॥ प्रजा-अधीश्वरी मृत्यु मेरे वेदोक्त प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे रक्षा करे ॥ १३ ॥ पितरो के स्वामी, इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ १४ ॥ सात पीढियो से ऊपर के पितर इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक कार्यो मे मेरी रक्षा करे ॥ १५ ॥ सपिण्ड पितर इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा सकल्प, देव आह्वान, तथा आशीर्वादात्मक कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ १६ ॥ मृत पितर इस वेदोक्त, प्रतिष्ठा, सकल्प, देव आह्वान तथा आशीर्वादात्मक आदि समस्त कार्यों मे मेरी रक्षा करे ॥ १७ ॥

२५ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-योनि, गर्भ, पृथिव्यादय । छन्द-अनुष्टुप् बृहती)

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥ १ ॥
यथेयं पृथ्वी मही भूताना गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥ २ ॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ ३ ॥

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥
यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥ ७ ॥
अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥
वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥ ९ ॥
धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १० ॥
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ ११ ॥
सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्यो ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १२ ॥
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्यो. ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १३ ॥

पर्वत की औषधि, स्वर्ग के पुण्य और अङ्ग शक्ति से पुष्ट वीर्य धारण करने वाला पुरुष, जल मे पत्ते के समान गर्भाधान करता है ॥ १ ॥ जैसे पृथ्वी सब भूतो के गर्भ को धारण करती है, वैसे ही मैं तेरा गर्भ धारण करती हुई उसके रक्षक के लिए तेरा आह्वान करती हूँ ॥ २ ॥ हे सिनिवाली ! हे सरस्वती ! हे कल्याणी ! गर्भ को पुष्ट करो । पुष्पमाल

धारण करने वाले अश्विद्वय तेरे गर्भ को पुष्ट करें ॥३॥ मित्रा-वरुण, बृहस्पति इन्द्र अग्नि और धाता तेरे गर्भ को पुष्ट करें ॥४॥ त्वष्टा रूप निर्माण कर प्रजापति सिंचन करें विष्णु तेरी जननेन्द्रिय को सामर्थ्य प्रदान करे तथा धाता तेरे गर्भ को पुष्ट करें ॥ ५ ॥ वरुण, सरस्वती, एव वृत्रासुर विनाशक इन्द्र जिस गर्भकरण से परिचित हैं, उस गर्भकरण वस्तु का तू पान कर हे अग्ने ! तू औषधियो, वनस्पतियों, और सभी भूतो के गर्भ हो अत तुम मेरे गर्भ को पुष्ट करो ॥ ७ ॥ हे वृष्यावान ! तू वर्षक है, गर्भ स्थापित कर, ऊपर होकर चलता हुआ वीरता प्रदर्शित कर। हम तुझे प्रजा के निमित्त ग्रहण करते हैं ॥ ८ ॥ हे धैर्यवान सती साध्वी तू विशेष गति वाली हो मैं गर्भाधान करता हूँ। सोमपायी देवताओ ने इस लोक तथा नारी की आँतो से त्यक्त मूत्र से मूत्राशय मे ले जाने वाली दोनो पसलियो की ओर स्थित नाडियो मे पुरुष पुत्र को पुष्ट करो जिससे यह दसवे माह में प्रसव करे ॥ १० ॥ हे त्वष्टा। इसकी आँतो से निकले मूत्र को मूत्राशय मे ले जाने वाली दोना पसलिया की ओर स्थित नाडियो मे पुरुष पुत्र को पुष्ट करो जिससे यह दसवें माह मे प्रसव करे ॥ ११ ॥ हे सविता दव ! इस स्त्री की आँतो से निकले मूत्र से मूत्राशय मे ले जान वाली दोना पसलियो की ओर स्थित नाडियो मे पुरुष पुत्र को पुष्ट करो जिससे यह दसव माह पुत्र प्रसव करे ॥ १२ ॥ हे प्रजापते। इस स्त्री की आँतो से निकले मूत्र से मूत्राशय मे ले जाने वाली दोनो पस-लिया की ओर स्थित नाडियो मे पुरुष पुत्र को पुष्ट करो, जिससे यह दसवें माह मे पुत्र प्रसव करे ॥ १३ ॥

---

२६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अग्निः प्रभृति । छन्द-उष्णिक, बृहती प्रभृति)

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥१॥
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥२॥
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥४॥
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥५॥
एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥६॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥७॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥८॥
भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान युनक्तु ।
सुयुजः स्वाहा ॥९॥
सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥१०॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥११॥
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ।१२।

हे यजुर्मन्त्रो और समिधाओ ! ज्ञाता अग्नि इस यज्ञ मे तुमसे मिले ॥ १ ॥ सूर्य इस यज्ञ मे सम्मिलित हो । यह आहुति उनके निमित्त हो ॥ २ ॥ हे उक्थरसो ! इन्द्र इस यज्ञ मे तुमसे मिलें । इनके निमित्त आहुति समर्पित हो ॥ ३ ॥ हे शिष्ट मनुष्यो ! तुम अपनी पत्नियो सहित इस यज्ञ मे आशाओं का पालन करो । यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ४ ॥ माता जिस प्रकार पुत्र का पालन करती है उसी भाँति मरुद्गण सम्मिलित कर छन्दो का पालन करें । मरुद्गणो के लिए यह आहुति प्राप्त

हो ॥ ५ ॥ कुशा और प्रोक्षणियों के साथ यज्ञ की वृद्धि करती हुई यह अदिति देवी आई हैं। यह आहुति इनके निमित्त समर्पित है ॥ ६ ॥ भली-भाँति किए हुये तपों के फलों को भगवान विष्णु मिलावें। यह आहुति विष्णु के निमित्त अर्पित हो ॥ ७ ॥ भली-भाँति सँवारे हुए रूपों को त्वष्टा देव इस यज्ञ मे सयुक्त करें। यह आहुति उनके लिए अर्पित हो ॥ ८ ॥ इस यज्ञ को सविता देव शुभ आशीषों से युक्त करें। यह आहुति उनके निमित्त अर्पित हो ॥ ९ ॥ इस यज्ञ मे संयुक्त होने वाले जलों को सोमदेव मिलावें। यह आहुति उनके लिए अर्पित हो ॥१०॥ इन्द्र इस यज्ञ मे यज्ञों के अनुरूप ही वीर्यों को संयुक्त करें। यह आहुति उनके निमित्त अर्पित है ॥ ११ ॥ हे बृहस्पति ! इस यज्ञ में तुम मंत्र द्वारा अभिमुख हो। हे अश्विनीकुमारो ! यज्ञ की वृद्धि करते हुए अभिमुख हो। यह यज्ञ यजमान के लिए मगलमय हो। यह आहुति बृहस्पति और अश्विनीकुमारों के निमित्त अर्पित हो ॥ १२ ॥

२७ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप्; अनुष्टुप् बृहती प्रभृति)

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१॥
देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२॥
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः
सविता विश्ववारः ॥३॥
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥४॥

अग्नि. स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥५॥
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥६॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥७॥
उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ।८।
दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता न स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ।९।
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु ।
देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥१०॥
वनस्पतेऽव सृजा रराणः ।
त्मना देवोभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥११॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।
इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२॥

अग्नि का वीर्य तेजस्वी और समिधाएं उच्च होती हैं। यह परम दीप्यमान, सुन्दर एवं सूर्य सदृश्य है । इन प्राण-दाताओं का यज्ञो मे बहुत बड़ा हाथ होता है ॥ १ ॥ देवो मे अग्नि महान हैं और मधुघृत द्वारा मार्गों का शोधन करते हैं ॥ २ ॥ श्रेष्ठ कर्म युक्त तथा मनुष्यो मे प्रशसनीय सविता देव विश्व के वरणीय अग्नि देव, यज्ञ को मधुयुक्त करते हुए प्रसारित होते हैं ॥ ३ ॥ घृतादि सामग्रियो सहित स्तुतियो को स्वीकार करते हुए अग्निदेव अभिमुख होते हैं ॥ ४ ॥ देवताओ के सहवास मे अधिक रहने वाले यज्ञो मे अग्नि इस यज्ञ की महिमा और स्रुवो को अपने से युक्त करे । देवताओ की सगति वाले आनन्दोत्पादक यज्ञो में तारक अग्नि और धन की वृद्धि करने वाले वसु वास करते हैं ॥ ६ ॥ अग्नि की जाज्वल्यमान लपटें यजमान के व्रत की सब प्रकार से रक्षा करती है ॥ ७ ॥

महत्तावान तथा गतिमान अग्नि की द प्त से वैभवशाली तेज तथा आहुति का तेज यज्ञ का सचालन करने वाली है। यह आपस में सयुक्त होकर दीप्तवान होती है। वे इस यज्ञ की रक्षा करे ॥ ८॥ हे होतागण ! इस यज्ञ रूप अग्नि की प्रशसा करो जिससे हमारा मगल हो पृथ्वी, अग्नि कान्ति और सरस्वती यह तीनो इस कुशा पर प्रशसा करती हुई आसीन हो ॥ ९॥ हे त्वष्टा ! हमको जल अन्न और धन प्रदान करते हुए इसकी नाभि खोल दो ॥ १०॥ हे वनस्पते ! तुम शब्द करते हुए अपने को छोडो, अग्नि इस आहुति का देवो के लिए स्वादिष्ट बनायें ॥ ११॥ हे अग्ने ! इन्द्र के लिए यज्ञ को पूर्ण करो। सब देव इस हवि को ग्रहण करें ॥ १२ ॥

२८ सूक्त

(ऋषि अथर्वा। देवता त्रिवृत् अग्न्योदय । छन्द-त्रिष्टुप् अनुष्टुप्, उष्णिक् ।)

नव प्राणान्नवभि स मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥१॥
अग्नि सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरतरिक्ष प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभि सम्विदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ॥२॥
त्र्य पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥३॥
इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधान ।
इममिन्द्र स सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥४॥
भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्नि पिपर्त्वयसा सजोषा ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुन सम्विदान दक्ष दधातु सुमनस्यमानम् ॥५॥

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥६॥
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥७॥
त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसम्भूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥८॥
दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥९॥
इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥१०॥
पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आवेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥११॥
आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥१२॥
ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
सम्वत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥१३॥
घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥१४॥

शतायुष्य प्राप्त करने के लिए नौ प्राणों को नौ से मिलाते हैं। इसमे सोने, चाँदी और लोहे के उष्णता से पूर्ण तीन-तीन धागे होते हैं ॥१॥ इस त्रिवृत कर्म द्वारा अग्नि, चन्द्र, *सूर्य, पृथ्वी, जल, आकाश अन्तरिक्ष और दिशा उपदिशाएँ* तथा ऋतुओं के अंश ऋतुओं सहित मुझे प्राप्त होकर पार करें। २। इस त्रिवृत कर्म मे तीन पुष्टियें आश्रित हो। पूषा देव घी, दुग्ध से इस त्रिवृत कर्म को पवित्र करें। इनके आश्रय से अन्न पुरुष

और पशु अधिकता से प्राप्त हो ॥ ३ ॥ सूर्य इस कुमार को भरपूर धन प्रदान करें। हे अग्ने ! स्वय वृद्धि को प्राप्त होते हुए इसकी भी समृद्धि के कारण बनो। हे इन्द्र इसे वीर्य युक्त करो। पोषणकर्ता त्रिवृत्त इसके अधीन हो ॥ ४ ॥ स्वर्ण से पूर्ण पृथ्वी तेरी रक्षा करे। विश्व के पोषक अग्नि लौह से तेरा पालन करें और वनस्पतियो से प्राप्त जल द्वारा तुझमे शक्ति की स्थापना करें ॥ ५ ॥ इस स्वर्ण की तीन प्रकार से उत्पत्ति है। इसका एक जन्म अग्नि को प्रिय लगा। सोम द्वारा पीडित होने पर यह गिरा। विद्वान् लोग एक को जलो का वीर्यरूप मानते हैं। हे ब्रह्मचारी ! यह स्वर्ण तेरी आयु के लिए त्रिवृत हो जाय ॥ ६ ॥ बाल्यावस्था, तरुणावस्था तथा वृद्धावस्था जमदग्नि की यह तीन आयु हैं, कश्यप ऋषि की इसी प्रकार की तीन आयु हैं। वह अमृत के निदर्शन रूप आयु मैं तुझे प्रदान करता हूँ ॥ ७ ॥ तीन सामर्थ्यवान् सुपर्ण त्रिवृत रूप होकर एकाक्षर पर आये। तब सब पापो को अदृष्य कर अमृत द्वारा मृत्यु को नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥ स्वर्ण तेरी आकाश से चाँदी मध्यलोक से तथा लौह तेरी पृथ्वी से रक्षा करे। यह देव नगरियो को प्राप्त है ॥ ६ ॥ चहुँ ओर से अपनी रक्षक देवताओ की तीन पुरियो को धारण करता हुआ तू शत्रुओ से हर तरह शक्तिशाली हो ॥ १० ॥ जिस प्रधान देवता ने देवो के समक्ष सुवर्ण रूपी अमृत को बांधा था, उसे मैं दस बार प्रणाम करता हूँ। वह देवता मुझे इस त्रिवृत् को बांधने की आज्ञा प्रदान करें ॥ ११ ॥ अर्यमा, पूषा और बृहस्पति तुझे भली-भांति बांधे। प्रति-दिन उत्पन्न होने वाले के नाम से हम तुझे बांधते हैं ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मचारी ! आयु और बल प्राप्ति के लिए मैं तुझे ऋतुओ, महीनो तथा सवत्सर के तेज रूपी सूर्य से

संयुक्त करता हूँ ।। १३ ।। घृत मधु से तर और सिंचित पृथ्वी के समान दृढ तू शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ एवं उनका तिरस्कार करता हुआ महान् सौभाग्य प्राप्ति के निमित्त मुझ पर आश्रित हो ।। १४ ।।

२६ सूक्त

(ऋषि—चातन । देवता—जातवेदा, मन्त्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप् ।)

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ।।१।।
तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह सम्विदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ।।२।।
यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह सम्विदानः ।।३।।
अक्ष्यौ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ।।४।।
यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ।।५।।
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ।।६।।
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ।।७।।
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ।।८।।
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ।।९।।

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णु ॥१०

समस्त कार्यों मे सबसे पहले नियुक्त किए जाने वाले अग्नि देव, इस कार्य को पूरा करने का भार सँभालो। तुम वैद्य हो, औषधि देते हो। तुम्हारे द्वारा हमारे गौ-अश्वादि पशु और मनुष्य रोगरहित हों ॥ १ ॥ हे अग्ने! सब देवताओं से युक्त होकर उस व्यक्ति का परकोटा गिरा दो जो हमें खाने की इच्छा रखता है ॥ २ ॥ हे अग्ने! उसका परकोटा जिस भाँति भी गिरे वैसा ही प्रयत्न सब देवों सहित करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! इसको भक्षण करने की इच्छा रखने वाले पिशाच के नेत्र फोड दो, हृदय को तोड दो, जीभ को काट लो तथा दाँतो को तोड डालो। इस भाँति तुम उसका विनाश करो ॥ ४ ॥ इसका जो माँस पिशाचों ने हटा कर खा लिया है, उसे हे अग्ने! इसके शरीर मे पुनः भर दो। हम इसके शरीर मे पुनः मन बल से प्राणों का संचार करते हैं ॥ ५ ॥ कच्चे पक्के रक्त विरंग पात्र में जो राक्षस विशिष्ट रूप से पके हुए कच्चे-पक्के भोजन मे प्रविष्ट होकर हमारे विनाश का सङ्कल्प कर चुका है, वह पिशाच अपनी सन्तान सहित दुःख को प्राप्त हो और यह व्यक्ति निरोग हो ॥ ६ ॥ दूध, मथ और कृषि द्वारा पके अन्न मे घुस कर जो राक्षस हमारे विनाश का सङ्कल्प कर चुका है यह स्वयं अपनी प्रजा सहित इसी भाँति की यातनाओं को भोगे ॥ ७ ॥ जिस राक्षस ने जल पान, यात्रा अथवा शयन काल मे कष्ट दिया है, वह अपनी प्रजा सहित इसी भाँति कष्ट भोगे ॥ ८ ॥ दिन-रात यात्रा या शयन-काल मे जिस माँस-भक्षी राक्षस ने पीडा प्रदान की है, वह अपनी प्रजा सहित इसी भाँति पीडित हो ॥ ९ ॥ हे अग्ने! तुम माँस भक्षण करने

वाले रक्त-पान करने वाले और मन को नष्ट करने वाले राक्षस का विनाश करो। अश्वयुक्त इन्द्र अपने वज्र से उसे पीडित करें तथा सोम उसका सिर काट डालें ॥१०॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानन् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्यु ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो माते हेत्या मुक्षत दव्याया ॥११॥
समाहर जातवेदो यद्धृत यत् पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२॥
सोमस्येव जातवेदो अशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिन मेध्यमयक्ष्म कृणु जीवतु ॥१३॥
एतास्ते अग्ने समिध पिशाचजम्भनी ।
तास्त्व जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेद ॥१४॥
तार्ष्टाघीरग्ने समिध प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद्रूप यो अस्य मास जिहीर्षति ॥१५॥

हे अग्ने ! तुम सदैव ही राक्षसो के सहारक हो। वे तुम्हे सग्राम मे पराजित नही कर सकते। तुम इन मांस भोजियो को भस्म कर डालो। यह तुम्हारे दिव्यास्त्र से बच कर न निकल पावें ॥ ११ ॥ इस व्यक्ति का जो ज्ञान और मांस नष्ट हुआ है उसे हे अग्ने ! तुम पुन प्रदान करो। यह सोमाकुर के समान पुष्ट होता हुआ शरीर के प्रत्येक अङ्ग की पूर्णता प्राप्त करे।१२। हे अग्ने ! सोमाकुर जिस प्रकार पुष्ट होता है, उसी भाँति यह व्यक्ति भी पुष्टि को प्राप्त हो। इस गुणवान् पुरुष को आरोग्य लाभ प्रदान कीजिये ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! राक्षसो को विनष्ट करने वाली यह तुम्हारी समिधाएँ है, इन्हें स्वीकार करते हुए प्रसन्न होओ ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! प्यास बुझाने वाली इन समिधाओ को अपनी लपटा के द्वारा ग्रहण करो। जो मास

भोजी राक्षस इसके मांस की कामना करता है, वह अपने सङ्कल्प से विमुख है ॥१५॥

३० सूक्त

(ऋषि— उन्मोचनः । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—अनुष्टुप् जगती)

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितृनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥१
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥२॥
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥३॥
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४॥
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः ।
प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५॥
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥६॥
अनूहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥७॥
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८॥
अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येनइव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ॥९॥
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥१०॥

निकट और दूरस्थ प्रदेश से तेरे प्राणों को दृढ़ता से सयुक्त करता हूँ। तू पूर्व पितरों का अभी अनुगमन न कर अपितु यहीं रह ॥ १ ॥ पितृऋण को न चुकाने वाले जिस अपने व्यक्ति ने तुझ पर यह अभिचार कृत्य किया है, उससे मुक्त होने का उपाय मन्त्र बल से कहता हूँ ॥ २ ॥ तूने जिस स्त्री या पुरुष के प्रति द्रोह अथवा शाप प्रयुक्त किया है, उससे मुक्त करने विषयक बात मैं तुझे बताता हूँ ॥ ३ ॥ माता या पिता के पाप से यदि तू रोगी हुआ है तो उस रोग से छुटकारा पाने की बात मन्त्र-बल द्वारा बताता हूँ ॥ ४ ॥ तेरे माता, पिता, भाई अथवा बहिन ने जिस मन्त्र या औषधि का प्रयोग किया है, उसे भली भाँति सेवन कर। मैं तुझे बुढापे तक जीवन यापन करने वाला बनाता हूँ ॥ ५ ॥ हे व्यथित ! तू यमदूतों का पीछा न कर। अपने सब साथियों सहित यहाँ जीवन-यापन कर ॥ ६ ॥ तू उदय होने के पथ से परिचित है। इस कर्म द्वारा यहाँ आह्वान किया गया है। उत्तरायन और दक्षिणायन दोनों तेरे जीवन में ही समाप्त हो ॥ ७ ॥ हे रोगिन ! तू निर्भय हो। मैं तुझे बुढापे तक जीवन-यापन करने वाला बनाता हूँ। तेरे शरीराङ्ग से यक्ष्मा और अस्थि ज्वर भाग चुका है ॥८॥ तेरे शरीराङ्ग में स्थित ज्वर हृदय रोग और क्षय यह सब मन्त्र-बल से अपमानित होकर बाज पक्षी के समान बहुत दूर जा गिरा है ॥ ९ ॥ जो जाग्रत एवं सचेष्ट तेरे प्राणों की रक्षा करने वाले ऋषि हैं, वे रात दिन जागते रहें ॥१०॥

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११॥
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नम पितृभ्य उत ते नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये ॥१२॥

ऐतु प्राण ऐतु मन चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३॥
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गन्मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥१४॥
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥१५॥
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा ।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥१६॥
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥१७॥

यह अग्नि निकट रहने योग्य है । तेरे निमित्त आदित्य इसी लोक मे प्रकट हो एव तू अन्धकार पूर्ण मृत्यु से बच कर जीवित हो ॥ ११ ॥ मृत्यु, पितरो तथा यमपाश मे बाँध कर ले जाने वाले यमदेव को नमस्कार । देह धारण की विधि से अवगत अग्निदेव उन्हे इस पुरुष के कल्याण के लिए सामने स्थित करते हैं ॥ १२ ॥ प्राण, मन और नेत्र इसको प्राप्त हो । मैंने इसके शरीर को मन्त्र-बल से प्राणवान् किया है, यह अपने पैरो पर खड़ा हो जाय ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! इस पुरुष को प्राण और नेत्रों से युक्त करो तथा इसके शरीर को शक्ति से सम्पन्न कर दो । तुम अमृत के ज्ञाता हो । यह पुरुष इस लोक से प्रस्थान न करे, श्मसान क्षेत्र इसका निवास स्थान न बने ॥१४॥ हे रोगिण ! तेरे प्राण क्षीण न हो । सूर्य अपनी किरणो द्वारा तुझे मृत्यु शैय्या से उठा कर खड़ा करे ॥ १५ ॥ भीतर से यह जिह्वा हिलती हुई कहती है कि तुझसे क्षय रोग निकल गया और ज्वर का आक्रमण भी समाप्त हो गया ॥ १६ ॥ तूने

मरने के लिए ही जन्म लिया है। देवगणों को भी यह मृत्युलोक प्रिय है, परन्तु तू जरावस्था से पूर्व मृत्यु को प्राप्त न हो ॥१७॥

३१ सूक्त

(ऋषि-शुक्रः। देवता-कृत्याप्रतिहरणम्। छन्द-अनुष्टुप्, बृहती)

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥१॥
यां ते चक्रुःकृकवाकावजे वा या कुरीरिणि ।
आव्यां ते कृत्यां यां चक्रु पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२॥
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३॥
यां ते चक्रु रमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हराम ताम् ॥४॥
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५॥
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां चक्रु पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६॥
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥७॥
या ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नु ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रु पुन प्रति हरामि ताम् ॥८॥
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ सङ्कसुके च याम् ।
म्रोकं निर्दाह क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥९॥
अपथेना जभारैणा तां पथेतां प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्या ॥१०॥
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११॥

कृत्याकृत वलगिनं मूलिनं शपेथेय्यम् ।
इन्द्रस्त हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२॥

अभिचारियो ने कच्चे मिट्टी के पात्र मे या धान, जौ, गेहूँ, उपवाक् तिल कांगनी के सयुक्त धान्यो मे अथवा मुर्ग आदि के कच्चे मांस मे हे कृत्ये ! तुझे किया है। मैं तुझे अभिचारी पर ही वापिस लौटाता हूँ ॥ १ ॥ हे कृत्ये ! यदि तुझे अभिचार करने वाले ने कुक्कुट बकरे या वृक्ष पर किया है तो हम तुझे उस पर ही लौटाते हैं ॥ २ ॥ हे कृत्ये ! अभिचार करने वालो ने तुझे एक खुर वाले अथवा दोनो दात वाले गधे पर किया है तो हम तुझे अभिचार करने वाले पर ही वापिस लौटाते है ॥ ३ ॥ हे कृत्ये ! यदि तुझे मनुष्यो के पूजनीय भोज्य पदार्थ मे आच्छादित कर खेत मे किया गया है तो तुझे अभिचार करने वाले पर ही वापिस लौटाता हूँ ॥ ४ ॥ हे कृत्ये ! यदि तुझे यज्ञशाला मे किया गया है तो तुझे अभिचार करने वाले पर ही लौटाते है ॥ ५ ॥ हे कृत्ये ! यदि तुझे सभा मे या जूऐ के पाशो मे किया गया है तो हम अभिचार करने वाले पर ही लौटाते है ॥६॥ सेना मे, बाण पर अथवा दुन्दुभि मे जिस कृत्या को किया गया है, उसे मैं अभिचारक पर ही लौटता हूँ ॥७॥ जिस कृत्या को कुए मे डाल कर, श्मशान मे गाढ कर अथवा घर मे किया है उसे मैं वापिस करता हूँ ॥८॥ पुरुष की हड्डी पर या टिमटिमाती हुई अग्नि पर जिस कृत्या को किया है, उसके मांसभक्षी अभिचारक पर ही उस कृत्या को प्रेरित करता हूँ ॥ ९ ॥ जिस अज्ञानी ने कृत्या को कुमार्ग से हम मर्यादा पालने वालों पर भेजा है, हम उसे उस मार्ग से उसकी ओर प्रेषित करते हैं ॥ १० ॥ जो कृत्या द्वारा हमारी उङ्गली या पैर को नष्ट करना चाहता है, वह अपने इच्छित मे

सफल न हो और हम भाग्यशालियों का वह अमङ्गल न कर सके ॥ ११ ॥ भेद रखने वाले, छिप कर कृत्या कर्म करने वाले को इन्द्र अपने विशाल शास्त्र से नष्ट कर दें और अग्नि उसे अपनी ज्वालाओं से सजा डालें ॥१२॥

॥ इति पञ्चम काण्डम् समाप्तम् ॥

षष्ठ काण्ड

—❀—

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—सविता । छन्द—जगती, उष्णिक्)

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेह्याथर्वण ।
स्तुहि देवं सवितारम् ॥१॥
तमुष्टुहि यो अन्त सिन्धौ सूनुः सत्यस्य युवानाम् ।
अद्रोघवाचं सुशेवम् ॥२॥
स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि ।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३॥

हे *अथर्व-पुत्र* ! स्तुति योग्य सविस्तार साम का रात दिन गुनगान करते हुए गुणो से युक्त सवितादेव की अराधना करो ॥ १ ॥ जो सविता के प्रथम पुत्र को हे स्तोताओ ! स्तुति द्वारा प्रसन्न करो । समुद्र मे उदय होते हुए, सततयुवा, रात्री के अन्धकार को दूर करने वाले, सुन्दर वाणी से युक्त सविता की स्तुति करो ॥२॥ सविता ही हवि आदि को देवताओं तक पहुँचावे । अमरत्व तथा साम के सुन्दर गीतो के गान के लिए हमे प्रेरणा प्रदान करे ॥ ३ ॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—सोमो वनस्पतिः । छन्द—उष्णिक् ।

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।
स्तोतुर्यो वच.शृणावद्धवं च मे ॥१॥
आ य विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धस ।
विरप्शन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥२॥
सुनोता सोमपान्ने सोममिन्द्राय् वज्रिणे ।
युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥३॥

हे ऋत्विजो ! इन्द्र के लिए सोम का अभिषव करो जो स्तुति रूप-वाणी को श्रद्धा से सुनते है ॥ १ ॥ पक्षी के अपने निवास पर पहुँच जाने के समान, सोम इन्द्र के शरीर मे स्वयम् पहुँचना है । हे इन्द्र ! सोम के कार्य से खुश होकर शत्रु सैन्य को उत्पीड़ित करो ॥ २ ॥ हे अध्वर्युओ ! सोमपायी, वज्रधारी इन्द्र के लिए सोम का अभिषव करो । वे इन्द्र सतत युवा, विजेता और सम्पूर्ण स्वर्ग के स्वामी हैं । यजमान इच्छा पूर्ति के लिए उनका गुनगान करें ॥३॥

३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । देवता—इन्द्रापूपादयः । छन्द—बृहती: जगती ।)

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपा नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुतः द्यौः ॥१।
पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥२॥
पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।

अपा नपादभिह्रु तो गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥३॥

हे इन्द्र ! हे पूषन् ! हमारी रक्षा करो। अदिति माता रक्षा करे। अपानपात् रूपी जल को ईंधनवत् मानने वाले अग्नि और मरुद्गण भी हमारी रक्षा करें। सप्त समुद्र, आकाश और विष्णु हमारे रक्षक हों ॥ १ ॥ द्यावा पृथ्वी, निष्फल सोम, ग्रावा, मन्यरूपिणी सरस्वती अग्नि और सुख देने योग्य किरणें ये सभी हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥ उपासानक्त का देव, दानादि गुणों से युक्त अश्विनीकुमार और अपानपात् नामक अग्नि हिंसकों से हमारी रक्षा करें। हे त्वष्टा ! तुम सर्व फल प्रदायिनी होकर हमारी वृद्धि करो ॥३॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम)। देवता—त्वष्ट्रादय। छन्द—बृहती, गायत्री।)

त्वष्टा मे दैव्य वच पर्जन्यो ब्रह्मणस्पति ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टर त्रायमाण सह ॥१॥
अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादिति 'पान्तु मरुत. ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रु तो यावयच्छत्रुमन्तितम ॥२॥
धिये समश्विना प्रावत न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।
द्यौष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥३॥

त्वष्टा मेरे दिव्य वचनों को सुनो, पर्जन्य और ब्रह्मणस्पति मेरी स्तुति सुनें। अपने पुत्र और भ्रातगणों के सहित हमारे अजेय बल की रक्षा करें ॥ १ ॥ अदिति तथा उनके भग वरुण मित्र अर्यमा नामक पुत्र मरुद्गण हमारी रक्षा का कार्य करें। शत्रुओं द्वारा किया अनिष्ट हमारे पास न आवे, वे हमारे शत्रु को दूर भगावें ॥ २ ॥ हे गमनशीले वायु

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे रक्षक बनो। हे पिता रूप स्वर्गलोक ! कुकुरवत अनिष्टकारी देवी को हमारे समीप से दूर करो ॥३॥

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अग्नि इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप् ।)

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत ।
समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१॥
इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी ।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥२॥
यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

हे अग्ने ! घृत से तुम आहुत किए जाते हो, उपासक को उन्नति के पद पर लाओ, देहकान्ती से सम्पन्न करते हुए सतनादि द्वारा वृद्धि करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! उपासक की वृद्धि का कार्य करो। सबको वश में करने वाला तुम्हारी कृपा से है। इसे धन से निष्पृह करो और इसकी उम्र को वृद्धावस्था तक बढाओ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! जिसके घर घर में यज्ञ आदि हो रहा है उसकी वृद्धि करो। सोम तथा ब्रह्मणस्पति उसे अपना कहें ॥३॥

६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—ब्रह्मणस्पति । छन्द—अनुष्टुप् ।)

योस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥१॥
यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२॥
यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥३॥

हे ब्रह्मणस्पते ! देवताओं को न मानने वाला यदि हमको वध-योग्य मानता है तो उसे सोम अभिषावी यजमान के वश में करो ॥ १ ॥ हे सोम ! जो दुराचारी हमारे सद्विचारों का तिरस्कार करें, तुम उसके मुख को वज्र से तोड़ो जिससे वह छिन्न-भिन्न होकर भाग जावे । हे सोम ! हमारे नाशभिलाशी के बल को स्वर्गलोक द्वारा अशनि से सहारवत् नष्ट करदो ॥३॥

७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता- सोम , विश्वेदेवा । छन्द—गायत्री)
येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।
तेना नोऽवसा गहि ॥१॥
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः ।
तेना नो अधि वोचत ॥२॥
येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।
तेना नः शर्म यच्छत ॥३॥

हे सोम ! जिस देव मार्ग मे अद्वेषी, द्वादश आदित्य, अदिति के साथ घूमते है उसी मार्ग से हमारी भलाई के लिए आओ ॥ १ ॥ हे सोम ! जिस बल द्वारा तुम असुरों को वशीभूत करते हो, उसे हमको बताओ ॥ २ ॥ हे देवताओ ! जिस बल को तुमने राक्षसो से अलग कर अपने मे मिलाया, उसी से हमको सुख प्रदान करो ॥३॥

८ सूक्त

(ऋषि-जमदग्नि । देवता-कामात्मा । छन्द- पंक्ति ।)
यथा वृक्ष लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मा यथा मा कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥२॥
यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥३॥

वेल के समान ही तुम मुझमें संलग्न हो जिससे मुझको इच्छती हुई मेरे ही पास रहे ॥ १ ॥ गरुड़ अपने स्थान से चढ़ता हुआ अपने पक्ष पृथ्वी पर मारता है उसी प्रकार से, ही मैं भी हे पत्नि तेरे दिल को अपने वश में करूँ। जिससे मुझे चाहती हुई दूसरी जगह न जा सको ॥ २ ॥ सूर्य जैसे आकाश, पृथ्वी और स्वर्ग के चारों ओर व्याप्त रहता है उसी प्रकार मैं अपनी पत्नि के मन के चारो ओर व्याप्त होती हूँ जिससे मुझे इच्छती हुई दूसरी जगह न जा सको ॥ ३ ॥

९ सूक्त

(ऋषि—जमदग्निः । देवता—कामात्मा । छन्द—अनुष्टुप्,)

वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥१॥
मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२॥
यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।
गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥३॥

हे पत्नी ! तू मेरे शरीर, पैर, नेत्र और जंघाओं की अभिलाषा कर। तेरे केश और नेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं, वे मेरे मन को विकार युक्त करते हैं ॥१॥ हे पत्नी ! तुम मेरी इच्छानुकूल होकर मन को प्रसन्न करो, जिससे मैं भुज बन्धन

द्वारा तुम्हें हृदय में रमी हुई के समान मानूं ॥ २ ॥ जिनके अङ्ग प्रशसनीय हैं, जो हृदय वशीकरण शक्ति रखती है। घी-दूध वाली गायों को उनके निमित्त मेरे अधीन करो ॥ ३ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—शान्ताति । देवता—अग्नि वायु सूर्य । छन्द—त्रिष्टुप, बृहती)

पृथिव्यै श्रोताय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥ १ ॥
प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥ २ ॥
दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥ ३ ॥

पृथ्वी, श्रोत्र, वनस्पति, और अग्नि देव के लिये यह हवि स्वाहुत होवें ॥ १ ॥ वायु रूप प्राण, तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्तरिक्ष, पक्षियों, और वायु देवता के लिये हवि स्वाहा होवे ॥ २ ॥ दिव, चक्षु नक्षत्र और सूर्य देव के लिये हवि स्वाहाकार होवें ॥ ३ ॥

११ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—प्रजापति । देवता—रेत मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप् ।)

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्य चीक्लृपत् ।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥ ३ ॥

शमी वृक्ष पर पीपल अग्निरूपी पुत्र उत्पन्न करने के लिये चढा है। पीपल से अग्नि मंथन के लिये लकडियाँ लाते हैं। पुत्रोत्पत्ति के लिये हम स्त्रियो से संभोग कर्म करते हैं। पीपल के कर्मवत वह पुंसवन पुत्र को पाता है ॥ १ ॥ गर्भाशय के अन्दर पुरुष का वीर्य रूप अंकुर सिंचित होकर पुत्र प्राप्ति होती है। इसको ब्रह्माजी ने कहा है ॥ २ ॥ सीनीवालि, अनुमति और प्रजापति देवताओ ने सिंचित गर्भाशय स्थित बीज को अतिरिक्त स्थान में रख कर सन्तान के हाथ पैर आदि अंगो की उत्पत्ति की ॥ ३ ॥

१२ सूक्त

(ऋषि–गरुत्मान्। देवता–विषनिवारणम्। छन्द–अनुष्टुप्)

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम्।
रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥ १ ॥
यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा।
यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥ २ ॥
मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु।
मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥ ३ ॥

अन्तरिक्ष मे सूर्य के व्याप्त होने वाले, रात्रि मे अन्धकार युक्त ससार के समान, सर्पो के सम्पूर्ण जन्म मैंने जान लिये हैं। व्याप्त हुये विष को इस औषधि द्वारा मे निर्विष करता हूँ ॥ १ ॥ जिसको (औषधि को) देवताओ ने ऋषियो ने जाना है जो मन्त्र और ब्राह्मण द्वारा प्राप्त होती है उससे मैं तेरे भूत, भविष्य और वर्तमान के व्याप्त विषको निर्विष करता हूँ ॥२॥ गगा आदि पाँच नदिया, छोटे बड़े सभी पहाड परुष्णी नाम्नी

नदी तेरे शरीर में मधु का सचार करे। अमृत रूप मधु विष नाशक होकर तेरे हृदय को सुखकारी होवे ॥ ३ ॥

१३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम) देवता—मृत्यु ।
छन्द-अनुष्टुप्)

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नम ॥ २ ॥
नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥ ३ ॥

इन्द्रादि देवों के वध करने वाले शस्त्रों को नमस्कार है। हे मृत्यो ! राजा, वैश्य देवताओं के शस्त्र से बचने के लिये तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ हे मृत्यो ! तेरी वाणी और तेरे पराक्रम को वर्णन करने वाले देवताओं को नमस्कार है। तेरी कृपायुक्त मति और दुग्रह मति को भी प्रणाम है ॥२॥ हे मृत्यो ! रक्षक औषधियो, दुःखदायी यातुधानो और मूल पुरुष को नमस्कार है। वेदवेत्ता ब्राह्मणों को नमस्कार है ॥ ३ ॥

१४ सूक्त

(ऋषि—बभ्रुपिङ्गल । देवता-बलास । छन्द अनुष्टुप्)

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् ।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥ १ ॥

निर्बलासं बलासिन. क्षिणोमि मुष्करं यथा ।
छिनद्म्यस्य बन्धन मूलमुर्वार्वाइव ॥ २ ॥
निर्बलासेतः प्र पताशु ंग शिशुको यथा ।
अथो इटइव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥ ३ ॥

शरीर में व्याप्त, कम्पित अस्थियो वाले, जोडो में ढीलापन लाने वाला, क्षयकारक हृदयस्थ रोग उस सबको मन्त्र शक्ति नाश करें ॥ १ ॥ कमल को सरोवर से उखाडने के समान ही मैं इस रोगी के रोगो को जड सहित उखाडता हूँ। ककडी की कुण्डीवत ही अचानक मैं इस रोग का नाश करता हूँ ॥२॥ गये हुये वर्ष को न लौटने के समान ही, बल क्षयकारी रोग तू न लौटता हुआ जा। तेज दौडने वाले मृग के समान ही तू शरीर से निकल जा ॥ ३ ॥

१५ सूक्त

(ऋषि–उद्दालक । देवता–वनस्पति । छन्द–अनुष्टुप्)

उत्तमो अस्यौषधीनां तव वृक्षा उपस्तय ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥ १ ॥
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥ २ ॥
यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषा कृत ।
तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥ ३ ॥

हे पलाश ! तू औषधियो में सर्व श्रेष्ठ है। दूसरे वृक्ष तेरे से कम श्रेष्ठ हैं। हमें क्षीण करने वाला शत्रु तेरी दया से नष्ट हो जाय ॥ १ ॥ जो सबन्धु अथवा अन्य गोत्र वाला शत्रु हमको क्षीण करने के भावना रखता है, इन दोनो शत्रुओ में से, मैं पलाशवत महान बनूँ ॥ २ ॥ पलाशवत उत्तम, जैसे पुरोडा-

शादि मे सोम को दूसरी औषधियो की अपेक्षा प्रयुक्त किया जाता है उसी प्रकार से मैं भी अपने सगोत्री भाइयो मे श्रेष्ठ बन सकूँ ॥ ३ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि-शौनक । देवता-मन्त्रोक्ता, । छन्द गायत्री, अनुष्टुप्)

आवयो अनावयो रसस्त उग्र आवयो ।
आ ते करम्भमद्मसि ॥ १ ॥
विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता
स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावय ॥ २ ॥
तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥ ३ ॥
अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा ।
नीलागलसाला ॥ ४ ॥

हे सरसो ! रोग की समाप्ति के लिये तुम खाये जाते हो। तेरा रस महान शक्ति देने वाला है। उस रस रूपी तेल से भुने हुई सब्जी को हम अभिमन्त्रित करके सेवन करते है ॥१॥ हे सरसो की सब्जी ! तेरे पिता का नाम विहल्ह और माता का नाम मदामती है। तुम अपने शरीर को (पत्र आदि को) मनुष्य को खाने के लिये प्रदान कर देते हो अत माता पिता के समान नही रहते हो ॥२॥ हे तौविलिक नामक पिशाचिनी ! तू हमारे रोगो को दूर करने के लिये हो। ऐलव रोग नष्ट हो जाय। बभ्रु, वर्ण और निराल आदि रोग भी इस मानव शरीर से दूर हो जाय ॥ ३ ॥ हे सस्यमञ्जरी ! तेरा नाम अलसलसा है तथा पहिले लिया जाने से पूर्वा नाम वाली हो। हे शलाञ्जाला ! तुम आखिर मे ग्रहण की जाती हो अत

उत्तरा नाम वाली हो। हे नीलागलसाला ! दोनों के अन्तर भाव में तुझे हम ग्रहण करते हैं ॥४॥

१७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-गर्भदृंहणम्। छन्द-अनुष्टुप्)

यथेय पृथिवी मही भूताना गर्भमादधे।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतु सवितवे ॥ १ ॥
यथेय पृथ्वी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतु सवितवे ॥ २ ॥
यथेय पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्।
एवा ते ध्रियता गर्भो अनु सूतु सवितवे ॥ ३ ॥
यथेय पृथिवी मही दाधार विष्ठित जगत्।
एवा ते ध्रियता गर्भो अनु सूतु सवितवे ॥ ४ ॥

हे स्त्री ! तेरा गर्भ प्रसव के वक्त उत्पन्न होने के लिये उसी प्रकार स्थिर रहे जिस प्रकार से यह पृथ्वी प्राणियों के शरीर आदि को धारण करती हुई स्थिर रहती है ॥ १ ॥ हे स्त्री ! तेरा गर्भ प्रसव समय मे उत्पन्न होने के लिये पृथ्वी की वनस्पति धारण शक्ति के समान स्थिरता को प्राप्त होवे ॥२-३॥ हे स्त्री ! तेरा गर्भ प्रसव समय में पैदा होने के लिये विशाल पृथ्वी की चराचर शक्ति को धारण करने के समान स्थिरता को प्राप्त होवे ॥४॥

१८ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-ईर्ष्याविनाशनम्। छन्द-अनुष्टुप्)

ईर्ष्याया ध्राजि प्रथमां प्रथमस्या उतापराम्।
अग्निं हृदय्य शोक त ते निर्वापयामसि ॥ १ ॥

यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥ २ ॥
अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥ ३ ॥

हे ईर्ष्यामयी मनुष्य ! इस स्त्री को कोई देख न पावे । इस ईर्ष्यामयी स्वभाव के कारण तुझसे क्रोध एवम् शोक को भी हमारे द्वारा दूर किया जाता है ॥१॥ पृथ्वी शांति चित्त एवम् ईर्ष्या रहित होती है वैसे ही पुरुष भी शान्त रहे, उसका ईर्ष्यामयी मन स्त्री के सम्बन्ध में ईर्ष्या का ग्रास न बने ॥ २ ॥ हे मनुष्य ! तेरे हृदय वासी स्त्री विषयक को मैं कर्मकार धौंकनी की वायुवत बाहर निकालता हूँ ॥ ३ ॥

१८ सूक्त

(ऋषि-शन्तातिः । देवता-मन्त्रोक्ताः । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री)

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ।
पवमानः पुनातु मान क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ॥२॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥३॥

देव लोग मुझे पवित्र बनावें ! मनुष्य मुझे मन से शुद्ध करें । समस्त भूत, आकाशगामी वायु और दशाओं में शुद्धता पाता हुआ सोम मुझे पवित्रता प्रदान करे ॥ १ ॥ पवित्र सोम कर्म के निमित्त, बल वृद्धि के निमित्त, एवम् अहिंसा के निमित्त मेरे मनको पवित्र बनावे ॥ २ ॥ हे सवितादेव ! तुम्हारा तेज

एवम् प्रेरणा पवित्र बनाने के साधन हैं। हमको इस संसार और दूसरे संसार के सुख के वास्ते पवित्र करो ॥३॥

२० सूक्त

(ऋषि–भृग्वङ्गिरा । देवता–यक्ष्मनाशनम् । छन्द–जगती, पङ्क्ति:)

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥१॥
नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नमः ओषधीभ्यः ॥२॥
अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमःकृणोमि वन्याय तक्मने ॥३॥

इस ज्वर की जलन दावानल के समान अगों को जलाने वाली समस्त शरीर में व्याप्त होती है। उस समय मनुष्य मस्त सा हुआ ससार से चल देता है ये ज्वर हमसे दूर हो और दुराचारी मनुष्यों को प्राप्त होवे। अतः ज्वराभिमानी देव को हमारा नमस्कार है ॥ १ ॥ रुद्र को नमस्कार है, ज्वर को भी नमस्कार है। वरुण, पृथ्वी एवम् उगने वाली एवम् पाई जाने वाली औषधियों को नमस्कार है ॥ २ ॥ सर्वांग में व्याप्त, प्रत्यक्ष अनुभवी, रक्त को दूषित करने वाले पित्त ज्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

२१ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–शन्तातिः । देवता–चन्द्रमा । छन्द–अनुष्टुप्)

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥१॥
श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् ।

सोमो भगइव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥२॥
रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ ।
उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥३॥

तीनों लोकों मे ऐहिक फल के भोग के कारण तथा स्वर्गादि फल के साधन भूत यज्ञ आदि कर्मो के कारण पृथ्वी श्रेष्ठ मानी जाती है। त्वचावत भूमि मे औषधियाँ रोग शान्ती के लिये उत्पन्न हुई, उनको मैं ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥ अमोघ हरिद्रे ! सर्व औषधियो और वीरुधो मे श्रेष्ठ जाने जाते हो, देवताओ मे वरुण के समान तू मुख्य माना जाता है। हे औषधियो तुम किसी द्वारा भी नाश को प्राप्त होने वाली नही हो। तुम निरोग करने वाली हो अतः मेरे केशो को निरोग करती हुई दृढ करो ॥ ३ ॥

२२ सूक्त

(ऋषि-शन्ताति. । देवता-आदित्यरश्मिः, मरुत. । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती ।)

कृष्णं नियानं हरय. सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यू दुः ॥१॥
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्ज च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ।२।
उदप्लुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नै रुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥३॥

नियत रूप से अन्तरिक्ष मे नक्षत्र चक्र के घूमने से सूर्य की किरणें पृथ्वी के रस को ग्रहण कर सूर्य लोक मे जाकर पुनः वर्षा द्वारा पृथ्वी को तृप्त करती है ॥ 1 ॥ हे रुक्मवक्ष

रूपधारी मरुद्गण ! तुम जल और औषधियों को गमन से पुष्ट करो। जहाँ तुम वर्षा करते हो वहाँ बलदायक अन्न तथा सुमति प्रजा का पालन-पोषण का कार्य करते हैं ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! सम्पूर्ण धान्य एवम् नदियों की तृप्ति को मेघों को प्रेरित करो। निर्धन माँ-बाप के समान अपनी पुत्री को देखकर डरे हुये के समान, गर्जना रूपी डर से कम्पायमान होते हैं। स्त्री पति से सम्भाषणपूर्वक अन्न देती है वैसे ही मनुष्य गमनशील मेघों को अन्नादि प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

२१ सूक्त

(ऋषि-शन्ताति । देवता--आप । छन्द--अनुष्टुप् गायत्री उष्णिक्)

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषी: ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥१॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वित. प्रणीतये ।
सद्य. कृण्वन्त्वेतवे ॥२॥
देवस्य सवितु. सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषा ।
शं नो भवन्त्वप ओषधी शिवा: ॥३॥

हे श्रेष्ठकर्मो ! जगत की रक्षा कर्म के कारण हमेशा बहने वाले जलो का आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ ये जल श्रेष्ठफल के निमित्त अनर्थो की जड जो पाप है उससे बचावें अर्थात् कीर्ति के लिये पापो से मुक्ति प्रदान करें ॥ २ ॥ मनुष्य सूर्य प्रेरणा से वैदिक कर्म करें। औषधियों को पुष्टता प्रदान करने वाले एवम् कल्याणप्रद जल ये हमारे पापा के समूह को नष्ट करें ॥ ३ ॥

---

२४ सूक्त

(ऋषि--शन्ताति. । देवता- आप । छन्द--अनुष्टुप्)

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगम ।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥१॥
यन्मे अक्ष्योरा दिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२॥
सिन्धुपत्नी सिन्धराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३॥

पाप को नाश करने वाली गगा का जल हिमालय से बहता हुआ समुद्र मे एकत्रित होता है, हृदय के दाह को समन करने वाली औषधियो के लिये मैं जल से प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥ आँख के लिये, पार्ष्णि को और प्रपद को सतापित करने वाले समस्त रोगो को जल देवता के समान नष्ट-भ्रष्ट कर द । जल रोग नाशक औषधियो मे सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक माना जाता है ॥ २ ॥ हे जलो ! आपका स्वामी समुद्र है तथा तुम उसकी स्त्री मात्र हो । तुम रोगनाशक औषधि प्रदान करो जिससे अन्नादि बलदायक पदार्थों का हम सेवन यथा सभव कर सके ॥ ३ ॥

२५ सूक्त

(ऋषि–शुन शेप । देवता–मन्याविनाशनम् । छन्द–अनुष्टुप्)

पञ्च च याः पञ्चाशच्च सयन्ति मन्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नशयन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥
सप्त च याः सप्ततिश्च सयन्ति ग्रैव्या अभि ।
इतस्ता सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥

नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।
इतस्ता सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

यह पचपन कण्ठमालाएँ जो कि गले की नसो में प्राप्त है पतिव्रत समान दोषो को नष्ट करने को प्रयोग की जायँ ॥ १ ॥ गर्दन की नाड़ियो मे व्याप्त सततर कण्ठमालायें पतिव्रता सम दोष नष्ट करने के समान ही इस प्रयोग से नष्ट हो जाँय॥ २ ॥ निन्यानवें कण्ठमालायें जो कि कन्धे की धमनियो मे व्याप्त है, पतिव्रता सम दोष नष्ट होने के समान ही इस प्रयोग से समाप्त हो जाँय ॥३॥

२६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—पाप्मा । छन्द —अनुष्टुप्)

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् ॥१॥
यो नः माप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मान पद्यताम् ॥२॥
अन्यत्रास्मन्न्यु च्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥३॥

हे पापाभिमानी देव ! तू सबको वश मे करने वाला है । मुझे पुशी कर तथा मुझे मेरे पुण्य कर्मों के द्वारा तू स्वर्ग की प्राप्ति करा ॥ १ ॥ हे पापयुक्त मने ! यदि तुम मुझे नही छोडता है तो मैं तुझे बल-पूर्वक इस अनुष्ठान द्वारा मार्ग के चौराहे पर छोड़ता हूँ ॥ २ ॥ जिससे हम द्वेष-भाव रखते है उसको ही इन्द्रवत् बली पाप प्राप्त होवे । हे पाप ! तू हमारे द्वेषी का सहार करे ॥३॥

२७ सूक्त

ऋषि—भृगु । देवता—यम. निर्ऋति । छन्द—जगती अनुष्टुप्)

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२॥
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नोअस्तु मा नो देवा इह हिंसीत्
कपोत ॥३॥

हे देवगण ! यह देवदूत पाप हमको दु ख देना चाहता है । इसके निवारणार्थ हम तुम्हे हव्यादि पदार्थों के द्वारा पूजते हैं । हमारे दुपाये और चोपाये सुखी हों उनके रोग का शमन होवे ॥ १ ॥ हे देवगण ! यह पाप देवदूत हमारे गृह को दु खी न करे, सुख प्रदान करे । प्रज्ज्वलित अग्नि हमारे हव्यादि पदार्थों को इसके लिए ग्रहण करे ॥ २ ॥ पक्षयुक्त आयुध हमारा नाश न करे तथा हमको एवम् हमारे गो-धन को सुख प्रदान करे । हे देवगण ! कबूतर हमको सन्तापित करने वाला न होवे ॥३॥

२८ सूक्त

(ऋषि—भृगु । देवता—यम ,निर्ऋति । छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप्: जगती ।)

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयाम. ।
स लोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठ. ॥१॥
परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रव. क इमा आ दधर्षति ॥२॥

यः प्रथमः प्रवतमासमाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योस्येशे पदो द्वियश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥

हे देवगण ! इस कबूतर को मेरे घर से दूर कीजिये । हम अन्न से तृप्त गौओं को घुमाते फिरते हैं, हम कपोत के पैर धोते हैं । यह कबूतर अन्न को छोड कर उड जाय ॥ १ ॥ कबूतर के प्रवेश को वर्जित करने के लिए हम अग्नि को घर के अन्दर ले आये हैं । गौ को सर्वत्र घुमाते हुए देवताओ को हव्यादि पदार्थ अर्पित करते हैं । इस प्रकार शान्त कर्म वाले हमको कोई शत्रु पीडित नही कर सकता है ॥ २ ॥ आज मारने योग्य व कल मारने योग्य कहता हुआ यम-फल देने के लिए उद्यत है । यमराज दो पैर वाले मनुष्यो और पशुओ का स्वामी है, मृत्यु करने वाले यमराज को हमारा प्रणाम स्वीकार होवे ॥३॥

२९ सूक्त

(ऋषि—भृगु । देवता—यम , निर्ऋति । छन्द—गायत्री अष्टि)

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥१॥
यौ ते दूतो निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ वा गृहं न॰ ।
कपोतोलूकाभ्यामपद तदस्तु ॥२॥
अवैरहत्यायेदमा पपत्याद् सुवीरताया इदमा ससद्यात् ।
पराङेव परा वद पराचीमनु सवतम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूक प्रतिचाकशान् ॥३॥

यह आयुध दूरस्थ शत्रुओ को नष्ट करे । कुवाणी या अप्रिय वाणी बोलने वाला उल्लू अशक्त होवे । पञ्चाग्नि के समीप पैर रखने वाला अशुभ की सूचना प्रदान करने वाला यह कपोत भी अशक्त होवे ॥ १ ॥ हे निर्ऋति ! तेरे द्वारा

भेजे गये ये कपोत एवम् उल्लू हमारे घर मे आश्रय न पा सके ॥ २ ॥ कबूतर एवम् उल्लू का आगमन चिन्ह हमारे लिए अहिंसक बने । हे यमदूत रूपी कपोत तेरे स्वामी के घर के समान ही हम तुझ अशक्त रूप ही देखें ॥३॥

३० सूक्त

(ऋषि-उपरिबभ्रव । देवता-शमी । छन्द-जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

देवा इम मधुना सयुत यव सरस्वत्यामधि मणावचर्कृ षु ।
इन्द्र आसीत् सीरपति शतक्रतु कीनाशा आसन् मरुत सुदानव ॥१
यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्य पुरुष कृणोषि ।
अरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्व शमि शतवल्शा वि रोह ॥२॥
बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्य शमि ॥३॥

देवगणो ने रसयुक्त यव को सरस्वती नदी के निकट मनुष्यो को प्रदान किया । जब कृषक रूपक मे इन्द्र ने हल पकडा एवम् सुन्दर दान वाले मरुद्गण कृषक बने ।१। हे शमी ! तेरा मद केशोत्पादक एवम् वृद्धि कारक है जिससे तुम मनुष्या को सुख सम्पन्न करते हो । तू सैकडो शाखाओं की हो, मैं तुझ नही काटता हूँ ॥२॥ हे सौभाग्यरूप ! बिना प्रयत्न वर्षा जल से वृद्धि को प्राप्त हुई शमी ! मातृ पुत्र के सुख देने के लिए केशो को सुखकारी होवे ॥३॥

३१ सूक्त

(ऋषि--उपरिबभ्रव । देवता—गौ । छन्द—गायत्री)

आय गौ पृश्निरक्रमीदसदन्मातर पुर ।
पितर च प्रयन्त्स्व ॥१॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानत ।
व्यख्यन्महिष स्व ॥२॥
त्रिंशद धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभि ॥३॥

पूर्व दिशा मे उदयाचल पर चढे हुए सूर्य निकल आया है। इनसे पृथ्वी अच्छादित हो गई है, इन्होंने स्वर्ग एवम् अन्तरिक्ष को भी व्याप्त कर दिया। यही सूर्य वृष्टि का जल का दोहन करने के कारण गौ कह जाते हैं ॥१॥ प्राणियों के शरीर मे सूर्य की प्रभा चमकती है। यह सूर्य सम्पूर्ण लोका को प्रकाशमान करता है ॥ २ ॥ तीस मुहूर्त तक यह सूर्य प्रकाशमान रहता है। वदत्रयी वाणी भी इस द्रुतगामी सूर्य को आश्रय म ही रहती है ॥३॥

३२ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि–अथवा। देवता–अग्नि रुद्र मित्रावरुणौ। छन्द–त्रिष्टुप् पङ्क्ति।)

अन्तदवि जुहुता स्वेतद् यातुधानक्षयण घृतेन ।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१
रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचा पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधाना ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२॥
अभय मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्रिणो नुदत प्रतीच ।
मा ज्ञातार मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥३

हे ऋत्विजो ! रोगो के नाश के लिए घृत सहित हव्य पदार्थों को अग्नि म आहुति दो। ह अग्ने ! उपद्रवो को शान्त कर हमारे घरो को दु खी होन से दूर कीजिय ॥१॥ ह यातुधानो ! रुद्र तुम्हारी पसलियो की हड्डियाँ काट डाले। ह

पिशाचो ! रुद्रदेव तुम्हारे गलों को काट दे । जिससे हम निडर होकर रहे ॥२॥ हे मित्रावरुण ! तुम मांस-भक्षी राक्षसों को भगा दो, जिससे हम निडरता पूर्वक रहे । इन्हे कोई स्थान तथा आश्रय न मिले, जिससे ये लड कर अन्त को प्राप्त हो सकें ॥३॥

३३ सूक्त

(ऋषि—जाटिकायन. । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप् ।)

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥१॥
नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः ।
पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ।
स नो ददातु तां रयिमुरं पिशङ्गसंदृशम् ।
इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥३॥

हे प्राणियो ! इन्द्र की शत्रु नाशनी ज्योति को तुम भी प्राप्त करो ॥१॥ दूसरो को अजेय वे शत्रु का सहार करते है । वृत्र-वध के समान उनके बल को कोई अब भी दबाने मे समर्थ नही है ॥२॥ वह इन्द्र हमे स्वर्ण प्रदान करे । वह देवता, मनुष्यादि के स्वामी एवम् सभी प्रकार उत्तम है ॥३॥

३४ सूक्त

(ऋषि—चातन । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । न पर्षदति द्विषः ॥१॥
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥२॥
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥३॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना स च पश्यति ।
स न पर्षदति द्विप ॥४॥
यो अस्य पारे रजस शुक्रो अग्नि रजायत ।
स न पर्षदति द्विष ॥५॥

हे स्तोता ! इच्छित वर्षक, यातुधानों को समाप्त करने वाली अग्नि की स्तुति करने वाली वाणीरूप सरस्वती का उच्चारण करो । अग्नि हमें राक्षस व पिशाचों से मुक्त करे ।१। जो अग्नि तेज की तीक्ष्णता से यातुधानों का नाश करती है वह हमारे शत्रुओं का सहार करें ॥२॥ जो अग्नि मरुभूमि की रेती मे अत्यधिक तीक्ष्ण होती है वह पिशाच गण, राक्षसगण और शत्रुओ से हमें मुक्त करें ॥३॥ अनेक रूप मे दिखाई देने वाली व सूर्य को प्रकाशित करने वाली अग्नि हमें राक्षसो, पिशाचों और शत्रुओं स मुक्ति प्रदान करे ॥४॥ पृथ्वी से पर जो अन्तरिक्ष म सूर्यात्मक अग्नि है, वह हमको राक्षस, पिशाच और शत्रुगण स मुक्ति प्रदान करे ॥५॥

३५ सूक्त

(ऋषि—कौशिक । देवता—वैश्वानर । छन्द—गायत्री)

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावत । अग्निर्न सुष्टुतीरुप॥
वैश्वानरो न आगमदिम यज्ञ सजूरुप । अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥२॥
वैश्वानरोऽङ्गिरसा स्तोममुक्थ च चाक्लृपत् ।
ऐषु द्युम्न स्वर्यमत् ॥३॥

मनुष्यों को कल्याण-दायिनी अग्नि दूर-देश से हमारी रक्षार्थ आकर सुन्दर स्तुतिओं को श्रवण करती हुई ग्रहण करे ॥१॥ वैश्वानर अग्नि हमारे समीप आकर यज्ञ म स्थित होने की स्तुति श्रवण करे ॥२॥ अङ्गिराओं के स्तोत्र और शस्त्र

नामक स्तुति को वैश्वानर अग्नि ने अपनी योग्यता से उज्ज्वल यश और अन्न प्राप्त होने की विधि बताते हुए सुन्दर स्वर्ग की प्राप्ति करा दी है ॥३॥

२६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम)। देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

ऋतावान वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥१॥
स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूरुत्सृजते वशी ।
यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥२॥
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥३॥

हम वैश्वानर अग्नि की स्तुति करते हैं। जिससे ज्योति के अधिपति सदैव प्रकाशमान रहते हैं। उन्ही से हम श्रेष्ठ फलो की याचना करते हैं ॥१॥ यह वैश्वानर अग्नि, देवताओं को यज्ञ-रूप अन्न प्राप्त कराती है और सूर्य रूप से वसन्त आदि ऋतुओ की सरचना का कार्य सम्पादन करती है ॥२॥ अग्नि ही एक मात्र उत्तम स्थानो के स्वामी हैं, भूत और भविष्यत प्राणियो को इच्छितफल प्रदान कराने मे अधिक तेजस्वी है ॥३॥

३७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम)। देवता—चन्द्रमा । छन्द—अनुष्टुप ।)

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् ।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृकइवाविमतो गृहम् ॥१॥
परि णो वृङ्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् ।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनि ॥२॥

यो न शपादशपत शपतो यश्च न शपात् ।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षाम तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥३॥

शाप क्रिया के कर्त्ता इन्द्र रथ-युक्त मेरे पास आवें और शाप देने वाले शत्रु को भेडिया द्वारा भेड के मारने के समान संहार कर देवें ॥१॥ हे शपथ ! तुम हमको बाधक न बन और छोड । गिरती हुई बिजली जैसे वृक्ष को भस्म करती है, उसी प्रकार तू हमको शाप देने वाले को भस्म कर दें ॥२॥ यद्यपि हम शाप किसी को देते नहीं हैं, किन्तु जो हमें शाप दे ऐसे शत्रु को कुत्तों के आगे रोटी फेंकनेवत ही मृत्यु के आगे फेंकेंगे ॥३॥

३८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा (वर्चस्काम) । देवता–त्विषि, बृहस्पति । छन्द–त्रिष्टुप ।)

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्र या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥१॥
या हस्तिनि द्वीपिनि य हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।
इन्द्र या देवी सुभगा जजान सा न एतु वर्चसा संविदाना ॥२॥
रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
इन्द्र या देवी सुभगा जजान सा न ऐते वर्चसा संविदाना ॥३॥
राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्र या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाता ॥४॥

मृग-व्याघ्र एवम् सर्प मे जो आक्रमणात्मक तेज है, अग्नि मे भस्म-रूप, ब्राह्मण मे शाप-रूप, सूर्य मे ताप-रूप तेज है, उसी से इन्द्र प्रकट हुए हैं । वह तेजरूपी देवी हमारे इच्छित पदार्थ से मिलती हुई प्राप्त होवे ॥१॥ हाथी मे बल रूप, गेंडे मे

हिंसा रूप, सुवर्ण में आल्हाद रूप, तेज है तथा गौओं, जलों और जो प्राणियों मे तेज विद्यमान है उसी ने इन्द्र को पैदा किया है। वह इच्छित तेज-युक्त वह तेज-रूपी देवी हमें प्राप्त होवे ।।२।। वर्षा करने वाले मेघ, गमन के लिए रथ, बैल, वायु, मेघ के स्वामी वरुण में जो तेज विद्यमान है उसी में इन्द्र की उत्पत्ति हुई है। इच्छित तेज सहित वह देवी हमें प्राप्त होवे ।।३।। राजपुत्राभिषेक के समय बजाई जाने वाली दुन्दुभि में, अश्व के द्रुत-वेग में, प्राणी के उच्च शब्द में जो तेज विद्यमान होता है, उससे ही इन्द्र की उत्पत्ति हुई है। अतः तेज सहित वह देवी हमें प्राप्त होवे ।।४।।

३६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा (वर्चस्काम) । देवता-बृहस्पतिः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप् ।)

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातये ।।१
अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ।।२।।
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ।।३।।

हमारे द्वारा दी जाने वाली आहुति अत्यधिक, शक्तिशाली, बलदायिनी, पराभवकारिणी, यशदायिनी इन्द्र को प्राप्त होवे। हे इन्द्र! हवि की वृद्धि के पश्चात् मुझ यजमान को चिरकाल तक वृद्धि करिये ।।१।। यशदायी इन्द्र सामने विद्यमान है, हम उसे नमस्कार करते हैं। हे इन्द्र! तुम्हारे द्वारा दिए राज्य को पाकर हम सुखी और यशस्वी बनें ।।२।। यश की इच्छाभिलापा

रूप मे इन्द्र, अग्नि और सोम उत्पन्न हुए माने जाते हैं। इनके समान मैं भी यश की कामना करता हुआ मनुष्य और देवगणो मे यशस्वी होऊँ ॥३॥

४० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (अभयकाम) अथर्वा। स्वस्त्ययनकाम।
देवता—मन्त्रोक्ता इन्द्र। छन्द—जगती अनुष्टुप्।)

अभय द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभय सोम सविता न कृणोतु।
अभय नोऽस्तूर्वन्तरिक्ष सप्त ऋषीणा च हविषाभय नो अस्तु ॥१॥
अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्ज सुभत स्वस्ति सविता न कृणोतु।
अशत्र्विन्द्रो अभय न कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्यु ॥२॥
अनमित्र नो अवरादनमित्र न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्र न पश्चादनमित्र पुरस्कृधि ॥३॥

हे द्यावा पृथ्वी! हम तुम्हारी दया से निडरता प्राप्त करें। चन्द्रमा, सूर्य, आकाश एवम् पृथ्वी के मध्य मे विद्यमान अन्तरिक्ष हमे निडरता प्रदान करे। सप्त ऋषियो को प्राप्त होन वाली यह हवि भी हमे निडरता प्रदान करे ॥ १ ॥ हे सूर्य हमारे गांव के सभी ओर अत्यधिक अन्न उत्पन्न होवे। हम कुशलता दो। इन्द्र हमारे शत्रुओ का नाश करे। राजाओ का क्रोध भी हमारे लिए दूर गामी हो जावे ॥२॥ हे इन्द्र! हमको दक्षिण, पूर्व, पश्चिम व उत्तर चारो दिशाओं से शत्रु रहित करो। कही भी हमारा शत्रु विद्यमान न रहे ॥३॥

४१ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-मनआदयो दैव्या ऋषय। छन्द-अनुष्टुप्
त्रिष्टुप)

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥१॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥२॥
मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥३॥

सुख का अनुभव कराने वाले मन के लिये, ज्ञान-साधन चेतना के लिये, ध्यान-साधन बुद्धि के लिये स्मृतिसाधन मति के लिये, ज्ञान रूप श्रुति के लिये, चक्षुज्ञान रूप दर्शन के लिये इन्द्रदेव को हम हव्य आदि नाना प्रकार के पदार्थों द्वारा पूजते हैं ॥ १ ॥ अपान, व्यान, प्राण वायु, तथा प्राणपायी आदि प्राणी की ओर सरस्वती देवी को हम ऋत्विज् लोग हव्यादि द्वारा पूजते हैं ॥ २ ॥ सप्तऋषि हमारे इस शरीर के रक्षक हैं तथा इन्द्रिय रूप से इनकी उत्पत्ति हुई है, ये हमारा त्याग न, करे। हे अविनाशी देव ! हमे दीर्घायु बनाओ ॥ ३ ॥

४२ सूक्त (पाचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा । देवता—मन्यु । छन्द—अनुष्टुप्)

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥१॥
सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥२॥
अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

जैसे धनुष पर चढे रोदे को धनुर्धारी उतारता है उसी प्रकार मैं तेरे हृदय मे स्थित क्रोध को निकालता हूँ। हमको परस्पर प्रेम रखते हुये एक मन से कार्य करना चाहिये ॥ १ ॥ मैं तेरे क्रोध को एक भारी पत्थर के नीचे दबाऊँ, जिससे

हम दोनो एक मन होकर अपने कार्य को सम्पन्न करे ॥ २ ॥ मैं तुम्हारे क्रोध के अग्रभाग अर्थात् अत्यधिक क्रोध को अपने अधीन करता हूँ और तुझे अपने जैसा बनाता हूँ ॥ ३ ॥

४३ सूक्त

(ऋषि–भृग्वङ्गिराः । देवता–मन्युशमनम् । छन्द–अनुष्टुप्)

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥१॥
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥२॥
वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३॥

यह कुश शत्रु क्रोध विजयी सामने ही खड़ा है। यह क्रोधी एवम् क्रोध को वारणवश नष्ट करने वाले के क्रोध को मिटाने मे भी प्रयोग किया जाता है ॥ १ ॥ यह अत्यधिक जड़ो वाला कुशा और अधिक जल सम्पन्न भू भाग को दबाकर खड़ा हुआ है। यह दर्भ पृथ्वी से अन्तरिक्ष की ओर उठा हुआ क्रोध को शमन करने वाला माना गया है ॥ २ ॥ हे क्रोधी! तेरी क्रोधी नस को हम शान्त करते है तथा क्रोध के समय मुख पर प्रकट होने वाली नसों को भी हम शमन करते हैं। मैं तेरे क्रोध को दबाकर अपने अनुकूल बनाता हूँ ॥ ३ ॥

४४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र. । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—
अनुष्टुप्: बृहती)

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव ॥१॥

शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥२॥
रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि पितृणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी॥३

जैसे नक्षत्रों सहित यह स्वर्ग लोक अपने स्थान पर टिका है, पृथ्वी भी सम्पूर्ण प्राणियों की आधार भूत टिकी हैं, जैसे यह जगम मनुष्यों का समूह पृथ्वी पर आश्रित रहता है, जिस प्रकार से खड़े हुये वृक्ष भी सोने का अनुभव करते हैं वैसे ही तेरा यह रुधिर स्थिर रहे अर्थात् बह न सके ॥१॥ हे रोगी ! जो सहस्रों औषधियाँ रोग को समाप्त करती हैं उनमें सर्वोत्तम यह कर्म रक्तश्राव को दूर करने में समर्थ कहा जाता है ॥ २ ॥ हे श्रृङ्गोदक ! तू रोग का नाश कर । हे गोश्रृङ्ग ! तेरा विषाण नाम रोग को नष्ट करने वाला और आस्राव रोग के उत्पन्न पाप कर्म को जड सहित नष्ट करने वाला है ॥ ३ ॥

४५ सूक्त

(ऋषि–अ गिराः प्रभृति । देवता—दुस्वप्ननाशनम् ।
छन्द–पंक्ति, अनुष्टुप्)

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः॥१॥
अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम् जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥२॥
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आंगिरसो दुरितात् पात्वंहसः ॥३॥

हे पापासक्त मन ! हमसे दूर रहो, बुरी बातों के कारण मुझे तू रोचक नहीं । स्त्री, पुत्र, और मित्रादि पशुओं
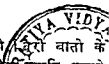
में मेरा यह मन यथायोग्य स्थित रहे ॥ १ ॥ जिन बुरे स्वप्नों से हम दु खी बनते हैं उनको अग्निदेव हमसे दूर करने में सहायक होवें ॥ २ ॥ हे मन्त्रस्वामिन् ! हे ब्रह्मणस्पते ! हे इन्द्र ! जिन बुरे स्वप्नों द्वारा हम पापवश हुए दु खी होते हैं, उससे आंगिरस वरुण हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

४६ सूक्त

(ऋषि–अंगिरा प्रभृति । देवता-दुस्वप्ननाशनम् । छन्द-जगती)

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यम पिताररुर्नामासि । १॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स न स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥२॥
यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दु ष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥३॥

हे स्वप्न ! न तो तुम प्राणधारी हो न मृतक हो । हे स्वप्न ! वरुण तेरे पिता और उनकी पत्नि तुम्हारी माता है और तेरा नाम अररू है ॥ १ ॥ हे स्वप्न के गर्वदेव ! हम तुमको जानते हैं । तुम वरुण पत्नि के पुत्र हो । तुम यम के व्यापारी हो अत तुम हमारी बुरे स्वप्न से रक्षा करो ॥ ३ ॥ जिस प्रकार धन देकर ऋणी कार्य को चुका देता है, जिस प्रकार गौ छेदनादि कर्म द्वारा दूषित अगों को हटाने में समर्थ है उसी प्रकार हम अपने बुरे स्वप्नों को शत्रुओं के पास भेजते हैं ॥ ३ ॥

— ० —

४७ सूक्त

(ऋषि--अ गिरा प्रभृति। देवता—अग्नि विश्वेदेवा सुधन्वा।
छन्द–त्रिष्टुप्)

अग्नि प्रात सवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशम्भू ।
स न पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्त सहभक्षा स्याम ॥१॥
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्यु । ।
आयुष्मन्त प्रियमेषा वदन्तो वय देवाना सुमतौ स्याम ॥२॥
इद तृतीय सवन कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वना स्व रानशाना स्विष्टि नो अभि वस्यो नयन्तु ॥३॥

सवन कर्म मे अग्नि हमारी रक्षा करे। वे विश्वकर्ता, मनुष्यो की भलाई करने वाले हमको यज्ञ के फल रूप धन मे सम्मलित करें । उनकी कृपा से हम पुत्र पौत्रादि सहित भोज्यान्न करते हुये दीर्घायु होवें ॥ १ ॥ उनञ्चारा मरुद्गण सहित इन्द्र हमको दूसरे सवन मे न त्याग दें। हम उनकी प्रसन्नता को सैंकडो स्तुति करते हुये उनके कृपापात्र बन ॥ २ ॥ यह तृतीय सवन, सोमभक्षी चमस को स्वशिल्प से बनाने वाले ऋभुओ का है। वे देवत्व को प्राप्त होने वाले हमको उत्तम फल *प्रदान कर ॥ ॥ ३ ॥*

४८ सूक्त

(ऋषि–अ गिरा प्रभृति । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द–उष्णिक)

श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा स वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥१॥
ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा स वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥२॥
वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे ।

स्वस्ति मा म वहात्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥३॥

हे यज्ञ ! तू बाज पक्षी के समान शीघ्रगामी है। तेरी स्तुतियों में गायत्री छन्द के अधिक प्रयोग से तू गायत्रछन्दा है। मैं तेरे को दण्ड वत ग्रहण करता हूँ इसलिये तुम मुझे अन्तिम ऋचा को प्रदान करो। हम तेरे लिये स्वाहाकार करते हैं ॥ १ ॥ हे यज्ञ ! जगत् छन्द के अधिक प्रयोग से तू जगच्छन्दा कहलाता है। तू ऋतुओं का प्रसन्न चित्त करने के कारण ऋभु है। मैं तेरे को दण्ड वत ग्रहण करता हूँ अतः तू मुझे यज्ञ की आखिरी ऋचा को प्राप्त करो। हम तेरे निये स्वाहाकार करते हैं ॥ २ ॥ हे मध्यदिन वाले यज्ञ ! तू त्रिष्टुपछन्दा तथा इन्द्र भी कहलाता है। मैं तुझे दण्ड वत ग्रहण करता हूँ इसलिये तू मुझे अन्तिम ऋचा को प्राप्त करो हम तेरे निमित्त स्वाहाकार करते हैं ॥ ३ ॥

४६ सूक्त

(ऋषि--गार्ग्य । देवता--अग्नि । छन्द अनुष्टुप्, जगती)

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥१॥
मेषइव वै सं वि चोवच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥२॥
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥३॥

हे अग्नि ! बन्दरवत चचल गति वाली, और देहवत जल को पान करने वाली तुम्हारी लपटें इस देह को भस्म कर देती हैं जैसे प्रसूतावस्था मे गाय जेल को खा जाती है तुम्हारे ज्वालात्मक शरीर को मनुष्य छू भी नहीं सकता है ॥ १ ॥

तुम तिनको के वन मे मेढकवत हो इस शरीर में रम जाते हो। जब दावाग्नि और शवाग्नि भस्म करने लगते हैं तो वृक्ष व पुरुषो को भस्म करते हुये सोमादि लताओ का भी भक्षण कर जाते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम्हारी ज्वालायें मृग के समान आकाश मे उछल कूद करती हैं वे अधिक धूप उत्पन्न करने से मेघो को जन्म देती हैं। हे अग्ने! सूर्यमण्डल को प्राप्त हुई तुम्हारी दीप्तिया, मनुष्यो के उपादान रूप जल वृष्टि को पृथ्वी लोक के लिय धारण करती है ॥ ३ ॥

सूक्त ५०

(ऋषि–अथर्वा (अभयकाम)। देवता–अश्विनौ ।छन्द–जगती, पंक्ति)

हत तर्द समङ्कमाखुमश्विना छिन्त शिरो अपि पृष्टी शृणीतम्।
यवान्नेददानाप नह्यत मुखमथाभय कृणुत धान्याय ॥ १ ॥
तर्द है ततग है जभ्य हा उपक्वस।
ब्रह्मे वासस्थित हविरनदन्त इमान् यवान् यवानहिंसतो अपोदित।२।
तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वाञ्जम्भयामसि।३।

हे अश्विदेवो! तुम हिंसक चूहे के अगो को छिन्न भिन्न करते हुये सिर को काट दो। तुम हमारे धान्य की रक्षा के लिये इसका मुख बन्द कर दो ॥ १ ॥ हिंसक मूषक! तू उपद्रवी होने के कारण वध योग्य है। ब्रह्मवत् भयङ्कर यह हवि तेरे नाश को अश्विनी कुमार ग्रहण करें। इससे अच्छा यह है कि तुम हवि कम से पहिले अन्यत्र भाग जाओ ॥ २ ॥ हे मूषको और पतगो के प्रभु! मेरी वाणी को यहाँ आकर सुनो। हम इस कर्म के द्वारा तुम्हें गाँव या जगल का न विचारते हुये नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

५१ सूक्त

(ऋषि--शन्ताति. । देवता--सोम , आप', वरुण. । छन्द--गायत्री, त्रिष्टुप् जगती)

वायोः पूत. पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्य. सखा ॥ १ ॥
आपो अस्मान् मातरः सूदयंतु घृतेन नो घृतप्वः पुनंतु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२॥
यत् किं चेद वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरति ।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः॥३॥

शुद्ध हुआ सोम शरीर के मुख से होता हुआ नाभि तक पहुँचता है । यह सोम इन्द्र का घनिष्ट दोस्त है । ये ससारी मातृरूप जल हमे पापो से मुक्त करे तथा क्षरणशील शक्ति रस से हमे पवित्र करे । देवरूप जल, स्नान, आचमन, प्रोक्षण कर्मों द्वारा पापो को क्षय करने वाला है । मैं इस प्रकार के जल से पवित्र होकर कर्म के निमित्त तैयार होता हूँ ॥ २ ॥ हे वरुण ! जिस पाप को प्राणी करते है तथा अज्ञान वश धर्म मार्ग से विपरीत आचरण करते हैं, अतः अज्ञान से पैदा हुये पापो के कारण तुम हमको समाप्त मत करो ॥ ३ ॥

५२ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि-भागलिः । देवता--सूर्य. गावः भेषजम् । छन्द-अनुष्टुप्)

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ १ ॥
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
न्यूर्मयो नदीनां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ २ ॥
आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।
आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ॥ ३ ॥

रात्री मे पिशाचादियो के उपद्रवो को नष्ट करने के लिये सूर्य-अन्तरिक्ष मे उदय होते हैं। उदयाचल पर्वत पर उदय होने से सभी उसको सामने देखते है। वे हमको न दिखाने देने वाले शुष्क कीटाणुओ को भी समाप्त कर देते हैं ॥ १ ॥ रात्री मे न दिखने वाली नदिये सूर्य उदय होने पर दिखाई देने लगती हैं। सूर्य ने अन्धकारात्मक राक्षसो को समाप्त कर दिया। गौऐं निडरता पूर्वक गौ शालाओ मे बैठ गई तथा जगली पशु अपने २ स्थानो को प्राप्त हुये ॥ २ ॥ रोग नाशिनी, शतायु दायिनी, कण्व ऋषि द्वारा बनाई हुई चित्त प्रायश्चित औषधियो को मैं रोग समाप्ति के लिये ले आया हूँ। यह औषधि दिखाई न देने वाले शुष्क कीटाणुओ से उत्पन्न रोग को बिल्कुल नष्ट करे ॥३॥

५३ सूक्त

(ऋषि--बृहच्छुक्र । देवता--पृथिव्यादयो मन्त्रोक्ता ।
छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकिता सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ।१।
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न एतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ।२।
स वर्चसा पयसा स तनूभिरगन्महि मनसा स शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वोयद् विरिष्टम् ।३।

दक्षिण दिशा से सूर्य मेरी रक्षा का कार्य करे और वस्त्र, धनादि प्रदान करे। आकाश एवम् पृथ्वी हमारी इच्छा को पूर्ण करें। पूर्वजो सम्बन्धी स्वधाकारी देव हमको अन्नादि प्रदान करे। सोम, अग्नि, वायु, सविता, भगदेवगण हमारे

कार्य के अनुकूल कार्य करे ॥ १ ॥ मुख एवम् नाक द्वारा चलने योग्य जीवन हमको फिर से प्रदान करो। सर्वकल्याणमयी अग्नि हमारे शरीर की रक्षा करती हुई व पापो को दूर करती हुई शरीर मे स्थित हो ॥ २ ॥ हम सुन्दर अनुकरण एवम् हाथ पैर आदि अगो से युक्त हो। सारभूतरस से एवम् देह कान्ति से युक्त होवे। त्वष्टादेव हमारे रोगो को शान्त कर हमारे शरीर को पुष्ट करे ॥ ३ ॥

सूक्त ५४

(ऋषि--ब्रह्मा। देवता--अग्नीषोमौ। छन्द--अनष्टुप्)

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥ १ ॥
अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम्।
इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥ २ ॥
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

दोष शमनी श्रेष्ठ कार्यों को इच्छित फल के निमित्त करता है। मैं इन्द्र को सुशोभित कर प्रसन्न करता हूँ। जिस प्रकार वर्षा धन-धान्यादि की वृद्धि करती है वैसे ही हे इन्द्र! तुम अभिचार कर्म करने वाले मनुष्यो के धन, धान्य, पुत्र-पौत्रादि को वृद्धि प्रदान करो ॥ १ ॥ हे अग्नि! हे सोम! यजमान को बल और धन प्रदान करो। फल प्राप्ति के लिये मैं श्रेष्ठ कर्म मे लगता हूँ ॥ २ ॥ हे इन्द्र! जो सगोत्रिय व अन्यगोत्रिय हमारी हिंसा के इच्छुक हो, उनको यजमान के वशीभूत करो ॥ ३ ॥

---

५५ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-विश्वदेवा, रुद्रः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥१॥
ग्रीष्मो हेमन्त. शिशिरो वसन्त. शरद् वर्षाः स्विते नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद्व शरणे स्याम ॥ २ ॥
इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नम ।
तेषां वय सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ३ ॥

देवगामी मार्ग, जिनसे विभिन्न लोको को जाया जाता है पृथ्वी के मध्य मे विद्यमान है । उसमे वृद्धि देने वाले मार्ग को मुझे बताइये ॥ १ ॥ ग्रीष्म, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, शरद् वर्षा, छ ऋतुओ के अभिमानी देव हमको सुगम से प्राप्त होने वाले धनो को बतावें । हे ऋतुओ ! गौ, पुत्र पौत्रादि से हमे युक्त करो तथा हम अपने घर के समान तेरे आश्रम मे रहे । २ ॥ हे प्राणियो ! इदावत्सर, परिवत्सर एवम सवत्सर को प्रणाम करते हुये प्रसन्न करो । इस यज्ञ योग्य की कृपादृष्टि हम पर रहे जिससे उत्पन्न श्रेष्ठ फल हमको मिल सके ॥ ३ ॥

५६ सूक्त

(ऋषि-शन्तातिः । देवता-विश्वेदेवा ,रुद्र । छन्द-पङ्क्ति ,अनुष्टुप्)

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान् ।
संयत न वि ष्परद् व्यात्त न सं यमन्नमो देवजनेभ्य ॥१॥
नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये ।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्य ॥२॥
स ते हन्मि दता दत' समु ते हन्वा हनू ।
स ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम् ॥३॥

हे विषशमनी देव ! सर्प हमारी, पुत्र-पौत्र और भृत्यादि सहित हिंसा न कर सकें। सर्प का मुख डङ्क मारने के लिए न खुले और अगर खुले तो वैसा ही (खुला का खुला ही) रह जाय। सर्प विषशमनी देवो को नमस्कार है ॥ १ ॥ तिरश्चि-राज, कृष्णवर्ण, असित एवम् बभ्रुवर्ण के स्वज नामक तथा इनको वश मे रखने वाले देवगणो को नमस्कार है ॥२॥ हे सर्प ! तेरे दन्त पंक्तियो को मिला कर दन्त-पंक्तियो को सीता हूँ। तेरी जीभ से जीभ को मिलाकर, ऊपरी व नीचे के मुख भाग को मिलाकर, अनेक सर्पों के फनो को एक साथ बांधता हूँ ॥३॥

५७ सूक्त

(ऋषि–शन्ताति । देवता–रुद्र [भेषजम्] । छन्द–अनुष्टुप् बृहती)

इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।
येनेषुमेकतेजना शतशल्यामपब्रवत् ॥१॥
जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥२॥
शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्व नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३॥

इस रोग को समाप्त करने वाली औषधि को करता हूँ। यह रुद्र औषधि सभी को रुलाती है इसका शिव ने भी प्रयोग किया था ॥ १ ॥ हे परिचारिको ! गोमूत्र के फेन से घाव को साफ करो, यह रोग को नष्ट करती है। हे रुद्र ! इस औषधि से हमे सुख प्रदान करो ॥ २ ॥ हे देवगण ! हमको सुख प्राप्त होता हुआ हमारे पशु-मनुष्यो का रोग नाश को प्राप्त होवे। हमारा पाप क्षय होवे और समस्त ससार के सुख हमारे लिए प्राप्त होवे ॥३॥

५८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा [यशस्काम] । देवता—इन्द्रादयो मन्त्रोक्ता ।
छन्द—जगती पङ्क्ति अनुष्टुप ।)

यशस मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशस द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशस मा देव सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥१
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वती ।
एवा विश्वेषु देवेषु वय सर्वेषु यशस स्याम ॥२॥
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशा सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तम ॥३॥

द्यावा पृथ्वी, इन्द्र, सविता मुझे यश प्रदान कर, मैं यश पाकर दक्षिणा ग्रहण करने वाले का प्रिय बनूं ॥ १ ॥ जिस प्रकार पृथ्वी के मध्य, आकाश एवम् इन्द्र वर्षा के कारण उत्तम माने जाते है औषधियो मे जल के समान, सब देव और मनुष्यो मे मैं श्रेष्ठता प्राप्त करूँ ॥ २ ॥ इन्द्र, अग्नि, सोम, देव, मनुष्य आदि सुख की इच्छा करते हैं। जैसे य यशस्वी हुए है, वैसे ही मैं देव और मनुष्यो म सबमे यशस्वी बनू ॥ ३ ॥

५९ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-अरुन्धत्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द-अनुष्टुप्)

अनुडुद्भ्यस्त्व प्रथम धेनुभ्यस्त्वमरुधति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥१॥
शर्म यच्छत्वोषधि सह देवीररुन्धती ।
करत पयस्वन्त गोष्ठमयक्ष्मां उत पूरुषान् ॥२॥
विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्ता हेतिं दूर नयतु गोभ्य ॥३॥

हे सहदेवी औषध ! सब प्रथम तू बैलो को, गायो को

और पाँच वर्ष से कम उम्र वाले गौ, अश्व आदि को सुख प्रदान कर ॥ १ ॥ हे सहदेवी और अरुन्धति ! तुम हमारे गोष्ठ को दूध से परिपूर्ण करो । हमारे पुत्र-पौत्र एवम् भृत्यादि वर्ग को निरोगता प्रदान करके हमें सुख प्रदान करो ॥२॥ हे सहदेवी ! तुम सौभाग्यवती हो और जीवन-दायिनी हो । मैं मनोकामना की पूर्ति चाहता हूँ । रुद्र द्वारा चलाये गये शस्त्र को पशुओं से दूर करने के लिए यह औषधि समर्थ होवें ॥३॥

६० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अर्यमा । छन्द—अनुष्टुप्)

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुप ।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायमजानये ॥१॥
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासा समन यती ।
अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनस्यायति ॥२॥
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥३॥

इस सूर्य की किरण पूर्व दिशा मे उदय हो रही हैं । ये सूर्य स्त्री रहित मनुष्य के लिए स्त्री और कन्या को पति प्रदान करने की कामना से उदय होते हैं ॥ १ ॥ पतिव्रता स्त्रियो के शान्ति कर्म को करती हुई यह कन्या पति को न प्राप्त होने से दुःखी है । हे अर्यमा ! अन्य स्त्रियाँ भी इसके निमित्त यह शान्ती कार्य करने मे लगी हुई हैं । विधाता ने पृथ्वी को विद्यमान कर, द्युलोक एवम् सविता को सूर्य मण्डल मे स्थापित किया । वे ब्रह्मा जी ही इसके लिए इच्छानुसार पति देवे ॥३॥

६१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—रुद्र.। छन्द—त्रिष्टुप्)
मह्यमापो मधुमदेरयन्ता मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम्।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात्॥१॥
अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूं रजनयं सप्त साकम्।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च॥२॥
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया॥३॥

सुखवायी सूर्य ने मुझे सुख देने के वास्ते अपनी किरणों को प्रकट किया। जल एवम् जलाभिमानी देव मेरे को मधुर जल प्रदान करें। ब्रह्मा से उत्पन्न हुए देव मेरी इच्छा पूर्ण करें। सविता देव भी मुझे प्रेरित करते हुए मनोभिलाषा को पूर्ण करे॥ १॥ पृथ्वी एवम स्वर्ग को मैंने अलग रूप में किया। छ ऋतुओ में मैंने अधिमास रूप सातवी ऋतु को जोडा। सत्या-सत्य और देव वाक्यो को मैं ही उच्चारण करता हूँ॥ २॥ पृथ्वी, स्वर्ग-गङ्गा आदि सप्त नदियाँ एवम् सागर को मैंने ही बनाया है। इसलिए मैं भोक्ता और भोग-रूप अग्नि-षोमो को संसार के बनाने मे सहायक के निमित्त पा चुका हूँ॥३॥

६२ सूक्त (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वा। देवता वैश्वानरादयो मन्त्रोक्ता। छन्द-त्रिष्टुप्)
वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये न पुनीताम्॥१॥
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥२॥
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्त शुचयः पावकाः।
इहेडया सधमाद मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम्॥३॥

अग्नि, वैश्वानर, सूर्य, शरीर मे प्राणरूप तथा आकाश मे गमन करने वाली वायु और यज्ञ पूर्ण करने वाले द्यावा-पृथ्वी हमको पवित्रता प्रदान करें ।।१।। हे प्राणियो ! वैश्वानरात्मक सत्य वाणी बोलो, शरीर रूप ऊपर के भाग में व्याप्त वाणी से धन के स्वामी बनने को अग्नि की स्तुति करते हैं ।। २ ।। ब्रह्मवर्चस आदि गुणो की प्राप्ति की विनम्ररूप वाणी को बोलो, जिससे हम दूसरे को पवित्र करने मे समर्थ बनें । अन्नादि पदार्थों से पुष्टि को ग्रहण करके बहुत समय तक सूर्योदय के दर्शन का श्रेष्ठ लाभ प्राप्त करो ।।३।।

६३ सूक्त

(ऋषि-द्रुह्वण । देवता-निर्ऋति प्रभृति । छन्द-जगती, अनुष्टुप्)

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबध दाम ग्रोवास्वविमोक्य यत् ।
तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूत ।।१।।
नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।२
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभि संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ।।३।।
संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इड]पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ।।४।।

हे पुरुष ! निर्ऋतिदेव ने तेरे अङ्ग और कण्ठ मे न छूटने वाला पाप रूपी बन्धन डाल दिया है । मैं इस पाप-पाश को दूर कर चिरकाल तक जीवित रहूँगा । तू हमारे द्वारा प्रेरित होकर अन्न का सेवन कर ।। १ ।। हे निर्ऋते ! तुमको हम नमस्कार करते हैं, अत तुम हमारे इन बन्ध रूपी पाशो को खोल दो । हे साधक ! युक्त होने पर तुमको यम द्वारा दुबारा दे दिये गये हैं । अत यम को नमस्कार करो ।।२।। हे निर्ऋते !

तेरे लोह-पाश से जकड़ने के समय उसे ज्वरादि रोग पकड़ लेते है। तू अपने अधिष्ठामी यजमान एवम् पितरों द्वारा इसको सुखदायी स्वर्ग की प्राप्ति करा ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम समस्त धनों को देने वाले हो अत हमको धन प्रदान करो। हे अग्नि ! तुम वेदी पर देदीप्यमान हो ॥४॥

६४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सामनस्यम्। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप)

स जानीध्व स पृच्यध्व स वो मनासि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे सजानाना उपासते ॥१॥
समानो मन्त्र समिति समानी समान व्रत सह चित्तमेषान्।
समानेन वो हविषा जुहोमि समान चेतो अभिसविशध्वम् ॥२॥
समानी वा आकूति समाना हृदयानि व
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति ॥३॥

हे समान मना वालो ! तुमको ज्ञान भी समान रूप से प्राप्त होवे। एक कार्य को करो। तुम्हारा हृदय एव अर्थगामी है। जैसे इन्द्रादि दव केवल हव्यादि ग्रहण का ही ज्ञान रखते है वैसे ही तुम भी मनोभिलाषा पूर्ति के लिए राग-द्वेष का त्याग करो ॥ १ ॥ मनुष्यो का कार्य व अकार्य सम्बन्धी ज्ञान समान हो। मन भी एकसा होवे। उत्तम फलो की प्राप्ति हतु मैं घृत आदि पदार्थों को हव्य-रूप मे देता हूँ। तुम्हारा मन एक जगह स्थिर रहे ॥ २ ॥ हे समानता के इच्छुको ! तुम्हारा हृदय, सङ्कल्प और मन एक से होवें। समस्त कार्यों की उत्तमता के लिए मैं यह समानात्मक सम्बन्धी कर्म को करने मे प्रवृत्त हुआ हूँ ॥३॥

---

६५ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-पराशर , इन्द्र । छन्द-पंक्ति ,अनुष्टुप)
अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा ।
पराशर त्व तेषा पराञ्च शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि ॥१॥
निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्त य देवा शरुमस्यथ ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥
इन्द्रश्चकार प्रथम नैर्हस्तमसुरेभ्य ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥३॥

क्रोधी शत्रु शान्तता धारण करे । शत्रु के आयुध सफल न होवें । उसकी दोनो भुजायें शस्त्र धारण करने म असमर्थ होवे । हे इन्द्र ! तुम शत्रु को मारने वाले हो, अत हमारे शत्रु को हटा कर हमे धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे देव ! तुम जिस बाण से शत्रु की भुजा को छेदते हो, उसके स्वामी के लिए मैं शत्रु भुज छेदन को हवि देता हूँ ॥ २ ॥ पहिले समय मे इन्द्र ने राक्षसो को निबल किया ऐसे ही इन्द्र की कृपा से मेरे जवान पुरुष [योद्धा] शत्रुगणो को निर्बल कर विजय प्राप्त करें ॥३॥

६६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)
निर्हस्त शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्ध ॥१॥
आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ता शत्रव स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥२॥
निर्हस्ता सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदासि शतशो वि भजामहे ॥३॥

हमे दुखदायी शत्रु की भुजा निबल बने । हिंसा गामी

शत्रु नीच गति प्राप्त करें। हे इन्द्र। जो शत्रु शैन्य-बल सहित हम पर आक्रमण करे, उसे तुम अपने आयुध से मार दो ॥१॥ प्रत्यञ्चा पर चढा कर बाण छोडते हुए शत्रुओं को इन्द्र तुरन्त नष्ट कर डाले ॥ २ ॥ हमारे शत्रु निर्बल होवें, उनके सम्पूर्ण अङ्ग शिथिलता को धारण करें। हे इन्द्र! आपकी कृपादृष्टि होने पर हम इनकी समस्त सम्पत्ति को आपस मे बाँट लें ॥३॥

६७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप्)

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्र पूषा च सस्रतु ।
मुह्यन्त्वद्यामू सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१॥
मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाणइवाहय ।
तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हतु वरवरम् ॥२॥
ऐषु नह्य वृषाजिन हरिणस्या भिय कृधि ।
पराङ् मित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ॥३॥

शत्रुओं के मार्ग को इन्द्र और पूषागण रोकें। अत्यधिक मोह से ग्रह शत्रु शैन्य अच्छे बुरे कार्य के विचार से शून्यता को धारण करे ॥ १ ॥ हे शत्रुओ! जैसे सर्प फण कट जाने पर काट नही सकता केवल तडफता है, उसी प्रकार तुम ज्ञान शून्य होकर रण-स्थल मे तडफते रहो। इन्द्रगण हमारी आहुति से खुश हुए तुम्हारे वीरो का नाश करें ॥ २ ॥ हे अभिष्ट वर्षक इन्द्रदेव! काले मृग चर्म से हमारे दुपट्टा को सुशोभित करो। शत्रुओ को हराओ ताकि वे मैदान छोड जांय और हमे उनकी गौ तथा धन धान्य आदि सम्पदा प्राप्त होवे ॥३॥

---

६८ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-सविसादया मन्त्रोक्ता । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्।)

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दतु सचेतस सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतस ।।
अदिति श्मश्रु वपत्वाप उन्दतु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ।।२।।
येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्मा णो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ।।३।।

सविता मुण्डन के उस्तर को लेकर आ पहुँचे। हे वायु! तुम भी बालक का सिर आर्द्र करने के निमित्त उष्ण जल सहित यहाँ आवो। ग्यारह रुद्र, आदित्य, वसु के समान ज्ञान सहित जल से शिर को भिगोव। हे प्राणियो! वरुण व सोम सम्बंधि उस्तरे से इसके भीग हुए बालो को उतार दो ।। १ ।। अदिति इस प्राणी को दाढी,मूँछो से विलग करे, जल बालो को भिगावे, ब्रह्मा जी इसकी चिकित्सा सम्बन्धी कार्य करें। जिससे यह चक्षु शक्ति वाला एवम् दीर्घायु होवें ।। २ ।। सोम एवम् वरुण सम्बन्धित जिस उस्तरे द्वारा सविता ने मुण्डन किया, हे विप्रो! उसी प्रकार के उस्तरे से इसकी मूँछा एवम् दाढियों को साफ करो। इस सस्कार को करने से मनुष्य, पुत्र-पौत्र, अश्व, गाय आदि धनो स युक्त होवें ।।३।।

६९ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-बृहस्पति, अश्विनौ। छन्द-अनुष्टुप्)

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यश ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ।।१।।

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनां अनु ॥२॥
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥३॥

रथियो की जय घोषो द्वारा मिला यश, पर्वतों का यश, क्षीरदान का यश मुझे प्राप्त होवे । बहने वाली धारा, अन्न और मधुर यश मे जो रस है वह मुझे प्राप्त होवे ॥१॥ हे अश्विनोकुमारो ! तुम मुझे मक्षिकाओं से एकत्रित रस से सम्पन्न करो जिसमे मेरी वचन शृखला मधुर और तेजमयी होवे ॥ २ ॥ अन्न और यज्ञ के फलस्वरूप जो क्षीरादि मे यश है तथा जो मेरे मे तेज विद्यमान है, उसे ब्रह्माजी आकाश मे स्थित नक्षत्रो के समान दृढ एवम् स्थिर करे ॥३॥

७० सूक्त

(ऋषि—काङ्कायन । देवता—अघ्न्या । छन्द—जगती)

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥१॥
यथा हस्ती हस्तिन्या. पदेन पदमुद्युजे ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥२॥
यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥३॥

जैसे शराबी को शराब प्रिय तथा मांसाहारी को मांस प्रिय होता है, जैसे जुए के खिलाड़ी को पासे तथा वीर्य सेचनेच्छा वाले को स्त्री प्रिय होती है । उसी प्रकार हे अवध्य गाय ! तेरे

को अपना बछड़ा अत्यधिक प्रिय है ॥ १ ॥ जिस प्रकार हाथी के पैर से हथिनी का पैर मिलने पर उसे प्रसन्नता होती है तथा सन्तानदाता स्त्री से खुश होता है उसी प्रकार हे अवध्य गाय ! तुम बछडे से खुश होवो ॥ २ ॥ हे धेनु ! रथ मे चक्र की धुरी के समान तू बछडे से दृढ़ बँधी रह। स्त्री मे रमे हुए कामी पुरुष के मन समान ही तुम अपने मन को बछड़े मे रमाओ अर्थात् उसका ठीक प्रकार से ध्यान रखो ॥३॥

७१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्निः, विश्वेदेवाः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥१॥
यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२॥
यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥३॥

नाना प्रकार के अन्न को मैंने खाया हैं, सुवर्ण आदि धन इकट्ठा किया है, यह यज्ञ अग्नि अन्न-दोष और प्रतिग्रह दोष से मुझे मुक्त करें ॥१॥ यज्ञ से धन मुझे प्राप्त हुआ, और जो द्रव्य पितर एवम् देवताओ द्वारा मुझे प्रति ग्रह रूप मे मिला है, यह यज्ञ अग्नि मेरे प्रतिग्रह दोष को दूर करें ॥ २ ॥ हे देवगणो ! मैंने झूंठ बोल कर जो धन खाया है, और जो कर्जा नहीं चुकाया है, उसके दोष से मुझे वैश्वानर अग्नि बचावे तथा सुख प्रदान करें ॥३॥

७२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वाङ्गिराः। देवता-शेपोऽर्कः। छन्द-जगती, अनुष्टुप्)

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया।

एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥१॥
यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् वर्धतां पसः ॥२॥
यावदङ्गीन पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥३॥

आसुरी माया से जैसे यह पुरुष माया रूप दिखाता है, तथा विस्तृत करता है, वैसे ही यह अर्कमणि तेरे प्रजनन अङ्गों को सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनावें ॥ १ ॥ सन्तानोत्पत्ति योग्य शरीरवत तेरा शरीर पूर्ण रूप से कार्यक्षम हो ॥ २ ॥ प्रजा के उत्पादन योग्य सुदृढ अङ्ग वाले पुरुष के समान तेरे भी अङ्ग होवे ॥ ३ ॥ (सुदृढ वीर्य द्वारा ही शक्तिशाली सन्तान की उत्पत्ति होती है)।

७३ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वरुणादयो: मनोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्)

एह यातु वरुण सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसयात सर्व उग्रस्य चेतुः संमनसः सजाताः ॥१॥
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२॥
इहैव स्त माप याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथ वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३॥

वरुण, सोम, अग्नि सामनस्य कर्म के लिए यहाँ आकर विद्वान् होवे । बृहस्पति अष्टावसुओं सहित यहाँ पधारे। हे समान मन वालो ! तुम एक मन वाले होकर यजमान के निमित्त उपजीवी बनो ॥ १ ॥ हे बान्धवो ! तुम्हारे बल और हृदय के सङ्कल्पों को हव्य घृत से मिलाता हूँ। मुझ एक विचार धारी के लिए तुम कल्याणमयी बनो ॥ २ ॥ हे बान्धवो !

मेरे से अलग न होकर प्रेम करो। मेरे से विपरीत चलने पर पूषा नामक देवगण तुम्हे रोके और गृहपालक देव मेरे निमित्त तुम्हे आहुति करें ॥३॥

७४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-ब्रह्मणस्पत्यादयो मनोक्ता। छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

स व पृच्यन्तां तन्व समनांसि समु व्रता।
स वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भग स वो अजीगमत् ॥ १ ॥
संज्ञपन वो मनसोऽथो संज्ञपन हृद।
अथो भगस्य यच्छ्रान्त तेन संज्ञपयामि व ॥ २ ॥
यथादित्या वसुभि संबभूवुमरुद्भिरुग्रा अहृणीयमाना।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमाञ्जनान्त्समनसस्कृधीह ॥ ३ ॥

हे सामनस्य के चाहने वालो! तुम्हारे शरीर-मन स्नेह से युक्त होवे और कर्म अनुरागी होवे। भग और ब्रह्मणस्पति हमारे तुम्हारे निमित्त हमको बारम्बार बुलावे ॥१॥ एक मनी तुम्हारी कर्म ज्ञानोत्पादनी इन्द्रिय के लिये मैं कर्म करता हूँ। मैं भग देवता के तप से तुम्हे समान ज्ञानी करता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम क्रोध त्याग कर इन मनुष्यों को उसी प्रकार समान वाला करो जैसे वरुण अष्टावसुओं के साथ और रुद्र मरुद्गण के साथ क्रोध त्याग कर ज्ञानी हुये ॥३॥

७५ सूक्त

(ऋषि—कबन्ध (सपत्नक्षयकाम) देवता—इन्द्र। छन्द—अनुष्टुप् जगती)

निरमु नुद ओकस सपत्नो य पृतन्यति।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एन पराशरीत् ॥ १ ॥

परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥
एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यो
यावत् सूर्यो असद् दिवि ॥ ३ ॥

हमको दु:ख देने वाले व एकत्रित सैन्य बल वाले को हम मन्त्र शक्ति से नष्ट करते हैं। शत्रु नाशार्थ प्रेरित हवियों से प्रसन्न हुये इन्द्र शत्रु को ऐसा नष्ट करे कि वे कभी यहाँ न आ सकें ॥ १ ॥ वृत्र नाशक इन्द्र सैकडो वर्षो तक न आ सके ऐसे स्थान पर दूर भेजे ॥२॥ इन्द्र से ललकारा हुआ शत्रु तीनो भूमियो एवम् पाँचो निषादो से भी दूर चला जाय। वह सूर्य के प्रकाश से दूर रहे। जब तक सूर्य विद्यमान है तब तक वह वापिस न लौटे ॥ ३ ॥

७६ सूक्त

(ऋषि-कवन्ध। देवता—सान्तपनाग्निः। छन्द—अनुष्टुप्)

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥ १ ॥
अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे ।
अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥ २ ॥
यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् ।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥ ३ ॥
नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति ।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णात्यायुषे ॥ ४ ॥

पुरुष की हिंसा को बैठे हुये राक्षसो को भस्म करने के लिये अग्नि अपनी ज्वाला रूपी जिह्वाओ सहित प्रकट

होवें ॥ १ ॥ अद्धाति ऋषि जिस अग्नि के धुऐं को अपने मुख से निकलता देख चुके हैं उसके निमित्त मैं वाचन कर्म मे प्रवत्त होता हूँ ॥२॥ क्षत्रिय द्वारा रखी गई अग्नि की सदीपनी आहुति का ज्ञाता प्राणी सिंह, हाथी आदि से भयभीत स्थान को नही जाता है ॥ ३ ॥ जो चिरजीवनी इच्छायुक्त क्षत्रिय लोग अग्नि की स्तुति करते हो वे शत्रु द्वारा भी नहीं मारे जा सकते हैं ॥ ४ ॥

७७ सूक्त

(ऋषि-कबन्ध. । देवता-जातदेव. । छन्द-अनुष्टुप)

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥ १ ॥
य उदानड् परायणं य उदानंन्यायनम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥ २ ॥
जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥ ३ ॥

ईश्वर की आज्ञा से द्यौ और पृथ्वी जैसे अपने स्थान पर स्थिर है तथा द्यावा पृथ्वी के मध्य मे जैसे समस्त ससार अपने स्थान पर स्थिर है उसी प्रकार हे नारी ! खम्भे के आधार पर टिके हुये घर से तुझे बाधता हूँ । जैसे घोडे को सवार रस्सी से बाँधता है वैसे ही तू कर्म रूपी बन्धन मे बँधती है ॥ १ ॥ गमन मे व्याप्त छिप कर नीचे चलने मे व्याप्त तथा भागते हुये को रोकने मे समर्थ देवता का मैं आह्वाहन करता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! भागने के स्वभाव से युक्त इस स्त्री के स्वभाव को बदल दो । वापिसी के सभी उपाय अब कामयावी बने । हे अग्ने ! उसे अपने उपायो द्वारा हमारे पास लाओ ॥३॥

७८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–चन्द्रमा, त्वष्टा । छन्द–अनुष्टुप्)

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥ १ ॥
अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥ २ ॥
त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुष्कृणोतु वाम् ॥ ३ ॥

जिस स्त्री को इस पति के विवाह के लिये माता-पिता पास लाये हों उसे यह अग्निदेव, दधि, घृत, और मधु से बढ़ावे। यह पति भी सुन्दर हवि द्वारा प्रजा, पशु आदि से युक्त होवे ॥ १ ॥ इन पति-पत्नि के घर दुग्धादि से परिपूर्ण होवे, राज्य वृद्धि को प्राप्त होवे, और नाना प्रकार के धनो से ये सम्पन्न बने ॥ २ ॥ इस स्त्री की जनादाता त्वष्टा है। हे वर ! तुझको भी त्वष्टा ने ही बनाया है। अत तुमको त्वष्टा सहस्रायु प्रदान करें ॥ ३ ॥

७९ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–सस्फानम् । छन्द–गायत्री)

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु ।
असमातिं गृहेषु नः ॥ १ ॥
त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय ।
आ पुष्टमेत्वा वसु ॥ २ ॥
देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे ।
तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ॥ ३ ॥

हवि पहुँचाने से अग्नि, आकाश की पालक है। हमारे

धन-धान्य को बढाती हुई ये अग्नियाँ हमारे घर को अगरि सामान से पूर्ण करे ॥ १ ॥ हे वायु ! तुम हमको बल देने वा अन्न प्रदान करो । प्रजा पशु आदि सभी प्रकार का धन मुझे प्रा होवे ॥ २ ॥ हे आदिक ! तुम प्रजा पालक और धनो के स्वाम माने जाते हो । हम भी आपकी कृपादृष्टि से अत्यधिक धन क प्राप्त करें ॥ ३ ॥

८० सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–चन्द्रमा । छन्द–अनुष्टुप, पंक्ति)

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥ १ ॥
ये त्रय कालकाञ्जा दिवि देवाइव श्रिता ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ २ ॥
अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थ समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥ ३ ॥

कौआ, कबूतर आदि आकाश से हमारे ऊपर गिरने वाले पक्षियो के दोष को नष्ट करने के लिये स्वर्गस्थ स्वान की पूजा करते हैं ॥ १ ॥ उत्तम कर्मों के करने वाले कालकुञ्ज नामधारी तीन राक्षसो ने भी देवताओ के समान स्वर्ग सुख प्राप्त किया । काक, कपोत के उपघात दोष के शमन के लिये कालकुञ्ज का आह्वाहन करता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी पैदायश विद्युत रूपी इस जल मे प्रत्यक्ष है । द्युलोक मे तुम्हारा वास है और समुद्र तथा पृथ्वी पर भी तुम अत्यधिक महिमायुक्त हो । तेजरूपी दिव्य स्वान हवि द्वारा हम तेरा पूजन कर्म करते हैं ॥ ३ ॥

—०—

८१ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-आदित्यः । छन्द-अनुष्टुप्)

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥ १ ॥
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥ २ ॥
य परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्र जनादिति ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! गर्भ नाशक व्यक्ति को वश मे करने को तुम समर्थ हो । हाथो को फैलाकर तुम गर्भघाती राक्षसो को समाप्त करते हो । वे अग्नि पुत्र पौत्रादि युक्त भोग के लिये रक्षक होते हैं ॥ १ ॥ हे ककरण ! तुम गर्भ की स्थापना के निमित्त गर्भाशय को फैलाओ हे स्त्री ! तुम पुत्र को अपने गर्भाशय मे धारण करो ॥ २ ॥ देवमाता अदिति द्वारा पुत्र लालसा के लिये बाँधे गये ककरण को इस स्त्री के त्वष्टा बाधे । यह स्त्री पुत्रोत्पत्ति के योग्य है ॥ ३ ॥

८२ सूक्त

(ऋषि-भग । देवता-इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप्)

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायत. ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥ १ ॥
येन सूर्या सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥ २ ॥
यस्तेऽड्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥ ३ ॥

पास आये हुये इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये वृत्र-संहारक

आदि नामो से स्तुति करता हूँ। मैं शतकर्मा इन्द्र से विवाह की कामना पूर्ति का वरदान माँगता हूँ ॥ १ ॥ विवाहकामी पुरुषको भगदेव ने बताया कि जिस मार्ग द्वारा अश्विनीकुमार देवों ने सूर्या सावित्री नामक स्त्री पाणिग्रहण से प्राप्त किया था उसी मार्ग द्वारा तुम भी (अपने लिये) स्त्री प्राप्त करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! धन के धारण वाला तुम्हारा हाथ के द्वारा मुझ पुत्रभिलाषी प्राणी को पत्नी रूपी रत्न प्रदान करो ॥ ३ ॥

८३ सूक्त

(ऋषि—भग । देवता—सूर्योदय । छन्द-अनुष्टुप्)

अपचित प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यं कृणोतु भेषज चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥ १ ॥
एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभ नामावीरघ्नीरपेतन ॥ २ ॥
असूतिका रामयण्यपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरित प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥ ३ ॥
वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वामाहा मनसा यदिद जुहोमि॥४॥

हे गडमालाओ ! तुम शरीर से पृथक रहो। घोसले से शीघ्रतापूर्वक निकलने मे चतुर बाज के समान तुम शीघ्र भाग जाओ। आदित्य नामक देव तुम्हारी चिकित्सा करें तथा चन्द्र देव तुम्हे दूर करें ॥ १ ॥ गन्डमालायें नाना प्रकार के श्वेत, कृष्ण आदि वर्णों से युक्त होती है। हे गण्डमालाओ ! तुम वात पित्त, श्लेष्म के भेदोपभेद से नाना नाम धारी होती हो। मैं सुन्दर नामो से उच्चारण करता हूँ तुम प्रसन्न हुई के समान शीघ्र ही इस वीर को दु खी न करती भई चली जाओ ॥ २ ॥ असूतिका, रामायणी, अपचित् मन्त्र योग्यता से दूर होने पर भी सम्पूर्ण कष्ट नष्ट हो जाते है ॥ ३ ४ ॥

८४ सूक्त

(ऋषि—भग । देवता—निर्ऋति । छन्द—जगती, बृहती, त्रिष्टुप् ।)

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥१॥
भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥२॥
एवो ष्वस्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वा ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

हे व्रणाभिमानी देव ! मन से तुम अपनी आहुति ग्रहण करो । यह औषधि के समान व्रण प्रक्षालनार्थ जल समस्त रोगों का नाश करता है ॥ १ ॥ हे व्रणाभिमानी देव ! सामान्य मनुष्य तुम्हें फैलाने वाले मानते है । किन्तु मैं तुमको जानता हुआ पापी देवता मानता हूँ । हमारी हवि को लेते हुए गवादि धन को रोग मुक्त करो ॥ २ ॥ हे पाप देवी ! हमको दुःखी न करती भई तुम रोगों का नाश करो। ये यम मुझे फिर से काटना चाहता है । मेरा यम देव को नमस्कार मालूम होवे ।२। हे निर्ऋते ! पुरुष को तुम्हारे द्वारा जकड़ने पर वह सैंकडो बेंड़ियो रूपी ज्वरादि बन्धनो मे फँस जाता है । तुम अधिष्ठात्री पाप देव यम और पितरो सहित स्वर्ग मे इस प्राणी को सुख प्राप्त करा ।।४।।

८५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (यक्ष्मनाशनकाम)। देवता—वनस्पति ।
छन्द—अनुष्टुप।)

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥१॥
इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषा वाचा यक्ष्म ते वारयामहे ॥२॥
यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यती. ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥३॥

राज्ययक्ष्मादि रोगों को दूर करने वाली यह वरण वृक्ष मणि है, इन्द्रादि देवगण इस पुरुष के क्षय रोग को समाप्त करें॥ १ ॥ हे रोगी! इन्द्र, वरुण मित्र आदि देवताओं की आज्ञा से तेरे क्षय रोग के नाश के लिए हम मणि बाँधते हैं ।२। त्वष्टा पुत्र के मेघों के जलों को रोकने के समान मैं तेरे यक्ष्मा को अग्नि द्वारा रोकता हूँ ॥३॥

८६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (वृषकाम)। देवता—एकवृष । छन्द—अनुष्टुप्)

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥१॥
समुद्र ईशे स्रवतामग्नि पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥२॥
सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् ।
देवानामर्ध भागसि त्वमेकवृषो भव ॥३॥

उत्तम कामना से युक्त पुरुष इन्द्र के अनुग्रह से तृप्त करने वाला होवे, आकाश, पृथ्वी और सम्पूर्ण प्राणियों को तृप्त करने

में यह योग्य बने। हे उत्तमाभिलाषी ! तुम समस्त जीवों में उत्तम बनो ॥ १॥ जलो में समुद्र श्रेष्ठ है, अग्नि, पृथ्वी का स्वामी है, चन्द्रमा नक्षत्रों का स्वामी है। जैसे ये श्रेष्ठ एवम् स्वामी हैं, वैसे ही तुम बनो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम राक्षसों में श्रेष्ठ एवम् देवगणों के स्वामी हो। इस इन्द्र की दया से श्रेष्ठाभिलाषी पुरुष ! तू भी श्रेष्ठता धारण कर ॥३॥

८७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—ध्रुवः। छन्द—अनुष्टुप्)

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलत् ।
इन्द्रेहेव ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥
इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

हे राजन् ! तुम हम सबके स्वामी बनो। तुम्हे मैं राज्य मे ले आया हूँ। समस्त पृथ्वी की प्रजा तुम्हे स्वामी रूप स्वीकार करे। राज्य सिंहासन पर आरूढ़ रहते हुए तुम पर्वत वत् दृढ़ एवम् स्थिर रहो तथा अपने राज्य का पालन करो।२। इस राजा को इन्द्र ने हमारी हवियो से प्रसन्न होकर स्थिरता प्रदान की है। सोम तथा वृहस्पति इसे अपना ही मानें ॥३॥

८८ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-ध्रुवः। छन्द-अनुष्टुप्)

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥१॥
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।

ध्रुव त इन्द्र श्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥२॥
ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिश समनस सध्रीचीध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥३॥

स्वर्ग, पृथ्वी और द्यावा पृथ्वी के मध्य समस्त विश्व एवम् पर्वत के समान यह राजा स्थिर रहे ॥ १ ॥ हे राजन् ! वरुण बृहस्पति, इन्द्र एवम् अग्निदेव आपके राज्य को स्थिरता प्रदान करें ॥२॥ हे राजन् ! तुम स्थिरता रखते हुए शत्रुओं को अधिगति प्रदान करो । सभी दिशाओं में तुम्हारे मित्र निवास करें । तुम यहाँ स्थिरता पाकर कभी भी युद्ध भूमि से विमुख नहीं होओगे ॥३॥

८६ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–मन्त्रोक्ता । छन्द–अनुष्टुप्)

इद यत् प्रेण्य शिरो दत्त सोमेन वृष्ण्यम् ।
तत परि प्रजातेन हार्दि ते शोचयामसि ॥१॥
शोचयामसि ते हार्दि शोचयामसि ते मन. ।
वातं धूमइव सध्यङ् मामेवान्वेतु ते मन· ॥२॥
मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्य देवी सरस्वती ।
मह्य त्वा मध्य भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥३॥

इस प्रेम प्रापक शिर को सोम देव ने दिया है । इस शिर से उत्पन्न हुए प्रेम से हम तेरे हृदय को दु खी करते हैं ॥१॥ हे पति-पत्नि ! हम तुम्हारे हृदय को आपस मे अनुरक्त भाव से देखते है । तुमसे एक के हृदय मे सन्ताप को पैदा करते हैं, इससे तेरा मन जीवन साथी के अनुसार होगा ॥ २ ॥ हे स्त्री ! मित्रावरुण तथा सरस्वती तेरे को मेरे मे मिलावें । समस्त मनुष्य तथा प्रदेश तुझे मेरी बनायें ॥३॥

—

९० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—रुद्र । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

यां ते रुद्र इषुमास्यदंगेभ्यो हृदयाय च ।
इद तामद्य त्वद् वय विषूचीं वि वृहामसि ॥१॥
यास्ते शत धमनयोऽङ्गा यनु विष्ठिता ।
तासां ते सर्वासा वय निर्विषाणि ह्वयामसि ॥२॥
नमस्ते रुद्रास्यते नम प्रतिहितायै ।
नमो विसृज्यमनायै नमो निपतितायै ॥३॥

हे रोगिन ! जिस शूल-रोग रूप वाण को रुद्र ने तेरे ऊपर फेंका उस वाण के लिए हम निकालते हैं ॥ २ ॥ हे शूल रोगी प्राणी ! तेरे शरीर म जो नाडियाँ विद्यमान है उनमे हम शूल नाशिनी औषधि प्रवेश कराते है ॥ २ ॥ हे रोग रूप वाण से रुलाने वाले रुद्र ! तुमको मेरा प्रणाम है । तुमने जो वाण धनुष पर चढाया तथा छोडा उनको भी प्रणाम है । छूटे वाण के लक्ष्य पर गिरने पर भी हम प्रणाम करते है ॥३॥

९१ सूक्त

(ऋषि–भृग्वङ्गिरा । देवता–यक्ष्मनाशनम् आप । छन्द– अनुष्टुप्)

इम यवमष्टायोगं षड्योगेभिरचर्कृषु ।
तेना ते तन्वो रपोऽपाचीनमप व्याये ॥१॥
न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्य ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रप ॥२॥
आप इद वा उ भेषजीरापो अमीवचातनी ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३॥

यह औषधि मे काम लाने वाला जो छ अथवा आठ बैलो के हल द्वारा जोत कर उत्पन्न किया जाता है । इन यवो से रोग

के कारण भूत पाप को जड से निकालता हूँ ॥ १ ॥ जिस प्रकार सूर्य देव नीचे तपते हैं, वायु नीचे चलती है और गाय भी नीचे मुख करके दुहाती है, उसी प्रकार हे रोगी ! तेरा पाप भी अधोमुखी होवें ॥ २ ॥ औषधियाँ जल की विकार रूप मानी जाती है, इसलिये रोग के क्षय के लिये जल्दी सर्व श्रेष्ठ है । ससार की औषधि रूप जल्दी तेरे रोग का नाश कर ॥३॥

९२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता— वाजी । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवा. ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस ग्रा ते त्वष्टा पत्सु जव दधातु ॥१॥
जवस्ते अर्वन् निहतो गुहा य श्येने वात उत योऽचरत् परीत्त ।
तेन त्व वाजिन् बलवान् बलेनाजि जय समने पारयिष्णु ॥२॥
तनूष्टे वाजिन् तन्व नयन्ती वाममस्मभ्य धावतु शर्म तुभ्यम्
अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥३॥

हे अश्व ! तुम रथ मे जुडे हुए वायु रूप बनो । तुम अपने जाने के स्थान पर इन्द्र की अनुमति से जाओ । मरुद्गणो से युक्त हो और त्वष्टा तेरे पैरो को गति प्रदान करे ॥ १ ॥ हे अश्व ! वाज और वायु मे रखे हुए अपने असामान्य वेग के बल से तुम युद्ध को पार लगाओ ॥२॥ हे अश्व ! तुम वेगवान् हो । तेरी यदि युद्ध के मैदान मे सवार को लाकर विजय दिलावे और तुमको घाव आदि से बचा कर वेग प्रदान करे । तुम ग्राम, नगर आदि तक पहुँचने को धीमी गत से चलता हुआ निवास स्थान को प्राप्त करे ॥३॥

—※—

६३ सूक्त (दसवाँ अनुवाक)

(ऋषि-शन्तातिः । देवता-यमादयो मन्त्रोक्ता । छन्द-त्रिष्टुप्)
यमो मृत्युरघमारो निर्ऋ थो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजना. सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ।।१।।
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयंतु ।।२।।
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वध द् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ।।३।।

पाप युक्त दण्ड देने वाले यम, मारने वाली मृत्यु, अघभार, पिङ्गलवर्णी शर्व क्षेप्ता एवम् नील शिखण्ड देवगण पापियो के संहार के लिए भ्रमण करते रहते हैं, ये हमारे पुत्र-पौत्रादि को दु.ख न देवें ।। १ ।। सङ्कल्प द्वारा घृतादियुक्त यज्ञो द्वारा मैं शर्व, अस्म एवम् इनके धनी रुद्र और पहिले कहे गये मन्त्रो को नमस्कार करता हूँ ।। २ ।। हे मरुद्गण और ससार के देवगणो ! तुम पाप से युक्त साधनो से हमको रक्षा प्रदान करो । वरुण. मित्र, अग्नि और सोम हमे रक्षा प्रदान करें । वायु और पर्जन्य भी हम पर प्रेमासक्त हो ।।३।।

६४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा । देवता—सरस्वती । छन्द-अनुष्टुप् जगती)
सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ।।१।।
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि यातामनुवर्त्मान एत ।।२।।
ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं-सरस्वती ।।३।।

हे विरोधी मनुष्यो ! मैं तुम्हारे मन को एक करता हूँ। तुम्हारे विरोधी विचारो को दूर करता हूँ। तुम्हारे विरुद्ध कर्मों का दूर कर तुम्हे आपस मे एक रूपता प्रदान करता हूँ ॥ १ ॥ हे विरोधी मना वाले प्राणियो ! तुम्हारे मनो को अपने अनुकूल करता हूँ। मेरे कार्यों मे मन को लगाते हुए मेरे बताये मार्ग का अनुसरण करो ॥ २ ॥ द्यावा पृथ्वी मेरे समुख है। सरस्वती उनके मध्य मे विद्यमान है। मनोभिलाषा की पूर्ति हेतु इन्द्र और इन्द्राणि भी कार्यों को सम्पन्न करते है। हम इनकी कृपा से समृद्धि को प्राप्त करें ॥३॥

९५ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा । देवता—वनस्पति ।
(कुष्ठ) छन्द-अनुष्टुप्)

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवा कुष्ठमवन्वत ॥१॥
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवा. कुष्ठमवन्वत ॥२॥
गर्भो असयोषधीना गर्भो हिमवतामुत ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्येभ मे अगदं कृधि ॥३॥

यहाँ से तृतीय द्युलोक वासियो का बैठने का अश्वत्थ है। देवगणो ने वहाँ अमृत का वर्णन करने वाला दिव्यज्ञान प्राप्त किया ॥ १ ॥ स्वर्ग मे स्वर्ण बन्धन से चलने वाली नौका द्वारा उन्होंने अमृत के पुष्प कूट को प्राप्त किया ॥ २ ॥ हे अग्ने ! पाक वाली औषधिया मे तुम पाक रूप स्थित हो। तुम हिमवान् एवम् शीतल औषधियों म भी गर्भ रूप विद्यमान हो, अत तुम इस पुरुष को रोगों से मुक्त करो ॥३॥

—

९६ सूक्त

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा । देवता-वनस्पति ,सोम । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री ।)

या ओषधय सोमराज्ञीर्वह्वी शतविचक्षणा ।
बृहस्पति प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वहस ॥१॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादयो वरुण्या दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवनिल्बिषात् ॥२॥
यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपत. ।
सोमस्तानि स्वधया न पुनातु ॥३॥

अनेक प्रकार की ओषधिया मे सोम मुख्य है । जो रस वीर्य विपाक से सम्पन्न है । बृहस्पति द्वारा अनेक रोगो म प्रयुक्त हुई ओषधियाँ हमे सेवा-रूप पाप से मुक्त करें ॥ १ ॥ जल रूप ओषधि शाप से मुक्त करें । सभी पापा से मेरी रक्षा करने वाली होवे ॥ २ ॥ हमने मन के सकल्प विकल्पो द्वारा जो पाप किया, मन से ही जिस पाप को किया है इन पापा को सोम देव पितरो के लिये दी गई आहुतियो से नष्ट करें तथा हम पवित्र करें ॥३॥

९७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-देव , मित्रावरुणौ । छन्द-त्रिष्टुप जगती)

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभू सोमो अभिभूरिन्द्र ।
अभ्यह विश्वा पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इद हवि ॥१
स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्र मधुनेह पिन्वतम् ।
बाधेथा दूर निर्ऋति पराचै कृत चिदेन प्र मुमुक्तमस्मत् ॥२॥
इम वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्र सखायो अनु स रभध्वम् ।
ग्रामजित गोजित वज्रबाहु जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥३॥

हम विजय के इच्छुक हैं। हमारा यज्ञ शत्रुओं का क्षय करें। यज्ञ मे विद्यमान सोम और अग्नि देव शत्रुओं को तिरस्कृत करें। समस्त सेना को जीतने का अभिलाषी मैं हवि प्रदान करता हूँ ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! यह हवि तुमको तृप्त करे। तुम इस राजा को प्रजा सम्पन्न शक्ति से पूर्ण करो। पाप की मूल निर्ऋति को हमारे सामने से भगाओ। शत्रु पराजय रूपी पापों से हमें मुक्ति प्राप्त होवे ॥ २ ॥ हे सैनिको ! पराक्रमी राजा के साथ तुम भी पराक्रम प्रकट करो। इस ऐश्वर्य युक्त, शत्रु विजेता उसके गवादि धन को जीतने वाला-वाण के अभ्यस्त राजा के अनुगत रहते हुए संग्राम को तैयार होओ ॥३॥

९८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता— इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पङ्क्ति।)

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥२॥
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोसि।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥३॥

इन्द्र के समान जो पराक्रमी राजा इसकी सहायता को आये हैं, वे विजयी होवें। हे इन्द्र ! वीरकर्मी हम स्तुति के पात्र बनें। अत. तुम इस संग्राम में हमारे द्वारा सेवनीय हो ।।१।। हे इन्द्रवत् सम्पान्न राजन् ! तुम अन्य राजाओं से अत्यधिक अन्न वाले बनो। हे इन्द्र ! अपनी महिमा से शत्रु को तिरस्कृत करने वाले हो। हे राजन् ! प्रजाओं का पालन करते ए

चिरञ्जीव रहो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वोत्तरादि सभी दिशाओं के स्वामी कहलाते हो। तुम हमारे शत्रुओं का नाश करो। सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हारी है। तुम अभीष्टदाता हो अतः इस युद्ध के जीतने में हमको सहायता प्रदान करो ॥३॥

६६ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–इन्द्रः प्रभृति। छन्द–अनुष्टुप्, वृहती)

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे ।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥१॥
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दध्म. ॥२॥
परि दध्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनस मा कृणु स्वस्तये ॥३॥

हे इन्द्र। विस्तृत शरीर तथा समस्त धनों से सम्पन्न होने के कारण मैं तुम्हें युद्ध में पराजय से पूर्व ही बुलाता हूँ। तुम विजयी साधनों को जानने वाले शूरवीर हो ॥१॥ शत्रुओं के शस्त्र मार की रक्षा से हम इन्द्र को भुजाओं को चारों ओर रक्षार्थ धारण करते है ॥ २ ॥ हम आपकी भुजाओं को चारों तरफ रक्षा के निमित्त धारण करते हैं। हे सविता देव !. हे सोम ! युद्ध की विजय के लिये हमारे मन को पवित्र करो॥ ३॥

१०० सूक्त

(ऋषि–गरुत्मान्। देवता–वनस्पति। छन्द–अनुष्टुप्)

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥१॥
यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।
तेन देव प्रसूतेनेदं दूषयता विषम् ॥२॥

असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ॥३॥

समस्त जीवों को चेतनता देने वाले सूर्य स्थावर जङ्गम का विष दूर करने वाला पदार्थ प्रदान करें। इन्द्रादि देव आकाश और पृथ्वी हमको विष नाशक पदार्थ प्रदान करे। इन्द्रा, सरस्वती और भारती भी विश-नाशक पदार्थ प्रदान करें ॥ १ ॥ हे देवगण ! वाम्बी मिट्टी की निर्माता तुम्हारी उपजीकाओं ने जल रहित स्थान में भी जल का सिंचन का कार्य किया है। अतः उस जल से इस विष से मुक्त करो ॥ २ ॥ हे वाम्बी की मिट्टी ! तुम राक्षसों की पुत्री और देवगणों की भगिनी हो। आकाश एवम् धरातल से उत्पन्न हुई तुम स्थावर एवम् जङ्गम जीवों के विष को निशक्त करो ॥३॥

१०१ सूक्त

(ऋषि–अथर्वाङ्गिरा । देवता–ब्रह्मणस्पति । छन्द–अनुष्टुप्)
आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥१॥
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२॥
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥३॥

हे पुरुष ! तुम सेचन-योग्य बैल के समान कर्म वाले बनो दृढ़ प्राण वाले तथा विस्तीर्ण अवयवों से युक्त बनो। तुम्हारा प्रजनन अङ्ग पुष्टता पाता हुआ श्रेष्ठ पत्नि प्राप्त करें ॥ १ ॥ जिस जीवन-रस से युक्त प्राणी को वीर्य युक्त कहते हैं, उस रस द्वारा रोगी पुरुष को पोषित किया जाता है। हे ब्राह्मणस्पते !

इस रस द्वारा इस पुरुष के अङ्ग पुष्टता प्राप्त करे ॥ २ ॥ हे वीर्यकामी पुरुष ! तेरे लिये मैं मन्त्र शक्ति से धनुष पर चढ़ी माल प्रत्यञ्चावत् पुष्ट करता हूँ । अतः तुम प्रसन्न चित्त से सेचन-योग्य बैल के समान अपनी पत्नी के पास जाओ ॥३॥

१०२ सूक्त

(ऋषि--जमदग्नि (अभिसमनस्काम) । देवता--अश्विनौ । छन्द--अनुष्टुप ।)

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥१॥
आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥
आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३॥

हे अश्वियो ! शिक्षित घोडे के समान मेरी पत्नी मेरी इच्छानुसार चले और उसका मन मेरी तरफ आकर्षित हो ॥१॥ हे स्त्री ! मैं तेरे चित्त को आकर्षित करता हूँ । जिस प्रकार घोडे का मालिक खूंटे मे बँधी रस्सी को खोल कर अपनी तरफ खींचता है, वायु द्वारा उखाडा तिनका वायु मे चक्कर काटता है उसी प्रकार तुम मेरे मन मे ही रमती रहो ॥२॥ हे नारी ! मैं तेरे शरीर पर त्रिककुत पर्वत मे उत्पन्न नीलाजन मधूक, कूट और खस आदि से उबटन कर्म करता हूँ ॥३॥

१०३ सूक्त (ग्यारहवा अनुवाक)

(ऋषि उच्छोचन । देवता बृहस्पत्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द अनुष्टुप)

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् ।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥१॥

स परमान्त्समवमानथो स द्यामि मध्यमान् ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने स द्या त्वम् ॥२॥
अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने स द्या त्वम् ॥३॥

हे शत्रु सैन्यो ! बृहस्पति, सविता, अर्यमा और अश्विनीकुमार आदि देव तुम्हें इन फेंके हुए बन्धनों में डालें ॥१॥ मैं पास या दूर की शत्रु सैन्य को पाशों में बाँधता हूँ। मैं श्रेष्ठ और मध्यवर्ग सैन्य को भी पाशों में बाँधता हूँ। हे इन्द्र ! सेनापतियों को पृथक करो। हे अग्नि ! तुम शत्रुओं को बन्धन से मुक्त करो ॥२॥ इन दलों शत्रुओं को इन्द्र भगावें। ध्वजा उठाते युद्ध के लिये आते हुए दूर ही दिखाई देते हैं। हे अग्ने ! तुम इन्हें बाँध डालो ॥३॥

१०४ सूक्त

(ऋषि-प्रशोचन । देवता-इन्द्राग्नी, सोम, इन्द्रश्च । छन्द अनुष्टुप्)

आदानेन सदानेनामित्राना द्यामसि ।
अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदम् ॥१॥
इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।
अमित्रा येऽत्र न सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् ॥२॥
ऐनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ ।
इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्य कृणोतु नः ॥३॥

हम आदान तथा सदान पाशों में शत्रुओं को बाँधते हैं। उनकी प्राणवायु को मैं जीवन से पृथक करता हूँ ॥ १ ॥ मैंने इन पाशों को मन्त्र द्वारा सिद्ध कर लिया है। इन्द्र ने इनको तीक्ष्ण किया है। हे अग्ने ! हमारे इस युद्ध में शत्रुओं को बन्धन युक्त करो ॥ २ ॥ हमारी इन्द्रियों प्रसन्न चित्त हैं, इन्द्र

शत्रुओं को बाग डाल सोम और मरुद्गण भी हमारे शत्रुओं को बन्धन युक्त करें ॥३॥

१०५ सूक्त

(ऋषि–उन्मोचन । देवता–कासा । छन्द–अनुष्टुप)

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥१॥
यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥२॥
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३॥

जिस तरह दूर स्थित ज्ञात विषयों में मन तेजी से दौडता है, उसी प्रकार श्वास श्लेष्म रोग रूप कृत्ये ! तू मन के तेज वेग से दूर भाग जा ॥१॥ जैसे तीक्ष्ण बाण शीघ्रता से भूमि को भी चीर देता है। हे कास ! तू बाण से बिंधी हुई ऊबड खाबड प्रदेशों को प्राप्त हो ॥ २ ॥ सूर्य की किरणों के उच्चलोक में शीघ्र पहुँचने के समान हो तुम समुद्र के विविध प्रवाह वाले प्रदेश को शीघ्र प्राप्त होवो ॥३॥

१०६ सूक्त

(ऋषि–प्रमोचन । देवता–दूर्वा शाला । छन्द–अनुष्टुप्)

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणी ।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान ॥१॥
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥२॥
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥३॥

हे अग्ने ! तुम्हारे आगे पीछे जाने पर भी हमारे देश मे अच्छी घास उत्पन्न होवे तथा झरनो पर तैरती रहे। कमल से युक्त सरोवर होवे ॥ १ ॥ हमारा घर जलो से पूर्ण होवे। हमारे सरोवर जलो से युक्त हो। हे अग्ने ! अपनी लपेट को विमुखी करो ॥ २ ॥ हे शाले ! तुम हमको शीतहृदा बनो। हमारे द्वारा प्रार्थना करने पर अग्नि घर आदि को न जला पावें ॥३॥

१०७ सूक्त

(ऋषि—शन्ताति । देवता– विश्वजिद् । छन्द-अनुष्टुप)

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि ।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च न स्वम् ॥१॥
त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च न स्वम् ॥२॥
विश्वजिद् कल्याण्यै मा परि देहि ।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च न स्वम् ॥३॥
कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।
सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च न स्वम् ॥४॥

हे विश्वजीतदेव ! ससारका पालन करने वाले त्रायमाणा देव के आश्रय म हमको करो ! हे त्रायमाणे ! हमारे दुपाये पुत्र,पौत्र भृत्यादि तथा गवादि पशुओ की रक्षा करो ॥१॥ हे त्रायमाणे तुम मुझे विश्वजिद् को प्रदान करो। हे विश्वजित् ! हमारे दुपाय और चौपायो की रक्षा करो ॥ २ ॥ हे विश्वजित् ! मुझे कल्याण का प्राप्त कराओ। कल्याणी हमारे दुपाये तथा चौपायो की रक्षा करें ॥ ३ ॥ हे कल्याणी ! हमे सर्वविद् देव को प्राप्त कराओ। हे सर्वविद् ! हमारे दुपाये तथा चौपायो की रक्षा करो ॥ ४ ॥

१०८ सूक्त

(ऋषि-शौनक. देवता-मेधा; अग्नि. । छन्द-अनुष्टुप्; बृहती)

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभरश्वेभिरा गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥१॥
मेधामहं प्रथमा ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२॥
या मेधामृभवो विदुर्या मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधा या विदुस्ता मय्या वेशयामसि ॥३॥
यामृषयो भूतकृतो मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविन कृणु ॥४॥
मेधा साय मेधा प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥५॥

हे मेधा ! मनुष्य व देव तुमको श्रष्ठ मान कर पूजते हैं । तुम गौओ और घोडे सहित हमे प्राप्त होवो । सूर्यवत् सर्व व्यापिनी शक्ति के समान हमे प्राप्त होवो । तुम हमारी यज्ञाहुति से प्रसन्न होकर प्राप्त होवो ॥ १ ॥ बुद्धि की कामना वाला मैं, वेदयुक्त ब्रह्मण्वती, ब्रह्मसेविता, ब्रह्मजूता, अतीन्द्रियार्थ-दर्शी वशिष्ठ आदि से प्रशसित ऋषिष्टुता, आचरण के कारण, ब्रह्मचर्य के लिये, अध्ययन को ज्ञान मा और रक्षा के निमित्त इन्द्र आदि देवताओं का आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥ जिस बुद्धि को ऋतु, दानव, वशिष्ठादि ऋषि जानते हैं, उस बुद्धि को हम साधक मे विद्यमान करें ॥ ३ ॥ जिस बुद्धि को मन्त्रद्रष्टा ऋषि, कौशिक, और कश्यप आदि ज्ञानी जानते हैं हे अग्नि ! उससे हमे ज्ञानवान् करो ॥ ४ ॥ मैं प्रात , साय और मध्याह्न के समय मेधा की स्तुति करता हूँ । सूर्य की किरणो के

विद्यमान रहने तक हम उनको स्तुति द्वारा विद्यमान करते हैं ॥ ५ ॥

१०९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—पिप्पली । छन्द—अनुष्टुप)

पिप्पली क्षिप्रभेषज्यूतातिविद्धभेषजी ।
तां देवा समकल्पयन्निय जीवितवा अलम् ॥१॥
पिप्पल्य समवदन्तायतीर्जननादधि ।
य जीवमश्यनावमहै न स रिष्याति पूरुष ॥२॥
असुरास्त्वा न्य खनन् देवास्त्वोदवपन् पुन ।
वातीकृतस्य भेषजीमयो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३॥

पिप्पली क्षिप्र वात रोग की औषधि है अन्य औषधियो का तिरस्कार करने वाली है। अमृत मथन के वक्त देवताओ ने इसकी कल्पना की थी । यह पिप्पली राग नाशक तथा प्राण रक्षक है ॥ १ ॥ पिप्पली की जाति भेद वाली हस्ति पिप्पली ने आविष्कार से पहिले निश्चय किया कि हम मनुष्य के रोगो को नष्ट करेंगी ॥ २ ॥ हे पिप्पली ! वात रोग, और अक्षेपक रोग की तुम औषधि हो । पहिले दानवो ने तुझे गाढ दिया था किन्तु फिर देवताओ ने तुझे निकाल लिया ॥ ३ ॥

११० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-अग्नि । छन्द—पंक्ति त्रिष्टुप्)

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वा चाग्ने तन्व पिप्रायस्वास्मभ्य च सौभगमा यजस्व ॥१॥
ज्येष्ठघ्न्या जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येन नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२॥

व्याघ्रे ऽह्नयजनिष्ट वीरो रक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनोज्जनित्रीम् ॥३॥

अग्नि स्तुत्य है यह प्राचीन समय से यज्ञों में आहुति की जाती है। हे अग्ने ! तुम यज्ञ सम्पादक होने से नवीन होता का रूप धारण कर वेदी में तिष्ठो। तुम्हारे विराजमान होने से हमारा कल्याण होवे ॥ १ ॥ ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र बड़ों को मारने वाला व मूल नक्षत्र में पैदा हुआ कुटुम्ब को समाप्त करने वाला होता है। हे अग्ने ! पाप नक्षत्री इन बालक को यम के कुटुम्ब नाश वाले कार्य से अलग करो। सभी देव इसके पापों को शमन कर शतायु प्रदान करे ॥ २ ॥ यह बालक क्रूरवत् सिंह नक्षत्र मे पैदा हुआ है अत ज्म लेते ही उत्तम बल से युक्त हो। यह बड़े होने पर अप . माता-पिता की हिंसा करने वाला न होवे ॥ ३ ॥

१११ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्; अनुष्टप्)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥१॥
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽसति ॥२॥
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥४॥

हे अग्ने ! यह पुरुष पाप से प्रलाप करता है अतः इसे पाप रूपी पाश से मुक्ति प्रदान करो। यह अधिक हवि देता

है अत उन्माद रोग से मुक्ति प्रदान करो ॥ १ ॥ हे ग्रहग्रस्त पुरुष ! अग्नि तेरा उन्माद दूर करे। गृह विकार से तेरे मन को मैं रोग मुक्त करता हूँ ॥ २ ॥ यदि तुम देवकृत उपघात तथा ग्रहण से उन्माद को प्राप्त हुये हो तो मैं ज्ञानी तेरे पास आकर रोग मुक्ति की औषधि करता हूँ ॥ ३ ॥ हे उन्मादी पुरुष ! तुझ अप्सराओं ने उन्माद रहित करके लौटा दिया है। इन्द्र भग आदि देवों ने तुझ उन्माद रहित करके वापिस कर दिया है ॥ ४ ॥

११२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप)

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे॥१
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान्॥२
येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥३

हे अग्ने ! यह अपने बड़ों में से किसी की हत्या न करे। हे अग्ने ! शान्ति के उपायों के ज्ञाता तुम ग्रहण शील पिशाचों के बन्धन से मुक्त करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम पितर आदि के दोष से उत्पन्न पाश से मुक्त करो माता, पिता पुत्र, जिन परिवेदन रूपी पाशों में जकड़े हैं उनको उनसे मुक्त करो ॥२॥ हे देव ! समस्त अंगों से जकड़े पुरुष के पाशों को खोलो। तुम परिवेदन दोष को भ्रूण हत्या करने वाले और श्रोत्रिय के हिंसक में स्थित करो ॥ ३ ॥

---

११३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-पूषा । छन्द--त्रिष्टुप्; पंक्ति)

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥१॥
मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नोहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व॥२॥
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥३॥

देवो ने परिवित्त से होने वाले पाप को त्रित के मन में स्थित किया, त्रित ने इसे सूर्योदय के बाद उठने वाले मे विद्यमान किया। हे परिवित्त! तुमको जो पाप देवी प्राप्त हुई उसको मन्त्र द्वारा दूर कर ॥ १ ॥ हे परिवेदन से पैदा हुआ पाप! तुम परिवित्त का त्याग कर अग्नि व सूर्य के प्रकाश मे प्रविष्ट होवे। तुम धूम या कुहरे मे प्रवेश करो। हे पाप! तुम नदियो के फेन मे विलुप्त हो जाओ ॥ २ ॥ त्रित का पाप बारह स्थानो मे विद्यमान है। वही पाप मनुष्यो मे प्रविष्ट हो जाता है। हे पुरुष! यदि तुम पिशाची से प्रभावित हुये हो तो पूर्व वार्णो देव उसे मन्त्र से दूर करें ॥ ३ ॥

११४ सूक्त (बारहवाँ अनुवाक)

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-विश्वेदेवा. । छन्द-अनुष्टुप्;)

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥१॥
ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥२॥

मेदस्वता यजमाना· स्रुचाज्यानि जुह्वत· ।
अकामा विश्वे वो देवा· शिक्ष·तो नोप शेकिम ॥३॥

हे देव ! हे अग्नि ! देवताओं को रुष्ट करने वाले जिस पाप को हम इन्द्रियों के उन्माद से कर बैठे हैं उसे यज्ञ और यज्ञात्मक साधनों से समाप्त करो ॥ १ ॥ हे अदिति पुत्रो ! यज्ञात्मक सत्य और परब्रह्म द्वारा कर्म घातक पाप से मुक्त करो । जिस पाप से हम यज्ञ नहीं कर पाते उससे तुम यज्ञ करने में समर्थ होते हुये हमें बचाओ । ॥ २ ॥ हे विश्व देवो ! जिस पाप से हम घृत द्वारा यज्ञ करने की इच्छा होने पर भी नहीं कर पाते हैं उसस हमें मुक्त करो ॥ ३ ॥

११५ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-अनुष्टुप्)

यद् विद्वासो यद्विद्वास एनासि चकृमा वयम् ।
यूय नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवा सजोषस ॥१॥
यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूत मा तस्माद् भव्य च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥२॥
द्रुपदादिव मुमुचान स्विन्न· स्नात्वा मलादिव ।
पूत पवित्रणेवाज्य विश्वे शुम्भन्तु मैनस ॥३॥

हे विश्वदेवो ! तुम हमसे प्रम करो । हमारे ज्ञान तथा अज्ञान स किय गये पाप को शान्त करो ॥ १ ॥ मैंने सुप्त अथवा असुप्त अवस्था म जिन पापों को प्रिय जान कर किया है उससे मुझ वर्तमान व भविष्य म बन्धन रहित करो ॥ २ ॥ काठ के बन्धन पर छूटने वत में शुद्ध होऊँ । जिस प्रकार छननी आदि स घृत शुद्ध किया जाता है वैस ही देव गण मुझ शुद्ध करें ॥ ३ ॥

११६ सूक्त

(ऋषि-जाटिकायन देवता-विवस्वान् । छन्द-जगती त्रिष्टुप्)

यद् याम चक्रुर्निखनन्तो अग्र कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥ १ ॥
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषित न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥ २ ॥
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यवन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ।३।

कृषको विद्याविहीन व विचारशून्य होने के कारण भूमि को खोदने सम्बन्धी यम कार्य किया, उसे वे यथावत नही जानते। उनकी शान्ति के लिये घृत, मधु तेल आदि को न्यूनाधिक परिमाण मे हवि रूप से देता हूं। यह यज्ञ का अन्न मधुर एवम् उपभोग के योग्य बने ॥ १ ॥ सूर्य पुत्र यम अपने लिये हविर्भाग करें तथा हमे क्षीर घृत आदि से मुक्त करें। हमारा माता पिता सम्बन्धी अपराध शान्त होवे ॥ २ ॥ यह पाप माता, या पिता, भाई अथवा किसी सम्बन्धी या पुत्र से प्राप्त हुआ होवे तो सभी पाप से सम्बन्धित व्यक्तियो का पाप शान्त होवे ॥ ३ ॥

११७ सूक्त

(ऋषि-कौशिक (अनृणकाम) । देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप्)

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥१॥
इहैव सन्त प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्यं यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥ २ ॥

अनृणा अस्मिन्ननृणः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयाना पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।३

लौटाने योग्य ऋण जिसे न लौटा सका ऐसा मैं स्वय हूँ । इससे मुझे यमराज के वश रहना पडेगा । हे अग्ने ! तुम ऋण जन्म पारलौकिक बन्धनो से मुक्त करने मे समर्थ हो अत मुझे मुक्त करो ॥ १ ॥ इस ससार निवास करते हुये ही वम इसे धनिक को लौटाते हैं । जिस जौ आदि को मैंने ऋण लेकर खाया उससे हे अग्ने ! मुझे उऋण करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी दया से हम लौकिक व पारलौकिक ऋणो से इस जन्म मे ही मुक्ति प्राप्त करें । मरने पर स्वर्गादि मे ऋण युक्त न हो । ऋण मुक्त होकर हम नाकपृष्ठ, देवयान, मार्ग, और पितृयान आदि मार्गों मे हम ऋण मुक्त होकर प्रवेश करें ॥ ३ ॥

११८ सूक्त

(ऋषि—कौशिक । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्)

यद्धस्ताभ्या चकृम किल्विषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥१॥
उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्विषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्त न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥२॥
यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि य याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥ ३ ॥

हाथ-पाँव आदि इन्द्रियों से उत्पन्न हुये पाप तथा भोग-लिप्सा के लिये जो ऋण लिया, उस ऋण को अप्सरायें ऋण देने वाले को चुका दें ॥ १ ॥ हे उग्रपश्या और राष्ट्रभृत अप्सराओ ! विषयों से हमारे पाप उत्पन्न हुये हैं । ऋण युक्त पाप को समाप्त करो ताकि यमलोक मे ऋणदाता हमको दु ख

न दे सकें ॥ २ ॥ जिस वस्त्र, सुवर्ण, धान्यादि के लिये मैं ऋण ले रहा हूँ। हे देवगण ! मे वहाँ से सफल होकर आऊं। वे मुझसे विरुद्ध न हो। हे अप्सराओ ! मेरी बातो पर गौर करो ॥ ३ ॥

११६ सूक्त

(ऋषि–कौशिकः। देवता–वैश्वानरोऽग्निः। छन्द–त्रिष्टुप्)

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१॥
वैश्वानराय प्रति वेदयामि यदृ्णं सगरो देवतासु।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥२॥
वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् सगरमभिधावाम्याशाम्।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥३॥

मैं ऋण को न चुकाता हुआ भी चुकाने की बात कहता रहा हूँ। सभी को कल्याणकारी अग्नि मुझे श्रेष्ठ गति प्रदान करे ॥ १ ॥ मैं वैश्वानर अग्नि को लौकिक व दैविक ऋण को पूर्ण करने वाली प्रतिज्ञाओ को अर्पित करता हूँ। वे सब ऋणो से मुक्ति के रास्ता को जानते है हम ऋण बन्धनो से छूटकर स्वर्ग सुख प्राप्त करें ॥ २ ॥ मैं यज्ञ करूंगा, दान करूंगा, वैश्वानर अग्नि मुझे शुद्धता प्रदान करे। मैं ऋण चुकाने और देवताओ की कामना करता रहा हूँ। मैं यज्ञादि ऋण को अभी दूर नही कर सका हूँ। मेरे अज्ञान रूपी झूठ से जो पाप उत्पन्न हुये उन्हे मैं दूर करता हूँ ॥ ३ ॥

---

१२० सूक्त

(ऋषि—कौशिक. देवता—अन्तरिक्षादयो मन्त्रोक्ता. । छन्द-जगती, पंक्ति)

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो न अग्निरुद्भिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ।१।
भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या न. ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ।।२
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अंगैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥ ३ ॥

अन्तरिक्ष, पृथ्वी व द्युलोक के प्राणियो की हिंसा, माता-पिता के प्रतिकूल आचरण रूपी हिंसा को गार्हपत्य अग्नि प्रसन्न होकर शान्त करे और उत्तम गति प्रदान करे ॥ १ ॥ पृथ्वी अदिति देवमाता हमारी मातृवत है । आकाश भाईवत् है । ये सब हमे पापो से मुक्त करें । द्यौ हमारे लिये पितृवत है वह हमे ऋण ग्रहण के दोष से मुक्त करे ॥ २ ॥ सुन्दर मन युक्त, यज्ञादि के कर्त्ता पुरुष, दुःख रहित, सुख का अनुभवी स्वर्ग लोक मे वास करते हैं । हम भी रोग रहित होकर उत्तम गति को पाकर उत्तम लोको के वासी स्वजनो को देखे ॥ ३ ॥

१२१ सूक्त

(ऋषि-कौशिकः । देवता-अग्नादयो मन्त्रोक्ता. । छन्द-त्रिष्टुप् अनिष्टुप्)

विषाणा पाशान् विष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं निः ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥
यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ।२।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥३॥
वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्याइव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वां अनु क्षिय ॥ ४ ॥

हे निर्ऋति देवी ! हे वरुण देव ! तुम उत्तम, मध्यम व अधम मरणात्मक पाशों से मुक्त करो । बुरे स्वप्न से उत्पन्न पाप से भी मुक्त करो और स्वर्ग लोक को प्रदान करो ॥ १ ॥ हे पुरुष ! तू काष्ठ, रस्सी, भूमि गड्ढे आदि के अथवा राजज्ञा के पाश से मुक्त होता है, तुझे गार्हपत्य अग्नि पार लगाते हुये स्वर्ग प्रदान करे ॥ २ ॥ यह पुरुष संताप युक्त वेदी से मुक्त होवे । विचृत नामक दो नक्षत्र गण इसे मृत्यु रोग से मुक्त करें ॥ ३ ॥ हे बन्धनाभिमानी देव ! बन्धन पीड़ित पुरुष को स्थान प्रदान करो, और बन्धन से मुक्त करो । माता से उत्पन्न हुये शिशु के समान सभी मार्गों में विचरण करो ॥ ४ ॥

१२२ सूक्त

[ऋषि—भृगु । देवता-विश्वकर्मा । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती]

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु स तरेम् ॥१॥
ततं तन्तुम न्वेके तरन्ति येषा दत्त पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥२॥
अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वा पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेयाम् ॥३॥
यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥४॥

शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ।५

हे विश्वकर्मा ! तुम सर्व प्रथम पैदा हुये हो। मैं तुम्हार महिमा का ज्ञाता अपनी रक्षा के लिये हविरन्न को तुम्हे प्रदान करता हूँ ।१। ऋणी पुरुष के पश्चात् पुत्र पौत्रादि ऋण से तर जा.. हैं । जिस ऋणी का पिता से चला आया ऋण पुत्र पौत्रादि द्वारा चुकाये जाने पर सभी तिर जाते हैं। जिनके कुल मे सन्तान नही होती वे ऋण को चुकाने की तीव्र लालसा से ही तिर जाते हैं ॥ २ ॥ हे दम्पति ! परलोक के लिये अच्छे कार्य करो। तुम ब्राह्मण के देने वाले पक्वान्न तथा हवि के अन्न की रक्षा करो ॥ ३ ॥ मैं देवगण की ओर गतिमान महान यज्ञ मे मन द्वारा प्रविष्ट होता हुआ उसी मे स्थित होता हूँ । हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से हम वृद्धावस्था इस लोक मे तथा मरने पर शोक रहित स्वर्ग प्राप्त करें ॥ ४ ॥ मैं यज्ञादि जलो को मैं ऋत्विजो के हाथ धोने के लिये डालता हूँ । मरुतो सहित इन्द्र मेरे मन की कामना को प्रदान करो ॥ ५ ॥

१२३ सूक्त

(ऋषि—भृगु । देवता—विश्वेदेवा । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

एत सधस्था परि वो ददामि य शेवधिमावहाज्जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति त स्म जानीत परमे व्योमन ॥ १ ॥
जानीत स्मैन परमे व्योमन् देवा. सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमान॰ स्वस्तोष्टापूर्त स्म कृणुताविरस्मै ॥ २ ॥
देवा पितर॰ पितरो देवा । यो श्रस्मि सो अस्मि ॥ ३ ॥
स पचामि स ददामि स यजे स दत्तामा यूयम् ॥ ४ ॥
नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु ।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्स देव सुमना भव ॥ ५ ॥

हे देव ! स्वर्ग मे तुम यजमान के साथ रहने वाले हो। मैं तुम्हे हवि को देता अग्नि द्वारा तुम्हें प्रदान करता हूँ। इस हवि के बाद यजमान कुशलता के साथ स्वर्ग मे वास करेगा। हवि तुम इस यजमान को भूल मत जाना ॥ १ ॥ हे देवगणो ! तुम स्वर्ग मे इस यजमान को निश्चित स्थान कर देना। हवि देने के बाद वह कुशलता के साथ स्वर्ग मे प्रवेश करेगा ॥ २ ॥ वसु रुद्र, और आदित्य मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह रूप हैं। मैं पाक यज्ञ एवम् दानादि कर्मो को सम्पन्न करता हूँ। मैं पुत्रादि से होने वाले दान आदि पुण्य कर्म से रहित नहीं होऊँ ॥ ३-४ ॥ हे सोम ! तुम हमारे अपराधो को भूल जाओ तथा सुख प्रदान करो। हमारे कर्म स्वर्ग मे हमे फल प्रदान करे। हे स्वामिन् ! तुम सुन्दर मन से युक्त रहो ॥ ५॥

१२४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—दिव्या आप । छन्द—त्रिष्टुप)

दिवो नु मा बृहतो अन्तरिक्षादपा स्तोको अभ्य पप्तद् रसेन।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥१॥
यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फल तद् यद्यान्तरिक्षात् स उ वायुरेव।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥२॥
अभ्यञ्जन सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्य वर्चस्तदु पूत्रिममेव।
सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥३॥

हे अग्ने ! आकाश से प्रक्षालन रूप मेरे शरीर पर गिरी जल बूंद से मैं अमृत से युक्त होता हूँ ॥ १ ॥ वृक्ष के अगले भाग से गिरी वर्षा की वह एक बूद वृक्ष फल के समान है। अगर ये बूद आकाश से गिरे तो वायुफल है। यह जल बूद शरीर का प्रक्षालन करती हुई पाप देव को हमसे दूर करें ॥२॥

यह वर्षा बूंद उबटन या साधन है। यह तेल, चन्दनादि, हमारी सम्पन्नता और सुवर्णालंकार आदि का धन है। वर्षा जल पवित्रता प्रदान करता है। इस जल के पवित्र स्पर्श के कारण भूत पाप देव और शत्रु हमको आक्रमणकारी न होवें ॥ ३ ॥

१२५ सूक्त (तेरहवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वनस्पति. । छन्द-त्रिष्टुप्; जगती)

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥१॥
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ।२।
इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥३॥

हे वृक्ष निर्मित रथ तुम दृढ बनो। तुम शत्रुओं से बचाने के लिये मित्र रूप हो। तुम चामबन्धनों से युक्त वीरों से घिरे हुये युद्ध योग्य बनो। तेरे पर आरोहण वाला पुरुष शत्रु सैन्य, स्वर्ण-धन एवम् राज्य पर विजय को पावे ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी उनका बल पाया है। वर्षा रूपी जल से वृद्धि को प्राप्त हुई वनस्पतियों के काष्ठ रूप बल का ही यह रथ है। चर्म रस्सियों से बँधा रथ इन्द्र के आयुधवत् तीव्र वेगधारी होवे। इस रथ की घृत युक्त हव्य पदार्थ से सेवा करनी चाहिये ॥२॥ हे रथ! तुम इन्द्र के पराक्रम हो, मरुद्गण के बल हो, मित्र के तुम गर्भ रूप हो, वरुण के तुम अवयव हो, अत. तुम हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥ ३ ॥

—:o:—

१२६ सूक्त

(ऋषि -अथर्वा । देवता- दुन्दुभि । छन्द—त्रिष्टुप)

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वता विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥१॥
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥२॥
प्रामूं जयाभीमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३॥

हे दुन्दुभि ! आकाश एवम् पृथ्वी को अपनी आवाज से पूर्ण कर दे । अनेक देशो के प्राणी तेरी मधुर आवाज को श्रवण करें। तुम इन्द्र तथा मरुतो के साथ हमारे शत्रुओं को दूर कर ॥ १ ॥ हे दुन्दुभे ! तुम शत्रुओं के रथ, घोडे, हाथी, सवार आदि को हराकर आर्तनाद से युक्त होवो । तुम हमे रण भूमि में पहुँचाओ । तुम शत्रुओं को कण कटु आवाज द्वारा दूर भगाओ । इन्द्र की मुष्टिकावत् दृढ बनो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! उस शत्रु को जीतो । हमारे भट शत्रुओं को जीतें । हमारे सेनापति, मन्त्री तथा राजा रथारूढ होकर शत्रु पर विजय प्राप्त करें ॥ ३ ॥

१२७ सूक्त

(ऋषि--भृग्वङ्गिरा । देवता--वनस्पति , यक्ष्मनाशनम्
छन्द अनुष्टुप्, जगती)

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥१॥
यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥२॥
यो अङ्गयो यः कर्ण्यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।

वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३॥

हे पलाश ! तुम विसर्पक, विद्रधि, वलक्षयी कास, श्वास वलास आदि रोगो को दूर करने मे समर्थ है। तुम विसर्प युक्त दूषित त्वचा और मेद को समाप्त करो ॥ १ ॥ हे वलास रोग ! तेरे विसर्पक आदि अण्डकोषो के पास और वगलो मे हुआ करते हैं। मैं तेरी औषधि जानता हूँ। चीपुद्रु वृक्ष तुझे जड सहित नष्ट करने वाला है ॥ २ ॥ नाडी मुख से समस्त शरीर मे व्यापने वाला विसर्पक हाथ, पैर, नाक, आंख आदि मे भी हो जाता है। इसे तथा विद्रधि रोग यक्ष्मा आदि को भी मैं नष्ट कर देता हूँ ॥ ३ ॥

१२८ सूक्त

(ऋषि-अगिरा: । देवता—शकधूम., सोम: । छन्द-अनुष्टुप्)

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१॥
भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२॥
अहो रात्राभ्यां नक्षत्रेभ्याः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥३॥
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४॥

नक्षत्रो ने शकधूम नाम की अग्नि को अपना राजा चन्द्रमा वनाया। चूँकि इन्होंने उसको नक्षत्र राज्य देना स्वीकार किया था ॥१॥ प्रात.काल, सायकाल एवम् मध्याह्न काल तथा रात्रि भी हमको कल्याणकारी होवे ॥ २ ॥ हे शकधूम !

हे नक्षत्र मण्डल के राजन् ! रात्रि दिवस, अश्विनी आदि नक्षत्र और दिन-रात में भेद करने वाले सूर्य चन्द्र से तुम हमारे समय को मङ्गलकारी कराओ ॥ ३ ॥ हे शकधूम ! हे सोम ! तुमने सायंकाल, रात्रि और दिन में हमारा कल्याण-कार्य किया है, अतः हम तुमको नमस्कार करते हैं ॥४॥

१२९ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-भग। छन्द-अनुष्टुप्।)

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना ।
कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥१॥
येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह ।
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥२॥
यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः ।
तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥३॥

भग देवता मुझे सौभाग्य प्रदान करें। इन्द्र को प्रसन्न कर भाग्यवान् बनूं। हमारे शत्रु नीच गति प्राप्त करें॥ १ ॥ हे औषधे ! जिस भग के तेज से तुम वृक्षों को तिरस्कृत करती हो, उससे मुझे सौभाग्य प्रदान करो। हमारे शत्रु दूर ही रहते हुए नीच गति प्राप्त करें॥ २ ॥ नेत्र हीन भग आगे जाने में समर्थ नहीं और गये प्रदेश में बारम्बार चक्कर काटता है। जिससे मार्ग के वृक्षों में ही रुकता रहता है। भगदेव से मुझे भाग्यशाली बना। मेरे शत्रु विमुखता रखते हुए नीच गति प्राप्त करें॥३॥

१३० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-स्मर। छन्द-बृहती, अनुष्टुप।)

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥

असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।
देवा प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥
यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन ।
देवा प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥३॥
उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥४॥

रथ से जीतने वाली और जीती गई अप्सराओं का यह कार्य है । हे देव ! इस कार्य का बुरा प्रभाव मेरे पर न पडे ।१। यह मेरी याद करें । मेरा प्रिय मुझ याद करे । हे देवो ! इस काम को दूर करो ॥ २ ॥ जैसे मेरी यादगार यह करे, मैं वैसे इसकी न करूँ । हे देवो ! इस काम को दूर करो ॥३॥ हे मरुतो ! उन्मत्त करो, हे अन्तरिक्ष ! उन्मत्त करो, हे अग्नि ! उन्मत्त करो । वह मेरे पर कोई असर न कर सके ॥४॥

१३१ सूक्त

(ऋषि अथर्वा । देवता—स्मर । छन्द—अनुष्टुप्)

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो नि तिरामि ते ।
देवा प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१॥
अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नम ।
देवा प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२॥
यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् ।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥३॥

मैं सिर से पैर तक की सभी व्याधियों को दूर करता हूँ । हे देवो ! काम को दूर करो वह मुझे प्रभावित न करे ॥१॥ हे अनुमति इसको तुम अनुकूल मान, हे संकल्प ! मेरा नमस्कार स्वीकार करे । हे देवो । कामको दूर करो । वह मुझे प्रभावित करने में असमर्थ होवें ॥ २ ॥ जो तीन योजन भागता है अथवा घोड़े

से पाच योजन भागता है, वहा से दुबारा लौटता है, हम पुत्रो के आप पिता हो ॥३॥

१३२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—स्मर । छन्द—बृहती, अनुष्टुप् ।)

य देवा स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्त शोशुचान सहाध्या ।
त ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥१॥
य विश्वे देवा स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्त शोशुचानं सहाध्या ।
त ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥२॥
यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्वन्त शोशुचान सहाध्या ।
त ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥३॥
यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्त शोशुचानं सहाध्या ।
त ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥४॥
य मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्त शोशुचानं सहाध्या ।
त ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥५॥

सभी देवा ने कामदेव को, प्राणियो को कामार्त्त करने को जल से अभिषिक्त किया । वरुण धारण शक्ति से मैं काम को सतापित करता हूँ ॥ १ ॥ विश्वदेवो ने जिस काम देव को जल मे अभिषिक्त किया । हे योषित् ! वरुण की शक्ति से उसे मैं सन्तप्त करता हूँ ॥ २ ॥ मानसिक पीडा से रह कर इन्द्राणि ने जिस कामदेव को अभिषिक्त किया, उसको मैं सतप्त करने मे समर्थ हूँ ॥ ३ ॥ जिस काम का इन्द्राणि द्वारा अभिषेक किया गया उसे मैं सतप्त करता हूँ ॥ ४ ॥ मित्रावरुण ने जिस कामदेव का अभिषेक किया उसे मैं सतप्त करने मे समर्थ हूँ ॥५॥

---

१३३ सूक्त

ऋषि-अगस्त्यः । देवता-मेखला । छन्द-त्रिष्टुप्; गायत्री,अनुष्टुप्)

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः पारमिच्छात् स उ नो वि मुञ्चात् ॥१
आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥२॥
मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥३॥
श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥४॥
यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५॥

शत्रु हिंसा के लिये देवो ने इस मेखला को यहाँ विद्यमान किया था तथा जो देवगण दूसरों को भी मेखला स्थापित करते हैं, वे अभिचार कर्म मे हमे भी मेखला युक्त करते हैं। हमारे देव हमारी इच्छा को पूर्ण करें तथा शत्रुओं का संहार कर हमे शत्रु-रहित करें ॥ १ ॥ हे आहुति सिद्ध मेखले ! तुम विश्वामित्र आदि की अस्त्र रूपा हो। तुम शत्रु घातक और क्षीर आदि का दान करने वाली हो ॥ २ ॥ तपोविशेष दीक्षादि कर्मों से युक्त मैं ब्रह्मचारी हूँ। मेरे अभिचार से शत्रु नाश को प्राप्त होऊँ अतः मैं वध योग्य शत्रु को मन्त्र से सिद्ध मेखला द्वारा जकड़ता हूँ ॥३॥ आस्तिक्य बुद्धि का नाम श्रद्धा , श्रद्धा की पुत्री ब्रह्मा जी से उत्पन्न हुई मेखला है। हे मेखला ! तुम भविष्य की बात सोचने की बुद्धि दें। स्मरण शक्ति दे,तथा आत्मबल प्रदान कर ॥ ४ ॥ हे मेखले। तुमको ऋषियों द्वारा

बाँधा गया था। तुम अभिचार के दोषों को नष्ट कर मुझे चिरञ्जीवी बना ॥५॥

१३४ सूक्त

(ऋषि-शुक्रः । देवता-वज्रः । छन्द-त्रिष्टुप्; गायत्री; अनुष्टुप्)

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥
अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत् ।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥ २ ॥
यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥ ३ ॥

इन्द्र के वज्रवत् दण्ड शत्रुओ को रोकने मे समर्थ होवे । शत्रु के राज्य को छिन्न-भिन्न करे। इन्द्र के समान ही यह शत्रु की नसो को काटे ॥ १ ॥ ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा शत्रु जमीन पर गिर कर दुवारा न उठे।।२॥ हे वज्र ! तुम हानि पहुँचाने वाले शत्रु को ढूँढ। उसे मार और सीमान्त पर गिराता हुआ समाप्त कर डाल ॥ ३ ॥

१३५ सूक्त

(ऋषि-शुक्रः । देवता—वज्रः । छन्द—अनुष्टुप्)

यदश्नामि वलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे ।
स्कन्धा नमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥
यत् पिवामि सं पिवामि समुद्र इव संपिबः ।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिवामो अमुं वयम् ॥ २ ॥
यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥ ३ ॥

जिस तरह से इन्द्र ने वृत्रासुर के कन्धों को काटा उसी

प्रकार मैं भी शत्रुओं के कन्धों को काटने के लिये भोजन से बल और बल से शस्त्र धारण करता हूँ ॥ १ ॥ मेरे जल पीने से शत्रु को वश में कर उसके रस को ग्रहण करने का लाभ होता है। इसके प्राणापान, व्यान, चक्षु आदि के रस को ग्रहण करता भया शत्रु को ही निगलता हूँ ॥ २ ॥ मैं जो निगलता हूँ वह शत्रु के रस को ही निगलता हूँ। मैं उसके प्राणापान, व्यान, चक्षु आदि रूप रस को निगलता हुआ अन्त में शत्रु को ही भक्षण कर जाता हूँ ॥ ३ ॥

१३६ सक्त

(ऋषि-वीतहव्य: (केशवर्धनकाम) । देवता-नितत्नी वनस्पति ।
छन्द—अनुष्टुप; वृहती)

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥ १ ॥
दृंह प्रत्नाञ्जनयाजाताञ्जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥ २ ॥
यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।
इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥ ३ ॥

हे औषधि ! हे काचमाची ! तुम पृथ्वी से पैदा हो, तुम तिरछी फैलती हो। हम तेरे को अपने केशों को दृढ करने के लिये खोदते हैं ॥ १ ॥ हे औषधे ! केशों को दृढ करती हुई केश न होने के स्थान पर केशों को उत्पन्न करने वाली बनो। हे केशों की बढ़ोतरी के कामी पुरुष ! मैं तुम्हारे गिरे अथवा मूल से काटे गये केशों के रोग को औषधि द्वारा नष्ट करता हूँ ॥२-३॥

१३७ सूक्त

(ऋषि-वीतहव्यः (केशवर्धनकामः) । देवता-नितत्नी वनस्पति. ।
छन्द-अनुष्टुप्)

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।

तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥
अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असितः परि ॥ २ ॥
दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥

महर्षि जमदग्नि के पास हमेशा अग्नि जलती रहती है। जमदग्नि ने अपनी पुत्री के केशो की वृद्धि के लिये जिसको खोदा तथा उसको कृष्णकेश ऋषि के घर से वीतहव्य नामक ऋषि ने ग्रहण किया ॥ १ ॥ हे केशो की बढोतरी की लालसा वाले! पहिले तेरे केश उंगलियो से नापे जाने योग्य तथा अब हाथ से नापे जाने योग्य है। तेरे केश नरकट तृणवत् लम्बे होवे ॥२॥ हे औषधे! केशो के मूल भाग को दृढ तथा मध्य भाग को बढाती हुई अग्र भाग को अधिक बढाओ। नदी किनारे नरकटो के बढने के समान शिरके बाल वृद्धि को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

१३८ सूक्त

(ऋषि--अथर्वा। देवता-वनस्पति। छन्द—अनष्टुप् पंक्ति)

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रु तास्योषधे ।
इम मे अद्य पूरुषं क्लीवमोपशिनं कृधि ॥ १ ॥
क्लीवं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो गावभ्यामुभे भिनत्वाण्ड्यौ ॥ २ ॥
क्लीव क्लीवं त्वाकर वध्रे वध्रि त्वाकरमनसारसं त्वाकरम्
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्ब चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥
ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।
ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ४ ॥
यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।
एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ५ ॥

हे लताओ मे श्रेष्ठ औषधि ! तुम अक्षयवीर्या हो । मेरे शत्रु को निशक्त कर ॥ १ ॥ हे औषधे ! तुम शत्रु को पुन्सत्व रहित तथा स्त्रीत्वता प्रदान कर उसके केशो को सम्पन्न करो । तत्पश्चात् इन्द्र वज्र से उसके प्रजननात्मक दोनो अण्डकोषो को नष्ट कर दे ॥ २ ॥ हे वैरी ! तुझे मैंने पुन्सत्वहीन कर दिया है । तुम वीर्य से शून्य हो । इसनपुन्सक शत्रु के शिर पर हम केश रखते हुये स्त्री आभूषण कुम्ब को पहनाते हैं ॥ ३ ॥ तेरी वीर्य वाहक नाडियो के आश्रयभूत अण्डकोषो की दोनो नाडियो को कुचलता हूँ ॥ ४ ॥ नरकट को चढ़ाई के लिये पत्थर पर कूटने के समान हम तेरे अण्डकोषो पर स्थित शिश्न को पत्थर से कुचलते हैं ॥ ५ ॥

१३९ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-वनस्पति, । छन्द-जगती अनुष्टुप्)

न्यस्तिका ररोहिथ सुभगकन्रणी मम ।
शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्निताना ।
तया सहस्रपर्ण्या हृदय शोषयामि ते ॥१॥
शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् ।
अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥२॥
संवननी समुष्पला बभ्रू कल्याणि स नुद ।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥३॥
यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम् ।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥४॥
यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुन. ।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥५॥

हे सहस्रपर्णी ! दुर्भाग्य लक्षणो को दूर कर उदय होवो । तुम मुझे सौभाग्य दायिनी तथा सैकडों शाखाओ से युक्त हो ।

तुम नीचे को तेतीस साखायें लटकाती हो ॥ १ ॥ सहस्त्रपर्णी के असख्य पत्तो द्वारा मैं तुझे सतप्त करता हूँ। मुझे काम से शुष्क बना तुम शुष्क मुखवाली होकर चलो ॥ २ ॥ हे औषधे। तुम पीतवर्णा व सौभाग्य दायिनी हो। हम फलो की आहुति देते हैं अत: तुम उसे मेरे से अभिन्न अग बनावो ॥ ३ ॥ प्यासे मनुष्य के सूखने समान काम के प्रभाव से स्त्री पुरुष वियोग-रूपी अग्नि से सूखते हैं ॥ ४ ॥ सांप को काट कर फिर न्यौला द्वारा ही जोडने के समान तुम वियोगी स्त्री पुरुष को मिलाओ ॥ ५ ॥

१४० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-ब्रह्मणस्पति, दन्ताः। छन्द-बृहती, त्रिष्टुप् पंक्ति)

यौ व्याघ्रावव रूढौ जिघत्संतः पितरं मातरं च।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेद.॥ १ ॥
व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च२
उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ।
अन्यत्र वां घोरं तन्वः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ।३

ऊपर की पंक्ति मे नीचे मुख से उत्पन्न होने वाली दन्त पक्ति व्याघ्रवत् माता पिता के भक्षण के हिंसक माने जाते हैं। हे अग्ने! तुम उनको अहिंसक बनाओ ॥ १ ॥ हे ऊपरी पक्ति के दांतो! तुम उडद, जौ, धान एवम् तिल का सेवन करो। व्रीहियवादिका भाग तुम्हारी तृप्ति को विद्यमान है। अत. तुम तृप्त होकर बालक के माँ-बाप का भक्षण मत करो ॥ २ ॥ ये दांत मित्रवत सुखदायी हो। हे दांतो! बालक से माता

पिता के भक्षण का दोष दूर हो। तुम इसके माँ बाप का भक्षण कार्य मत करो ॥ ३ ॥

१४१ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—अश्विनौ छन्द—अनुष्टुप्)

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥१॥
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२॥
यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३ ॥

गौओं के समूह को वायु प्राप्त करावे, पोषण के लिये इन गौओं को त्वष्टा धारण करे। इन्द्र द्वारा प्रिय वचन इनको सुनाये जावें, रुद्र इनको दोषों से मुक्ति प्रदान करे ॥ १ ॥ हे गौ पालक ! स्वधिति से बछड़े के कानों पर नर मादा का चिन्ह बनाओ। अश्विनी कुमार भी ऐसा चिन्ह बनावें। यह चिन्ह सन्तानोत्पत्ति की वृद्धि दायक होवे ॥२॥ देव दानव और मनुष्यों ने जो स्वधिति से बछड़े के कानों में चिन्ह बनाया, उसी तरह हे अश्विनीकुमार ! तुम सहस्रों गायों की पुष्टि के लिये उन्हें चिन्हित करो ॥ ३ ॥

१४२ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–वायु. । छन्द–अनुष्टुप्)

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव ।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥ १ ॥
आशृण्वन्तं यवं देव यत्र त्वाच्छावदामसि ।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥२॥

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिता॰ सन्तु राशय. ।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तार. सन्त्वक्षिता॰ ॥३॥

हे यव ! तू उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हो । तू अनेक प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होकर हमारे भाजनो को पूर्ण कर दे । आकाश का कठोर वज्र तेरा विनाश न करे ॥ १ ॥ हे यवरूप देव । हमारी स्तुति को ग्रहण करते हुए अन्तरिक्ष जैसे वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी भाति इस पृथ्वी पर तू प्रवृद्ध हो तथा अक्षय समुद्र के समान सतत् वृद्धि को प्राप्त हो ॥ २ ॥ हे यव । तेरे पास गमन शील एव कार्यरत व्यक्ति अमर सौभाग्य प्राप्त करें । कभी क्षीण न होने वाले धान्य की राशि उन्हे प्राप्त हो । तुम्हे घर मे लाने वाले तथा उपभोग करने वाले व्यक्ति भी स्वस्थ एव निरोग रहे ॥ ३ ॥

॥ इति षष्ठ काण्ड समाप्तम् ॥

सप्तम काण्ड

---

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि–अथर्वा । (ब्रह्मवर्चसकाम) । देवता—आत्मा ।
छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्र मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनो ॥१॥
स वेद पुत्र पितर स मातर स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघ ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्ष स्व. स इद विश्वमभवत् स आभवत् ॥२॥

जिन प्रजापति, इन्द्र अग्नि आदि देव गणों के रूप का वर्णन परा आदि वाणी द्वारा किया गया है, वे सभी देवगण, हमारी इच्छाओं को पूर्ण करें ॥ १ ॥ प्रजापति ब्रह्मा जिन्हे परमात्मा ने सर्व प्रथम रचा है, वे अपने जनक एवं जननी, द्यौलोक ब्रह्म तथा पृथ्वी लोक मे स्थित प्रकृति से अवगत है । वही ब्रह्मा सभी को संसार कर्म करने की प्रेरणा देते हैं एवं द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष में वर्तमान हैं ॥ २ ॥

२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । देवता-आत्मा । छन्द-त्रिष्टुप्)

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुगर्भं पितुरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्राणो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥१॥

माता के गर्भरूप पिता के वीर्यरूप एवं सदैव युवा रहने वाले देवों के बंधु रूप मे प्रजापति पिता के समान रक्षा करने वाले है । ऐसे ब्रह्मा को जो मन से जानता है, ऐसे महात्मा को हमें बताओ ॥ १ ॥

३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । देवता-आत्मा । छन्द-त्रिष्टुप्)

अया विष्ठ जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्व मैरयत ॥१॥

यह प्रजापति कर्मानुसार फल प्रदाता एवं वरणीय हैं । यही ब्रह्म रूप से सब में व्याप्त रह कर कर्म करने को प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

—※—

४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम । देवता वायु । छन्द-त्रिष्टुप्)

एकया च दशभिश्चा सुहूते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश्च बहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ।।१।।

सबके प्रेरक आह्वानीय ब्रह्मा एव वायु देव ! आप अपने एकादश उसका दुगना और तीन गुना संख्या के अश्वो से योजित रथ पर आरूढ हो हमारे यज्ञ मे अभिमुख हो और हमारी इच्छा पूर्ण करो। यज्ञ मे पधार कर कही अन्यत्र न जाय।

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम) । देवता—आत्मा ।
छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति अनुष्टुप)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाक महिमान सचन्त यत्र पूर्व साध्या सन्ति देवा ।। १ ।।
यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुन ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ।। २ ।।
यद् देवान् हविषायजन्तामर्त्यान मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ।। ३ ।
यत् पुरुषेण हविषा यज्ञ देवा अतन्वत ।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् वि हव्येनेजिरे ४ ।।
मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गै पुरुधायजन्त ।
य इम यज्ञ मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रव ।। ५ ।।

जो देवता पद को प्राप्त कर चुके है उन्होने आरम्भ मे यज्ञ रूप परमात्मा की उपासना की थी। इस अनुपम कार्य को

करने के फलस्वरूप ही उन्होंने देवत्व प्राप्त किया तथा उस लो को गये जहाँ महान ऐश्वर्यवान् देवगण निवास करते हैं ॥ १ ॥ यज्ञ उत्पन्न हुआ एवं वृद्धि को प्राप्त हुआ। विशिष्ट ज्ञान क साधन बन तथा प्रवृद्ध होकर देवताओं का अधिपति बना ऐसा यज्ञ हमारे धन प्राप्ति का हेतु बने ॥ २ ॥ देवगण मरण धर्म से रहित देवगणों का अपने मन रूप हव्य सामग्री को प्रतिदिन ही यज्ञ मे अर्पित करते हैं और इस तरह अपने आत्मा मे ब्रह्म रूपी सूर्य का प्राकट्य होने पर उसकी ज्योति का आनन्द लेते हैं ॥ ३ ॥ वह कौनसा विशेष साधन है जो देवताओं को अपने हवि रूप मन को यज्ञ मे अर्पित करने से भी अधिक श्रेष्ठकर है ? निश्चित ही यह ज्ञान यज्ञ सर्वोपरि है ॥ ४ ॥ अज्ञानी, मूर्ख यजन कर्ता कुत्ते एवं गौ आदि के अगो से यज्ञ करते है। यह अज्ञानता का द्योतक है और निंदा करने योग्य है । अपने जैसे आत्म ज्ञानी को बताओ । वे ही ब्रह्म विद्या के गोपनीय रहस्य को वितरण करने के अधिकारी है ॥ ५ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा ब्रह्मवर्चसकाम) । देवता—अदिति ।
छन्द—त्रिष्टुप जगती)

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१॥
महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥२॥
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥३॥
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥४॥

यह पृथ्वी, स्वर्ग अन्तरिक्ष, माता, पिता तथा पुत्र सब पुष्ट है। यह पृथ्वी ही सब देव और पचजन भी यही हैं। जो आज तक पैदा हुआ पैदा हो रहा है या पैदा किया जा रहा है। यह सब अदिति रूप पृथ्वीही है ॥ १ ॥ शुभकर्मियो के लिए कल्याणकारी, प्रबल क्षात्र, तेज से दीप्त सत्यशील मरण धर्म से रहित, सब भाँति पोषणकरने वाली माता अदिति को अपने रक्षण करने के लिए आह्वान करते हैं ।।२।। भली-भाँति रक्षक,सर्व सुख प्रदाता मगलमयी सुदृढ नौका के समान चढ कर उसकी शरण लेते हैं ।। ३ ।। हम माता पृथ्वी का यशोगान करते है जिसने हमे अन्न प्रदान किया जिसके निकट ही व्योमाकाश है। वह पृथ्वी माता हमको तिगुना सुख प्रदान करे ।। ४ ।।

७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम)। देवता-अदिति । छन्द-जगती)

दितेः पुत्राणामदितेरकार्षमव देवाना बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रिय नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन ।।१

राक्षसगण गभीर समुद्र मे निवास करते है उन्हे वहाँ से प्रथक कर गुण सम्पन्न देवगणो को उसका स्वामी बनाता हूँ क्योकि इनकी महती आवश्यकता है और देवगण ही इसके लिए उपयुक्त है ।। १ ।।

८ सूक्त

(ऋषि—उपरिबभ्रव । देवता—बृहस्पति छन्द–त्रिष्टुप्)

भद्रादधि श्रेय प्रेहि बृहस्पति' पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुम् कृणुहि सर्ववीरम् ।।१।।

हे सासारिक भोगो के आकाशी ! मगल प्राप्ति के लिए कर्मशील बनो। इस पथ को ग्रहण करने मे बृहस्पति देव तेरा

पथ प्रदर्शन करें। पृथ्वी पर स्थित इन समस्त वीरो को शत्रु विहीन करो ॥ १ ॥

६ सूक्त

(ऋषि-उपरिबभ्रव । देवता-पूषा । छन्द-त्रिष्टुप, गायत्री, अनुष्टुप)

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१॥
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वा सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥२॥
पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ।४॥

पूषादेव स्वर्ग पृथ्वी और अन्तरिक्ष के सभी मार्गों में प्रकट होते हैं। यह पूषा देव द्यावा पृथ्वी में प्राणियों के कर्मों के साक्षी बन कर विचरण करते हैं ॥ १ ॥ यह पूषा देव इन समस्त दिशाओं से भली भाँति परिचित हैं। वे हमें पूर्ण अभय-हीन मार्ग को बतावें। मंगलदायी, महान तेजयुक्त पराक्रमी एवं अप्रमादी सूर्य देव हमारा पथ प्रदर्शन करते हुए हमें उन्नति पथ पर अग्रसर करें ॥ २ ॥ हे पूषा देव! हम आपका व्रत करने के फलस्वरूप कभी विनाश को प्राप्त न हों। हम सदैव धन सन्तान और बन्धु-बान्धवों से सम्पन्न हों। हम आपका व्रत करते हुए सदैव आपका गुणगान करते रहेंगे ॥ ३ ॥ हे पूषादेव! हमारे वरणीय धन को सब ओर से लाकर हमें प्रदान करें एवं हमारे सहायक बनें। विनाश को प्राप्त हुई समस्त वस्तुऐं हमें पुनः प्राप्त हों और हम उनको प्रयोग में ला सकें, हम पर ऐसा अनुग्रह करें ॥ ४ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—शौनकः । देवता-सरस्वती । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्र ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥१॥

हे सरस्वती देवी ! आपका स्तन, शान्ति प्रदान करने वाला, सुख देने वाला, पवित्र मन को देने वाला, पुष्ट करने वाला और प्रार्थनीय है, उसको हमे भी प्रदान करिये ॥ १ ॥

११ सूक्त

(ऋषि—शौनक । देवता—सरस्वती । छन्द—त्रिष्टुप)

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् ।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥१॥

हे सरस्वते ! आपकी समस्त विश्व मे विस्तृत रूप से व्याप्त, गर्जनशील पताका की भाँति गमनशील एव विश्व को शोभित करने वाली विद्युत हमारे धान्यादि को नष्ट न करे, और न हम प्रजाजनो को पीडित करे। सूर्य देव की प्रचण्ड किरणें भी हमारे खेतो के धान्यादि को हानिकारक न हो, हम पर ऐसा अनुग्रह करें, हम आपकी स्तुति करते है ॥ १ ॥

१२ सूक्त

(ऋषि-शौनक । देवता-सभा, समिति प्रभृति । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः सङ्गतेषु ॥१॥
विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२॥
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।

अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥३॥
यद् वो मन परागत यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमता मनः ॥४॥

प्रजापति राजा, सभा समितियो की पुत्री के समान पोषण करते है । वे दोनो राजा का रक्षण करें । अपने मिलने वालो को राजा योग्य सलाह दे । हे पितृगण ! मुझे ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करें जिससे मैं सभा के मध्य विवेक और विनम्रता से भाषण करूँ ॥ १ ॥ हे सभे ! हम तेरे नाम से परिचित हैं । 'नरिष्टा' नाम तेरा उचित ही है । तेरे सभासद् हमारे साथ समानता से बोलने वाले हो ॥ २ ॥ इन समस्त आसीन सभासदो से राज्य सबन्धी विशिष्ट ज्ञान के तेज को प्राप्त करता हूँ । इन्द्र देव हमे इस सभा का भागी करे ॥ ३ ॥ हे सभासदो ! आपका ध्यान जो हमसे हट कर अन्य विषयो की ओर हट गया है, उसे हम पुन अपनी ओर आकर्षित करते हैं । आप हमे ही सुनें और उस पर विचार करें ॥ ४ ॥

१३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । (द्विषो वर्चोहर्तुकाम देवता-सूर्य । छन्द--अनुष्टुप्)

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यस्तेजास्यददे ।
एवा स्त्रीणां च पुसां च द्विषता वर्च आ ददे ।
यावन्तो मा सपत्नानामायन्त प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्यइव सुप्तानं द्विषतां वर्च आ ददे ॥२॥

जिस प्रकार तारो का प्रकाश सूर्य के उदय होते ही क्षीण हो जाता है और सूर्य के प्रकाश मे मिल जाता है, उसी भाँति मैं भी द्वेषी स्त्री, पुरुषो के बल का हरण करता हूँ ॥ १ ॥ मैं शत्रुओ मे से उन सबको जो मुझे आता हुआ देखते है एवं उन

सुपुप्त, असावधान शत्रुओं को सूर्य के समान निस्तेज करता हूँ ॥ २ ॥

१४ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वा । देवता-सविता । छन्द-अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; जगती)

अभित्यं देवं सवितारमोण्यो. कविक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥१॥
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि ।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ॥२॥
सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥३॥
दमूना देव. सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।
पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥४॥

मैं सविता देव की जो समस्त जगत के रक्षक सबके उत्पन्नकर्ता संसार के रचयिता, ज्ञानी सत्य की प्रेरणा देने वाले, सुन्दर पदार्थों के धारण करने वाले, सबके प्रिय और ध्यान करने योग्य है पूजा करता हूँ ॥ १ ॥ जिनका महान् तेज, उन्ही की इच्छानुसार ऊपर विकसित होता हुआ सर्वत्र प्रकाश प्रदान करता है, श्रेष्ठ कर्मी ब्रह्मा जिससे प्रेरित हो स्वर्ग दायक सोम उत्पन्न करते हैं, उन सविता देव की हम उपासना करते है ॥ २ ॥ हे सविता देव ! आप इस यजमान को समस्त वैभव प्रदान करें। हम आप सर्वदा श्रेष्ठ पदार्थ और पशुधन प्रदान करें ॥ ३ ॥ हे सविता देव ! आप सबके प्रेरक श्रेष्ठ और महान् दानी हैं। आप ही पूर्वजो को धन-बल और आयु प्रदान करने वाले हैं। इस संस्कारित सोम का पान करें। यह आनन्द प्रदायक है एव देव लोक के लिए प्रेरणा देता है ॥४॥

१५ सूक्त

(ऋषि—भृगु । देवता—सविता। छन्द—त्रिष्टुप्)

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥१॥

हे सविता देव ! मैं उस सत्य प्ररक, ग्रहणीय, वरणीय, परम शोभनीय बुद्धि की प्रार्थना करता हूँ, जिसके द्वारा अनेक धाराओं युक्त बुद्धि को कण्व महर्षि ने प्राप्त किया था ॥१॥

१६ सूक्त

(ऋषि—भृगु । देवता—सविता । छन्द—त्रिष्टुप्)

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।
संशितं चित् सन्तरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवा ॥१॥

हे बृहस्पति एव सविता देव, जो यजमान अन्य व्रतों को पालन करता है, उसे उदय काल मे सोने का दोष दूर करके आगे बढाइये, और भी व्रतों को पालन करने वाला बनाइये। इस यजमान को उत्तम भाग्य के लिए उद्‌बोधित करिये। समस्त देवता उसकी साधुता का अनुमोदन करे ॥१॥

१७ सूक्त

(ऋषि—भृगु । देवता—धात्रादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—गायत्री अनुष्टुप, त्रिष्टुप)

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः ।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥१॥
धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥२॥
धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥३॥

धाता राति सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥४॥

संसार के अधिपति, विश्व के धारक, धाता देव हमें अपार धन प्रदान करें। यह धाता देव समस्त कार्यों को पूर्ण करने की सामर्थ्य रखते हैं ॥ १ ॥ धाता देवता मुझ यजमान को कभी विनष्ट न होने वाली जीवन शक्ति प्रदान करें। हम उस सपूर्ण धनो के स्वामी देवता को उत्तम बुद्धि का ध्यान करते हैं और प्रार्थना करते हैं ।२। धाता देवता प्रजा की कामना करने वाले यजमान के लिए समस्त ग्रहणीय पदार्थों को प्रदान करे। सपूर्ण देवता अदिति देवी और अन्य देवता उसको अमृत प्रदान करें ॥ ३ ॥ धाता देव, सविता देव, अग्नि देव एव विष्णु देव हमारी आहुति को स्वीकार करें तथा प्रजा के सहित अपने-अपने फल देकर यजमान को धन प्रदान करें ॥४॥

१८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–पृथिवी, पर्जन्य । छन्द–उष्णिक् त्रिष्टुप्)

प्र नभस्व पृथिवी भिन्द्धीद दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥१॥
न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥२॥

हे पृथ्वी ! हल द्वारा जोती जाने पर भी आप भारी वृद्धि को सहन करने मे समर्थ हो। हे पर्जन्य ! आप दिव्य मेघों से श्रेष्ठ वृष्टि प्रदान करें ॥ १ ॥ जहाँ सोम देव की उपासना होती है, वहाँ उचित समय पर पर्याप्त वर्षा होती है और सब प्रकार से कल्याण होता है। ग्रीष्म असहनीय ताप नही देता और न शीत ऋतु मे ही वस्तुऐं बर्फ से गलती हैं। उपयुक्त वृष्टि से भूमि समृद्धि को प्राप्त होती है ॥२॥

१६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—प्रजापति, धाता । छन्द—जगती)

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
सजानाना संमनस सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥१॥

प्रजापति ब्रह्मा प्रजाओं को उत्पन्न करें और धाता देव उनका पालन करे । यह सब प्रजाएँ, सङ्गठन युक्त एक मत होकर बुद्धिमत्ता पूर्वक कार्य करे । पुष्टि के देव हमको शक्ति प्रदान करें ॥१॥

२० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-अनुमति । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्,जगती)

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवता दाशुषे मम ॥१॥
अन्विदनुमते त्वं मंससे श च नस्कृधि ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजा देवि ररास्व नः ॥२॥
अनु मन्यतामनुमन्यमान' प्रजावन्त रयिमक्षीयमाणम् ।
तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥३॥
यत् ते नाम सुहव सुप्रणीतेऽनुमते अनुमत सुदानु ।
तेना नो यज्ञ पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥४॥
एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।
भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्वभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥५॥
अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अन हि मससे नः ॥६॥

समस्त कर्मों के अनुमन्त्री चन्द्रदेव हम पर अनुग्रह करते हुए हमारे यज्ञ को सब देवों तक प्रकाशित कर दें । अग्निदेव भी हमारे द्वारा आहूत हवि का अश प्रत्येक देवता को प्राप्त

कराने की कृपा करे ॥ १ ॥ हे अनुमति की देवि ! हमको सद्-बुद्धि प्रदान करो, जिससे हम श्रेष्ठ कार्य करे । आप अग्नि मे आहूत हवि को प्राप्त कर हमे श्रेष्ठ सन्तति प्रदान करें ॥ २ ॥ हम अनुमन्ता पुदेव के क्रोध के पात्र न बनें, अपितु उनकी श्रेष्ठ सलाह से लाभान्वित हो । वे हमसे तुष्ट होकर हमे अक्षय धन एव सन्तान आदि से सम्पन्न करे ॥ ३ ॥ हे अनुमति देवि ! आप यज्ञो की भण्डार हैं एव यजमान के धन मे प्रेम करने वाली हो । आप हमारे यज्ञ को सफल बनाओ एव हमे श्रेष्ठ वीरो सहित धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हमारे इस यज्ञ का रक्षण करते हुए हे देवि ! आप श्रेष्ठ कुशल पुत्रादि फल देने के निमित्त पधारो । आपके अनुग्रह से ही उत्तम कार्य करने की प्रेरणा मिलती है ॥ ५ ॥ हे देवि ! आप स्थावर जङ्गम अबुद्धि द्वारा तथा सुबुद्धि द्वारा सभी कर्मशील व्यक्तियो मे वर्तमान हैं । आप हमे श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करे ॥६॥

२१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा, । देवता—आत्मा । छन्द—जगती)

समेत विश्वे वचसा पति दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् त वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥१॥

नव जात प्राणियो के स्वामी, अतिथि सम पूज्य तथा द्यु लोक के अधिपति सूर्य देव का यशोगान करा । हे सूर्यदेव ! आप इस नवोत्पन्न प्राणी को अपना समझ कर उसका कल्याण करे । आप सभी सम्मानो के प्रेरक है ॥६॥

२२ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–लिङ्गोक्ता, (ब्रध्न) छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्

अय सहस्रमा नो दृशे कवीना मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥१॥

अघ्नः समीचीरुषतः समैरयन् ।
अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गो ॥२॥

सूर्य देव हमे सहस्र वर्ष तक निरोग रह कर जीने की शक्ति प्रदान करे । यह सूर्यदेव ही ज्ञानियो के माननीय और उन्हे उत्तम कर्म और कर्म फल मे स्थित रखने वाले है । हे देव ! आप हमे आयु प्रदान करे, जिससे हम श्रेष्ठ कार्य करने मे समर्थ हो ॥ १ ॥ ज्ञान दायिनी पाप विनाशिनी तेजस्वी उषायें उन सूर्य देव की ओर हमे प्रेरित करती रहे ॥२॥

२३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—यमः । देवता—दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्)
दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षा अभ्व मराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥१॥

कुस्वप्न कष्टमय जीवन, दुष्टो का उत्पात, निर्धनता, भय, बुरे नाम का उच्चारण और कुभाषण को हम पृथक करते है ॥१॥

२४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—सविता । छन्द—त्रिष्टुप्)
यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्का ।
तदस्मभ्य सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥१॥

इन्द्र अग्नि, विश्वेदेवा, मरुद्गण आदि देव जो फल हमको प्रदान करते हैं वह फल हमको सत्य धर्मा प्रजापति, अनुमति देवी एव सूर्य देव भी प्रदान करे ॥१॥

२५ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथि, । देवता-विष्णु । छन्द-त्रिष्टुप्, गायत्री,शक्वरी)
ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यो वीर्यै र्वीरतमा शविष्ठा ।

यो पत्येते अप्रतीतो सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥१॥
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥२॥

जिन दोनों विष्णु और वरुण की शक्ति से यह समस्त सृष्टि स्थित है, जिन दोनों की शक्ति से वे अपने कर्तव्य और फल का निश्चय करते है तथा जिनके बल से यह जगत तीनों कालो मे कर्मरत है, उनको यह होता आहूति प्रदान करे ॥ १ ॥ जिन विष्णु और वरुण की आज्ञा से यह संसार प्रकाशवान् है तथा प्राण धारण करता है एवं अपने कर्तव्य और फल का निश्चय करता है, उन दोनो देवो को यह पूर्वाह्वान होता आहुति प्रदान करे ॥२॥

२६ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथिः । देवता-विष्णुः । छन्द-त्रिष्टुप्, गायत्री, शक्वरी)

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥
प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत् आ जगम्यात् परस्याः ॥२॥
यस्योरुषु त्रिषु वि क्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥३॥
इदं विष्णुर्वि चक्र मे त्रेधा नि दधे पदा ।
समूढमस्य पांसुरे ॥४॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
इतो धर्माणि धारयन् ॥५॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥६॥

तद्विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय ।
दिवी व चक्षुराततम् ॥८॥
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥

सर्वव्यापी विष्णु की शक्ति का मैं उचित वर्णन करत
इन्होने ही द्यावा पृथ्वी एव अन्तरिक्ष का तीन पैरो मे नि
किया है तथा इन तीनों मे सर्व श्रेष्ठ स्वर्ग को अपना नि
स्थान बनाया है ॥ १ ॥ यह महान् प्रशसनीय विष्णु
विचरणशील सिंह के समान जो इच्छा करते ही चाहे जहां
मे क्षण मात्र में ही पहुँच जाता है, बहुत दूर रहते हुए
हमारी स्तुतियो से प्रसन्न होकर यहाँ पधारे ॥ २ ॥ हे
तीनो लोको मे विचरण करके आप हमे भी निवास भूमि
और धनादि प्रदान करे । हे अग्नि रूप विष्णु देव ! इस यज्ञ
अर्पित हुए घृत को स्वीकार करे और यजमान को ऐश्वर्य प्र
करे ॥ ३ ॥ सर्व व्यापी विष्णु ने इस विश्व मे विक्रमण कि
और अपने तीन डगो मे समस्त जगत को ढक लिया ॥ ४
रक्षा करने वाले, किसी के प्रभाव मे न आने वाले भगव
विष्णु ने तीन डग रखे और इन तीनो मे ही तीनो लोको को धार
कर लिया ॥ ५ ॥ सर्व व्यापी विष्णु भगवान के कार्यों को दे
कि जिनसे वह तुम्हारे गुण धर्मों का निरीक्षण करता है ।
इन्द्र के परम मित्र हैं ॥ ६ ॥ ज्ञानी जन विष्णु के परम लो
का दर्शन करते हैं । जैसे आकाश मे व्याप्त नेत्र रूप सूर्य है,उ
भाँति उस सर्वत्र व्याप्त उस प्रकाश तत्व को ज्ञानी जन जान
है ॥ ७ ॥ हे विष्णु भगवान् ! द्यावा पृथ्वी एव अन्तरिक्ष
प्राप्त धनो का स्वीकार करे तथा उसे दोनो हाथो से द
करे ॥८॥

२७ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः। देवता—इडा। छन्द—त्रिष्टुप्)

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥१॥

जिस गौ के चरणो मे अभीष्ट पूर्ति के लिए देवों द्वारा यजमान पवित्र होता है, वह सोमपृष्ठा, घृतादि फल देने में समर्थ, समस्त देवगणो से सबधित इडा धेनु हमारे यज्ञ को सव जगह दीप्तमान करें। हमें कर्मो के फल प्राप्त हो, यह इडा वैसा ही प्रयत्न करे ॥१॥

२८ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः। देवता—वेदः। छन्द—त्रिष्टुप्)

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥१॥

वेद हमारे लिए कल्याणकारी हो। फरसा, गड़ास भी हमारे लिए मङ्गलदायक हो। ये देवात्मक वेद द्रुघण हवि प्रदान करने वाले यजमान को सहायता प्रदान करे ॥१॥

२९ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि.। देवता—अग्नाविष्णू। छन्द—त्रिष्टुप्)

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥१॥
अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥२॥

हे अग्नि एव विष्णु! आप दोनो को ही यह महानता प्राप्त है कि आप दोनो गुह्य घृत का पान करते हैं। आप यजमानो के घर गौ अश्व आदि सात पशु रत्नों को धारण करते

है। आप दोनों की जिह्वा आहूत हुए घृत को स्वीकार करें ॥१
हे अग्नि देव एव विष्णु ! आप दोनों का स्थान परम सुन्दर है
आप घृत के सानाय्य चरु पुरोडास आदि स्वरूपों का पान करते
है। आप हर ग्रह में उत्तम यशोगान से प्रसन्न हो वृद्धि को प्राप्त
होते है। आप दोनों उस घृत को पीवें ॥२॥

३० सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा। देवता—द्यावापृथिवी, मित्र,ब्रह्मणस्पति। छन्द—बृहती।)

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम्।
स्वाक्त मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्त सविता करत् ॥१॥

आकाश, पृथ्वी दोनो मेरे नेत्रों मे श्रेष्ठ अञ्जन लगावें। सूर्य देव ब्रह्मणस्पते और सविता देव सभी हमारी आंखों को निरोग रखने के लिए चेष्टा युक्त हो अञ्जन लगावें ॥१॥

३१ सूक्त

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा। देवता-इन्द्र। छन्द-अनुष्टुप्)

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥१॥

हे इन्द्र ! आप अनेक रक्षा साधनो से हमारा रक्षण करें। हे पराक्रमी ! हमारा शत्रु विनाश को प्राप्त हो तथा हम जिससे द्वेष रखते हैं, वह मृत्यु को प्राप्त हो ॥१॥

३२ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-आयु। छन्द-त्रिष्टुप्)

उप प्रियं पनिप्नत युवानमाहुती वृधम्।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

परम प्रिय स्तुतीय सर्वदा तरुण एवं आहुतियो से वृद्धि को प्राप्त होने वाले अग्नि देव को हम विनम्र होकर हवि रूप अन्न अर्पित करते हैं। वे हमे दीर्घ आयुष्य बनावे ॥१॥

३३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—मरुत पूषा; बृहस्पतिः; अग्निश्च । छन्द—पङ्क्ति ।)

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः संपूषा सं बृहस्पतिः ।
स मयमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायु कृणोतु मे ॥१॥

मरुद्‌गण हमे पुत्र, प्रजा और धन दें। पूषा, ब्रह्मणस्पति और अग्नि देव भी हमको श्रेष्ठ सन्तान और धान्यादि से सम्पन्न करें। हमे दीर्घजीवी बनावें ॥१॥

३४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-जातवेदा । छन्द-जगती)

अग्ने जातन् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पद कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥१॥

हे अग्नि देव! हमारे शत्रुओं का विनाश करो। हे जातवेद अग्ने! जो हमारे प्रकट में शत्रु नहीं हैं, वरन् हृदय मे हमारे प्रति शत्रुता रखते है, उन्हें भी विनष्ट करें। जो हमसे युद्ध करने के आकांक्षी हैं, वे अवनति को प्राप्त हो। आप सब देवों के अनुग्रह से हम सब दोष रहित हो गौरव पूर्ण जीवन यापन करें ॥१॥

३५ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-जातवेदा । छन्द-त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
इद राष्ट्र पिपृहि सौभगाय विश्व एन मनु मदन्तु देवाः ॥१॥

इमा यास्ते शता हिरा सहस्र धमनीरुत ।
तासा ते सर्वासामहमश्मना विलमप्यधाम् ॥२॥

पर योनेरवर ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनु ।
आ व त्वा प्रजस कृणोम्यश्मान ते अपिधान कृणोमि ॥३॥

हे जातवेद अग्नि दव ! आप उन शत्रुओ को जो हमारे विपरीत आचार करत है, नष्ट करें। उन शत्रुओ का भी जो अभी प्रकट नहीं हुए हैं, जड सहित विनाश करें। इस राष्ट्र को उन्नत और सौभाग्य से पूर्ण बनावें। सब देवगण इसका अनुमोदन करें ॥ १ ॥ हे स्त्री तेरी सौ नाडियाँ और हजार धमनियो के मुख को पत्थर से बन्द कर दबाता हूँ तथा तेरी जननेन्द्रिय स जो परे हैं, उन्हे समीप करता हूँ, जिससे सन्तान तेरा अपमान न करे। तुझे प्राणवान् सन्तान प्रदान करता हूँ और तेरा आवरण पत्थर करता हूँ ॥२॥

२६ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता -अक्षि मन । छन्द–अनुष्टुप)

अक्ष्यौ नौ मधुसकाशे अनीक नौ समञ्जनम् ।
अन्त कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥१॥

हे पत्नी ! मेरे तेरे दोनो के नेत्र मधुर भाव से पूर्ण हो। हम दोनो के नेत्रो के अगले भाग मे अञ्जन लगे तथा तू मुझे अपने हृदय मे स्थिर कर। हम दोनो समान मन वाले हो जाँय ॥१॥

३७ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–वास । छन्द–अनुष्टुप)

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासा कीर्तयाश्चन ॥१॥

हे देव ! तुम मेरे ही रहो, इसके निमित्त मै इसे अभिमन्त्रित वस्त्र से तुम्हे बाँधती हूँ । तुम मेरे अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री का नाम भी न लो ॥१॥

३८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वनस्पति; (आसुरी) । छन्द—अनुष्टुप; उष्णिक् ।)

इदं खनामि भेषजं मांपश्यमभिरोरुदम् ।
परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥१॥
येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।
तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥२॥
प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।
प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥३॥
अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद ।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥४॥
यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्य स्तिरः ।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥५॥

वशीकरण के निमित्त इस सौ वर्चल नामक औषधि को जो पति को अपने अधीन करने मे समर्थ है, खोदती हूँ । यह पति का अन्य स्त्री के पास जाना रोक कर उसे वापिस भेजती है ॥ १ ॥ इस आसुरी नामक औषधि ने जिस गुण द्वारा सब देवो के ऊपर इन्द्र परम प्रभावशाली बनाया, उसी से मैं तुझे प्रभावशाली बनाती हूँ, जिससे मैं तेरी प्रिय धर्मपत्नी बन कर रहूँगी ॥ २ ॥ हे औषधे ! तू सोम तथा सूर्य को वश में करने के लिए उनकी ओर जाती है । तू सभी देवो को अपनी अधीन करने की सामर्थ्य रखती है । पति को अपनी ओर आकृष्ट करने

के निमित्त मैं इस औषधि से प्रार्थना करता हूँ ॥ ३ ॥ हे स्वामिन ! तुम यहाँ कुछ न कह कर विद्वत समाज मे ही भाषण करो । हम मुझे असाधारण रूप से प्राप्त हो । तुम मेरे सन्मुख अन्य स्त्री का नाम भी न लो ॥ ४ ॥ हे स्वामी यदि तुम्हे कहीं जाना पडे अथवा मेरे तुम्हारे बीच मे कोई नदी आकर मुझसे तुम्हे अलग करदे, तो यह औषधि तुम्हे बन्धन मे लेती मुझ स्नेहमयी के सामने ले आवे ॥५॥

३९ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—प्रस्कण्व । देवता-मन्त्रोक्ता । छन्द-त्रिष्टुप्)

दिव्य सुपर्णं पयस बृहन्तमपा गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तपयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥१॥

श्रेष्ठ गमनशील, औषधियो के पुष्ट करने वाले, जलो मे मध्यरूप, विश्व के लिए तृप्तिकारक, वर्षा चाहने वाले प्राणियों को वृष्टि देने वाले सरस्वान देवता को इन्द्र हमारे गोष्ठ मे स्थापित करें ॥ १ ॥

४० सूक्त

(ऋषि-प्रस्कण्व । देवता—सरस्वान् । छन्द-त्रिष्टुप्)

यस्य व्रत पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आप ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्त सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥१॥
आ प्रत्यञ्च दाशुषे दाश्वास सरस्वन्त पुष्टपति रयिष्ठाम् ।
रायस्पोष श्रवस्यु वसाना इह हुवेम सदन रयीणाम् ॥२॥

जिनके कर्मों द्वारा सब जल मिलते है, सब पशु जिनका अनुसरण करते हैं, जो वृष्टि और पुष्टि को आधारभूत आश्रय हैं, उन सरस्वान देव को हम अपनी रक्षा हेतु आह्वान करते

हैं ॥ १ ॥ हविदाता के सतोष के लिए उसके समीप जाने वाले, काम्यवर्षक, धन स्थान मे प्रतिष्ठित धन की पुष्टि करने वाले, यजमानो को अन्न देने की इच्छा वाले सरस्वान देव को हम आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

४१ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्व । देवता— श्येन । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजासीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥१॥
श्येनो नृचक्षा दिव्य सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद् वसु यत् परामृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत्॥२

सब प्राणियो के दर्शन योग्य, महान गतिवान, कर्म फल प्रद न करने वाले, सूर्य मरु प्रदेशो मे भा वर्षा प्रदान करें । वे अपने सखा इन्द्र सहित हमारा कल्याण करे तथा हमारे नूतन गृह म पधारे ॥ १ ॥ असख्य किरणो वाले सुन्दर गतिशील महान काम्यवर्षक अन्न धारण कर्ता सूर्यदेव हमको अमरता प्रदान करे । हमारा अग्नि मे अर्पित धन, पितरो को स्वधा समान प्राप्त हो ॥ २ ॥

४२ सूक्त

(ऋषि-प्रस्कण्व । देवता-सोमारुद्रौ । छन्द-त्रिष्टुप्)

सोमारुद्रा वि वृहत विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
वाधेथां दूर निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥१॥
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यत मुञ्चत यन्नो असत् तनूषु कृतमेनो अस्मत् ॥२॥

हे सोम एव रुद्रो ! हमारे घरो मे फैले अमीदा एव

विशूचिका रोगों को नष्ट करो। रोग उत्पत्ति के मूलभूत कारण पिशाच आदि को हमसे दूर करो और हमारे पाप दोषों का भी विमोचन करो ॥ १ ॥ हे सोम एवं रुद्रो ! हमारे पाप दोषों को हमसे अलग करो तथा रोग निवारण के लिए औषधियों का हमारे शरीर में व्याप्त करो ॥ २ ॥

४३ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्व । देवता—वाक् । छन्द—त्रिष्टुप्)

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम्॥१

हे पुरुष तू व्यर्थ ही निंदा का पात्र बना है। तेरे सबन्ध मे स्तुति एवं निंदा रूप दो वाणी कही जाती हैं, तू उन दोनो वाणियो को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर। उन दोनो वाणियो की तीन दशाएँ वाणी प्रयोगकर्ता में होती है तथा सम्बन्धित व्यक्ति मे उसकी एक दशा होती है ॥ १ ॥

४४ सूक्त

(ऋषि-प्रस्कण्व । देवता-इन्द्र , विष्णु । छन्द-त्रिष्टुप्)

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयो ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथा त्रेधा सहस्र वि तदैरयेथाम् ॥१॥

हे इन्द्र एवं विष्णुदेव ! तुम अपराजेय हो एवं सदैव विजय प्राप्त करते हो। इन दोनो देवो मे एक भी कभी पराजित नही हुआ। हे देवो ! तुम राक्षसों से जिस लोक, वेद, वाणी और वस्तु के निमित्त युद्धरत होते हो, उसे अपने अधीन कर लेते हो ॥ १ ॥

—

४५ सूक्त

(ऋषि–प्रस्कण्वः देवता–ईर्ष्यापनयनम् । छन्द–अनुष्टुप्)
जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् ।
दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥१॥
अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।
एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥२॥

जनपद, समुद्र और दूरस्थ प्रदेश से प्राप्त हुई मक्तुमंथ नामक औषधि से मैं परिचित हूँ । वह औषधि क्रोध विनाशक है ॥ १ ॥ ईर्ष्या द्वेष को दूर करने वाले देव ! तुम मेरे सब धर्मों को नष्ट करते हुए उसी प्रकार इस द्वेषी की द्वेषता को शान्त करो जैसे जल अग्नि को शान्त करता है ॥ २ ॥

४६ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता- सिनीवाली । छन्द–अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१॥
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥२॥
या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥३

हे अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी सिनीवालि ! तुम देवगणों की स्वसा और समान कार्य वाली होने के कारण उनकी भगिनी हो । तुम हमको सन्तति प्रदान करो तथा हमारी आहुति को स्वीकार करो ॥ १ ॥ हे ऋत्विज ! हे यजमान ! यह सिनीवाली सुन्दर हाथ और उंगलियों से युक्त है । उस प्रजा पोषिका को हवि अर्पित करो ॥ २ ॥ यह सिनीवालि

इन्द्र के सन्मुख जाकर उनकी उपासना करती है। यह प्रजा पोषिका है। हे देव पत्नी ! तू अपने अधिपति इन्द्र को धन की प्रेरणा कर। हमने तुझे आहुति अर्पित की है ॥ ३ ॥

४७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता - कुहू । छन्द – जगती, त्रिष्टुप्)

कुहू देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१
कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥२॥

चन्द्रमा रहित अमावस्या श्रेष्ठ आह्वानीय है। मैं उसका यज्ञ कर्मादि मे आह्वान करता हूँ। वह मुझे वरण करने योग्य धन और शक्तिशाली सन्तान प्रदान करे ॥ १ ॥ वह कुहू देवी सब भूतों का और अमृत का पालन करने वाली है वह अमृत रूप जल को पुष्ट बनाती है। वह हमारे यज्ञ को जानती हुई हमारी स्तुति को सुने तथा हमें धन प्रदान करे ॥ १ ॥

४८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–राका। छन्द–जगती–त्रिष्टुप)

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१॥
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ २ ॥

मैं राका को सुन्दर मन्त्रों द्वारा आहूत करता हूँ। वह हमारी स्तुति सुने और हमारे अभिप्राय को समझे। जैसे वस्त्र सीना कुशलता से होता है, उसी तरह यह प्रजनन कार्य को करते हुए मुझे तेजस्वी पुत्र प्रदान करे ॥ १ ॥ हे पूर्णिमे ! तुम

अपनी मंगलमयी श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा यजन कर्ता को धन प्रदान करती हो। तुम उसी बुद्धि द्वारा हम पर कृपा कर धनों की वर्षा करो ॥ २ ॥

४६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता-देवपत्न्यः। छन्द—जगती; पंक्ति)

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥२॥

देवपत्नियाँ हमको अन्न धन प्राप्त कराने और हमारे संरक्षण की कामना लेकर पधारें। पृथ्वी पर निवास करने वाली देवी तथा जो अन्तरिक्ष निवासिनी हैं वे हमको आनन्द प्रदान करें ॥ १ ॥ देवपत्नियाँ हमारी रक्षक हों। इन्द्राणी वरुणानी रोदसी, अग्न्यानी और अश्विनीकुमारों की पत्नि हमारी प्रार्थना को सुने और पत्नियों के ऋतकाल में हवि स्वीकार करें ॥ २ ॥

५० सूक्त

(ऋषि-अङ्गिराः (कितववधकाम.)। देवता-इन्द्र। छन्द-अनुष्टुप् त्रिष्टुप्; जगती)

यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति।
एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति ॥१॥
तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम्।
समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥२॥
ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥३॥

वय जयेम त्वया युजा वृतमस्नाकमशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणा मघवन् वृष्ण्या रुज ॥४
अजैष त्वा सलिखितमजैषमृत संरुधम् ।
अवि वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥५॥
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् त राय. सृजति स्वधाभिः ॥६
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम् ॥७॥
कृत मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजिद् ॥८॥
अक्षाः फलवतीं द्युव दत्त गा क्षीरिणीमिव ।
सं मा कृतस्य धारया धनु स्नाव्नेन नह्यत ॥९॥

जैसे विद्युत अग्नि को नित्य ही भस्म करती है, वैसे ही मैं समस्त जुआरियो का पासो के द्वारा सहार करता हूँ ॥ १ ॥ जूए मे शीघ्रता एव देरी करने वालो में मैं श्रेष्ठ हूँ । जूऐ को न त्यागने वालो का भाग मुझ धारक को चहुँ ओर से प्राप्त हो । मैं कृत नाम का पासा हूँ ॥ २ ॥ स्तुति कर्त्ताओ को अपना धन प्रदान करने वाले स्वावसु अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ । वे हमको कृत नाम का पासा प्रदान करें । जैसे अश्वो के द्वारा रथ से अन्न लाया जाता है, उसी भाँति मैं शत्रु की सपत्ति को प्राप्त करूँ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! मैं जिसका वरण करू उसे तुम्हारी कृपा से विजय करू । जो हमको द्यूत कर्म मे जीतना चाहे उनका तुम उच्चाटन करो और हमारे पास प्रचुर धन आने दो । तुम शत्रुओ को जीतने से रोको ॥ ४ ॥ हे पीडक शत्रु ! तुझे मैं ही जीतूँगा । मैं तेरे कृत पाश का उसी प्रकार मन्थन करता हूँ, जैसे भेडिया भेड को मथता है ॥ ५ ॥ खेलने वाला अपने

विरोधी पर विजय प्राप्त करता है, क्योंकि वह घृत-पाश को ही ढूढता है। देवा का भक्त वह व्यक्ति उस जीते हुए धन को देव निमित्त ही व्यय करता है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! हम यवादि द्वारा क्षुधा शान्त करें। निर्धनता के कारण उत्पन्न कुबुद्धि से पशुओ के द्वारा पार हो, हम शत्रुओ से पराजित न हो और उन्हे पाशो के द्वारा विजय करें ॥ ७ ॥ मेरे सीधे हाथ मे कृत है तथा बायें हाथ मे विजय है। इन दोनो पाशों से मैं गौ, अश्व धन, भूमि एव सोना आदि को जीतूं ॥ ८ ॥ दूध देने वाली गाय के समान फलवती क्रिया को घृत की धारा से बन्धन युक्त करो। उसके द्वारा तुम मुझे विजय प्राप्त कराओ ॥६॥

५१ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिरा। देवता- इन्द्राबृहस्पती। छन्द--त्रिष्टुप्)

बृहस्पतिर्न परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायो ।
इन्द्र. पुरस्तादुत मध्यतो न सखा सखिभ्यो वरीय कृणोतु ॥१॥

बृहस्पति सब दिशाओ से हमारी रक्षा करें। इन्द्र पूर्व और मध्य से रक्षा करें और सखाभूत वे इन्द्र अपने स्तोताओ को महान् वैभव प्रदान करे ॥१॥

५२ सूक्त (पाचवाँ अनुवाक)

(ऋषि--अथर्वा। देवता--सामनस्यम्, अश्विनौ। छन्द जगती)

सज्ञान न स्वेभि सज्ञानमरणेभि ।
सज्ञानमश्विना युव मिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१॥
स जानामहै मनसा स चिकित्वा मा युस्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत्युर्बहुले विनिर्हिते मेषु पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२॥

हम सब समान मतवाले हो, हमारे विरोधी भी हमारे अनुकूल मतवाले हो। हे अश्विद्वय! तुम अपने और पराये दोनो

को सम बुद्धि वाला बनाओ ॥ १ ॥ हम अपने मन से दूसरे के मन को सयुक्त करें । हम एक मत होकर कार्य करें । देवों के प्रति हमारी भक्ति कम न हो । मन का उच्चाटन करने वाले शब्द न निकले और इन्द्र का वज्र हमारे ऊपर न गिरे ॥२॥

५३ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आयु , बृहस्पति , अश्विनौ । छन्द त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप)

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्च ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभि ॥१॥
स क्रासता मा जहीत शरीर प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शत जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठ ॥२॥
आयुर्यत् ते अतिहित पराचैरपान प्राण पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निऋ‍तेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥३॥
मेम प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ।
सप्तऋषिभ्य एन परि ददामि त एन स्वस्ति जरस वहन्तु ॥४॥
प्र विशत प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अय जरिम्ण शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥५॥
आ ते प्राण सुवामसि परा यक्ष्म सुवामि ते ।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्य ॥६॥
उद् वय तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम् ।
देव देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।

हे अग्निदेव ! तुम हवि द्वारा देवताओ का पोषण करते हो । तुम यम के भय से इस बालक की रक्षा करने म समर्थ हो । तुम्हारे द्वारा प्रेरित हो अश्विद्वय इसके मृत्यु के कारणो का पृथक करे ॥ १ ॥ हे प्राण अपान वायु आयु की चाहना वाले इस पुरुष के शरीर मे स्थित रहो । हे पुरुष यह प्राणापान

तेरा साथ न छोड़े। तू शतायु हो। अग्नि देव तेरी रक्षा करे॥ २॥ हे आयुष्काम! तेरा जीवन दीप बुझने को था उसे प्राणापान पुनः प्राप्त करावें। मैं तुझे अग्निदेव द्वारा प्राप्त मन्त्र शक्ति से दीर्घजीवी बनाता हूँ॥ ३॥ इस आयुष्काम को प्राण अपान न त्यागें। मैं रक्षण हेतु इसे सप्त ऋषियो को सौंपता हूँ। वे इसे जरावस्था तक सुख से रखें॥ ४॥ हे प्राणापान! जैसे बैल गोष्ठ मे प्रविष्ट होते हैं वैसे ही तुम इस आयु की कामना वाले पुरुष के शरीर में प्रविष्ट होओ। यह पुरुष जरावस्था तक जीवन यापन करे॥ ५॥ हे आयुष्काम! हम तेरे क्षय रोग को दूर करते हुए आयु को लाते हैं। अग्निदेव! तुझे सौ वर्ष तक जीवन यापन करने वाला बनावें॥ ६॥ हम पाप दोष से मुक्त होते हुए स्वर्ग को जाते हैं तथा समस्त देवगणो मे श्रेष्ठ सूर्य के समीप पहुँचते है॥ ७॥

५४ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा, भृगु; । देवता-ऋक्सामनी; इन्द्रश्च । छन्द-अनुष्टुप्)

ऋचं समा यजामहे याभ्या कर्माणि कुर्वते ।
एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ॥१॥
ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम् ।
एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ॥२॥

हम ऋग्वेद और यजुर्वेद की उपासना करते हैं। हम ऋत्विज और यजमान ऋग्वेद और सामवेद द्वारा यज्ञ कर्म को सम्पन्न करते हैं। यही ऋक् और साम देवगणो को यज्ञ पहुँचाते हैं॥१॥ मैंने ऋग्वेद से हवि को, साम द्वारा ओज को तथा यजुर्वेद द्वारा बल को पूछा है। हे इन्द्र! इस शांति पठित वेद मुझ अध्यापक का नाश न करता हुआ अभीष्ट फल प्रदान करे॥ २॥

५५ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—इन्द्र । छन्द—उष्णिक्)

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥१॥

हे इन्द्र ! अपने स्वर्गलोक के नीचे स्थित मार्गों द्वारा तुम
प्राणियों को कर्मरत होने की प्रेरणा देते हो । उन्हीं मार्गों द्वार
हमको सुखी बनाओ ॥ १ ॥

५६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-वृश्चिकादयः वनस्पतिः; ब्रह्मणस्पतिः;
छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति)

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ।
तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥१॥
इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः ।
सा विह्रु तस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी ॥२॥
यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि ।
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥३॥
अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः॥४॥
अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ।
विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥५॥
न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।
अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥६॥
अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः ।
सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥७॥
य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्ये न च ।
आस्ये न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥८॥

यह मधुक नाम्नी ओषधि, तिरश्चिराज नामक सर्प, काले सर्पनाग और ककपर्वा नामक सर्प के विषो को पृथक् करे ॥१॥ यह औषधि मधु से उत्पन्न होने के कारण ही मधुर है। यह भगकर विष को दूर करने और काटने वाले जीवा को नष्ट करने मे पूर्ण समर्थ है ॥ २ ॥ तेरे जिस अङ्ग को सर्प ने काटा है हम उस अङ्ग से विष को पृथक करते हैं और अल्प वीर्य मच्छर के विष को भी निष्प्रभावी करते है ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मणस्पते! यह व्यक्ति विष प्रभाव के कारण अपने अङ्गो को ऐंठ रहा है, इसके सन्धिस्थल ढीले पड गये हैं। तुम इसके अङ्गो को उसी भाँति सीधा करदो जैसे झुकाई गई सीक सीधी हो जाती है। इसे विष मुक्त करो ॥ ४ ॥ इस शर्कोटक नामक सर्प के विष को मैंने सप सहित नष्ट कर दिया है ॥ ५ ॥ हे बिच्छू! तेरी भुजा, शिर और मध्य मे भी किसी को दुख देने की शक्ति नही फिर तू मूखतावश उस क्षणिक विष को अपनी पूँछ में धारण किए क्या फिरता है ॥६॥ हे सर्प! तू चीटियो का भक्ष्य है, एव मोरनियाँ तुझे टुकडे टुकडे कर देती हैं। हे ओषधियो! इस शर्कोटक के विष को निष्प्रभावी बनाओ ॥ ७ ॥ हे बिच्छू! तेरी पंछ मे ही थोडा सा विष है। फिर भी तू मुख और पूछ दोनो से ही आक्रमण करता है ॥ ८ ॥

५७ सूक्त

(ऋषि—वामदेव। देवता—सरस्वती। छन्द—जगती)

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जना अनु।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥१॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यत ॥२॥

अभीष्ट वस्तु के अभाव मे तथा निष्फल याचना के फलस्वरूप मेरा जो अङ्ग पीडित है तथा मैं पागल जैसे हो गया हूँ, सरस्वती देवी मेरे उस अङ्ग को यथोचित दिशा प्रदान करे ॥ १ ॥ वरुण के निमित्त सप्त नदियां बहती हैं। आकाश रूप पिता एवं प्रमुख देवताओ के निमित्त पुत्र रूप मनुष्य हवि प्रदान करते हैं। द्यावा पृथ्वी मनुष्यो के कल्याण के लिए सर्वदा तत्पर रहती है तथा अन्न-जल से पूर्ण करती है ॥२॥

५८ सूक्त

(ऋषि-कौरुपथिः। देवता-इन्द्रावरुणौ। छन्द-जगती; त्रिष्टुप्)
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥१॥
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥२॥

हे सोम पान करने वाले इन्द्र एव वरुण! तुम इस आनन्द-दायक सोम का पान करो। तुम्हारा रथ देवो को चाहना वाले सोमयुक्त यजमान के घर पहुँचावे ॥ १ ॥ हे इन्द्र और वरुण! तुम काम्यवर्षक हो। तुम्हारे निमित्त यह सोमरस चमस आदि पात्रो मे संस्कारित किया गया है, तुम इस बिछे हुए कुशासन पर आसीन होकर अभीष्ट फल प्रदान करने वाले सोमरस का पान करो ॥२॥

५९ सूक्त

(ऋषि-बादरायणि। देवता-अग्निनाशनम्। छन्द-अनुष्टुप्)
यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।
वृक्षइव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥१॥

हम किसी के लिये निन्दनीय वाणी प्रयुक्त नही करते

परन्तु यदि कोई हमारी निन्दा करे तो वह शत्रु अपने सभी बन्धु-बान्धवों सहित उसी प्रकार सूख जांय, जैसे विद्युत वृक्ष को सुखा देती है ।।१।।

६० सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-गृहा:; वास्तोष्पति: । छन्द-त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभित मत् ॥१॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥२॥
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥३॥
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुद ।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥४॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूता गृहेषु नः ॥५॥
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥६॥
इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेण सह भूयांसो भवता मया ॥७॥

मैं मित्रवत् स्नेह पूर्ण नेत्रों से देखता हुआ अन्न का धारण किये अन्न का धारक सुन्दर मति से, धन आदि से प्रसन्न हो स्तुति करता हुआ अपने घरों को प्राप्त हो रहा हूँ । हे गृहो ! मुझ गृहपति के साथ सुखी हो । मुझ दूर से आने वाले से भयभीत न हो ॥ १ ॥ अन्न, रस, दुग्धादि से सम्पन्न यह आनन्द-दायक गृह मुझ दूर से आने वाले को अपना स्वामी समझें ॥ २ ॥ घर से दूर गया मनुष्य अपने जिन सुन्दर

पदार्थों से पूर्ण घरो का स्मरण करता है, हम उन गृहो को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं। वे घर मुझ बाहर से आने वाले को अपना स्वामी मानें ॥ ३ ॥ हे गृहो ! तुम प्रचुर धन और सुन्दर पदार्थों से पूर्ण होओ। तुम्हें भूख, प्यास व्याकुल न करे। अनुज्ञा के लिए प्रार्थना किये गये तुम मे रहने वाले मनुष्य धन आदि से पूर्ण रहें। तुम मुझ दूर से आने वाले से भयभीत न होओ ॥ ४ ॥ हमारे गृहों मे भेड, बकरी, गौ अन्नादि सभी उपभोग में आने वाली वस्तुऐं प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे गृहो ! तुम सुन्दर भाग्यशाली होओ तथा अन्न-धन से पूर्ण हो। तुममे प्रयुक्त होने वाली वाणी सत्य और प्रिय हो। तुम्हारे निवासी प्रसन्न मन रहें। भूखे, प्यासे मनुष्य तुममे न रहे। तुम हमसे भय न मानो ॥ ६ ॥ हे गृहो ! तुम मुझ दूर से आने वाले का अनुसरण न करो। तुम यहीं स्थित रहो। तुम हमारी सन्तति को शक्तिशाली बनाओ। मैं कल्याणकारी धन को प्रवास से अर्जित कर लाऊँगा। तुम उस धन और अधिक तेजस्विता को प्राप्त होना ॥७॥

६१ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–अग्निः। छन्द–अनुष्टुप्)

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥१॥
अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥२॥

हे अग्ने ! तुम्हारे समिधादान आदि से जो कर्म करना है, उसे हम तुम्हारे पास करते हैं। कृच्छ्चान्द्रायण आदि हम आपकी सेवा करते हुए पूर्ण करते हैं। हम उस कर्म द्वारा सुन्दर धारणा शक्ति वाले वेदों का पाठ करने वाले और सुखी एवं

दीर्घायु हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे पास ही हम शरीर को मुखाने वाली तपस्या करते है, उसके द्वारा हम श्रुतियों को सुनते हुए धारणा शक्ति से पूर्ण और दीर्घायु हो ॥२॥

६२ सूक्त

(ऋषि–मरीचिः काश्यपः । देवता–अग्निः । छन्द–जगती)
अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥१॥

यह गार्हपत्य अग्नि प्रवृद्ध शक्ति से पूर्ण है । वे हवि दान द्वारा महान् देवगणो का पोषण करते हैं । वे स्थावर जङ्गम विश्व के अधिपति ऋत्विजो द्वारा सन्मुख स्थापित किये जाते हैं । जैसे रथारूढ व्यक्ति प्रजा को स्वाधीन कर सकता है, वैसे ही यह प्रजा को स्वाधीन करते है । यह उत्तर वेदी मे स्थापित अग्नि मेरे शत्रुओं को तिरस्कृत करें ॥१॥

६३ सूक्त

(ऋषि–मरीचिः काश्यप । देवता–जातवेदा । छन्द–जगती)
पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थ्यैर्हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः ॥१॥

यजमान के हवि रूप भाग को देवताओ के लिये सहने वाले शत्रुओ पर विजयशील द्युलोक निवासी अग्निदेव को हम उक्थो द्वारा आह्वान करते है । वे हमे दुखो से मुक्त करें और दुर्गति देने वाले पापो को पूर्ण रूप से नष्ट कर डालें ॥१॥

६४ सूक्त

(ऋषि–यमः । देवता—आप.; अग्नि. । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती)
इद तद् कृष्ण शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।

आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥१॥
इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥२॥

आकाश पथ से उतरने वाले कौऐ ने मेरे अङ्गो पर प्रहार किया, उसके कारण प्राप्त हुए दुर्गतिप्रद पाप से यह अभिमन्त्रित जल मेरी रक्षा करे ॥ १ ॥ हे मृत्यु ! इस कौऐ ने तेरे मुख से मेरे शरीर को स्पर्श किया है, उससे प्राप्त पाप से अग्नि मेरी रक्षा करें ॥२॥

६५ सूक्त

(ऋषि—शुक्रः । देवता—अपामार्गः । छन्द—अनुष्टुप्)

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथां अधि वरीयो यावया इतः ॥१॥
यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥२॥
श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत्सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥३॥

हे अपामार्ग ! तू पाप को प्राक्षालन का साधन रूप और प्रतीचीन फल मे प्रवृद्ध है । मेरे सब पापो को पूर्ण रूप से नष्ट कर ॥ १ ॥ हे अपामार्ग ! जो दोष हमसे हो गया है, जिस पाप बुद्धि से हम दुखदायक पाप को पार कर चुके हैं, उसे हम सब ओर से तेरे द्वारा पृथक् करते हैं ॥ २ ॥ हे चिरचिटे ! कुत्सित नख वाले काले-पीले दांत वाले और व्याधिग्रस्त पुरुष के साथ हमने जो भोजनादि किया है, उससे उत्पन्न पाप को तेरे द्वारा पृथक करते हैं ॥३॥

---

६६ सूक्त

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-ब्राह्मणम् । छन्द-त्रिष्टुप्)

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।
यदस्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥१॥

मेघों से आच्छादित अन्तरिक्ष में जो वेद पढ़ा गया, तीक्ष्ण झंझावत में, वृक्ष के नीचे बैठ कर, हरित धान्यों के पास अथवा पशुओं के पास पढ़ा गया वेद हम वेद पाठियों को पुनः प्राप्त हो ॥१॥

६७ सूक्त

(ऋषि ब्रह्मा । देवता-आत्मा । छन्द-बृहती)

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥१॥

मुझे इन्द्रियाँ पुनः प्राप्त हों, जीवात्मा मुझमें पुनः प्रवेश करे, मुझे फिर धन प्राप्त हो, वेद भी मुझमें पुनः व्याप्त हो और यज्ञ वेदियों में रमने वाली अग्नियाँ फिर वृद्धि को प्राप्त हो ॥१॥

६८ सूक्त

(ऋषि-शन्ताति । देवता सरस्वती । छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री)

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥१॥
इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितृणां हविरास्यं यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥२॥
शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ॥३॥

हे सरस्वते ! तुम गार्हपत्य आदि स्थानों में अर्पित की हुई हव्य को ग्रहण करो और हमको पुत्रादि प्रदान करो ॥ १ ॥

हे सरस्वते ! तुम्हारे लिए जो घृतयुक्त हवि दी जा रही है, उसे पितरो को प्रेरित करो। तुम्हारे लिए दी गई कल्याणकारी हवि से हम मधुमय अन्न से पुष्ट हो ॥ २ ॥ हे शारदे ! हम तुम्हारे दर्शन से कभी रहित न हो। तुम हमको सुखप्रदायक होओ। तुम हमारे रोगादि को पूरी तरह शान्त करने वाली बनो ॥३॥

६६ सूक्त

(ऋषि—शन्ताति । देवता—सुखम् । छन्द—पङ्क्ति)

शं नो वातु शं नस्तपतु सूर्य ।
महानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥१

हे वायो ! हमारे लिए सुख प्रदान करते हुए विचरण करो। सूर्य के देवता हम सुखदायक ताप प्रदान करें। दिन रात और उषा हमारे लिए मङ्गलमय हो ॥१॥

७० सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-श्यनादयो मन्त्रोक्ता । छन्द-त्रिष्टुप, जगती अनुष्टुप)

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥१॥
यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् ।
इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति ।२
अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव ।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥३॥
अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥४॥
अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥५॥

हमारे उस शत्रु को जो अभिचार मन्त्रों से हमें मारने का सङ्कल्प लेकर होम कर रहा हो, उस शत्रु को मन-वचन और शरीर से किए गए कर्म के फलित होने से पहले ही पाप देव निर्ऋति मृत्यु से मिल कर नष्ट कर ॥ १ ॥ पाप देव निर्ऋति और राक्षस उस शत्रु के यथार्थ फल को झूंठा कर दें। इन्द्र से प्रेरणा पाये हुए देव उस शत्रु के कर्म को नष्ट कर तथा शत्रु का हमको नष्ट करने वाला वचन चरितार्थ न हो ॥ २ ॥ अजिर और अधिराज नामक मृत्यु दूत युद्धपिपासु शत्रु के यज्ञ को नष्ट करे। जो हमारे सन्मुख आकर हमें नष्ट करना चाहता है, उसके घृतयुक्त कर्म को विफल करदें ॥ ३ ॥ हे अभिचार रत शत्रुओ! मैं तुम्हारी दोनों भुजाओं को पृष्ट भाग में तथा तुम्हारे मन्त्र बोलने वाले मुख को बांधता हूँ। इस तरह मुख और भुजा बंध जाने पर मैं तुम्हारे कर्म को भी अग्नि के क्रोध से नष्ट करूँगा ॥ ४ ॥ हे अभिचार रत शत्रुओ! होम में लगी तुम्हारी दोनों भुजाओं को पृष्ट भाग में बांधता हुआ तेरे मन्त्र युक्त मुख को भी बांधता हूँ। यज्ञ से सिद्ध होने वाले तेरे इच्छित फल को भी मैं अग्नि के कोप से नष्ट करूँगा ॥५॥

७१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्नि। छन्द—अनुष्टुप)

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥१॥

हे मन्थन से उत्पन्न अग्ने! तुम यज्ञ आदि शुभ कार्यों में बाधा डालने वाले राक्षसों का नित्य ही संहार करते हो। अतः राक्षसों के विनाश के लिये हम तुम्हें पूर्ण रूपेण धारण करते हैं ॥१॥

—

७२ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–इन्द्र. । छन्द–अनुष्टुप्;त्रिष्टुप्)

उद् तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥१॥
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२॥
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥

हे ऋत्विजो ! बैठे न रहो । यज्ञ में इन्द्र के भाग को देखो, यदि वह परिपक्व न हुआ हो तो पकने के समय तक इन्द्र को स्तुतियों से सन्तुष्ट रखो और यदि पक गया हो तो इन्द्र के निमित्त अग्नि में हवि अर्पित करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! पापाधर्म नामक हवि पक चुकी है अतः शीघ्र यहां पधारो । सूर्य अपना आधे से कुछ कम मार्ग तै कर चुके है । सस्कारित सोमो सहित ऋत्विज पुत्रो द्वारा गृह स्वामी की उपासना करने के समान तुम्हारी उपासना करते है ॥ २ ॥ यह हवि दूध रूप से गौ के ऐन मे पकती है । इस समय दही की अवस्था को प्राप्त होने के लिए भी यह अग्नि मे पक रहा है । यह दधि धर्म ठीक प्रकार से पक चुका है । हे इन्द्र ! तुम इस सोमयुक्त हवि का पान करो ॥३॥

७३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—धर्मः अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ताः वा ।
छन्द—जगती, बृहती; त्रिष्टुप्)

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु ।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारव. ॥१॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥२॥
स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥३॥
यदुस्रियास्वाहुत घृतं पयोऽय स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबत रोचने दिवः ॥४
तप्तो वा घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पात पयस उस्रियायाः ॥५॥
उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियाया ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥६॥
उप ह्वये सुदुघा धेनुमेता सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥७॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूना वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्या पयो अघ्न्येय सा वर्धता महते सौभगाय ॥८॥
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इम नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥९॥ ।
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्य सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महासि ॥१०॥
सूयवसाद् भगवती हि भूया अथा वय भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वादानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥११॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम काम्य वर्षक हो । तुम देवगणो के शीर्षस्थ हो । पात्र मे स्थित घृत पूर्ण रूपेण पक गया है और अध्वर्युओ ने दुग्ध भी दुह लिया है । अब हम स्तोता तुम्हारा हवि से पूर्ण यज्ञ मे आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! अग्नि प्रज्वलित हो चुके, तुम्हारे लिये रखा गया घृत उनके द्वारा पक गया । अत हवि पाने के लिये यहा पधारो । हे काम्यवर्षक !

इस यज्ञ मे गौएँ प्रचुर दूध दे रही हैं, एव तुम्हारे यशोगान करते हुए होता आनन्द मग्न हो रहे हैं ॥ २ ॥ प्रवर्ग्य नामक यज्ञ तुम्हारे ही निमित्त किया गया है । चमस रूप पात्र को प्रत्येक देवता अग्नि मुख द्वारा चाहते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! घृत को उत्पन्न करने वाला दूध यज्ञ पात्र मे उडेल दिया है, जो तुम्हारा भाग है । अतः यहा पधार कर इस यज्ञ कार्य को सपन्न करो तथा इस तपे हुए घृत का पान करो ॥ ४ ॥ हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनो को यह घृत प्राप्त हो । अध्वर्यु तुम्हे हवि प्रदान करे । तुम दूध दही और घृत देकर मधुमय दुग्ध का पान करो ॥ ५ ॥ हे अध्वर्यो ! तुम गौ के दुग्ध को तप्त घृत मे डालो । वरणीय सूर्य ने शोक रहित स्वर्ग को दीप्तवान् बनाया, वह उषा गमन को ध्यान मे रखते हुए अत्यन्त दीप्तिवान् हो उठे हैं ॥ ६ ॥ मैं भली-भाँति दोहन योग्य गौ का आह्वान करता हूँ । सुन्दर कर वाला अध्वर्यु उसका दोहन करे । सविता देव उस सव उपनाम वाले दूध को हमे प्रदान करे ॥ ७ ॥ धनो की पोषक गौ वत्स की इच्छा से युक्त हिं शब्द करती हुई आवे और अश्विनीकुमारो के निमित्त दूध प्रदान करे । वह गौ हमारी वैभव वृद्धि के निमित्त समृद्धि को प्राप्त हो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम सब यजमानो के घर जाते हो । सब तुम्हारे सेवक हैं । तुम मेरी उपासना का ध्यान रखते हुए पधारो और शत्रुओ का सहार करके उनके धन को हमे लाकर दो ॥९॥ हे अग्ने ! उदारता पूर्वक हमे वैभवशाली बनाओ । तुम्हारे तेज उच्चगामी हों । पति, पत्नि के कर्म को तुम समवत् बनाओ ॥ १० ॥ हे धर्मदुघे ! तुम सुन्दर तृण चरती हुई सौभाग्यशालिनी हो। हम भी सौभाग्यपूर्ण हो ! तुम तृण चरती हुई विचरण कर पवित्र जल का पान करो ॥११॥

७४ सूक्त (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि-अथर्वाङ्गिराः । देवता-मंत्रोक्ताः,जातवेदाः । छन्द-अनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।)

अपचितां लोहनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम ।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥१॥
विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् ।
इदं जघन्या मासमा च्छिनद्मि स्तुकामिव ॥२॥
त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम् ।
अथो यो मन्युस्ते पते तमु ते शमयामसि ॥३॥
व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥४॥

हमने सुना है कि गण्डमालाओ की माता काले वर्ण की पिशाची है । इन कष्टदायिनी गण्डमालाओ को मै अथर्वा से प्राप्त रुद्रात्मक शर से नष्ट करता हूँ ॥ १ ॥ मुख्य रूप से उठी हुई गण्डमाला को भी मैं नष्ट करता हूँ, शीघ्र ठीक हो जाने वाली तथा अल्प प्रयत्न से दूर हो जाने वाली गण्डमालाओ को भी मैं नष्ट करता हूँ ॥ २ ॥ हे ईर्ष्यालु पुरुष ! मैं तेरे स्त्री के प्रति क्रोध का शमन करता हूँ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! इस यज्ञ कर्म द्वारा प्रसन्न होकर हमारे घर मे प्रदीप्त रहो । हम अपनी सन्तति सहित तुम्हारी उपासना करते हैं ॥४॥

७५ सूक्त

(ऋषि-उपरिबभ्रव । देवता-अघ्न्या । छन्द-त्रिष्टुप्, पङ्क्ति)

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अप. सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥१॥
पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः ।

उप मा देवीर्देवेभिरेत । इमं गोष्ठमिद सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥२

हे गौ ! तुम सुन्दर चारागाह मे तृण चरती हुई सुन्दर सन्तति से पूर्ण पवित्र जल-पान करती हुई चोरो द्वारा न चुराई जाती हुई व्याघ्र आदि हिंसक पशुओ से सुरक्षित रहो । रुद्रदेव के वाण से भी तुम रक्षित रहो ॥ २ ॥ हे धेनुओ ! तुम दूध देकर प्रसन्न करती हो तथा अपने गोष्ठ से परिचित हो । तुम अपने सब वत्सो सहित हमारे पास आओ और हमारे घर गोष्ठ और गृह स्वामियो को दूध, घी से सम्पन्न करो ॥२॥

७६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अपचिद् भैषज्यम्, प्रभृति ।
छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् उष्णिक्)

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः ।
सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसी· ॥१॥
या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्या ।
विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रस. ॥२॥
यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्य मवतिष्ठति ।
निरास्त सर्व जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रित. ॥३॥
पक्षी जायान्य पतति स आ विशति पूरुषम् ।
तदक्षितस्य भेषजमुभयो. सुक्षतस्य च ॥४॥
विद्म वै ते जायान्य जान यतो जायान्य जायसे ।
कथं ह तत्र त्व हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ॥५॥
धृपत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥

गण्डमालाएँ पीवयुक्त और कष्ट साध्य होती हैं । यह मत्र और औषधियो के द्वारा नष्ट हो । यह तूलादि रूप सेहू से भी अधिक निर्वीय हैं और लवण से भी अधिक प्रवाहित होने वाली

हैं। यह अपचियाँ अधिक बह कर नष्ट हों ॥ १ ॥ ग्रीवा की गण्डमालाएं बगल की गाँठे तथा गुह्य अङ्गो के घाव सब मन्त्र और औषधि के प्रभाव से स्वय नष्ट हो ॥ २ ॥ जो क्षय रोग हड्डियो मे प्रविष्ट होकर माँस को भी क्षय कर डालता है तथा ककुद मे होने वाला यक्ष्मा और अधिक मैथुन द्वारा जो क्षय रोग उत्पन्न होता है, सभी नष्ट हो ॥ ३ ॥ अधिक मैथुन फलस्वरूप प्राप्त क्षय रोग शरीर मे सर्वत्र व्याप्त होता है, वह थोडे समय से या पुराना रोग मन्त्र वाणी से नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥ हे समागमजन्य क्षय ! हम तेरे कारण को जानते है। हम जिस यजमान के घर मे रोग दूर करने वाले इन्द्रादि देवताओ के लिये हवि कर रहे है, उस घर मे तू किस प्रकार घुस आया है ? ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! इस कलश स्थित सोम का पान करो। तुम वृक्ष का सहार करने वाले हो। हमको धनो से युक्त करो। मध्यन्दिन सवन मे सोम-सेवन करते हुए हमको ऐश्वर्य मे स्थापित करो ॥ ६ ॥

७७ सूक्त

(ऋषि–अङ्गिरा । देवता–मरुत । छन्द–गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती)

सातपना इद हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । अस्माकोती रिशादसः ॥१॥
यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघासति ।
द्रुह पाशान् प्रति मुञ्चता स तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥२॥
सवत्सरीणा मरुत स्वर्का उरुक्षया सगणा मानुषास ।
ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनस सातपना मत्सरा मादयिष्णव ॥३

हे मरुद्गणो ! तुम शत्रुओ के बाधक हो। यह आहुति तुम्हारे निमित्त अर्पित है। इसे स्वीकार कर हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥ हे मरुद्गणो ! जो शत्रु कुभाव पूर्ण आक्रोश से हमारे पीछे हमारे हृदय को दुखाना चाहे वे वरुणपाश को प्राप्त हों।

तुम उस दुष्ट को अपने सतापदायी वाण से नष्ट करो ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष म निवासी मरुद्गण प्रत्येक सवत्सर मे अवतीर्ण होने वाले मन्त्रो से स्तुत्य प्राणियो के लिये कल्याणकारी सबको शोकाकुल करने वाले हैं,वे हमको प प के पाशो से मुक्त करें ।३।

७८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अग्नि । छन्द—उष्णिक्, त्रिष्टुप् ।)

वि ते मुञ्चामि रशना वि योक्त्रं वि नियोजनम् ।
इहैव त्वमजस्र ईध्यग्ने ॥१॥
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्य स्मभ्य द्रविणेह भद्र प्रेम वोचो हविर्दा देवतासु ॥२॥

मैं तुम्हे रोग रूप रस्सी से मुक्त करता हूँ । कण्ठ बगल मध्य अङ्ग और नीचे अङ्ग मे स्थित गाँठ रूप बन्धन को खोलता हूँ । हे अग्ने ! तुम इस रोगी पर कृपा करते हुए प्रदीप्त हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! मैं तुम्हें हवि वहन करने के लिये नियुक्त करता हूँ । तुम मुझे पुत्र, पौत्रादि एव धन प्रदान करो । तुम यजमान को शक्ति दने वाले हो । इस यजमान की इच्छा इन्द्रादि देवगणो तक पहुँचाओ ॥३॥

७९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अमावस्या । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यद् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये सवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञ पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥१॥
अहमेवास्म्यमावास्या मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठा समगच्छन्त सर्वे ॥२॥
आगन् रात्री सगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥३॥

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान् ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥

हे अमावस्ये ! देवगणा ने तुम्हारी महिमा को जान कर जो हविभाग तुम्हे अर्पित किया है, उसे स्वीकार करो और हमारे यज्ञ को पूर्ण करो। तुम हमे सुन्दर सन्तति और धन प्रदान करो ॥ १ ॥ मैं अमावस्या का अभिमानी देवता हूँ। श्रेष्ठ कर्मी देवताओ का मैं निवास स्थान हूँ और साध्य-सिद्ध नामक ज्येष्ठ इन्द्र और इन्द्र प्रमुख देवता मुझमे मिलते है ॥२॥ अमावस्या हमे वैभवशाली बनाने को पधारे। वह अन्न धन और रस को पुष्ट करती हुई हमारी ओर आवे। हम इस अमावस्या की हवि द्वारा उपासना करते हैं ॥ ३ ॥ हे अमावस्ये ! कोई देवता बिना तेरे सृष्टि की रचना करने मे समर्थ नही हुआ। हम भी जिस फल की कामना से हवि अर्पित करते हैं, हमारी वह कामना पूर्ण हो तथा हम धनवान् हो ॥४॥

८० सूक्त

[ऋषि—अथर्वा। देवता—पौर्णमासी, प्रजापति । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् ।]

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यत पौर्णमासी जिगाय ।
तस्या देवै सवसन्तो महि वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥१॥
वृषभ वाजिन वय पौर्णमास यजामहे ।
स नो ददात्वक्षिता रयिमनुपदस्वतीम् ॥२॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणाम् ॥३॥
पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्ना रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वा यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृत प्रविष्टा ॥४॥

पूर्णिमा पूर्ण रूपेण पूर्व दिशा मे निवास करती है तथा

पश्चिम और मध्याकाश मे प्रकाशित होती है। जस पूर्णिमा मे अग्नि सोम आदि की महिमा से निवास करते हुए हम अन्न से सम्पन्न हो ॥ १ ॥ काम्यवर्षक पूर्णिमा की हम उपासना करते हैं। वह अविनाशी और अक्षय धन को हमें प्रदान करे ॥ २ ॥ हे प्रजापते ! तुम सब रूपों को रचने मे पूर्ण समर्थ हो। तुम्हारा जैसा कार्य कोई दूसरा नही कर सकता। हम जिस कामना से हवि अर्पित करते हैं, हमारी वह कामना पूर्ण हो और हम धनवान बनें ॥ ३ ॥ पूर्णिमा यज्ञ योग्य है। रात्रि अवसान पर उत्पन्न होने वाली तृतीय सवनव्यापी तथा सोम आदि आहुतियों से सम्पन्न है। हे यज्ञ योग्य पूर्णिमे ! जो यजमान तुझसे अभीष्ट फल की याचना करते हैं, वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

८१ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च।
छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; पंक्ति)

पूर्वापरं चरतो माययं तौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूं रन्यो विदधज्जायसे नवः ॥१॥
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्ना केतुरुषसामेष्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२॥
सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि।
अनूनं दर्श मा कृध प्रजया च धनेन च ॥३॥
दर्शोऽसि समग्रोऽसि दर्शतोऽसि समन्तः।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥४॥
योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व।
आ वयं प्यासिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥५॥

: देवा अंशुमाप्ययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तानस्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्यायन्तु भुवनस्य गोपा ॥६॥

आकाश मे गमनशील सूर्य और चन्द्रमा जल से पूर्ण अन्तरिक्ष म विचरण करते है। सूर्य सब भुवनो के प्राणियो को देखता है और चन्द्रमा ऋतुओ के पक्षो की उत्पत्ति करता हुआ स्वय नित्य उदय होता है ॥ १ ॥ हे चन्द्रमा ! तुम एक-एक कला से बढते हुए नित्य उदय होते हो। सब तिथियाँ तुम्हारे ही वश मे है। तुम रात्रि के निर्माणकर्ता और सर्वश्रेष्ठ हो। अथवा तुम दिनो के बनाने वाले हो। शुक्ल पक्ष मे पश्चिम म दिखाई पडते हो तथा कृष्ण पक्ष मे रात्रि के अवसान से पूर्व ही छिप जाते हो। तुम देवताओ के लिए हविभाग निश्चित करने वाले हो और दीर्घ आयु भी प्रदान करने वाले हो ॥ २ ॥ हे चन्द्रमा के पुत्र रूप बुद्ध ! तुम शूरवीरो के पोषण कर्ता हो, तुम दर्शनीय हो। हवि आदि अर्पित कर तुम्हे प्रसन्न करने वाला मैं पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न होऊँ ॥ ३ ॥ हे सोम ! तुम दर्शनीय हो। तृतीयादि मे स्फुट रूप से दर्शित हो, पूर्णिमा को समग्र रूप से उदय होते हो। मैं भी इसी भाति पशु धन से सम्पन्न होऊँ ॥ ४ ॥ जो हमारा द्वेषी है या जिससे हमे शत्रुता है, उनके प्राणो को हे चन्द्र ! तुम हरण करो और हमे गौ प्रजा और धन से पूर्ण करो ॥ ५ ॥ जिस एक कलात्मक सोम को देवता वृद्धि करते है और जिस अक्षय सोम को पितर आदि ग्रहण करते हैं, इन दोनो प्रकार के सोमो सहित इन्द्र वरुण बृहस्पति, विश्वेदेवा आदि हम समृद्ध कर ॥ ६ ॥

८२ सूक्त (आठवां अनुवाक)

(ऋषि-शौनक, (सपत्नाम)। देवता-अग्नि। छन्द-त्रिष्टुप्, बृहती जगती)

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥१॥
मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥२॥
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥३॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥४॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥५॥
घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे।
घृतं ते देवीर्नप्त्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥६॥

हे गौओ! सुन्दर स्तुत्य अग्निदेव की उपासना करो एवं हमें मंगलमय धन प्रदान करो। इस यज्ञ में अग्नि आदि देवगणों को लाओ। घृत की मधुर धाराऐं उन्हें प्राप्त हों ॥ १ ॥ आहुतियों के आधार अग्निदेव को मैं धारण करता हूँ। पुष्ट होने के निमित्त मैं उन्हें अपने वश में करता हूँ, फिर मैं प्रजा आदि को धारण करता हूँ। निरोग रहने के निमित्त वैश्वानर अग्नि को धारण करता हूँ। अग्नि में यह समिधा भली भांति आहुत हो ॥२॥ हे अग्ने हम तुम्हारे उपासक हैं। हमें ऐश्वर्य प्रदान करो। हमारे द्वेषी तुम्हें अपने वश में न कर पावें। तुम अपने रूप में बल युक्त हो, वृद्धि को प्राप्त हो। तुम्हारा दास भी किसी से कम न होता हुआ समृद्ध हो ॥ ३ ॥ उषा के साथ ही अग्नि

दीप्यमान होते हैं एवं दिनों के साथ भी यह अग्नि प्रज्वलित होते है तथा यही सूर्य रूप धारण कर उषा को भी दीप्यमान करते हैं। यह सूर्य रूप अग्नि द्यावा पृथ्वी में सर्वत्र ही दीप्यमान होते हैं ॥ ४ ॥ यह अग्नि प्रत्येक उषाकाल में दीप्यमान होते हैं तथा प्रत्येक दिन के साथ प्रकाशित होते है। यह सूर्य रूप धारण कर किरणों में भी व्याप्त होते हैं। यह द्यावा पृथ्वी को अपने तेज से प्रकाशित करते है ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तुम्हारा घृत आकाश मे है। मनु तुम्हे घृत से प्रज्वलित करते हैं। तुम्हारे नप्ता घृत-जल को तुम्हारे सम्मुख लावें और गौएं तुम्हारे निमित्त घृत उत्पन्न करें ॥ ६ ॥

८३ सूक्त

(ऋषि-शुनःशेपः। देवता-वरुणः। छन्द-अनुष्टुप्, पंक्ति; त्रिष्टुप्)

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मियः।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१॥
धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥२॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥३॥
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये।
दुःष्वप्न्यं दुरितं निः ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥

हे वरुण! जलों मे अवर्णनीय स्वर्ण निर्मित गृह है, वह अन्य किसी को नही प्राप्य होता। हममे स्थापित वे वरुण अपने गृहों का त्याग कर दें ॥ १ ॥ हे वरुण! हमारे शरीर स्थित अपने सब रोग स्थानों से हमारी रक्षा करो एव पापों से हमें मुक्त करो। हम अपने द्वारा कहे शाप दोष से भी मुक्त

हो ॥ २ ॥ हे वरुण ! हमारे शरीर के ऊपरी भाग निम्न भाग तथा मध्य भाग मे स्थित पाशो को निवारण कर नष्ट करो। फिर हम सब पापो से मुक्त होकर निरोग एव स्वस्थ जीवन यापन करें ॥ ३ ॥ हे वरुण ! सब पापो से हमारी रक्षा करो। अपने अच्छे और बुरे दोनो ही पाशो से हमे छुडाओ। दु स्वप्न युक्त दोपो से भी हमारी रक्षा करो। जिससे हमे पुण्य लोक की प्राप्ति हो ॥ ४ ॥

८१ सूक्त

(ऋषि-भृगु । देवता—अग्नि , इन्द्र । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

अनाधृष्यो जा जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह।
विश्वा अमीवा प्रमुञ्चन् मानुषीभि शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम्
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम।
अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥२॥
मृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठा परावत आ जगम्यात् परस्या।
सृक सशाय पविमिन्द्र तिग्म वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥३॥

हे अग्ने ! तुम प्राणियो के ज्ञाता हो। तुम अमर हो एव शक्ति धारक हो। तुम इस यज्ञ मे प्रज्वलित हो। और अपने कल्याणकारी रक्षा साधनो सहित हमारा रक्षण करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम क्षय रोग से रक्षा करने वाले बल सहित प्रकट हुए हो। हे काम्यवर्षक अग्ने ! तुम प्रकट होकर शत्रुवत् व्यवहार करने वाले लोगो का विनाश करो तथा स्वर्ग प्राप्ति मे सहायक हो ॥ २ ॥ सिंह के समान पराक्रमी इन्द्र स्वर्ग से पधारें और अपने तीक्ष्ण वज्र से हमारे शत्रुओ का सहार करें तथा युद्ध के लिए तत्पर शत्रुओ का दमन करें ॥३॥

——

८५ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। (स्वस्त्ययनकामः। देवता–तार्क्ष्यः। छन्द-त्रिष्टुप्)

त्य मू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

हम तृक्ष पुत्र सुवर्ण को स्तुति के लिए आह्वान करते हैं। देवगण इनके निमित्त ही सोम को लाए थे, यह तिरस्कारक बल से युक्त है। यह मुझ अरिष्टनेमि के जनक, शत्रु विजेता तथा तीव्रगामी है। यह इन लोक रूप रथों को सोम प्राप्ति के समय शीघ्र ही लाँघ गये ॥ १ ॥

८६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) देवता-इन्द्र। छन्द-त्रिष्टुप्)

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु ॥१॥

आये हुये भयो की रक्षा के निमित्त मे इन्द्र को आहूत करता हूँ। सब युद्धो मे आने वाले उस इन्द्र को आहूत करता हूँ। शक के पुरोहित इन्द्र का मैं आह्वान करताहूँ। वह इन्द्र हमको कल्याण प्रद होवें ॥ १ ॥

८७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—रुद्र.। छन्द—जगती)

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ।१।

जो रुद्रदेव दृष्टव्य रूप से अग्नि मे, वरुण रूप से जल मे तथा सोम रूप लताओ मे प्रविष्ट रुद्र देव सब जीवो की रचना करते हैं। उन रुद्रात्मक अग्नि एवम् अन्य गुण से युक्त वाले रुद्र के लिये हमारा नमस्कार है ॥ १ ॥

८८ सूक्त

(ऋषि-गरुत्मान । देवता-सर्पविषापाकरणम् । छन्द-बृहती)

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि । विषे विषमपृक्था विषमिद् वा अपृक्थाः।
अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि ॥१॥

हे विष ! तुम काटे हुये पुरुष से दूर होवो । विष वाले सर्प में ही प्रवेश करो । तुम जिसके भी विष हो उसी को ग्रहण करो एवम् उसे नष्ट करो ॥ १ ॥

८९ सूक्त

(ऋषि-सिन्धुद्वीपः देवता-अग्निः छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक)

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥२॥
इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् ।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥३॥
एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय ।
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥४॥

दिव्य जल को एकत्रित कर मैं औषधि रस मिलाता हूं । इससे मुझे तेज की प्राप्ति होगी । हे अग्ने ! दूध लिये मैं तेरे समीप आया हूँ अत. तुम अपनी शक्ति से युक्त करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! मुझे बलवान बनाओ । सन्तान, प्रजा तथा जीवन भी प्रदान करो । देवगणों तथा ऋषियों द्वारा मैं पवित्र बनाया जाऊँ ॥ २ ॥ हे जलो ! मेरे पापों का नाश करो । पिना का सम्मान न करने से, ऋण न चुकाने से, अन्य असत् आचरणों से उत्पन्न पाप को नष्ट करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी प्रदीप्ति

के समान मैं फल युक्त बनूं। तेजरूपा तुम मुझे तेज प्रदान करो ॥ ४ ॥

९० सूक्त

(ऋषि-अङ्गिराः। देवता-मंत्रोक्ता। छन्द-गायत्री; बृहती; जगती)

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम्। ओजो दासस्य दम्भय॥१
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै।
म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते।
यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः।
अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः।
यदाततमव तत्तनु यदुत्तं तत्तनु ॥३॥

हे अग्ने! पूर्व शत्रुओं के समान इस हिंसा प्रवृति युक्त शत्रु को बल और वीर्य से विहीन करो ॥ १ ॥ हम इन्द्र बल से उनके धर्म का अनुसरण करते है। हे दुष्ट! तेरे सन्तानोत्पत्ति वाले वीर्य को मैं वरुणास्त्र से नष्ट करता हूँ ॥ २ ॥ बुरा व्यवहार समान गाली देने वाले के पीडायुक्त दुष्कर्म ससार होवें। ये मन्दकान्ति होवें तथा दुष्ट स्त्रियों के साथ भी कोई नीच कर्म न करने पावें ॥ ३ ॥

९१ सूक्त (नौवाँ अनवाक)

[ऋषि-अथर्वा। देवता-चन्द्रमाः, इन्द्रः। छन्द-त्रिष्टुप्]

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१॥

इन्द्र हमे सुखदायी तथा रक्षक होते हुये शत्रुओ का नाश करें। इन्द्र हमे निडरता प्रदान करें। हमको वे दीप युक्त बल प्रदान करें ॥ १ ॥

—०—

९२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-चन्द्रमा , इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप्)
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥१॥

इन्द्र हमारे रक्षक बन कर शत्रुओं को दूर करें। इन्द्र की कृपा मति के अधीन हुये हम उनसे कल्याण की प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

९३ सूक्त

(ऋषि-भृग्वङ्गिरा । देवता- इन्द्र । छन्द-गायत्री)
इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥१॥

इन्द्र की सहायता से हम रण की लालसा युक्त पुरुषों को अपने वश में करें। वे इन्द्र सभी को मार डालें ॥ १ ॥

९४ सूक्त

[ऋषि—अथर्वा । देवता-सोम । छन्द-अनुष्टुप्]
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि ।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः समनसस्करत् ॥१॥

राजा सोम के लिये हम रथ पर आरूढ़ करके यहाँ लाते हैं। इन्द्र देव हमारी सन्तानों को हमारे अनुकूल बनावें ॥ १ ॥

९५ सूक्त

[ऋषि-कपिञ्जल । देवता- गृध्री । छन्द—अनुष्टुप्]
उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः ।
उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥१॥
अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव ।
कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥२॥

आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत ।
अपि नह्याम्यस्य मेढ़्ं य इतः स्त्री पुमाञ्जभार ॥३॥

आकाश मे गिद्धो के समान शत्रु के प्राण निकल जाँय। इस शत्रु के अन्तस्थल को यमदूत शोक सतप्त पहुँचावें। थकित बैलो के उठाने के समान, भूँकते कुत्तो को भगाने के समान, गौपालको के द्वारा भेड़िया भगाने के समान, ही मैं शत्रु के प्राणो को निकालता हूँ॥ २॥ हमारे धन के हरण करने वाले पुरुष व स्त्री के मर्मस्थल को छेदता हूँ। मैं शत्रु को नष्ट करता हूँ॥ ३॥

९६ सूक्त

(ऋषि—कपिञ्जल: । देवता–वय । छन्द–अनुष्टुप्)

असदन् गाव: सदनेऽपप्तद् वसतिं वय: ।
आस्थाने पर्वता अस्थु: स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥१॥

जैसे गाये गोष्ठ की ओर गमन करती है, पक्षी घोसलो को प्राप्त होते है और पर्वत भी अपने स्थान पर स्थित हैं उसी तरह शत्रु स्थान पर मैं वृक, वृकी को विद्यमान करना चाहता हूँ॥ १॥

९७ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता–इन्द्राग्नी । छन्द-त्रिष्टुप्, गायत्री, प्रभृति)

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥१॥
समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः स सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति स देवाना सुमतौ यज्ञियानाम् ॥२॥
यानावह उशतो देव देवास्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवासः पपिवासो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥३॥

सुगा वो देवा. सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणा ।
वहमाना भरमाणा. स्वा वसूनि वसु घर्म दिवमा रोहतानु ॥४॥
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपति गच्छ । स्वां योनि गच्छ स्वाहा ॥५॥
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सुवीर्यः स्वाहा ॥६॥
वषड्हुतेभ्यो वषडहुतेभ्य ।
देवा गातुविदो गातुं वि त्वा गातुमित ॥७॥
मनसस्पत इम नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा॥८

हे अग्ने ! हम तुम्हे होता रूप स्वीकार करते हैं । होता रूप मे मानने से तुम देवगणों का पूजन कार्य करो । हमारी कामना के ज्ञाता हमारी हवि को ग्रहण करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हमे स्तुति योग्य वाणी प्रदान करो । हमे पशु से भी प्रदान करो । हे हर्यश्ववान इन्द्र तुम हमे वेद के ज्ञाता बनाओ । देवताओ के अग्निहोत्र एवम् देवताओ की कृपायुक्त मति द्वारा हमे सुख सम्पन्न करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हवि के कामना वाले आह्वाहित देवो को सधस्थ मे प्रेरित करो । हे वसुओ ! तुम यजमान को धन दो ॥ ३ ॥ हे देवगणो ! हमने भवन बना तुम्हारे रास्ते को सुगम बनाया है । तुम हमे धन दिलाओ ॥४॥ हे यज्ञ ! तुम विष्णु के पास जाओ । तत्पश्चात् यजमान के पास फल सम्पन्न होकर आओ । तदनन्तर शक्ति योनि को प्राप्त करो और यह हवि रूप घृत ग्रहण करो ॥ ५ ॥ हे यज्ञपते ! यह यज्ञ तुम्हारे कल्याण को होवे । यह घृत की आहुति अग्नि देव ग्रहण करें ॥ ६ ॥ जिन देवो की पूजा पहिले न की, तथा जिनकी की है उन सभी को यह घृत आहुति प्राप्त होवे । हे देवगण ! जिस मार्ग से तुम आये उसी मार्ग से यज्ञ को सम्पन्न कर पधारो ॥ ७ ॥ हे मन के स्वामिन् ! हमारे यज्ञ को देव-

ताओ के सामने, पृथ्वी तथा आकाश मे स्थापित करो। यह वाणी की देवी सरस्वती का कथन है ॥ ८ ॥

६८ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–मन्त्रोक्ता । छन्द–विराट)

स वर्हिरक्त हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना स मरुद्भि ।
स देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्र गच्छतु हवि स्वाहा ॥१॥

यह स्रुवा आदि रखने का स्थान वर्हि, पुरोडाश आदि से तथा वसु देवो से, इन्द्र, मरुद्गण और विश्वदेवो से भी सशक्त हो गया है। ऐसा हवि इन्द्र को प्राप्त होता हुआ स्वाहुत हो ॥ १ ॥

६६ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा । देवता–वेदि छन्द–त्रिष्टुप्)

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामि मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदन हरित हिरण्यय निष्का एते यजमानस्य लोके ॥१॥

हे दर्भस्तम्ब ! वेदी पर फैल कर उसे चारो तरफ से ढक देवो ! यजमान को नष्ट न करो। यह घास हरे रग का सुन्दरता से युक्त होताओ के लिये आसन रूप है। यजमान क पुण्यास्थलो मे यह सुवर्ण रूप होवे। हे दर्भ ! तुम वेदी पर फैल जाओ ॥ १ ॥

१०० सूक्त

(ऋषि–यम । देवता–दु ष्वप्ननाशनम् । छन्द–अनुष्टुप्)

पर्यावर्ते दु ष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्या ।
ब्रह्माहमन्तर कृण्वे परा स्वप्नमुखा शुच ॥१॥

मैं बुरे स्वप्न और निर्धनता से हीन बनूँ । दुस्वप्न

निवारण के मन्त्र मे समर्थ होता हुआ मैंने उसे कवच के रूप मे धारण कर लिया है। अत मेरे सभी शोक दूर होवें ॥ १ ॥

१०१ सूक्त

(ऋषि-यम । देवता-दु ष्वप्ननाशनम् । छन्द अनुष्टुप,)

यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिव नहि तद् दृश्यते दिवा ॥१॥

स्वप्न म खाने वाले अन्न को मैं सवेरे नही देख पाता। स्वप्न और अखाद्य भोजन आदि सभी अन्न कल्याणकारी होवें ॥ १ ॥

१०२ सूक्त

(ऋषि—प्रजापति । देवता—द्यावापृथिव्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती ।)

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मा हिंसिषुरीश्वरा ॥१॥

आकाश, पृथ्वी और मृत्यु को प्रणाम करता हुआ मैं दीर्घ काल जीवी बनूं, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के स्वामी अग्नि, वायु और सूर्य मेरे को कष्ट कर न हावें तथा मृत्यु भी मुझे न मार सके ॥१॥

१०३ सूक्त (दसवा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आत्मा । छन्द—त्रिष्टुप्)

को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।
को यज्ञकाम क उ पूर्तिकाम को देवेषु वनुते दीर्घमायु ॥१॥

इस दुर्गति रूप पिशाची से हम बचावेगा ? अनुष्ठित हुए हमारे यज्ञ का कौन इच्छुक है ? कौन हमे धन देगा ? दीर्घायु देव कौन है ? ॥१॥

१०४ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आत्मा । छन्द—त्रिष्टुप्)

यः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥१॥

भिन्न-भिन्न रङ्ग युक्त, वत्स-युक्त, अथर्वा से वरुण को प्राप्त हुई गौ बृहस्पति के सखा प्रजापति शरीर के तेज को प्रदान करे ॥१॥

१०५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—अनुष्टुप्)

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥१॥

हे माणवाक ! मनुष्यो के लौकिक कर्म को दूर करने वाला, देवात्मक वाणी कहने वाला स्वाध्याय को साथियों के साथ वेद सिद्धांत वाली प्रणितियों का आश्रय ग्रहण करो ।।१।।

१०६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वाः । देवता-जातवेदाः; वरुणश्च । छन्द-त्रिष्टुप्)

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥१॥

हे अग्ने ! हमारे विस्मर्ण और लुप्त हुए कर्मों से उत्पन्न दोषो को नष्ट करो । साग कर्म पूण होने से हमे अमरत्व की प्राप्ति होवे ॥१॥

१०७ सूक्त

(ऋषि-भृगुः । देवता-सूर्यः, आपश्च । छन्द-अनुष्टुप्)

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् ॥१॥

कश्यप नामक सूर्य से युक्त सात किरण जल धाराओ को नीचे करती है। हे व्याधिग्रस्त प्राणी ! ये वृष्टि रूपी जल तेरे कापायादि पापो को नष्ट करे ॥१॥

१०८ सूक्त

(ऋषि-भृगु । देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप)

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने।
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ॥१॥
यो न सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेद ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेद ॥२॥

हे अग्ने ! हमे मारने की इच्छा वाला, तेज को नष्ट करने वाला, कोई पीडामयी राक्षसी दु ख देवे। शत्रु का घर सन्तान आदि से रहित रहे ॥ १ ॥ जो हमको सोते मे,जागते मे बैठते मे और उठते मे मणि की लालसा रखता है उसे हे देवो ! वैश्वानर अग्नि के योग से समाप्त करो ॥२॥

१०९ सूक्त

(ऋषि-बादरायणि । देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥१॥
घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्य सिकता अपश्च ।
यथाभाग हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥
अप्सरस सधमाद मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ स सृजन्तु घृतेन सपत्न मे कितव रन्धयन्तु ॥३॥
आदिनव प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥४॥

यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।
स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ॥५॥
संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥
देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम ।
अक्षान यद् बभ्रू नालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ॥७॥

विजय दिलाने वाले देवगणों को हमारा नमस्कार है। वभ्रु पाशो से विजय कराते हैं। मैं मन्त्रित पाशो को घृत से व्याप्त करता हूँ। वभ्रु देव विजय के कार्य मे हम सुख प्रदान करें॥ १॥ हे अग्ने! अन्तरिक्ष मे अप्सराओ को घृत ग्रहण कराओ। शत्रुओ को धूल एवम् जल प्रदान करो। हवि ग्रहण करते हुए इन्द्रादि देव तृप्त का प्राप्त होवे॥ २॥ मेरे खेलने के युक्त हाथो मे विजय दिलाती हुई अप्सरायें शत्रु को मेरे वश मे करें॥ ३॥ हे देव! मैं शत्रु को नष्ट करने के लिये खेलता हूँ अत मुझे विजय लक्ष्मी प्रदान करो। हमारे द्वेषी को नष्ट कर डालो॥ ४॥ शत्रु के धन को जितवाने वाले और शत्रु के अक्षो पर विजय दिलाने वाले देव हमारी हवि का भक्षण कर गन्धर्वो सहित प्रसन्न होव॥ ५॥ हे गन्धर्वो! धन दिलाने से तुम्हारा सवसव नाम है। यह गन्धर्व राष्ट्रभृत अप्सराओ के सम्बन्धी थे। गन्धर्वो की सोम युक्त पूजा से हम धन के स्वामी बनें॥ ६॥ धन प्राप्ति को अग्नि देव का आह्वान करता हूँ। वभ्रु द्वारा अधिष्ठित पाशो को हम प्राप्त करते हैं। इसलिये ये सभी देव विजय को प्राप्त कराने का कार्य करें॥७॥

---

११० सूक्त

(ऋषि-भृगु । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द-गायत्री, त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)
अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा ॥१॥
याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ॥२॥
उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः ।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥३॥

हे अग्ने ! हे इन्द्र ! वृत्र के मारने वाले हो । तुम यजमान के पापो को शान्त करो ॥ १ ॥ देवताओ ने जिन इन्द्राग्नि की सहायता से स्वर्ग पाया । जो इन्द्राग्नि सब प्राणियो मे व्याप्त है, सबके ज्ञाता हैं, इस प्रकार के इन्द्राग्नि को विजयाभिलाषी मैं आहूत करता हूँ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! सोम पात्र से बृहस्पति ने तुम्हे वश मे किया । इसी तरह सोम सिद्धि यजमान का धन आदि का पालन स्तुतियो को सुनने यहा पर पधारो ॥३॥

१११ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता— वृषभ । छन्द—त्रिष्टुप्)
इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् ॥१॥

हे वृषभ ! तुम सोम धारक व मनुष्यो के देवता रूप हो । इस लोक मे गोओ की उत्पत्ति करो । गौ तथा यजमान मे स्थित प्रजायें सुख सम्पन्न होकर विहार करे ॥१॥

११२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आप. । छन्द—अनुष्टुप्)
शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।

आप सप्त सुस्त्रुवुर्वेवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्या दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्विषात् ॥२॥

यह आकाश और पृथ्वी समस्त रमणीय है। चेतन अचेतन जीवों सहित इसमें जल भी विद्यमान है। द्यावा पृथ्वी और जल हमें पाप मुक्त करें॥ १ ॥ ब्राह्मणकोश से जल मुझे दूर रखे। यमाधिकार पादबन्धन और सभी देव सम्बन्धी पापों से मुझे रक्षा प्रदान करें॥२॥

११३ सूक्त

(ऋषि-भार्गव । देवता-तृष्टिका । छन्द-अनुष्टुप, उष्णिक्)

तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके ।
यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते ॥१॥
तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि ।
परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥२॥

हे काम तृष्णा ! हे धन तृष्णा ! तुम कलहमयी हो। इसी के कारण सभी अपनी वीर्यमयी पुरुष से द्वेष करने लगता है॥ १ ॥ हे तृष्णा ! तुम दाहक एवम् विष रूप थे। बन्ध्या गाय के बैल के समान तुम भी परित्यक्त हो ॥२॥

११४ सूक्त

(ऋषि—भार्गव । देवता—अग्नीषोमौ । छन्द—अनुष्टुप्)

आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।
आ ते मुखस्य संकाशात् सर्व ते वर्च आ ददे ॥१॥
प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तय ।
अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥२॥

हे द्वेषी नीच स्त्री ! उरु, कटि, विकटि, पाँव आदि तेरे अङ्गों से सौभाग्य रूप तेज को मैं प्राप्त करता हूँ। सब प्रसन्न

कारी तेरे मुख सौन्दर्य को ग्रहण करता है। समस्त अंगो से वर्तमान आभा को मैं दूर करता हूँ ॥ १ ॥ तेरी समस्त पीड़ायें दूर होवें। राक्षसादि का स्मरण तथा परकृत निन्दायें समाप्त हों। अग्निदेव और सोम राक्षसों और पिशाचों का नाश करे ॥२॥

११५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वांगिरा. । देवता—सविता, जातवेदाः । छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप ।)

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत ।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ॥१॥
या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥२॥
एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः ।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥३॥
एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिताइव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥४॥

हे पाप देवी ! इस प्रदेश से दूर देश को गमन कर। हम तुझे लौह शूल द्वारा शत्रु से मिलाते हैं ॥ १ ॥ हे सूर्य ! मुझे सुखाने वाली पाप देवी को दूर कर हमे स्वहस्त से सुवर्ण दो ।२। एकसौ एक लक्ष्मी मनुष्य के जन्म के साथ उत्पन्न होती है। उनमें से पापियों को दूर करते हैं। हे अग्ने ! हमें कल्याणकारी लक्ष्मियाँ प्रदान करो ॥ ३ ॥ गोष्ठ मे विद्यमान गायो के जैसे गोपालक पृथक करते हैं, वैसे ही मैं एक सौ एक लक्ष्मियों को दो भागो में विभक्त करता हूँ। इनमें पापयुक्ता नाश को प्राप्त होवे ॥४॥

११६ सूक्त

(ऋषि-अथर्वाङ्गिरा । देवता-चन्द्रमा:;ज्वर: । छन्द-उष्णिक् अनुष्टुप्)
नमो रूराय च्यवनाय चोदनाय धृष्णवे ।
नम: शीताय पूर्वकामकृत्वने ॥१॥
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्ये त्वव्रतः ॥२॥

उष्ण ज्वराभिमानी देव को नमस्कार है और शीत ज्वर को भी नमस्कार है ॥ १ ॥ तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर उस मण्डूक पर उतरे ॥२॥

११७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वागिरा । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती)
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिद् वि यमन् वि न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

हे इन्द्र ! तुम मद से युक्त मोरो के रोमवत् घोड़ो के रोमों से युक्त हुए यहाँ पधारो । तुम्हे कोई नही रोक पावे । प्यासे मनुष्य के समान तुम शीघ्र ही यहाँ आओ ॥१॥

११८ सूक्त

(ऋषि-अथर्वागिरा: । देवता-सोम, वरुण; देवश्च । छन्द-त्रिष्टुप्)
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥

हे राजन् ! तुम विजयी की लालसा से युक्त हो । मैं तुम्हारे मर्म स्थलो पर कवच धारण करता हूँ । सोम तुम्हें तेजस्वी बनावे । इन्द्र तुम्हे शत्रु सैन्य से विजयी करे । वरुणदेव तुमको अत्यधिक सुखदायी होवे ॥१॥

अष्टम काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आयु । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, प्रभृति)

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥१॥
उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥२॥
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥३॥
उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥४॥
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५॥
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥६॥
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥७॥
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥८॥
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥९॥
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१०॥

मृत्युदेव को नमन। प्राण अपान वायु इनके अनुग्रह से शरीर मे सुखपूर्वक सचरित हो। यह मृत्यु की आशा रखने वाला पुरुष सूर्य के अश रूप पृथ्वी पर प्राण और प्रजा से सयुक्त हो जीवनयापन करे॥ १॥ मूर्द्धा मे प्रविष्ट होते हुए भगदेव ने इस व्यक्ति को पार किया है। चन्द्र और मरुद्गणो ने भी इसका रक्षण किया है। इन्द्र अग्नि आदि देवों ने भी इसकी रक्षा करना स्वीकार किया है॥ २॥ हे आयु की कामना वाले व्यक्ति! तू जीवित रह। तेरी आयु और मन इसी मे लगा रहे। पापरूपी बन्धनो मे ग्रस्त तुझे हम मन्त्र बल से त्राण दिलाते है॥ ३॥ हे व्यक्ति! तू मृत्युपाश से अपने को मुक्त कर, इसके पाशो को तोड दे। तू सूर्य और अग्नि का प्रति-दिन दर्शन करे तथा पृथ्वी पर ही जीवन-यापन करे॥ ४॥ हे व्यक्ति! वायु तेरे लिये कल्याणकारी हो, जल तेरे लिये अमृत-मय हो। आदित्य तुझे सुखद ताप युक्त उष्णता प्रदान करें। मृत्युदेव की अनुकम्पा से तू मृत्यु पाश से मुक्त हो॥ ५॥ हे व्यक्ति! तू मृत्यु पाश से मुक्त हो। मैं तुझे जीवित रखने के लिये औषधि का प्रयोग करता हूँ। तुझे शक्ति प्रदान करता हूँ। तू इन्द्रिय भोगो के मूलभूत कारण शरीर रूप रथ पर आरूढ होकर घोषित कर कि मैं सज्ञा मे हूँ अर्थात् मस्तिष्क से स्वस्थ हूँ॥ ६॥ तेरा ध्यान यमदेव की ओर न गमन करे। तू अपने बान्धवो से मोह न तोड। तू पितरो की ओर गमन न कर। इन्द्रादि तेरी रक्षा करें॥ ७॥ पितरो के पथ का ध्यान न कर। वे मृतक भी तुझे फिर वापिस न आने के लिये गमन कर सकते हैं। तू अँधेरे से बाहर आकर प्रकाश रूप ज्ञान पर आरूढ हो। हम तेरे हाथ को थामते हैं॥ ८॥ हे पुरुष यम के मार्ग रक्षक काले और श्वेत वर्ण के दोनो श्वान-दिवस-रात्रि तुझे

बाधक न हो। तू उन श्वानों द्वारा भक्षण न होता हुआ यहाँ आ। भोगों से विरक्त होकर यहाँ न रह ॥ ६ ॥ हे व्यक्ति ! तू मृतकों के पथ का राही न बन। इस भयावह पथ का अनुभव करने से पूर्व नहीं होता। तू चिरनिन्द्रा की गोद में न जा। यम का ग्रह भयानक है, इसके विपरीत हमारा मार्ग निष्कण्टक एवं भययुक्त है ॥१०॥

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग विद्युता सह ॥११॥
मा त्वा क्रव्यादभि मस्तारात् सकसुकाच्चर।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च।
अन्तरिक्ष रक्षतु देवहेत्या ॥१२॥
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्
गोपायश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३॥
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्य स्वाहा ॥१४॥
जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाण।
मा त्वा प्राणो बल हासीदसु तेऽनु ह्वयामसि ॥१५॥
मा त्वा जम्भ सहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वार्बाहि प्रमयु कथास्या।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तुदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥१६॥
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत प्रजापतिरग्रभीत्।
उत् त्वा मृत्योरोषधय सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७॥
अय देवा इहैवास्त्वय मामुत्र गादित।
इम सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥१८॥
उत् त्वा मृत्योरपीपर स धमन्तु वयोधस।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ॥१९॥
आहार्षमविद त्वा पुनरागा पुनर्णव।
सर्वाङ्ग सर्व ते चक्षु सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥२०॥

व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्यु निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥२१॥

वडवाग्नि, आह्वान योग्य अग्निदेव एवं वैश्वानर अग्नि देव भी तेरे रक्षक हो। हे रक्षण के आकांक्षी! विद्युत रूप अग्नि भी तेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ क्रव्याद् अग्नि तुझे अपना भोजन न समझे। तू रुद्रमुख नामक अग्नि से भी अलग ही रह। सूर्य चन्द्र, आकाश अन्तरिक्ष और पृथ्वी भी तेरी रक्षा कर ॥ १२ ॥ बोध, प्रतिबोध, अस्वप्न, अनिद्रा, गोपायन और जागृवि ऋषि तेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥ वे बोध आदि तेरा पोषण करते हुए रक्षा करे। उन देवगणों को प्रणाम है। यह आहुति उन्हें प्राप्त हो ॥ १४ ॥ वायु, इन्द्रधाता और सूर्य तुझे मृत्यु मुख से बचा कर तेरे पुत्रादि को दें। प्राण और बल से युक्त तेरा शरीर हो। तेरे प्राण को हम बुलाते है ॥ १५ ॥ जभ नामक राक्षस के भक्षणार्थ तू उसे न मिले। राक्षस की जिह्वा भी तेरे पास तक न पहुँच सके तथा तू अज्ञान से भी अलग रहे ॥१६॥ धाता, अष्टावसु इन्द्र, अग्नि और द्यावा पृथ्वी तेरी मृत्यु से रक्षा कर। प्रजापति भी तेरी मृत्यु से रक्षा करे तथा औषधियाँ तेरे लिये पोषक हो ॥ १७ ॥ हे देवताओ! यह पुरुष इसी पृथ्वी पर रहे स्वर्ग की ओर न जाय। हम सुदृढ रक्षा साधन द्वारा इसे मृत्यु पाश से मुक्त करते है ॥ १८ ॥ हे आयु की इच्छा रखने वाले पुरुष! आयु के पोषक देव तुझे ग्रहण करें। तेरे परिवार की स्त्रियाँ केश खोल कर आँसू न बहावें तथा तेरे परिवारी बन्धु भी रुदन न करें ॥१९॥ हे व्यक्ति! मैंने तुझे मृत्यु मुख से निकाल कर पाया है, तेरा दूसरा जन्म हुआ है। अतः फिर से नूतन हो गया है। मैंने तेरे निमित्त शतायु प्राप्त की है। अब तेरी समस्त इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य मे रत हो ॥ २० ॥ हे संज्ञा शून्य

पुरुष ! तेरा अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो गया। हम तेरे समीप से पाप देवता निर्ऋति तथा प्राणनाशक मृत्यु को दूर हटा चुके हैं। अब तेरे भीतर बाहर स्थित सभी रोग पूर्णतया विनष्ट हो चुके हैं ॥२१॥

२ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–आयु। छन्द–भुरिक त्रिष्टुप, अनुष्टुप् पंक्ति, जगती, बृहती)

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥१॥
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥२॥
वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥३॥
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम्।
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥५॥
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६॥
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥७॥
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो यमेतु।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८॥
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्यो रपीपरम्। आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि॥९

यत् ते नियानं रजसं मृत्यो मनवधष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥१०॥

हे आयुष्काम ! हमारे द्वारा की हुई अमृतत्व की अनुभूति तू भी कर । यह अन्यों द्वारा नष्ट न की जा सके और जरावस्था पर्यन्त स्थित रहे । तू रज तम से अलग रहता हुआ जीवित रह । मृत्यु द्वारा हरण किये तेरे प्राण और आयु दोनो को मैं पुनः तेरे निमित्त प्राप्त करता हूँ ॥ १ ॥ हे पुरुष ! तू हमारे सन्मुख जीवित मनुष्यों जैसा आचरण कर । कोई तेरी निंदा न करे तथा तू पूर्ण निरोगता को प्राप्त हो । मैं तुझे दीर्घ आयु वाला बनाता हूँ ॥ २ ॥ हे पुरुष ! अपने ही आश्रयभूत वायु से मैंने तेरे प्राणों को प्राप्त कर लिया है । तेरा जो मन मृत्यु के समय निकल गया था, उसे मैं पुनः तेरे शरीर मे प्रविष्ट करता हूँ । तू पूर्ण स्वस्थ हो स्पष्ट वाणी का उच्चारण कर ॥ ३ ॥ हे पुरुष ! जैसे मुख वायु द्वारा अग्नि सुलगाई जाती है उसी भाँति मैं तुझे सब प्राणियो के प्राणो से प्रभूत प्राणवान बनाता हूँ । हे मृत्यो ! तेरे प्राण बल और कठोर दर्शन को नमन करता हूँ ॥ ४ ॥ यह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त न हो, हम इसे सचेत करते हैं । हे मृत्यु ! तू इसे अपना ग्रास न बना ॥ ५ ॥ जीवन-प्रदाता, कभी शुष्क न होने वाली पाठा नामक औषधि का मैं शान्ति कर्म हेतु आह्वान करता हूँ । मैं इसे इस व्यक्ति के दीर्घ जीवन के निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥ ६ ॥ हे मृत्यो ! इसे मारना आरम्भ न करो । यह तुम्हारा ही है, अतः इसके प्राण हरण न करो । यह इस पृथ्वी पर सब प्रकार से गतिशील हो । हे भवशर्व, इसे सुख प्रदान करो एव इसके रोगादि को नष्ट कर इसे दीर्घ जीवी बनाओ ॥ ७ ॥ हे मृत्यो ! इसे अपना कृपा भाजन बनाओ । यह जीवित होकर सब अगो से पुष्ट हो । यह

शतायुष्य हो ॥ ८ ॥ हे पुरुष ! देवता अपने अस्त्रो से तेरी हिंसा न करें ॥ मैं तेरी मृत्यु से रक्षा करता हूँ एव मासभोजी अग्नि को तुझमे अलग करता हूँ । तेरी आयु के लिए देव यजन रूप अग्नि की स्थापना करता हूँ ॥ ६ ॥ हे मृत्यो ! तेरे रजोमय मार्ग का घर्षण करने की कोई सामर्थ्य नही रखता । इस सज्ञाशून्य शक्ति की ऐसे मार्ग से रक्षा करते हुए हम इस मन्त्र रूप रक्षा साधन को इसे धारण कराते है ॥ १० ॥

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्यु दीर्घमायु' स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूताश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥११॥
आरादराति निर्ऋतिं परो ग्राहि क्रव्याद. पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तमइवाप हन्मसि ॥१२॥
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृत सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम्॥१३
शिवे ते स्ता द्यावापृथिवी असतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु श वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वती. ॥१४॥
शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षता सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥१५॥
यत् ते वास परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे तत् कृण्म. संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥१६॥
यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयु' प्र मोषी. ॥१७॥
शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अहसा ॥१८॥
यदश्नासि यत्पिबसि धान्य कृष्या. पय. ।
यदाद्य यदनाद्य सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥१६॥

अह्न् च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥२०॥

हे आयुष्काम ! मैं तेरे शरीर मे प्राण अपान वायु की स्थापना करता हूँ। तुझे दीर्घ जीवन प्रदान करता हुआ मैं जरा और मृत्यु से अस्पृश्य बनाता हूँ। मत्र बल से यमदूतो को अलग हटाता हुआ मैं तेरे लिए कल्याण करता हूँ ॥११॥ हम पापदेव निर्ऋति को नष्ट करते है, साथ ही मास भोजी राक्षसो का भी सहार करते हैं। राक्षसी आचार तथा अन्धकार रूप आवरण को भी छिन्न भिन्न करते हैं ॥ १२ ॥ हे पुरुष ! पापदेव निर्ऋति आदि के द्वारा तेरे प्राण हरण किये गये है। मैं अमृत रूप अग्नि से तेरे प्राणो की भिक्षा मागता हूँ। तू मृत्यु को प्राप्त न हो, मैं वैसा ही शान्ति कर्म अपनाता हूँ। यह मेरा कर्म तेरे लिए वृद्धि का हेतु हो ॥ १३ ॥ हे कुमार ! तेरे लिए द्यावा पृथ्वी कल्याणकारी हो। सूर्य भी तुझे सुखद उष्णता प्रदान करें। वायु भी तेरे लिए अनुकूल रूप से प्रवाहित हो। जल भी स्वादिष्ट तथा मगलमय होता हुआ प्रवाहित हो ॥ १४ ॥ हे कुमार ! व्रीह आदि औषधियाँ तुझे सुख प्रदान करें। तुझे नीची-ऊँची पृथ्वी से प्राप्त किया गया है। सूर्य चन्द्र तेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ हे कुमार ! तेरा ढकने वाला वस्त्र है, उसे तू नीवी करता है। तेरे वस्त्रो को हम सुखदायी बनाते है। वे कोमल स्पर्श वाले हो ॥ १६ ॥ हे सस्कारक ! जब तुम सुन्दर तीक्ष्ण धार वाले उस्तरे से शिर और मुख के बालो को साफ करते हो तब गोदान उपनयन आदि सस्कारो को प्राप्त हुए बालक के मुख को तेजपूर्ण बनाओ। हमारे पुत्र की आयु को न छीनो ॥ १७ ॥ हे कुमार ! तेरे भक्षण करने योग्य अन्नादि तेरे लिए सुखदायी हो। यह तेरी शारीरिक शक्ति को कमजोर

न बनावें। यह धान और यव शिर रोग के लिए हानिकारक हैं। यह इस बालक की पाप से रक्षा करें ॥ १८ ॥ हे कुमार! इस धान्य को तुम कठिनाई से सेवन करते हो और दूधवत इस अन्न को पीते हो। अब तुम सुगमता से भक्षण करने योग्य अन्न का सेवन करते हो। मैं तुम्हारे सब प्रकार के अन्नो की विष प्रभाव से मुक्त करता हूँ ॥ १९ ॥ हे कुमार! हम तुझे रक्षा के निमित्त रात्रि दिवस के अभिमानी देवता को सौंपते हैं। हे सर्व देवगण! तुम इस बालक की धन के अपहरणकर्ता तथा मांस भक्षी पिशाचो से रक्षा करो ॥ २० ॥

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥२१॥
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥२२॥
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः ॥२३॥
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तम. ॥२४॥
सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुष पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥२५॥
परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम्।
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः।
मुञ्चन्तुः तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥२७॥
अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥२८॥

हे कुमार! हम तुझे शतायुष्य बनाते हैं। हम तेरे लिए

दाम्पत्य रूप एक युग, संतान रूप द्वितीय युग तथा और भी अन्य अनेक युगो की स्थापना करते हैं। देवगण हमारे इस निवेदन पर अपनी स्वीकृति प्रदान करें ॥ २१ ॥ हे कुमार! रक्षा निमित्त हम तुझे ऋतुओ के अर्पण करते है। वर्ष के सभी दिन तुझे सुखदायी एव औषधियो की भी वृद्धि करने वाले हो ॥ २२ ॥ मृत्यु सभी जीवधारियो की स्वामी है। मैं उस मृत्यु रूप परमात्मा से तुझे मुक्त करता हूँ। अत तू मृत्यु भय से अब भयभीत न हो ॥ २३ ॥ हे पुरुष! तू मृत्यु से न डर। इस शान्ति कर्म द्वारा मनुष्य मृत्युपाश से मुक्त हो जाते है, वे सज्ञाशून्य नही होते। शान्ति कर्मी निम्न लोको मे स्थित अन्धकार से दूर ही रहते हैं ॥ २४ ॥ जहाँ परकोटे के रूप मे राक्षसादि को रोकने के लिए शान्ति कर्म किये जाते है, वहाँ गौ आदि पशु और मनुष्य सब जीवित रहते हैं ॥ २५ ॥ हे शान्ति कर्म चाहने वाले पुरुष! मेरा यह शान्ति कर्म सब ओर से तेरी रक्षा करे। अपने ही बन्धु-बान्धवो द्वारा किये अभिचारादि कृत्यो से यह शान्ति कर्म तेरी रक्षा करे। तेरे चक्षु प्राण आदि तेरे शरीर से बाहर न निकलें। तू दीर्घ काल तक जीवन यापन करे ॥ २६ ॥ सौ मृत्यु है और नाष्ट्रा शक्ति है, इनको पार करना सभव नही। इन मृत्यु और नाष्ट्रा शक्तियो से इन्द्रादि देव रक्षा करें। वे तेरी वैश्वानर अग्नि से भी रक्षा करें ॥ २७ ॥ हे पूतद्रु नामक वृक्ष! तू अग्नि का शरीर है, तू राक्षसो और शत्रुओ का विनाशक है। तू रोग निवारक और औषधि रूप है। वह पूतद्रु हमारी इच्छाओ को पूर्ण करें ॥ २८ ॥

—※—

३ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-चातनः । देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्
जगती, गायत्री)

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥१
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेद समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२॥
उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥४॥
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५॥
यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्यां अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६
उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणा ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८ ॥
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्य प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यतुधाना नृचक्ष ॥९॥
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यतुधानस्य वृश्च ॥१०॥

सूत्र मे वर्णित फल की इच्छा रखने वाला मैं, अग्नि पर चहुँ ओर से घृत अर्पित करता हूँ। मैं अग्नि को प्रज्वलित करके सुख प्राप्ति हेतु उनकी शरण मे जाता हूँ। वह अग्नि

घृत से अपनी लपटों को बढ़ाते हुए दिन के समय हिंसकों से हमारी रक्षा करें ।। १ ।। हे अग्ने ! हमारे घृत आदि से भली-भाँति वृद्धि को प्राप्त हुए तुम राक्षसों को अपनी ज्वालाओं द्वारा स्पर्श करो और अभिचारक को भस्म कर डालो । राक्षस पिशाचादि को भी अपने मुख का ग्रास बनाओ । हे अग्ने ! कौन मारा जाय तथा किस की रक्षा की जाय, यह तुम भली-भाँति जानते हो । तुम भीषण ज्वालाओ से युक्त महान पराक्रमी हो । हमारे छोटे तथा बड़े शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अपनी ऊपर नीचे की दाढ़ो को बन्द करो तथा अन्तरिक्ष में विचरण-शील राक्षसों को भी अपने दाँतों से चबा डालो ।। ३ ।। हे अग्ने ! राक्षस के बाहिरी चर्म को उधेड़ डालो । इसे तुम्हारा तीक्ष्ण वज्र निस्तेज करे । तुम राक्षसो के जोड़ों को छिन्न-भिन्न करो । मास भोजी शृगाल इसे चारो ओर खीचता फिरे ।। ४ ।। हे अग्ने ! तुम जहाँ कही भी उत्पाती राक्षसों को विचरण करते देखो, तो उन्हे वही पछाड डालो तथा तीक्ष्ण होकर मरणात्मक लपटो से भस्म कर डालो ।। ५ ।। हे अग्ने ! हमारे अनुष्ठानो से बाणो को निकालते हुए तथा उन्हे मन्त्र शक्ति से तीक्ष्ण करते हुए शत्रुओं के हृदयो को चीर डालो । राक्षसों की हमारी ओर बढ़ती हुई भुजाओ को भी उखाड डालो ।। ६ ।। हे अग्ने ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं, तुम हमारा पालन करो एवं राक्षसो को अपने शास्त्रों से नष्ट करो । तुम्हारे द्वारा नष्ट किये उन राक्षसों के कच्चे मांस को श्वेत वर्ण के माँस भक्षी पक्षी भक्षण करें ।। ७ ।। हे अग्ने ! हमारे इस शांति कर्म में जो राक्षस शरीर पीड़ा दे रहा है उसे बताओ । अपनी भस्म करने वाली लपटों से उसका स्पर्श करो । उस पापी को अपनी कर्म साक्षि-रूप दृष्टि के वश मे करो ।। ८ ।। हे अग्ने ! अपने भयावह

नत्र द्वारा हमारे यज्ञ का रक्षण कर। हमारे यज्ञ का वसु देवताओं तक शीघ्र पहुँचाओ। यज्ञ का रक्षण करते हुए तुम राक्षसों का संहार करो और वे तुम्हें अपने वशीभूत न कर पावें ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! मनुष्यों के दण्ड तथा अनुग्रह योग्य कार्यों के द्रष्टा हो। तुम प्रजा पीडक राक्षसों के ऊपर के तीन अंगों को काटो। अपने तेज से उनकी पसलियाँ और पाँव के तीन अंगों को भी काट डालो ॥ १० ॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नियुङ्ग्धि ॥११॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१२
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
पराचिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥१३॥
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१४
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५॥
विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६॥
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानतु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८॥
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥१९॥
पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वं नः ॥२०॥

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालाओ को राक्षस तीन बार प्राप्त हो। जो मेरे सत्य रूप यज्ञ को धोखे से नष्ट करता है, उसे मेरे सामने ही अपनी भीषण ज्वालाओं से भस्म कर दो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! जिस राक्षस के कारण स्त्री पुरुष क्रोध युक्त है और स्तोता कटु वाणी मे मन्त्रो का उच्चारण कर रहे है, उस राक्षस को अपने ज्वाला भरे आक्रोश पूर्ण मन से आहुत करो ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! राक्षसो को अपमानित कर उन्हे नष्ट करो। अभिचारको को अपनी दीप्तमय लपटो से भस्म करो। दूसरो की हिंसा करने मे आनन्द अनुभव करने वाले राक्षसो को नष्ट करो ॥ १३ ॥ अग्नि आदि समस्त देवगण उस राक्षस को ऐसा दडित करे जिससे वह फिर वापिस आने का साहस न करे। उस राक्षस द्वारा प्रेरित शाप उसे ही प्राप्त हो। वह अग्नि के ज्वालारूप आयुध से विनष्ट हो। उस असत्य भाषी के हृदय को देवताओ के शस्त्र वेध डाले ॥ १४ ॥ जो राक्षस घोडे अथवा मनुष्य के माँस से अपना पेट भरता है जो गौ के दूध को छीनता है उन सब प्रकार के दुष्टो के शिरो को हे अग्ने ! अपनी ज्वाला से भस्म कर डालो ॥ १५ ॥ गो दुग्ध की इच्छा रखने वाले राक्षस गौओ का विष प्राप्त कर, दुर्गमन करने वाले राक्षस, पृथ्वी पर पाये जाने वाले पदार्थों से वचित रहे। सविता देव इन्हे व्रीहि आदि का भाग न प्राप्त होने दे तथा इन्हे हिंसको को सौप दें ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! वर्ष पर्यन्त मिलने वाले हमारी गौ के दूध को राक्षस न पी सके। जो राक्षस गो घृत से अपने को तुष्ट करने की कामना करता है, उसके हृदय को छेद डालो ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम सदैव ही राक्षसो के सहारक रहे हो। कोई भी राक्षस तुम्हे अपने अधीन नही कर सका है। अत मास भोजी राक्षसो को जडमूल से

विनष्ट करो। कोई भी राक्षस तुम्हारे भाग से बच कर निकल न पाये ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! चारों दिशाओं में रहने वाले राक्षसों से हमारी रक्षा करो। तुम्हारी ज्वालाएँ हिंसा करने वाले राक्षसों का नाश करने की पूर्ण सामर्थ्य रखती हैं ॥ १९ ॥ हे अग्ने ! तुम चारों दिशाओं में व्याप्त राक्षसों से अपने रक्षा साधना द्वारा हम भय रहित करो। तुम मेरे मित्र रूप हो अतः मुझ मित्र की रक्षा करो। तुम अजर हो तथा मरण धर्म से रहित हो। अतः मुझ क्षीण और मरणशील की रक्षा करो ॥ २० ॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्वज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥२१॥
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥२२॥
विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥२३॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ।२४।
ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥२५॥
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ।२६।

हे अग्ने ! पिशाच को भस्म करो। पशु रूप वना कर कष्टदायी राक्षसों को अपने नेत्र से देखो और अथर्वा ने अपने जिस मन्त्र बल से राक्षसों का संहार किया था वैसे ही अपनी दिव्य दीप्ति से उन्हें भस्म करो ॥ २१ ॥ हे अग्ने ! तुम काम्य-वर्षक हो, धर्षकवर्ण वाले, मथन से उत्पन्न होने वाले तथा नाना प्रकार से सन्तुष्ट करने वाले हो। तुम राक्षसों को अपने दर्शन मात्र से ही शक्तिहीन कर नष्ट करने वाले हो ॥ २२ ॥

हे अग्ने ! अपने विपयत् भयकर तेज से यातुधानो को विनष्ट करो और उन्हें अपनी लपटो से भस्म करो ॥ २३ ॥ यह अग्नि अपनी महान दीप्ति से तेजोमय है । इसी तेज से वह सब भूतो को स्पष्ट करते हैं । राक्षसो की माया को नष्ट करने मे यह पूर्ण समर्थ हैं । राक्षसो का विनाश करने के लिए यह अपनी लपटो को भीषण करते हैं ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे विख्यात आयुध रूप सीग जो रूप और जरा रहित हैं हमारे मत्रो की शक्ति मे तीक्ष्ण हो शत्रुओं का विनाश करने वाले हो । तुम उनके द्वारा छिद्रान्वेषी राक्षसो का सहार करो ॥ २५ ॥ यह अग्नि समस्त सतापदायी राक्षसो का सहार करते है । यह अमर हैं तथा इनका प्रकाश दीप्यमान रहता है । यह स्तुत्य स्वय शुद्ध तथा अन्यो को पवित्र करने वाले हैं ॥ २६ ।

४ सूक्त

(ऋपि—चातनः । देवता—इन्द्रासोमादयो मन्त्रोक्ता ।
छन्द—जगती, त्रिस्टुप्, अनुष्टुप् ।)

इन्द्रासोमा तपत रक्ष उब्जतं न्यर्पयत वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषत हत नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः ॥१॥
इन्द्रासोमा समघशसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमांइव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदने ॥२॥
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छव ॥३॥
इन्द्रासोमा वर्तयत दिवो वध सं पृथिव्या अघशं साय तर्हणम् ।
उत् तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्ते भिर्युवमश्महन्मभि ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरात्रणो नि पर्शाने विध्यतु यन्तु निस्वरम् ॥५॥
इन्द्रासोमा वर्तयत दिवस्पर्यग्नितप्ते भिर्युवमश्महन्मभि ।

यां मा होत्रा परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीइविजिन्वतम् ।६
प्रति स्मरेथांतु जयद्भिरेवैर्हत द्रुहो रक्षसो भंगुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुग सूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहः ।७
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आपइव काशिना सगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८॥
ये पाकशस विहरन्त एवैर्ये भद्र दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ व दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥
यो नो रस दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वाना गवा यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयता तन्वा तना च ॥१०॥

हे इन्द्र ! हे सोम ! राक्षसो को पीडा दो एव उनका विनाश करो । तुम काम्यवर्षक हो, महान् मायावी यातुधाना का सहार करो । नरभक्षी राक्षसो को नष्ट कर हमारी ओर धकेलो और उनके पक्ष को कमजोर बनाओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र सोम देवताओ ! पापियों को पराजय प्रदान करो । जैसे अग्नि के ताप से चरु तपता है, वैसे ही राक्षसो को तापित करो । माँस भक्षी भयावह नेत्रो वाले राक्षसो मे परस्पर द्वेष और शत्रुभाव उत्पन्न करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र सोम देवताओ ! दुष्ट कर्मी राक्षसो को आश्रयहीन कर दण्डित करो । इन राक्षसो मे से एक भी अन्धकार से निकल न पावे । इनको अपमानित करने के लिए तुम्हारा बल पूर्ण आक्रोशमय हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! सोम देवताओ ! पाप की वृद्धि करने वाले राक्षस पर द्यावा पृथ्वी से हिंसा रूप साधनो को प्रेपित करो । पर्वत और मेघो से प्रकट होने वाले राक्षस का विनाश करने के लिए अपने वज्र को तीक्ष्ण करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र, सोम देवताओ ! तुम अग्नि से दीप्त हुए लौह निर्मित आयुधो को अन्तरिक्ष मे सब ओर घुमाओ और उनकी पसलियो का चूर्ण कर डालो, जिससे वे मूक होकर

पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और सोम देवताओ ! जैसे मजबूत रस्सी अश्व को बन्धनग्रस्त कर लेती है, उसी भाँति हमारी स्तुतियाँ तुम्हें बाँध लें। जैसे बन्दीजनों की स्तुतियाँ राजाओं को हर्षित करती हैं, उसी भाँति हमारी यह स्तुति रूप मंत्र तुम्हें हर्षित करें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र, सोम देवताओ ! अश्वों का ध्यान करो, उनके द्वारा यहाँ अभिमुख होकर हमारे शत्रुओं का विनाश करो। दुष्टों का जीवन सन्तापमय हो। हमारा शत्रु जो एक बार भी हमें कष्ट दे चुका है, उसका जीवन सदा के लिए कष्ट पूर्ण हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! जो हमें असत्य वचनों का प्रयोग कर शाप देता है, उस दुष्ट के असत्य वचन उसी प्रकार व्यर्थ जाँय जैसे हाथ में लिया हुआ जल उंगलियों के जोड़ों से निकल जाता है ॥ ८ ॥ जो अपने स्वार्थ से मुझ सत्य भाषी को पीड़ा पहुँचाते हैं और जो मुझे मङ्गलकारी स्वधा से दूषित करते हैं, उन्हें सोमदेव सर्प को सौंप दें या निर्ऋति की गोद में फेंक दें ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! जो हमारे शरीर के या हमारी सन्तति आदि के शरीरों का सत्व हरण करना चाहते हैं, वे दुष्ट हिंसक शत्रु अपने ही शरीर से तथा अपने पुत्रादि से बिछुड़ जाँय ॥१०॥

परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वा ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ।११
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥
यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ।१४।

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥
यो मायातु यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं गूहमाना ।
वव्रम नन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥
वि तिष्ठध्व मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ।१८।
प्र वर्त्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्य ॥२०॥

हे देवताओ ! जो शत्रु दिन अथवा रात्रि में हमारी हिंसा की कामना रखता है वह अपने शत्रु और पुत्र से बिछुड़ जाय। यह तीनों पृथ्वियों के निम्न स्थित लोक में जा पहुँच ॥ ११ ॥ सत् और असत् एक दूसरे के विरोधी शब्द हैं, यह विद्वान् जानते हैं। सोम सत्य वचन की रक्षा करते हैं तथा असत्य भाषी का संहार करते हैं। उससे यह विदित हो जाता है कि असत्य भाषण करने वाला कौन है ? ॥ १२ ॥ पापाचारी राक्षस एवं असत्य भाषी को सोम देव कभी नहीं छोड़ते अपितु वे उसका संहार करते हैं। यह दोनों प्रकार के दुष्ट इन्द्र के पाशों में जकड़े रहते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! मैं देवगणों से रहित नहीं, उनका व्यर्थ आह्वान भी नहीं करता और न मिथ्या भाषण ही करता हूँ, फिर तुम मुझसे क्रुद्ध क्यों हो ? देव द्रोही दुष्ट गति को प्राप्त हों ॥ १४ ॥ यदि मैं किसी को कष्ट देता होऊं तो आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊँ। हे दोषारोपण करने वाले ! यदि तू

मुझ पर व्यर्थ ही आरोप लगाता है तो तू दस पुत्रों का विछोह प्राप्त कर ॥ १५ ॥ जो दुष्ट अपने को सज्जन कहता है और मुझ सत्याचरण करने वाले को दुष्ट बताता है, ऐसे मिथ्याभाषी को इन्द्र अपने भयङ्कर वज्र द्वारा नष्ट करें। वह दुष्ट सब प्राणियों से अधम गति को प्राप्त हो ॥ १६ ॥ उलूकी की भाँति जो पिशाची रात्रि मे हमारी हिंसा करने की इच्छा लेकर गोपनीय रूप से दौड़ती हुई आती है, वह असीम गर्त मे गिरे और सोम कूटे जाने वाले पाषाण के शब्द से दुष्ट राक्षस स्वयं ही विनाश को प्राप्त हो ॥ १७ ॥ हे मरुद्गणो ! तुम प्रजाओं मे अनेक प्रकार से व्याप्त हुए दुष्टों के विनाश की इच्छा करो। उन्हें पकड़ कर नष्ट कर डालो। जो राक्षस पक्षी रूप धारणकर रात्रि में उड़ते तथा यज्ञों में बाधा डालते है, इन सबको चूर्णित कर दो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! आकाश से वज्र को प्रेरित करो, उसे सोम से तीक्ष्ण करो। उस वज्र से पूर्वादि दिशाओं में रहने वाले राक्षसों का सहार कर डालो ॥ १९ ॥ श्वान समान भक्षण करने वाले जो राक्षस अहिंसक इन्द्र की हत्या करने की कामना रखते हैं, उनके वध के लिए इन्द्र अपने वज्र को तीक्ष्ण करते हुए उन्ह मार डालें ॥२०॥

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥२१॥
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥
मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥२३॥
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४॥

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्य ।२५॥

हवि मथन करने के उद्देश्य से अभिमुख होने वाले इन्द्र अपने आयुधों से राक्षसों का संहार करें। जैसे कुल्हाड़ा वृक्ष को काटने आता है, डंडा मिट्टी के पात्र को फोड़ने आता है, उसी भांति इन्द्र राक्षसों का संहार करते हुए पधारें ॥ २१ ॥ जैसे मिट्टी का पात्र तोड़ा जाता है, हे इन्द्र उसी भांति तुम उलूक, उलूक के शिशु श्वान, चकवा गरुड़ आदि का रूप धारण कर आते हुए राक्षस का संहार करो ॥ २२ ॥ कष्टदायी राक्षस जाति हमारे समीप न आवे। किमीदिन नामक राक्षस स्त्री, पुरुष हमसे दूर रहें। अन्तरिक्ष हमारी दुखों से रक्षा करें और पृथ्वी रोग दस्यु आदि से हमारा रक्षण करें ॥ २३॥ हे इन्द्र! संतापी राक्षस एवं भ्रमितशील राक्षसी का विनाश करो। अभिचारक की गरदन कट कर गिर पड़े और उसे उदय होने वाले सूर्य से दर्शन न हो ॥ २४ ॥ हे सोम! हे इन्द्र! प्रत्येक हिंसाकारी राक्षस पर नजर रखो। हमारी रक्षा के लिये सचेष्ट रहो और दुष्टों पर वज्र प्रहार करो ॥२५॥

५ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—शुक्र । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती, गायत्री, जगती अनुष्टुप, पंक्ति, त्रिष्टुप, शक्वरी ।)

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥१॥
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२॥
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥३॥

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥४॥
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥५॥
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥६॥
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥
स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः ।
स्वयकृता या उ चान्येभिराभृताः ।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ॥९॥
अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१०॥

तिलक वृक्ष की यह मणि अभिचार कर्म का प्रतिकार करने में पूर्ण समर्थ है। यह वीरोचित कार्य करने वाली शत्रुओं को खदेडने की सामर्थ्य रखती है। यह यजमान की रक्षक और मङ्गलमयी है। अधिकारी पुरुष ही इसे बाँध सकता है॥ १॥ यह मणि शत्रु-विनाशक और वीर सन्तति प्रदान करने वाली है। यह बलवान् शत्रुओ का दमन करने वाला और कृत्या को कृत्या-कारी पर ही वापिस लौटाने वाली मेरी भुजा पर बँधने के निमित्त यहाँ आ रही है॥ २॥ इस मणि के प्रभाव से ही इन्द्र ने विजय प्राप्त कर असुरो का सहार किया, और इसी के प्रभाव से वृत्रासुर को पराजित किया। इसी के द्वारा वे द्यावा पृथ्वी के अधिपति हुए और इसी के प्रभाव से चारो दिशाओ को प्राप्त

किया ॥ ३ ॥ यह मणि शत्रुओं को वापिस लौटाने वाली रोग का शमन करने वाली तथा शत्रुओं के दमनकारी तेज से अधिक तेजस्वी है। इसके धारणकर्ता को देखते ही शत्रु भाग खड़े होते है। यह सबको अपने अधीन करने वाली मणि हमको अपमान से बचावे ॥ ४ ॥ अग्नि का कहना है कि स्रावत्य मणि का धारण करना सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला है। यही कथन वृहस्पति सूर्य और इन्द्र ने भी किया था। सर्व फलों की प्राप्ति को वहने वाले अग्नि शत्रुओं द्वारा मेरे निमित्त प्रेरित कृत्या को उसके प्रेरित-कर्ता को ही अपने प्रभाव से लौटा दें ॥ ५ ॥ मैं द्यावा पृथ्वी दिवस और सूर्य को अपने और कृत्या के बीच दीवार रूप में स्थापित करता हूँ। वे हितकर फल वाले देवता प्रतिसर मन्त्रो के बल से कृत्या को उल्टा वापिस कर दें ॥ ६ ॥ जो मनुष्य स्राक्त्य मणि को रक्षा साधन के रूप मे धारण करते हैं, उनके निमित्त प्रेरित की गई कृत्या को निष्फल करने वाली यह मणि सूर्य द्वारा अन्धकार को नष्ट करने के समान शत्रु द्वारा प्रेरित की गई कृत्या का नाश कर देती है ॥ ७ ॥ महर्षि अथर्वा की भाँति मैं इस मणि के प्रभाव से शत्रु सेनाओ को पराजित कर चुका तथा इसी मणि द्वारा राक्षसो का सहार कर रहा हूँ ॥ ८ ॥ अङ्गिरा-कृत्य कृत्या राक्षसो और शत्रुओ के द्वारा प्रेषित की हुई कृत्या और अपने ही द्वारा प्रेरित की गई निष्फल कृत्या यह सभी कृत्याएँ नब्बे नदियो के भी पार जाकर पड़ें ॥ ९ ॥ कृत्या को निष्प्रभावी बनाने की इच्छा रखने वाले इस यजमान के लिये रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, विष्णु प्रजापति, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ विराट और समस्त ऋषिगण अन्यो द्वारा प्रेरित कृत्या को नष्ट करने वाली मणि रूप रक्षा साधन को धारण करावें ॥१०॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वाञ्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११॥
स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१२॥
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१३॥
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४॥
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५॥
अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान्त्संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६॥
असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८॥
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासानि ॥१९॥
आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०॥
अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत् ॥२१॥
स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवां अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२॥

हे मणि के कारणरूप वृक्ष ! तू अल्प फल देने वाली ओषधियों में प्रमुख है। वृषभ जिस भाँति भार ढोने वाले पशुओं में श्रेष्ठ है, वन जन्तुओं मे जैसे सिंह श्रेष्ठ है, वैसे ही तुम श्रेष्ठ से जिस पराक्रम की हम आकाँक्षा रखते हैं, वह प्राप्त कर चुके हैं ॥ ११ ॥ ऐसी गुणयुक्त मणि को जो धारण करता है, वह सिंह समान पराक्रमी होता है। गौओं मे जैसे वृषभ इच्छानुसार आचरण करने वाला है, वैसे ही मणि धारण करने वाला पशुओं को अपने अधीन करने वाला होता है ।१२। इस मणि के धारण करने वाले पर गन्धर्व तथा अप्सराएँ आघात नहीं करते। वह समस्त दिशाओं मे शोभायमान होता है ॥ १३ ॥ हे मणि ! तुझे प्रजापति कश्यप ने निर्मित कर सबके हितार्थ प्रेरित किया, इन्द्र ने तुझे धारण कर वृत्रासुर का वध किया। अत. जो व्यक्ति तुझे धारण करता है, वह युद्ध में विजय श्री प्राप्त करता है। इस स्रावत्य मणि को देवगणों ने रक्षात्मक साधन के रूप मे प्रभावी बनाया ॥ १४ ॥ हे शान्ति की कामना रखने वाले पुरुष ! जो व्यक्ति हिंसक, कृत्याओं, दीक्षाओं और श्येन-याग द्वारा तेरी हिंसा करना चाहता है, हे इन्द्र ! उस हिंसक पर अपना सौ पर्व वाला वज्र डालो ॥ १५ ॥ यह परम पराक्रमी मणि, कृत्यादि को निष्फल बनाने वाली और विजयशील साधनों से सम्पन्न है। यह मणि सब भाँति मेरी रक्षा करने वाली तथा कल्याणों की साधनरूप है। यह मेरे पुत्र, पौत्रादि तथा सम्पत्ति की रक्षा करे ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! हमारे उत्तर, पश्चिम, दक्षिण मे शत्रु विनाशक ज्योति रहे। तुम उस ज्योति को हमारे सामने करो ॥ १७ ॥ द्यावा पृथ्वी सूर्य अग्नि इन्द्र और धाता मुझे रक्षा साधन रूप कवच प्रदान करें। इन्द्राग्नि का जो मणि रूप प्रचण्ड कवच है, उसका वे ही

देवगण पोषण करते हैं। यह कवच सब भाँति मेरी रक्षा करे, जिससे मैं जरावस्था तक जीवन यापन कर सकूँ ॥ १९ ॥ मेरे कल्याण के निमित्त इन्द्रादि देवगणों की यह मणि मेरी भुजा पर बँधी है। हे मनुष्यो ! ऐसी मणि को शत्रु के उत्पीडन, शरीर रक्षण और बल के निमित्त धारण करो ॥ २० ॥ इन्द्र इस मणि में हमारे अभीष्ट सुखों को व्याप्त करें। हे इन्द्र ! इस मणि को स्वयं व्याप्त होओ। इस मणि को इस भाँति कल्याणकारी बनाओ, जिससे यह यजमान शतायुष्य एवं बुढ़ापे तक सबल और स्वस्थ बना रहे ॥ २१ ॥ अपने लोगों का कल्याण करने वाला देवता प्राणियों के अधिपति, वृत्रासुर, संहारक इन्द्र तुझे मणि धारण करावें और वे ही सब भाँति तेरी रक्षा भी करें ॥ २२ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—मातृनामा । देवता—मन्त्रोक्ता, मातृनामा, ब्रह्मणस्पति । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती, जगती, पंक्ति, शक्वरी ।)

यौ ते मातोन्ममार्ज जाताया पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सप ॥१॥
पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥२॥
मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥३॥
दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः ।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥४॥
यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भससोऽप हन्मसि ॥५॥
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।

भरायाञ्च वर्कि‍ण्‍णो वज पिंगो ग्रनीनशत् ॥६॥
यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामित क्लीवरूपांस्तिरीटिन ॥७॥
यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूय परिक्रामन्ननीनशत् ॥८॥
य कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमा स्त्रियम् ।
तमोपधे त्व नाशयास्या कमलमञ्जिवम् ॥६॥
ये शाला परिनृत्यन्ति साय गर्दभनादिन ।
कुसूला ये च कुक्षिला ककुभा करुमा स्त्रिमा ।
तानोषधे त्व गन्धेन विपूचीनान् वि नाशय ॥१०॥

हे गर्भिणी ! तेरी उत्पत्ति पर तेरी माता न पति प्राप्त करान वाले जो उमाजन किये, उनमे त्वचा दोष तेरी कामना न करें। आलि नामक रोगो के देवता और सम्वर्त नामक रोगो के देवता वत्सप भी तेरे लिये बाधक न हो ॥ १ ॥ गर्भिणी को सन्तापदायी पलाल के समान अति सूक्ष्म राक्षस को, अनुपलाल को शर्कु को, कोक का, मलिम्लुच को पलीजक को आश्रप को, वव्रिवास को प्रमीलिन तथा ऋक्षग्रीव नामक राक्षसो का सहार करता हूँ ॥२॥ हे दुर्नाम नामक रोग के देवता ! तू इस गर्भिणी के उरु और अन्त प्रदेश को सकुचित न कर तथा उस प्रदेश के नीच की ओर भी गमन न कर । मैं इस दुर्नाम रोग विनाशक सरसो रूप औषधि को प्राप्त करता हूँ ॥३॥ दुर्नाम और सुनाम इन दोना म से हम दुर्नाम को नष्ट करते हैं और सुनाम स्त्रियो को चाहने वाला हो ॥४॥ केशी, स्तम्बज, तुण्डिक नामक व्याधियाँ दुर्भाग्य पूर्ण हैं उन्हें गर्भिणी क मुष्को और कटि सन्धि स्थान से पृथक करते हैं ॥ ५ ॥ स्पर्श द्वारा मारन वाले प्रमृश को सूघ कर मारने वाल अनुजिघ्र को, चाट कर मारने

वाले रेरिह को, क्व्यादि तथा समस्त व्याधि रूप राक्षसो का यह पीली सरसो विनाश करे ॥ ६ ॥ पिता या भाई समान बन कर जो शरीर मे घुसे, हिजडे के रूप मे या गोपनीय रूप से आने वाले दुष्टो का यह सरसो विनाश करे ॥ ७ ॥ सोते या जाग्रत अवस्था मे जो राक्षस तेरा वध करना चाहता है, उसे यह सरसो उसी प्रकार नष्ट कर दे जैसे सूर्य अन्धकार का नाश करता है ॥८॥ हे औषधे ! जो दुष्ट इस स्त्री को मरे हुए बच्चे वाली करे या जो इसके गर्भ को आपत्ति मे डाले, उसका तू नाश करती हुई इसके गर्भ को पुष्ट करने वाली हो ॥ ९ ॥ जो राक्षस गर्दभ के समान शोर करते हुए तथा कुसूलाकार भयङ्कर आकृति वाले जो यज्ञशाला के चारो ओर नृत्य सा करते हैं, उन सबको हे श्वेत और पीली वर्ण की सरसो, तू अपनी गन्ध से ही नष्ट कर ॥१०॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबाइव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोष तानितो नाशयामसि ॥११॥
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममु दिव ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान्
नाशयामसि ॥१२॥
य आत्मानमतिमात्रमस आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणा श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षासि नाशय ॥१३॥
ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रत ।
आपकेस्था प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि॥१४
येषा पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का आयाशव. ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥१५॥
पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कुशा अस्त्रैणा सन्तु पण्डगाः ।

अव भेषज पादय य इमां सविवृतत्यपति स्वपति त्रिपम् ॥१५॥
उद्धर्षिण मुनिकेश जम्भयन्त मरीमशम् ।
उपेषन्तमुदुम्बल तुण्डेलमुत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गोरिव स्पन्दना ॥१७॥
यस्ते, गर्भं प्रतिमृशाज्जात या मारयाति ते ।
पिंगस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥१८॥
ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिंगो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥१९॥
परिसृष्ट धारयतु यद्धित माव पादि तत् ।
गर्भं त उग्रो रक्षता भेषजो नीविभार्यो ॥२०॥

कुक्कट के समान घोष करने वाले, निद्य धर्म वाले पागलों की सी हरकत करने वाले, ऐसे सब दुष्टों को हम उस गर्भिणी के पास से दूर हटाते हैं ॥ ११ ॥ सूर्य के ताप को न सहने वाले, अजा चर्म का धारण करने वाले, कच्चे माँस को भक्षण करने वाले, रक्त से सने मुख वाले, हड्डी आदि को *अलङ्कार रूप मे धारण करने वाले राक्षसों का नाश करते* हैं ॥ १२ ॥ जो पिशाच गर्भ के कारण स्थूल हुई स्त्री को कन्धे पर लेकर नृत्य करते है, उन स्त्रियों के कटि प्रदेश को सतापित करने वाले राक्षसों को हे इन्द्र ! तुम नष्ट करो ॥ १३॥ जो राक्षस स्त्रियों के सन्मुख सींग लिये हुए विचरण करें, रसोई घर मे ठहाका *लगा कर* हँसें; जो *गीली वस्तुओ में अग्नि उत्पन्न* करें; उन सब राक्षसों को हम गर्भिणी के निवास स्थान से दूर भगाते हैं ॥ १४ ॥ उल्टे पाँव वाले, खल, गोबर, लीद आदि से उत्पन्न होने वाले छिन्न मस्तक घडे सदृश्य अडकोष वाले और तीव्रगामी पिशाचो को सरसों के प्रभाव से वृहस्पति देव दूर *भगावें ॥ १५ ॥ जो राक्षस अपने मेंसो वाले हैं तथा जिनकी*

क्षीण उरु है और जो स्त्री दोषी हैं वे सब सर्प हो जांय। हे सरसो! इस निद्रामग्न स्त्री को अपने अधीन करने वाले राक्षस को नष्ट कर ॥ १६ ॥ मुनिकेश, मरीमृश, उदुम्बल एवं शालूड नामक राक्षसों को हे सरसो! तू पैरों से उसी भांति कुचल दे जैसे दुष्ट गौ दुहते समय दूध के पात्र मे लात मारती है ॥ १७ ॥ हे गर्भिणी! तेरे गर्भ को दुःख पहुँचाने वाले या उत्पन्न बालक को मारने की इच्छा रखने वाले पिशाच को यह औषधि पांव से कुचल डाले। हे श्वेत सरसो! गर्भ को नष्ट करने वाले उस राक्षस को यातना दे ॥ १८ ॥ जो पिशाचादि गर्भपात के कारण बनते हैं, जो स्त्री का बनावटी रूप धारण कर सूतिका रूप से सोते हैं, उन गर्भिणियों को अपना भाग मानने वाले गंधर्व, राक्षस पिशाच इस श्वेत सरसो से उसी भाँति नष्ट हो जिस प्रकार वायु मेघों को छिन्न-भिन्न करती है ॥१९॥ हवनादि मे शेष रहे सरसों को गर्भिणी धारण करे। हे गर्भवती! नीवी मे धारण करने पर दानो प्रकार की सरसो तेरी रक्षक हो ।२०।

पवीनसात् तङ्गल्वाच्छायकादुत नग्नकात्।
प्रजायै प ये त्वा पिंग परि पातु किमीदिन ॥२१॥
द्वया स्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनगुरे।
वृन्तादभि प्रसर्पत: परि पाहि वरीवृतात् ॥२२॥
य आम मासमदन्ति पौरुषेय च ये क्रवि।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥२३॥
ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि।
बजश्च तेषा पिंगश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४॥
पिंग रक्ष जायमान मा पुमास स्त्रिय क्रन्।
आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेत किमिदिनः ॥२५॥
अऽजास्त्व मार्तवत्समाद् रोदमधमावयम्।

वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६॥

हे गर्भिणी ! यह पीले वर्ण की सरसों वज्र के समान नाक वाले, तङ्गल्व, सायक और नग्नक नामक राक्षसों से तेरी रक्षा करे ॥ २१ ॥ हे औषधे ! दो मुख, चार नेत्र, पांच पांव वाले, उँगलियों से रहित पैरों वाले, निम्न मुख वाले सर्वाङ्ग व्याप्त पिशाच से इस गर्भवती की रक्षा कर ॥ २२ ॥ जो पिशाच कच्चे नये माँस का भक्षण करते और छल से गायों को भी खा जाते हैं, उन पिशाचों को इस गर्भवती के पास से दूर हटाते है ॥ २३ ॥ श्वसुर के आदेश से पुत्र के पास जाने वाली पुत्र-वधू की भाँति सूर्य के आदेश से पृथ्वी के प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने के लिये आने वाले पीड़कों को यह श्वेत और पीत सरसों ताडित करें ॥ २४ ॥ हे श्वेत सरसों ! उत्पन्न होते हुए गर्भ को भूत-बाधा से रक्षित कर और पैदा हुए बालक का भी रक्षण कर । इन पिशाचों को गर्भिणी के पास से दूर हटा ।२५। हे श्वेत सरसों ! इस गर्भवती की संतान-हीनता, मृतवत्सता, रुदन और पाप जालों को शत्रु के ऊपर इस भाँति पटक जैसे अपने प्रिय पर पुष्पमाला को डालते हैं ॥२६॥

७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—भैषज्य, आयुष्य, ओषधयः । छन्द—अनुष्टुप्; बृहती, उष्णिक्, जगती; पंक्ति , शक्वरी ।)

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहणीरुत पृश्नय ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधी· सर्वा अच्छावदामसि ॥१॥
त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥२॥
आपो अग्रं दिव्या ओषधयः ।
तास्ते यक्ष्ममेनस्य मङ्गादङ्गादनीनशन् ॥३॥

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरकेशृङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः
पुरुषजीवनीः ॥४॥
यद् वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥५॥
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६॥
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥७॥
अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥८॥
अवकोल्वा उदकात्मान ओषधयः ।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्गयः ॥९॥
उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा विषदूषणीः ।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥१०॥

रोग निवारणार्थ विभिन्न वर्ण और विभिन्न आकार वाली औषधियों के सामने अभिमुख होकर याचना करते हैं ॥ १ ॥ आकाश जिनका पिता, पृथ्वी जिनकी माता तथा समुद्र मूल है, वे औषधियाँ क्षय रोग से रक्षा करें ॥ २ ॥ हे रोगिन् ! तेरे क्षय रोग को जल और दिव्यऔषधियाँ अङ्ग प्रत्यङ्ग से खींच लें ॥ ३ ॥ हे रोगिन् ! टहनी, शाखा, गुद्दे वाली, फैली हुई स्तम्ब वाली, जीवन-दायिनी दिव्य औषधियों को तेरे लिये प्राप्त करता हूँ ॥ ४ ॥ हे रोग विनाशक औषधियो ! तुममें जो रोग निवारण शक्ति है, उसके द्वारा इसे यक्ष्मा रोग से बचाओ। मैं मंत्र-युक्त औषधि को प्रयुक्त करता हूँ ॥ ५ ॥ कल्याण के निमित्त, जीवन-दायिनी, क्रोध-रहित, रोपण वाली

पुष्पमती जीवन्ती का मैं आह्वान करता हूँ ॥ ६ ॥ चैतन्य-शील मन्त्र-रूप औषधियाँ इस पुरुष के रोग निवारणार्थ यहा आवें ॥ ७ ॥ गर्भ जिनका जल है, अग्नि के लिये जो भक्षणीय हैं, जो सर्वदा नूतन रहती हैं, इस भांति की सहस्रों नामों वाली औषधियां यहा लाई जावें ॥ ८ ॥ जिनका गर्भवरक सिवार है, जिनका आत्मा जल है तथा सींगाकार के गंधमय दो फल वाली जो औषधियाँ हैं, वे इसके पाप का नाश करें ॥ ९ ॥ जलोदर आदि रोगों की नाशक विष नाशक, रोगों पर प्रबल कासादि नाश करने वाली एवं कृत्याओं को नष्ट करने वाली औषधिया यहाँ आवें ॥१०॥

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥११॥
मधु मन्मूलं मधुमदग्रमासा मधुमन्मध्यं वीरुधा वभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधो संभक्ता अमृतस्यभक्षो
घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥१२॥
यावती कियतीश्चेमा पृथिव्यामध्योपधीः ।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३॥
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधा त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥१४॥
सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥१५॥
मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि ।
भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥१६॥
या रोहन्त्याङ्गिरसी पर्वतेषु समेषु च ।
ता नः पयस्वती शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥१७॥
याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।

अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च सम्भृतम् ॥१८॥
सर्वा समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम ।
यथेम पारयामसि पुरुष दुरितादधि ॥१९॥
अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृत हवि ।
व्रीहियवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥२०॥

स्वय आई हुई रोगा का शमन करने मे समर्थ, मत्र द्वारा दीक्षित औषधियाँ इस नगर के समस्त गौ अश्वादि पशु और मनुष्या की रक्षा करें ॥११॥ वीरुधो का मूल अग्र भाग, मध्य भाग पत्ता पुष्प, फल आदि सभी मधुर होते हैं। जो इस मधु का सेवन करता है, वह मानो अमृत का ही सेवन करता है। वह स्वस्थ, पूर्ण सन्तति वाला तथा गौ से घृत अन्न आदि का दोहन करता है ॥ १२ ॥ पृथ्वी पर उत्पन्न असख्यो पत्ता वाली औषधियाँ मुझे मरण समान पीडा देने वाले पापो से बचावे ॥ १३ ॥ यह वैयाघ्रमणि रोग रूप पापो से रक्षा करने वाली है। वह हमारे रोगों को कहीं दूर ले जाकर नष्ट कर ॥ १४ ॥ जैसे अग्नि के प्रचड रूप से और सिंह की दहाड से प्राणी भय खाते हैं वैसे ही इन औषधियो द्वारा पीडित किया गया पशु एवं मनुष्या का रोग नदियो को पार कर दूरस्थ प्रदेश को चला जाय ॥ १५ ॥ जो औषधियाँ पृथ्वी का टक लेती हैं जिनका स्वामी वनस्पति है वे वैश्वानर अग्नि से भी महान् औषधियाँ रोग निवारक हैं ॥ १६ ॥ महर्षि अङ्गिरा द्वारा बताई गई मङ्गलमयी औषधिया पर्वतो और समतल भूमि मे उत्पन्न होती है वे दुग्ध के समान सार वाली होकर सुख दें ॥ १७ ॥ जो औषधिया नक्षत्रों के सन्मुख हैं जिनमें रोग निवारक तत्व विद्यमान हैं जो अज्ञात हैं उन सभी औषधियो से हम पीडित हैं ॥ १८ ॥ वे समस्त औषधिया मेरे अभिप्राय को जान कर मुझे इस योग्य

घरे कि इस व्यक्ति को रोग रूप पाप से छुटकारा दिला सकूं ॥ १९ ॥ ओषधियों का दर्प, पीपल, राजा सोम और हवि अमृत है। धान्य और यव रूप ओषधियाँ अन्तरिक्ष से वृष्टि होने के कारण अन्तरिक्ष की संतान रूप और अमृत रूप तत्व से युक्त हैं ॥२०॥

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधी ।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥२१॥
तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि ।
अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥२२॥
वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२३॥
याः सुपर्णा आंगिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः ।
वयासि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२४॥
यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥२५॥
यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।
तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥२६॥
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलनीरफला उत ।
समातरइव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥२७॥
उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।
अथो यमस्य पड्बीशाद् विश्वस्मद् देवकिल्बिषात् ॥२८॥

बिजली की कड़क से, मेघों की गर्जन से और वर्षा रूप वीर्य से वायु और पर्जन्य तुम्हारा रक्षण करता है, सब तुम विभिन्न प्रकार से गतिशील रहती हो ॥ २१ ॥ ओषधियों के अमृत रूप बल का हम इस व्यक्ति को पान कराते है। मैं इस

औषधि द्वारा इसे शतायुष्य बनाता हूँ ॥ २१॥ जिन औषधियों को वराह, नौला, सर्प, गंधर्व आदि जानते हैं, उन औषधियों का इस व्यक्ति की रक्षा निमित्त आह्वान करता हूँ ॥ २३ ॥ अगिरा ने जिन पत्तों वाली औषधियों को प्रयुक्त किया, रघट जिन दिव्य औषधियों को जानते है, हसादि पक्षी जिन औषधियों से परिचित हैं, उन समस्त औषधियों का इस पुरुष के रक्षार्थ मैं आह्वान करता हूँ ॥ २४ ॥ अहिंसित गौऐं जिन औषधियों का भक्षण करती है जिन्हे भेड, बकरी खाती है, वे सब औषधियाँ हमारे लिये सुखकारी हो ॥ २५ ॥ वैद्यगण जिन औषधियों से परिचित हैं, उन सभी औषधियों को तेरे कल्याणार्थ यहाँ ले आये हैं ॥ २६ ॥ पुष्प फलो से युक्त औषधियाँ इस पुरुष के लिये निरोगात्मक फल का दोहन करें ॥ २७ ॥ हे रोगिन् ! मैंने तुझे पंच एव दश शलाका वाले काष्ठ के पाद बन्धन से और यम के पाद बंधन से मुक्त करने के लिये मन्त्र बल मे प्राप्त कर लिया है ॥२८॥

८ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः । देवता—इन्द्र वनस्पतिः, परसेनाहननं च । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति , जगती, त्रिष्टुप् ।)

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदर ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥१॥
पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।
धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥२॥
अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्गइव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥३॥
परुषानमून् परुषाह्व कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शरइव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ॥४॥

अन्तरिक्षं जालमसीज्जालदण्डा दिशो महो ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥५॥
बृहद्धि जाल बृहत शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्याते कतमश्चनैषाम् ॥६॥
बृहत् ते जाल बृहतः इन्द्र शूरः सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शत सहस्रमयुतं न्यर्बुद जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥७
अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥८॥
सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥९॥
मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिता ।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥१०॥

इन्द्रदेव पराक्रमी है, सामर्थ्यवान् है और शत्रु सेना का सहार करने वाले हैं। वे अग्नि का मन्थन करे, जिससे हम शत्रुओ को मारने मे समर्थ हो ॥ १ ॥ अग्नि मे गिरने वाली कमजोर रस्सी शत्रु सेना को कमजोर करे। अग्नि के धूऐं को देखते ही शत्रु डर जांय ॥ २ ॥ हे पीपल ! इन शत्रुओ का नाश कर। हे खदिर ! इन सब गमनशील शत्रुओं का भक्षण कर। यह अरण्ड के समान टूट कर गिर पडें। काष्ट इनको आघात पहुँचा कर नष्ट करे ॥ ३ ॥ वध करने वाला काष्ठ मरणात्मक उपायो से इन शत्रुओं का सहार करे। पुरुष पदार्थ इन्हे एठ डालें। जसे कठोर जाल से वाण टूट जाते हैं, वैसे ही यह शत्रु भी टूट जांय ॥ ४ ॥ अन्तरिक्ष और दिशाओ के जाल का दण्ड रूप बना कर उसे इन्द्र ने धारण किया और उसी के द्वारा उन्होने असुरो की सेनाओ का सहार किया ॥ ५ ॥ महान् इन्द्रदेव का जाल अत्यन्त विशाल है। हे इन्द्र ! उस जाल के

द्वारा इन शत्रुओं का मुख मोड दो। इनमें से एक भी जीवित न बचे ॥ ६ ॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! तुम अपने विशाल जाल से शत्रुओ को पकड कर उनका नाश कर डालो ॥ ७ ॥ इन्द्र का विशाल जाल यह महान् लोक ही है। मैं इसी के द्वारा समस्त शत्रुओं को अन्धकार से आच्छादित करता हूँ ॥ ८ ॥ निद्रा, तन्द्रा,मोह,आर्ति, निर्ऋति ऋद्धि आदि के द्वारा उन पशुओं को ढकता हूँ ॥ ९ ॥ यह शत्रु मृत्यु-पाश मे ग्रस्त हो चुके है, मैं इन्हे मृत्यु को सौंपता हूँ। इन शत्रुओ को बन्धन मे जकड़ कर मृत्यु दूतो की ओर लिये जाता हूँ ॥१०॥

नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परः सरस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्य भवस्य ॥११॥
साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा ।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥१२॥
विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामंगिरसो महीम् ॥१३॥
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१४॥
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१५॥
इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूट सहस्रशः ॥१६॥
धर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥१७॥
मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥१८॥
पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।

बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९॥
अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥२०॥
सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥२१
दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः ।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक्
परिरथ्यम् ॥२२॥
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् ।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥२३॥
इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥२४॥

हे मृत्यु दूतो ! इन शत्रुओ को ले जाओ तथा इनके हजारो वीरो का सहार करो । रुद्र के आयुध द्वारा यह विनाश को प्राप्त हो ॥ ११ ॥ जाल-दण्ड को लेकर साध्य देवता शत्रुओ की ओर जा रहे है । एक जाल-दण्ड को रुद्र, एक को वसु और एक को आदित्यो ने ग्रहण कर रखा है ॥ १२ ॥ विश्वेदेवा ऊपर से ही बल-पूर्वक प्रहार करें और रुद्र मध्य मे सहार करते हुए शत्रुओ को भू-लुण्ठित करें ॥१३॥ वनस्पतियो, उनसे निर्मित होने वाली औषधियो लताओ और प्राणियो को मन्त्र-शक्ति से प्रेरित करता हूँ । यह सब शत्रु सेना का सहार करें ॥ १५ ॥ हे शत्रो ! इन मृत्यु-पाशो को तू तोड नही सकता । यह कूट इस शत्रु सेना का सब प्रकार से विनाश कर डालें ॥ १६ ॥ यह हवि अग्नि से तप्त हो रहा है । यह सोम शत्रु विनाशक शक्ति से सम्पन्न है । हे भव शर्व देवगणो ! शत्रु

सेना का विनाश करो ॥ १७ ॥ यह शत्रु क्षुधा, निर्धनता और भय को प्राप्त होते हुए मृत्यु के मुख मे पडे । हे इन्द्र ! इस शत्रु वाहिनी का विनाश करो ॥ १८ ॥ हे शत्रुओ ! तुम मत्र शक्ति से पराजित हो और त्रस्त होकर पलायन करने लगो । मन्त्रो के अधिपति बृहस्पति इनमे से किसी एक को भी जीवित न बचने दे ॥ १९ ॥ इन शत्रुओं के हाथ शस्त्र ग्रहण करने मे समर्थ न हो, उनके शस्त्र नीचे गिर पड़ें । वे भय से त्रस्त हो उठें तथा इनके मर्म स्थल विद्ध जाँय ॥ २० ॥ द्यावा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और देवगण इन्हे अभिशापित करें । यह दुर्गति को प्राप्त हो । यह किसी अथर्व के विद्वान् का सहारा न पावें । परस्पर वैर-भाव से युक्त हो नष्ट हो जाँय ॥ २१ ॥ अग्नि के रथ को खीचने वाली चार दिशाएँ है, पुरोडाश सुम हैं, अन्तरिक्ष निवास स्थान, द्यावा पृथ्वी पक्षसी और ऋतुएं लगाम रूप हैं । वाणी परिरथ्य और अन्तर्देश किंकर रूप हैं ॥ २२ ॥ सवत्सर इनका रथ, परिवत्सर रथ की गद्दी, विराट ईषा, अग्नि मुख और चन्द्रमा सारथि हैं । इन्द्र इनके बाएँ ओर वैठते है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! चहुँ ओर से विजय हर ओर से जय ही जय । हमारे यजमान विजय-शील हों, शत्रु पराजित हो, इन मित्रो की विजय हेतु यह आहुति अर्पित है । नीली और लाल डोरो से शत्रुओ को लपेटता हूँ । उनके लिये यह आहुति दुराहुति सिद्ध हो ॥२४॥

९ सूक्त (पाचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—त्रिष्टुप्; पङ्क्ति, अनुष्टुप्; जगती ।)

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः । वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥१॥
यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयान. ।

वत्स. कामदुघो विराज स गुहा चक्रे तन्व पराचै ॥२॥
यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मं नद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेक युज्यते यस्मिन्नेकम्॥३
बृहत परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मित कुतोऽधि बृहती मिता ॥४॥
बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५॥
वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विवबाधे अग्नि ।
तत षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्न ॥६॥
षट् त्वा पृच्छाम ऋषय कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मण पितर तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्य ॥७॥
यां प्रच्युतामनु यज्ञा प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति,सा विराडृषय परमे व्योमन् ॥८॥
अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्व मृशन्तीमभिरूपां विराज पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥९॥
को विराजो मिथुनत्व प्र वे क ऋतून् क उ कल्पमस्या ।
क्रमान् को अस्या कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टी ॥१०॥

यह विराट् वत्स कहाँ से किस लोक और किस पृथ्वी से उत्पन्न हुए ? वह जल से प्रकट हुए । मैं तुमसे ही पूछता हूँ कि तुमने उन्हे किस भाँति समझा है ? ॥ १ ॥ जिन्होने जल के आश्रय मे त्रिभुजाकार रूप धारण कर शयन किया और अपने ही महत्व से जल को पीडित कर दिया, विराट का वह वत्स अभीष्टपूरक है । उसने शरीर को अपनी गुफा बनाया है ॥२ ॥ तीन विशाल महत्वपूर्ण हैं,-इनमे से चौथी जो वाणी है उससे अलग होने पर ही पुरुष प्राप्य हो सकता है, इसी को ब्रह्म

समझो ॥ ३ ॥ 'वृहद् पारा पाच सामों का निर्माण हुआ उनसे पष्ठात हुए। द्यावा पृथ्वी ने वृहद् को निर्मित किया। वृहतीमित कहाँ से उत्पन्न हुई ॥१४॥ माता की मात्रा वृहती की मात्रा से निर्मित है। मातलि माया से उत्पन्न हुआ और माया से माया का जन्म हुआ ॥५॥ द्यावा पृथ्वी जहाँ तक व्याप्त है, वहाँ तक अग्नि वाधक हो सकते है। वैश्वानर अग्नि पर ही आकाश आश्रित है। दिन के छठे भाग मे स्तोम पष्ठात हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे कश्यप ! तुम युक्त और योग्य को भले प्रकार जोडते हो। हम छः ऋषियो का कथन है कि विराट ब्रह्म का पिता कहाँ जाता है ? अत. हमको उस विराट का उपदेश करो ॥ ७ ॥ विराट जब प्रच्युत होते है, तब यज्ञादि कर्म भी नही होते। जब विराट को उपतिष्ठ करते है, तब यज्ञादि कर्मों का भी उपस्थान करते हैं। कर्म द्वारा प्राबल्य होने पर जिसके प्रति श्रद्धा होती है, वही विराट परम व्योम स्थित है ॥ ८ ॥ हे ऋषियो ! अप्राण विराट प्राणन कर्म वाली प्रजाओ मे प्राण-रूप से प्रविष्ट होता है, फिर यह स्वराट् को प्राप्त होता है। तुझमे विराट के दर्शन किये जा सकते हैं और नही भी दर्शन किये जा सकते है ॥ ९ ॥ प्रजापति ही विराट मिथुन तत्व के जानने वाले है, वही ऋतु और कल्पो के जानने वाले हैं, वही इनके क्रमादि और स्थानो के ज्ञाता हैं ॥१०॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरित प्रविष्टा ॥११॥
महान्तो अस्या महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥११॥
छन्दः पक्षे उपसा पेपिसाने समान योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती चेतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥१२॥
ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो धर्मा अनु रेत आगु ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥१३॥

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषय कल्पयन्त ।
गायत्रीं त्रिष्टुभ जगतीमनुष्टुभ बृहदर्कीं यजमानाय
स्वराभरन्तीम् ॥१४॥
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गा पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिश पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥१५॥
षड् जाता भूता प्रथमज ऋतस्य षडु सामानि षडह वहन्ति ।
षडयोग सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवी षडुर्वी ॥१६॥
षडाहु शीतान् षडु मास उष्णानृतु नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्त ।
सप्त सुपर्णा कवयो नि षेदु सप्त च्छन्दास्यनु सप्त दीक्षा ॥१७॥
सप्त होमा समिधो ह सप्त मधूनि सप्त ऋतवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन ता सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥१८॥
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथ स्तोमा प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥१९॥
कथ गायत्री त्रिवृत व्याप कथ त्रिष्टुप पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंश ॥२०॥

इस विराट का उषा रूप मे प्रथम जन्म हुआ । इसी उषारूप से सृष्टि का अन्धकार मिटाया । विराट सम्बन्धी उषा अन्य उषाओं म व्याप्त होकर दीप्तवान् होती है । सोम सूय अग्नि आदि सब देवता विराट के ही आश्रित है, विराटात्मक उषा सूर्य वधु है । यह जीवधारियो को प्रकाश प्रदान करने वाली है ॥ ११ ॥ कभी क्षय न होने वाले छन्द पक्ष उषा रूपी विराट के प्रकट होने पर समान कारण का अनुगमन करते हैं । सूर्य वधु उषा उन प्रकाश रूप सूर्य के महान् वीय को जानने वाली है ॥ १२ ॥ सूर्य चन्द्र, अग्नि सत्य माग म अपने वीर्य के साथ जाते है । इनमे से एक की शक्ति ऋत्विजा को तुष्ट करती दूसरे

की शक्ति-बल को पुष्ट करती, तीसरे की शक्ति राष्ट्र रक्षण में रत रहती है ॥ १३ ॥ चतुर्थ शक्ति को अग्नि सोम तथा अन्य महर्षियों ने धारण किया, फिर गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् जगती, अर्की और बृहद् नामक यज्ञ के पक्ष बनाये गये ॥ १४ ॥ पञ्च शक्तियों के अनुकूल पञ्च दोह, पाँच गौ के अनुकूल पञ्च ऋतुएँ है। पाँच दिशाएँ, पन्द्रह [द्वारा पुष्ट होती हुई योगी के लिये सम रूप हो जाती है ॥ १५ ॥ ऋतु से पूर्व छ जन्मे। दिन के छ विभागों का छ साम वहन करते हैं। छँआ योग सीर के अनुगामी साम हैं। द्यावा पृथ्वी और उर्वियों के भी छ भेद हैं ॥ १६ ॥ छ माह शीत ऋतु के और छ माह ग्रीष्म ऋतु के कहे जाते है। इससे अधिक हो तो हमें बताओ। विद्वान् सप्त पर्ण, सप्त छन्द और सप्त दीक्षाओं को जानते हैं ॥ १७ ॥ सात होम, सात समिधा, सात मधु और सात ऋतु है। पुरुष को सात प्रकार के घृत प्राप्त होते है। इसी भाँति सात गृध्र सुने जाते है ॥ १८ ॥ सात छन्द, चार उत्तर परस्पर समर्पित हैं, उनमें स्तोम किस प्रकार स्थित है और वे किस भाँति स्तोमों में समर्पित है ? ॥ १९ ॥ त्रिवृत से गायत्री किस भाँति व्याप्त है, पचदश से त्रिष्टुप् किस प्रकार कल्पित है। तेंतीस से जगती, अनुष्टुप् और इक्कीस किस भाति हैं ? ॥२०॥

अष्ट जाता भूता प्रथमज ऋतस्याष्टेन्द्र ऋत्विजो दव्या ये।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥२१॥
इत्थ श्रेयो मन्यमानेदमागम युष्माक सख्ये अहमस्मि शेवा।
समानजन्मा क्रतुरस्ति व शिव स व सर्वा स चरति प्रजानन् ॥२२
अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणा सप्त सप्तधा।
अपो मनुष्या नोषधीस्तां उ पञ्चानु सेचिरे ॥२३॥
केवलीन्द्राय दुदुहे गृष्टिर्वशं पीयूष प्रथम दुहाना।

अयातर्पयञ्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ असुरानुत ऋषीन् ॥२४॥
को नु गौ क एकऋषि किमु धाम का आशिष ।
यक्ष पृथिव्यामेकवृदेकऋतु कतमो नु स ॥२५॥
एको गौरेक एकऋषिरेक धामैकधाशिष ।

ऋतु के प्रथम आठ भूता की उत्पत्ति हुई। वे आठो दिव्य ऋत्विज है। हे इन्द्र! आठ पुत्रो की माता अदिति अष्टमी की रात्रि मे हव्य ग्रहण करती है ॥ २१ ॥ तुम्हारे समान जन्म वालो मे तुम्हारे मित्र भाव को पाकर मैं प्रसन्न हू। तुम्हारा कल्याणकारी ऋतु ही सबको जानता हुआ घूमता है ॥ २२ ॥ इन्द्र को आठ यम की छ ऋषियों की सत्तहत्तर औषधियाँ हैं उन औषधियो और मनुष्यो को पच जल सिंचित करते हैं ॥ २३ ॥ प्रथम प्रसूता धेनु ने अमृत रूप दुग्ध का दोहन किया। उसने इन्द्र के लिये दुह कर फिर सभी देव ऋषि मनुष्य और असुरा को उससे तृप्त किया ॥ २४ ॥ वह गाय कौन सी है? वह एक ऋषि कौन से हैं? धाम और आशीर्वाद क्या है? पृथ्वी मे एक व्रत ही पूजनीय है, वह एक ऋतु कौन सी है? ॥ २५ ॥ वह गाय एक ही है, वह ऋषि भी एक ही हैं, एक ही धाम और एक ही आशीर्वाद है। पृथ्वी मे एक ही व्रत पूजनीय है। वह एक ऋतु अधिक नही होती ॥२६॥

१० सूक्त (1)

(ऋषि—अथर्वाचार्य । देवता—विराट् । छन्द—पङ्क्ति, जगती, अनुष्टुप्, गायत्री बृहती ।)

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जाताया ।
सर्वमबिभेदियमेवेद भविष्यतीति ॥१॥
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥२॥

गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥३॥
सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥४॥
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥५॥
सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥६॥
यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥७॥
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥८॥
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥९॥
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥१०॥
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥११॥
सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥१२॥
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥१३॥

प्रारम्भ मे यह विश्व विराट था, तत् पश्चात् सभी भयभीत हुए कि यही एक होगा ॥ १ ॥ उस विराट ने जल उत्पन्न किया तो गार्हपत्य मे प्रवेश कर गया ॥ २ ॥ यह तथ्य जानने वाला गृहमेधी, गृहस्वामी बन जाता है ॥ ३ ॥ फिर वही विराट उत्क्रम करता हुआ देव दूत अग्नि मे प्रवेश कर गया ॥ ४ ॥ इस तथ्य का ज्ञाता देव प्रिय होता है और उसके आह्वान पर देवता अभिमुख होते हैं ॥ ५ ॥ फिर वही विराट उत्क्रम करता हुआ दक्षिणाग्नि मे व्याप्त हुआ ॥ ६ ॥ इसका ज्ञाता ऋतु दक्षिणीय मे निवास करने वाला होता है ॥ ७ ॥ फिर वही विराट उत्क्रम करता हुआ सभा मे प्रविष्ट हुआ ॥८॥ इसका ज्ञाता सदस्य कहलाता है, उसकी सभा मे सभी उपस्थित होते हैं ॥ ९ ॥ फिर वही विराट उत्क्रम करता हुआ समिति मे प्रविष्ट हुआ इसका ज्ञाता सामित्य बनता है उसकी समिति म सैनिक आते है ॥ १० ॥ फिर वही विराट उत्क्रम करके आमन्त्रण मे प्रविष्ट हुआ ॥ १२ ॥ इसका ज्ञाता निमन्त्रित

करने योग्य होता है, उसके आमन्त्रित करने पर सभी उपस्थित होते हैं ॥१३॥

१० सूक्त (२)

(ऋषि—अथर्वाचार्य । देवता—विराट् । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती, गायत्री, पंक्ति ।)

सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥१॥
तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय ।
उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥२॥
तामुपाह्वयन्त ॥३॥
ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥४॥
तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्य भिधान्यभ्रमूध ॥५॥
बृहच्च रथन्तर च द्वौ स्तानावास्तां यज्ञायज्ञिय च वामदेव्य च द्वौ ॥६
ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ॥७॥
अपो वामदेव्येन यज्ञ यज्ञायज्ञियेन ॥८॥
ओषधीरेवास्मै रथतर दुहे व्यचो बृहत् ॥९॥
अपो वामदेव्य यज्ञ यज्ञायज्ञिय य एव वेद ॥१०॥

वह विराट पुन उत्क्रमण कर चार भागों में विक्रान्त हुआ एव अन्तरिक्ष में स्थापित हो गया ॥ १ ॥ देवता और मनुष्यों ने उससे कहा कि जिसके द्वारा हम उपजीवन करते हैं, उससे यह परिचित है । अत हम इसे समीप बुलावें ॥ २ ॥ तब उन्होंने उसका आह्वान किया ॥ ३ ॥ हे ऊर्जे ! हे स्वधे ! हे सुनृते ! हे इरावति ! इस ओर आओ ॥ ४ ॥ तब इन्द्र उसका वत्स हुआ, गायत्री, अभिधानी और मेघों ने ऐन रूप धारण किया ॥ ५ ॥ बृहत्साम और रथन्तर साम दो स्तन हुए । यज्ञायज्ञिय और वाम दव्य साम ने भी दो स्तनों का ही रूप धारण किया ॥ ६ ॥ देवगणों ने बृहत्साम से व्यच का

और रथन्तर साम से औषधियों को उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ यज्ञायज्ञिक साम और वामदेव्य साम से क्रमश यज्ञ और जल दोहन किया ॥ ८ ॥ इनसे परिचित वृहत्साम व्यच का और रथन्तर औषधियों का दोहन करता है ॥ ६ ॥ इनके ज्ञाता के निमित्त यज्ञायज्ञिक यज्ञ का और वामदेव्य जल का दोहन करता है ॥१०॥

१० सूक्त (२)

(ऋषि—अथर्वाचार्य । देवता—विराट् । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, जगती ।)

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् ता वनस्पतयोऽघ्नत
सा संवत्सरे समभवत् ॥१॥
तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेस्याप्रियो
भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥२॥
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् ता पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत्।३
तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्था
जानाति य एवं वेद ॥४॥
सोदक्रामत् स देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ।५
तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्था
जानाति य एवं वेद ॥६॥
सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या अघ्नत सा
सद्य समभवत् ॥७॥
तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ।८

वह विराट उत्क्रमण करता हुआ वनस्पतियों के निकट गया। वनस्पतियों ने उसे हनन किया और तब वह संवत्सर में गया ॥ १ ॥ वनस्पतियों का कटा हुआ अङ्ग भी एक संवत्सर में उग आता है। इसे जानने वाले का शत्रु विनाश को प्राप्त

होता है ॥ २ ॥ यह विराट उत्क्रम करता हुआ पितरो के पास पहुँचा। पितरो द्वारा उसका हनन होने पर वह महीने मे प्रविष्ट हुआ ॥ ६ ॥ इसी कारण पितरो को प्रत्येक मास भोजन अर्पित किया जाता है। इसका ज्ञाता पितृयान पथ का जानकार होता है ॥ ४ ॥ वह विराट उत्क्रमण करता हुआ देवगणो के निकट गया। देवो द्वारा हनन किये जाने के पश्चात् वह पक्ष रूप मे उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ इसी कारण देवताओ के निमित्त पक्ष मे वषट करते हैं। इसका ज्ञाता देवयान मार्ग का जानकार होता है ॥ ६ ॥ वह विराट उत्क्रमण के पश्चात् मनुष्यो के पास गया और मनुष्यो द्वारा हनन किये जाने पर वह तुरन्त ही प्रकट हो गया ॥ ७ ॥ अत मनुष्य दूसरे दिन उपहरण करते हैं। इसके ज्ञाता के घर मे प्रति दिन अन्न प्राप्त होता है ॥८॥

१० सूक्त (४)

(ऋषि--अथर्वाचार्य । देवता--विराट। छन्द--जगती, बृहती, उष्णिक्, अनुष्टुप्, गायत्री, त्रिष्टुप् ।)

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥१
तस्या विरोचन प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्र पात्रम् ॥२॥
ता द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक्तां मायामेवाधोक ॥३॥
तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एव वेद ॥४॥
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥५
तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्र पात्रम् ॥६॥
तामन्तको मार्त्यवोऽधधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥७॥
तां स्वधा पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एव वेद ॥८॥
सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या ।

उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥६॥
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥१०॥

वह विराट पुनः उत्क्रमण करता हुआ असुरो के समीप गया। असुरो ने उसे बुलाते हुए कहा—माये आओ ॥ १ ॥ उसका वत्स विरोचन हुआ तथा लौह पात्र उसी का पात्र हो गया ॥ २ ॥ द्विमूर्धा अत्वर्य ने उसका और माया का दोहन किया ॥ ३ ॥ असुर उसी माया से उपजीवन करते हैं, इसका ज्ञाता भी उपजीवन के योग्य है ॥ ४ ॥ तब वह विराट उत्क्रमण करता हुआ पितरो के पास गया। पितरो ने आह्वान करते हुए कहा—स्वधे। आओ ॥ ५ ॥ उसका वत्स यम हुआ और रजतपात्र उसका पात्र बना ॥ ६ ॥ मृत्युदेव अन्तक ने उसका दोहन करते हुए स्वधा को भी दुहा ॥ ७ ॥ पितर उस स्वधा से उपजीवन करते है। इसका ज्ञाता उपजीवन योग्य होता है ॥ ८ ॥ यह विराट् उत्क्रमण करता हुआ मनुष्यो के समीप गया। मनुष्यो ने उसे आहूत करते हुए कहा—'इरावती आओ ॥ ९ ॥ तब विवस्वान पुत्र मनु उसके वत्स हुए और भूमि उसका पात्र बनी ॥१०॥

तां पृथी वैन्योऽधोक् ता कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥११॥
ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥
सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥१३॥
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्द. पात्रम् ॥१४॥
तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥१५॥
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

वेन-पुत्र पृथु ने उसका दोहन करते हुए कृषि और सस्य का भी दोहन किया ॥ ११ ॥ उसी खेती और धान्य से मनुष्य उपजीवन करते हैं। इसका ज्ञाता पुरुष जुते हुए पदार्थों में चतुर होता है और वह प्राणियों की आजीविका चलाने वाला भी होता है ॥ १२ ॥ वह विराट् फिर उत्क्रमण करती हुआ सप्त ऋषियों के पास पहुँचा, उन्होंने उसे आहूत करते हुए कहा—हे ब्रह्मण्वती पधारो ॥ १३ ॥ तब सोम उसके वत्स और छन्द उसके पात्र हुए ॥ १४ ॥ तब आंगिरस बृहस्पति ने उसका दोहन किया और उससे ब्रह्म और तप का भी दोहन किया ॥ १५ ॥ उस ब्रह्म और तप से सप्त ऋषि उपजीवन करते हैं। इसका ज्ञाता ब्रह्मवर्चस्व से युक्त होता और प्राणियों की आजीविका चलाने में सामर्थ्यवान् होता है ॥१६॥

१० सूक्त (५)

(ऋषि—अथर्वाचार्य । देवता—विराट् । छन्द—जगती, उष्णिक् अनुष्टुप, त्रिष्टुप्; गायत्री ।)

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥१॥
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥२॥
तां देवः सविताधोक तामूर्जमेवाधोक ॥३॥
तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥
सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥५॥
तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥६॥
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥७॥
तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८॥

सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह् वयन्त तिरोध एहीति ॥९॥

तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥१०॥

वह विराट पुनः उत्क्रमण कर देवगणों के निकट गया। देवों ने उसे आह्वन करते हुए कहा—हे ऊर्जे आओ! ॥१॥ तब इन्द्र उसका वत्स हुआ और चमस उसका पात्र हुआ ॥ २ ॥ सवितादेव ने उसका और ऊर्जा का दोहन किया ॥ ३ ॥ उसी ऊर्जा के द्वारा देवता उपजीवन करते है। इसके ज्ञाता पुरुष प्राणियों की जीविका चलाने मे समर्थ होता है ॥ ४ ॥ यह विराट पुनः उत्क्रमण का गन्धर्व और अप्सराओं के पास गया। उन्होंने उसका आह्वान करते हुए कहा—हे पुण्यगन्ध! पधारो सूर्यवर्चा का पुत्र चित्ररथ उसका वत्स हुआ और पवित्र गन्ध का भी दोहन किया ॥ ७ ॥ उस गन्ध द्वारा अप्सरा और गन्धर्व उपजीवन करते है। इसके ज्ञाता पुण्य गन्ध युक्त होता है, वह प्राणियों की जीविका चलाने मे समर्थ होता है ॥ ८ ॥ यह विराट् पुनः उत्क्रमण कर इतर जनों के पास गया। उन्होंने उसे आहूत करते हुए कहा—हे तिरोधे! पधारो ॥ ९ ॥ विश्रवा के पुत्र कुबेर उसके वत्स तथा कच्चा पात्र उसका पात्र हुआ ।१०।

ता रजतनाभिः काबेरकोऽधोक ता तिरोधामेवाधोक् ॥११॥

ता तिरोधामतरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं।
पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२॥

सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् ता सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति।१३

तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥१४॥

तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् ता विषमेवाधोक् ॥१५॥

तद् विष सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥

रजतनाभि काबेरक ने उसका और तिरोधा का भी

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥१०॥

अन्तरिक्ष, द्यावा पृथिवी समुद्र और अग्नि से मधुकशा गौ की उत्पत्ति हुई । उस अग्नि की धारणकर्त्ता गौ की उपासना करती हुई प्रजाएँ सुखी होती हैं ॥१॥ इस दूध देने वाली गौ के महान् दूध को ही समुद्र या जल बताया गया है, यह मधुकशा गौ स्तुतियों से प्रेरित हुई जिधर आती है उधर रहने वालों के प्राण अमृत में स्थापित हो जाते हैं ।२। इसके चरित्र की विभिन्न भाँति व्याख्या की जाती है और मनुष्य इसे विभिन्न रूपों में देख कर इसे मरुद्गणों की प्रचण्ड पुत्री अग्नि और वायु से पैदा हुई बताते हैं ॥ ३ ॥ प्रजाओं की प्राण यह मधुकशा अमृत की नाभि रूप है, यह सूर्यों की जननी और वसुओं की पुत्री है । यह महान् दीप्तवान् मधुकशा मनुष्यों में विचरण करती है ॥ ४ ॥ देवगणों ने मधुकशा को उत्पन्न किया, विश्वरूप उसका गर्भ हुआ । उसने अपनी उत्पत्ति के पश्चात् ही सब प्राणियों का मन मुग्ध कर लिया । तरुण रूप से उत्पन्न उसका माता ने पोषण किया ॥ ५ ॥ उसे सच्चे रूप में कौन जानता है ? उसका हृदय सोम स्थापित करने के लिये कलश रूप है, वह सदा अक्षय रहता है, शोभन मति वाला ब्रह्मा इसमें आनन्दित न होता है ॥ ६ ॥ उसके कभी विनष्ट न होने वाले सहस्र धाराओं वाले स्तन हैं, जो सदा दूध देते रहते हैं, वही ब्रह्मा इन स्तनों को भी जानता है ॥ ७ ॥ हवि ग्रहण करने वाली, शब्दायमान गौ, उच्च शब्द करती हुई कर्म क्षेत्र में प्रविष्ट होती है और अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र तीनों की दीप्तियों पर अपना आधिपत्य जमाती हुई देवाश्रय को प्राप्त होने वालों के शब्दों को अपने दुग्ध से शक्ति सपन्न करती है ॥ ८ ॥ जिस मधुकशा के समीप

काम्यवर्षक स्वच्छ जल आते हैं, वे जल मधुकशा के ज्ञाता को पुष्टिदायक अन्न प्रदान करते है तथा उनकी सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥ हे प्रजापते ! तुम वर्षा करने वाले हो, तथा पृथ्वी पर बल के सिंचित करने वाले हो। वज्र घोष ही तुम्हारी वाणी है। मरुतों की उग्र पुत्री मधुकशा की उत्पत्ति अग्नि और वायु के द्वारा ही हुई है।

यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥११॥
यथा सोमो द्वितोये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१२॥
यथा सोम स्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१३॥
मधु जनिषीय मधु वशिषीय।
पयस्वानग्न आगमं त मा स सृज वर्चसा ॥१४॥
स माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥१५॥
यथा मधु मधुकृतः सभरन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१६॥
यथा मक्षा इद मधु न्यञ्जन्ति मधावधि।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥१७॥
यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥१८॥
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्त शुभस्पती।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनां अनु ॥१९॥
स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥२०॥

दोहन किया ॥ ११ ॥ उस तिरोधा द्वारा ही इतर जन अपनी आजीविका चलाते हैं। इसका ज्ञाता अपने पापों का मोचन करने वाला होता है। वह प्राणियों की आजीविका चलाने की सामर्थ्य रखता है ॥ १२ ॥ वह विराट पुनः उत्क्रमण कर सर्पों के पास पहुँचा। सर्पों ने उसे आहूत करते हुए कहा—हे विषवत्! पधारो ॥ १३ ॥ वैशालेय तक्षक उसका वत्स एवं अलावमात्र उसका पात्र बना ॥ १४ ॥ ऐरावतीय धृतराष्ट्र नामक सर्प ने उसका दोहन कर विष का भी दोहन किया।।१५।। सब उस विष से उप जीविका चलाते है। इसके ज्ञाता सब प्राणी उपजीवन के योग्य होते है ॥१६॥

१० सूक्त (६)

(ऋषि—अथर्वाचार्य । देवता—विराट् । छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् ।)

तद् यस्मा एव विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥१॥
न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥२॥
यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥३॥
विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ॥४॥

इसके ज्ञाता को अलावु द्वारा जो सिंचित करता है तो वह उसके द्वारा मारा जाता है ॥ १ ॥ मन से मारता हूँ, ऐसा न विचारे तो मार डालता है ॥ २ ॥ मारने वाला विष को ही मारता है ॥ ३ ॥ इसके ज्ञाता का शत्रु रूप अप्रिय विष अनुविसिंचित होता है ॥४॥

॥ अष्टम काण्डम् समाप्तम् ॥

नवम काण्ड

—

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मधु, अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्; पंक्ति; अनुष्टुप्, वृहती उष्णिक्, अष्टि ।)

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि यज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसाना हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दति सर्वाः ॥१॥
महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥२॥
पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशो हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥३॥
मातादित्याना दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥४॥
मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥५॥
कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो
अक्षितः । ब्रह्म सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥६॥
स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यवस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥७॥
हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥८॥
यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥९॥

पृथिवी दण्डोन्तरिक्ष गर्भो द्यौः कशा विद्युत् ।
प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥२१॥
यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चनड्वांश्च व्रीहिश्च
यवश्च मधु सप्तमम् ॥२२॥
मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥२३॥
यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥२४॥

प्रात.सवन मे जिस प्रकार अश्विनीकुमारो को सोम प्रिय होता है, उसी प्रेम से अश्विनीकुमार मुझे तेज युक्त करें ॥११॥ द्वितीय सवन मे जिस तरह इन्द्र और अग्नि को सोम अच्छा लगता है,उसी भाँति इन्द्र और अग्नि मुझे तेज युक्त करें ॥१२॥ जैसे ऋतुओ को तृतीय सवन मे सोम प्रिय होता है, उसी भाँति ऋभुगण मुझे तेजयुक्त करें ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! मैं दुग्ध आदि की हवियो से युक्त हूँ । मैं मधु को प्रकट कर उसके द्वारा तेजस्वी बनूँ । तुम मुझे तेज युक्त करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम मुझे बल सन्तान और आयु प्रदान करो । देवता और ऋषि सभी मुझे तुम्हारी सेवक जान लें ॥ १५ ॥ जैसे मधु को एकत्र करने वाले मधु को मधु पर ही गिराते हैं, उसी भाँति अश्विद्वय वर्च की स्थापना करें ॥ १६ ॥ जैसे शहद की मक्खियाँ मधु पर मधु एकत्र करती जाती है, उसी भाति वे अश्विद्वय मुझे वर्च तेज बल एव ओज प्रदान करें ॥ १७ ॥ जो मधु पर्वत अश्व आदि तथा वृष्टि जल मे है, वही मधु मुझमे स्थित हो ॥ १८ ॥ हे अश्विद्वय ! शोभित होने के लिये ही तुम

आभूषणों को धारण करते हो। तुम मुझे मधु से युक्त करो। तुम मुझे मधु से इस भांति सींचो जिससे मैं तेज युक्त मधुर वाणी का उच्चारण कर सकूं ॥१९॥ हे प्रजापते! गर्जना ही तुम्हारी वाणी है। तुम द्यावा पृथ्वी में बल के सींचने वाले हो एवं काम्यवर्षक हो। वृष्टि से ही सब पशु अपना पोषण करते हैं तथा यह वर्षा ही अन्न और बल को पुष्ट करती है ॥२०॥ अन्तरिक्ष गर्भ, पृथ्वी दण्ड, द्युलोक कशा तथा विद्युत प्रकाश रूप हैं और बिन्दु हिरण्यमय हैं ॥२१॥ कशा युक्त मधुओं का जानने वाला मधुमान हो जाता है। ब्राह्मण, गौ अनड्वान् धान्य यव मधु और नृप यह सातों ही मधु हैं ॥ २२ ॥ इसका ज्ञाता मधुयुक्त होता है। वह मधुयुक्त लोकों को जीतता हुआ, मधुयुक्त भोजन प्राप्त करता है ॥२३॥ जिस व्योम में नाना प्रकार के ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतिवान् हैं, उस व्योम में जो गर्जना होती है वही प्रजाओं के लिये अभिमुख होने वाले प्रजापति है। अतः यज्ञोपवीत धारणकर्ता इसके लिये तैयार हो कि प्रजापति मुझे जानें। इस प्रकार का ज्ञाता ही प्रजापति द्वारा अवतीर्ण माना जाता है ॥२४॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—काम। छन्द—त्रिष्टुप, जगती पंक्ति, अनुष्टुप।)

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥१॥
यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥२॥
दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम्।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥३॥
नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः।

तेषां नुत्तानामधमा तमास्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥४॥
सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाच कवयो विराजम ।
तया सपत्नान् परि वृङ्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवन वृणक्तु ॥५॥
कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ्छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥६॥
अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथ भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥७॥
इदमा ज्य घृतवज्जुषाणा कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥८॥
इन्द्राग्नी काम सरथ हि भूत्वा नीचै सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषा पन्नानामधमा तमास्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥९॥
जहि त्व काम मम ये सपत्ना अन्धा तमास्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसा सन्तु सर्वे ते जीविषु. क्तमन्नहाः ॥१०॥

शत्रु विनाश काम रूप ऋषभ को हवि अर्पित करता हुआ मैं निवेदन करता हूँ कि वह हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमारे शत्रुओं का सहार करें ॥ १ ॥ जो बुरा स्वप्न मेरे हृदय और नेत्रों को प्रिय नहीं, मुझे प्रसन्नता प्रदान नहीं करता अथवा मुझे भक्षण करता हुआ सा प्रतीत होता है, उस बुरे स्वप्न को मैं कामदेव की स्तुति करता हुआ शत्रु की ओर प्रेषित कर उसे विदीर्ण करता हूँ ॥ २ ॥ हे कामदेव ! तुम उग्र हो एव स्वामी हो। तुम अपने दुःस्वप्न को, गरीबी एव प्रजा हीनता आदि को उस व्यक्ति की ओर प्रेषित करो, जो हमें हरा कर विपत्ति मे डालने का प्रयत्न करता है ॥ ३ ॥ हे कामदेव ! मुझसे निर्धनता को दूर करो एव मेरे शत्रु ही दरिद्रता के शिकार हों। तुम यथा शीघ्र इसे मेरे शत्रुओं की ओर प्रेषित

करो। हे अग्ने! उनके गृह की वस्तुओं को जला डालो। वे घोर अन्धकार मे डूब जाँय ॥ ४ ॥ ओजस्वी [वाणी तुम्हारी पुत्री है, तुम उसके द्वारा हमारे शत्रुओं को विनष्ट करो। ये शत्रु प्राण पशु आयु से रहित हो ॥ ५ ॥ जैसे वज्र पूर्ण पतवार लेकर नाविक नाव को चलाता है, उसी भाँति मैं काम, वरुण, इन्द्र, विष्णु, सोम, की शक्ति लेकर और देव यज्ञ से अपने शत्रुओं को भगाता हूँ ॥ ६ ॥ मेरा यज्ञ मेरे सन्मुख ही हवि से पूर्ण हो एव मुझे शत्रु विहीन करे। समस्त देवगण मेरे यज्ञ मे पधार कर मेरे स्वामी बनें ॥ ७ ॥ हे काम की ज्येष्ठता में रहने वाले देवगण! इस घृताति युक्त हवि को घृत समान ही उपभोग करते हुए प्रसन्न हो तथा मुझे शत्रु-विहीन करो ॥ ८ ॥ हे काम इन्द्र एव अग्ने! तुम रथ पर आरूढ होकर शत्रुओं का सहार करो। हे अग्ने! उनके निमित्त घोर तिमिर उत्पन्न कर उनके गृह और समस्त सम्पत्ति को भस्म कर डालो ॥ ९ ॥ हे कामदेव! मेरे शत्रुओ का सहार करो। वे घोर तिमिर को प्राप्त हो। वे सब बलहीन और निस्तेज होते हुए विनाश को प्राप्त हो ॥१०॥

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम ।
मह्यं नमन्ता प्रदिशश्चतस्रो मह्यं पड्डुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥११॥
तेऽधराञ्चः प्र सवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥१२॥
अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यव ।
यवयावाना देवा यावयन्त्वेनम् ॥१३॥
असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नात् ।१४
[illegible] च विहद्द बिभर्ति स्तनं [illegible]श्च सर्व[illegible] ।

उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान्॥१५
यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततं मनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्यैतान् प्राणः पशवो-जीवनं
वृणक्तु ॥१६॥
येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥१७॥
यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।
तथा त्व काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥१८
कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्
कृणोमि ॥१६॥
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्
कृणोमि ॥२०॥

कामदेव ने मेरे शत्रुओं का संहार कर, मेरी वृद्धि के निमित्त महान् लोक प्रदान किया। सब दिशाओं के प्राणी मुझे नमन करें तथा छः उर्वियां मुझे घृत प्रदान करें॥ ११ ॥ बन्धन मुक्त होने पर जिस भाँति नौका नीचे को बहती है, वैसे ही मेरे शत्रु पतन की ओर गिरते जांय। वे बाण द्वारा प्रेरित किये हुए पुनः वापिस लौट नहीं सकते॥ १२ ॥ इन्द्र अग्नि सोम यह सभी देवगण शत्रुओं को पृथक करने की सामर्थ्य रखते हैं। अतः तुम शत्रुओं को पृथक करते हुए हमारी रक्षा करो। देवगण इस शत्रु को दूर भगावें॥ १३ ॥ इस मन्त्र-शक्ति के प्रभाव से हमारा शत्रु अपने बन्धु-बान्धवों एवं योद्धाओं से रहित हो। उसके बन्धुगण उसका त्याग कर दें। विद्युत उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। यजमानो! तुम्हारे शत्रुओं या उग्र देवता पूर्णतया

दमन करें ॥ १४ ॥ समस्त मेघो के घोप को पुष्ट करने वाली विद्युत गिर कर अथवा अपने स्थान से ही, प्रकट होते हुए सूर्य अपनी तेजपूर्ण दीप्ति से शत्रुओं का सहार करें ॥ १५ ॥ हे कामदेव ! तुम अपने ब्रह्मयुक्त महान् रक्षा साधन द्वारा मेरे शत्रुओ का विनाश करो। मेरे ये शत्रु प्राण आयु और पशु से पूर्णतया रहित हो जांय ॥ १६ ॥ हे कामदेव ! जिस बल से इन्द्र ने राक्षसो का सहार किया था और जिस शक्ति से देवगणों ने असुरों को भगा दिया था, उसी शक्ति के द्वारा इस लोक से मेरे शत्रुओ को दूर भगा दो ॥ १७ ॥ हे कामदेव ! जैसे देवगणो ने असुरो को मार भगाया था और इन्द्र ने राक्षसो को महान् सन्ताप प्रदान किया था, उसी भांति तुम मेरे शत्रुओं को इस लोक से मार भगाओ ॥ १८ ॥ देवता और पितर प्रथमोत्पन्न कामदेव के सम तुल्य नही हैं। हे कामदेव ! सब प्राणियो को प्राप्य होने के कारण ही तुम महान् हो। मैं नमनपूर्वक तुम्हे हवि रूप अन्न अर्पित करता हूँ ॥ १९ ॥ हे कामदेव ! तुम द्यावा पृथ्वी, अग्नि और जल से भी अधिक विस्तृत और व्यापक हो। तुम सब प्राणियो को प्राप्य होने के कारण ही महान् हो। मैं तुम्हे नमनपूर्वक हवि रूप अन्न अर्पित करता हूँ ॥२०॥

यावतीर्दिश प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिव ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महास्तस्मै ते काम नम इत्
कृणोमि ॥२१॥
यावतीर्भृङ्गा जत्व कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवु ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महास्तस्मै ते काम नम इत्
कृणोमि ॥२२॥
ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२३॥
न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्नि सूर्यो नोत चन्द्रमा ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२४॥
यास्ते शिवास्तन्व काम भद्रा याभि सत्य भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्व मस्मां अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धिय ॥२५॥

हे कामदेव ! तुम दिशा उपदिशाओ तथा स्वर्ग से गमन करने वाली समस्त दिशाओ के विस्तार से भी अधिक विस्तृत गमनशील एव महान् हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हुआ आहुति अर्पित करता हूँ ॥ २१ ॥ हे कामदेव ! भृङ्ग, जन्तु, कुरुरु, वृक्षसर्पि और वधा जितने विस्तार मे होती है, तुम उनमे भी विस्तृत एव महान् हो। तुम सभी प्राणियो म व्याप्त हो। मैं तुम्ह नमन करता हुआ हवि रूप अन्न प्रदान करता हूँ ॥ २२ ॥ हे क म ! हे मन्यो ! तुम समुद्र से भी महान् हो, मानवो मे तथा बैठे हुओ से भी महान् हो। सब प्राणियो म गमनशील होने के कारण भी तुम महान् हो। मैं तुम्हें हवि अर्पित करता हूँ ॥२३॥ सूर्य, चन्द्र, वायु और अग्नि भी कामदेव की बराबरी नही कर सकते। इसी कारण तुम महान् हो। सब प्राणियो म व्याप्त होने से भी तुम महान् हो। मैं तुम्ह नमन करता हूँ ॥ २४ ॥ हे कामदेव ! अपने मङ्गलमय शरीर द्वारा तुम जिस वरण करते हो, वही सत्य है। अपनी उन देव स्वरूप मेधाओ द्वारा हमारे शरीर मे प्रवेश करो तथा अपनी पाप बुद्धिया को हमसे पृथक कर शत्रुओ मे प्रविष्ट करो ॥२५॥

—

३ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः । देवता—शाला । छन्द—अनुष्टुप्; पङ्क्ति, बृहती, त्रिष्टुप्, गायत्री ।)

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्वारायानद्धानि वि चृतामसि ॥१॥
यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृत. ।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२॥
आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।
परूं षि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥३॥
वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥४॥
संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥५॥
यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् ।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नि न उद्धिता तन्वेभव
हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदन सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ॥७॥
अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।
अवनद्धमभिहितं ब्राह्मणा वि चृतामसि ॥८॥
यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।
उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९॥
अमुत्रैनमा गच्छतात् दृढा नद्धा परिष्कृता ।
यस्याते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥१०॥

उपमति, प्रतिमति और परिमित शाला को खोलते हुए, वरणीय शाला के बन्धनो को सबके हितार्थ खोलते है ॥ १ ॥ हे वरण योग्य शाले ! मैं बृहस्पति समान पराक्रमी अपनी मन्त्र शक्ति से

उन समस्त बन्धनों, गाँठ आदि को खोलता हूँ जो तुझम बँधे हैं ॥ २ ॥ निर्माणकर्त्ता ने तुझे ठीक लम्बा बनाया है। तुझमें सुदृढ़ गाँठें लगाई हैं, उन गाँठों को हम इन्द्र की शक्ति से खोलते हैं ॥ ३ ॥ हे शाले ! तू सभी की वरणीय है। तेरे बाँसों के बन्ध स्थान के तृण के और पक्षों से बँधे हुए बन्धनों को हम खोलते हैं ॥ ४ ॥ हम मान की पत्नी विषयक सन्देशों के पलदा व परिष्वञ्जाय के बन्धों को खोलते हैं ॥ ५ ॥ हे मान-पत्नी ! तू कल्याण प्रदान करने वाली है, तुझमें जो सुख प्रद मचान बाँधे गये हैं, उन्हें हम खोलते हैं। तू हमारे निमित्त स्वर्गलोक में सुख प्रदान करने वाली हो ॥ ६ ॥ हे शाले ! तू हवि युक्त, अग्नि-कुण्ड देवगण के बैठने के आसनों और पत्नियों के साथ बैठने के स्थानों से युक्त है ॥ ७ ॥ हे विषूवति ! शयनकक्ष के सदृश झरोखे वाले विष्ट अक्ष को हम मन्त्रों द्वारा खोलते हैं ॥ ८ ॥ हे शाले ! जिसने तुझे निर्मित किया है और जो तेरा ग्रहण कर्त्ता है, वे दोनों जरावस्था तक जीवित रहें ॥ ९ ॥ हे शाले ! जिसके जोड़ों और अङ्गों को हम गाँठों से अलग कर रहे हैं, ऐसी तू अपने निर्माणकर्त्ता को स्वर्ग में प्राप्त हो ॥१०॥

यस्त्वा शाले निमिमाय सञ्जभार वनस्पतीन् ।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११॥
नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥१२॥
गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१३॥
अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१४॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि
त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेहमुदरं शेवधिभ्य ।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥१५॥
ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसी प्रतिगृह्णत ॥१६॥
तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥१७॥
इटस्य ते वि चृताम्यपि नद्धमपोर्णुवन् ।
वरुणेन समुब्जितां मित्र प्रातर्व्युब्जतु ॥१८॥
ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सद ॥१९॥
कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥२०॥

हे शाले ! जो वनस्पति लाया है तथा जिसने तेरा निर्माण किया है उस परमेष्ठी प्रजापति ने प्रजा की भलाई के लिये तुझे निर्मित किया है ॥ ११ ॥ शाला के स्वामी को, दाता को, अग्नि को और विचरण शील पुरुष को तथा तुझे हमारा प्रणाम है ॥ १२ ॥ शाला में पैदा होने वाले गौ-अश्वादि को यह अन्न है । हे विजावति ! हे प्रजापति ! हम तुझे बन्धन मुक्त करते हैं ॥ १३ ॥ हे शाले ! तू अपने में पशु पुरुष और अग्नि को छिपा लेती है । हम तेरे बन्धनों को खोलते है ॥ १४ ॥ द्यावा पृथ्वी के मध्य जो व्यच है, उसके द्वारा तेरी इस शाला को स्वीकार करता हूँ । अन्तरिक्ष और पृथ्वी की जो रचना शक्ति है, वह मेरे पेट में है । अतः मैं ही इस शाला को स्वर्ग प्राप्ति हेतु ग्रहण करता हूँ ॥ १५ ॥ बलदायिनी पयस्विनी

पृथ्वी मे नूतन निर्मित तथा समस्त प्रकार के अन्नो को धारण करने की सामर्थ्य रखती है। हे शाले ! तू प्रतिग्रहकारियो का नाश न कर ॥ १६ ॥ तृणो से आच्छादित, पलदो से युक्त, रात्रि सदृश्य प्राणीमात्र को सहारा देने वाली हे शाले ! तू श्रेष्ठ पाँवों वाली हस्तिनी के समान पृथ्वी पर खडी है ॥ १७ ॥ व्यतीत हुए सवत्सर के समान तेरे जोडो को पृथक कर खोलता हूँ। तुम वरुण द्वारा खोली गई को वाल रवि उद्घाटित करें ॥ १८ ॥ विद्वानो के मन्त्र द्वारा बनाई गई इस शाला की सोम पीने के स्थान मे प्रतिष्ठित अग्नि एव इन्द्र रक्षा करे ॥१९॥ गृह-रूप घोसले मे शरीर-रूप घोसला है, उसमे गर्भ-कोश अधोमुख स्थित है, उसी के द्वारा मनुष्य जन्म लेता है और उसी से समस्त ससार की उत्पत्ति होती है ॥२०॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टपक्षा दशपक्षा शाला मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भइवा शये ॥२१॥
प्रतीची त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥२२॥
इमा आप प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्रसीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥२३॥
मा न' पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्र काम भरामसि ॥२४॥
प्राच्या दिश' शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्य स्वाह्येभ्य ॥२५
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्य ॥२६॥
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्य स्वाह्येभ्य ॥२७॥
उदीच्या दिश शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्य स्वाह्येभ्य ।२८

ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥२९॥
ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः
स्वाह्येभ्यः ॥३०॥
दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥३१

दो, चार, छै, आठ तथा दस मजिल वाली शाला निर्माण की जाती है उस शाला मे जिस प्रकार जठराग्नि गर्भाशय में शयन करती है, उसी भाँति मैं सोता हूँ ॥११॥ हे शाले ! मैं प्रतीचीन अहिंसित को प्रतीचीशाला मे प्रविष्ट करता हूँ । ब्रह्मा से पूर्व प्रकट हुए अग्नि और जल भी मेरे साथ इस शाला मे प्रविष्ट होते है ।२२। क्षय विनाशक जलो को मैं भरता हूँ,और अमृतमय अग्नि सहित घरो के पास बैठता हूँ ॥ २३ ॥ हे शाले ! बधू के समान हम तुझे पुष्ट करते है, तू अपने पाशो को हमारी ओर न फेंकना, अपने अधिक भार को कम कर ॥ २४ ॥ शाला की पूर्व दिशा को महानता को प्रणाम । देवगणो को यह आहुति प्राप्त हो ॥ २५ ॥ शाला की दक्षिण दिशा की महानता को प्रणाम । देवगणो को यह आहुति ग्रहण हो ॥ २६ ॥ शाला की पश्चिम दिशा की महत्ता को नमस्कार । देवगणो को यह आहुति प्राप्त हो ॥ २७ ॥ शाला की उत्तर दिशा की महत्ता को नमस्कार ! देवगण इस आहुति को ग्रहण करें ॥ २८ ॥ शाला की ध्रुव दिशा की महत्ता को प्रणाम । देवगण इस आहुति को ग्रहण करें ॥ २९ ॥ शाला की ऊर्ध्व दिशा की महानता को प्रणाम देवताओ को यह आहुति प्राप्त हो ॥ ३० ॥ शाला की प्रत्येक दिशा की महानता को प्रणाम । देवगण यह आहुति ग्रहण करें ॥३१॥

—

४ सूक्त

(ऋषि— ब्रह्मा । देवता—ऋषभः । छन्द—त्रिष्टुप्; जगती, अनुष्टुप्, बृहती; पंक्तिः ।)

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥१॥
अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥२॥
पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥३॥
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायुः प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥४॥
देवानां भाग उपनाह एषोपां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ॥५॥
सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् ।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥६॥
आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥७॥
इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥८॥
दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९॥
बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१०॥

यह कान्तिमान ऋषभ है जो सहस्रों सिंचन की सामर्थ्य रखते हैं । यह दुग्ध से युक्त है तथा अपनी वीर्य वाहिनियों में

अपने अनेकों रूप धारण किये हुए है। यह बृहस्पति के मन्त्र से युक्त गौओं के योग्य वृषभ का कल्याण करता हुआ सन्तानों की वृद्धि करे ॥ १ ॥ जो बैल जलों के आगे मूर्ति के समान खड़ा होता है, जो पृथ्वी के समान स्वामी है, जो बछड़ों का जनक और अहिंसित गौओं का पति है, वह हमको अनेकों प्रकार का वैभव प्रदान करे ॥ २ ॥ यह वृषभ वसु के कबन्ध को धारण करने वाला है। यह पुमाम अन्तर्वान, स्थविर और पय से युक्त है। इसे अग्निदेव देवयान मार्ग के द्वारा अग्नि के निकट प्रेषित करे ॥ ३ ॥ बैल, बछड़ों का पिता, गौओं का पति एव मेघों का पोषण कर्ता है। इसका वीर्य अमृत, आमिक्षा प्रतिधुक् तथा घृत रूप ही है ॥ ४ ॥ औषधि और घृत रस जलों का भाग है, उपनाह देवगणों का भाग है तथा सोम के भक्षण करने के लिये इन्द्र ने पर्वताकार शरीर को धारण किया है ॥ ५ ॥ हे स्वधिते! तुम रूपों का निर्माण करने वाले हो, तुम सोम से युक्त कलश के धारण करने वाले हो, एव तुम्ही से प्राणों की उत्पत्ति होती है। अपनी सन्तानों को मुझे प्रदान करो ॥ ६ ॥ यह बैल क्षरणशील है, घृत को धारण करने वाला है और सहस्रों पुष्टियों को प्रदान करता है। यही यज्ञ कहलाता है। यह इन्द्र के रूप को धारण करने वाला बैल हमको कल्याण रूप मे प्राप्त हो ॥ ७ ॥ विद्वानों के कथनानुसार इस ऋषभ का ओज इन्द्र का भाग है। इसकी भुजा वरुण का, कोहनी मरुतों का, कधा अश्विद्वय का तथा सभृत बृहस्पति का प्रिय है ॥ ८ ॥ हे ऋषभ! तू देवगणों को दुग्ध हवि आदि से युक्त कर बढ़ाता है। इसी कारण तुझे इन्द्र कहते हैं। मन्त्र युक्त यज्ञ मे वृषभ का दान करने वाला, एक मुख वाली, सहस्रों गौओं का दान करने वाला होता है ॥ ९ ॥ देवगणों के अधिपति सूर्य ने तेरे वय

को धारण किया है । त्वष्टा और वायु का आत्मा तेरे चहुँ ओर स्थित है । मैं अपने हृदय से अन्तरिक्ष मे तेरी आहुति देता हूँ । आकाश और पृथ्वी दोनो तेरे वर्हि हो ॥१०॥

य इन्द्रइव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥११॥
पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतो केवलाविति ॥१२॥
भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥१३॥
गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥१४॥
क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभ व्यकल्पयन् ॥१५॥
ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥१६॥
शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्ति हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७॥
शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥१८॥
ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥१९॥
गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत् सर्वमनु मन्यतां देवा ऋषभदायिने ॥२०॥
अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥२१॥
पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।

आयुरस्मन्न्‍ दधत् प्रजा च रायश्च पोर्वरभि न सवताम् ॥२२॥
उपहोपपर्चं नास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥२३॥
एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोर्वरभि न सचध्वम् ।२४

जैसे इन्द्र देवताओ मे आते हैं, उसी भाँति गौओ मे गर्जन करते हुए आने वाले वृषभ के शरीराङ्गो की ब्रह्मा कल्याणमय वाणी मे प्रार्थना करें ॥ ११ ॥ अनूवृज भग देवता के और पार्श्व अनुमति के हैं। मित्रदेव के कथनानुसार केवल टखने उनके हैं ॥ १२ ॥ कमर सूर्या की पूँछ वायु की तथा श्रोणी वृहस्पति के हैं। वायु देव पूँछ से ही औषधियो को कम्पित करते है । १३ ॥ त्वचा, सूर्य की, गुदा सिनी वाली की और पाँव उत्थाता के हैं। वृषभ की कल्पना करने वालो का ऐसा ही मत है ॥ २४ ॥ क्रोड जामिशस का था। सोम ने कलश को धारण किया। देवगणो ने एकत्र होकर इस भाँति ऋषभ की कल्पना की ॥ १५ ॥ उन्होने सरमा के निमित्त कुष्ठिकाओ को धारण किया, कर्मो के लिये खुर तथा कोटो के लिये ऊवध्य को नियत किया ॥ १६ ॥ गौओ का स्वामी प्रघन्य वृषभ सीगा द्वारा यातुधानो को मार भगाता है, अपने नेत्रो से निधनता का नाश करता है और अपने श्रोत्रो से सौभाग्य प्रदान करता है ॥ १७ ॥ ऋषभ दानी ब्राह्मण शतयाज यज्ञ को करता है। उसे अग्नि दुखी नही करते और समस्त देवगण उसको तृप्ति करते हैं ॥ १८ ॥ ऋषभ दान देकर जो ब्राह्मण अपने को उदार बनाता है, वह अपने गोष्ठ में गौओ को फलते फूलते देखता है ॥ १९ ॥ ऋषभ दाता के लिये गौ, प्रजा तथा शरीर बल आदि सबको प्रदान करने वाला हो ।२०।

हविर्वान इन्द्र ज्ञान रूप धान्य प्रदान करें। यह इन्द्र इस यजमान को स्वर्ग में सरलता से दुही जाने वाली गौ प्रदान करें। वह सदा बछड़ो से सम्पन्न हो तथा वश में रह दूध देती रहे ॥ २१ ॥ आकाश रूप अन्न के धारणकर्त्ता इन्द्रदेव का बल हमें आयु और पुत्र, पौत्रादि प्रदान करता हुआ सब प्रकार से शक्तिशाली बनाये ॥ २२ ॥ हे उपपर्चन ! यहाँ पधारो। इस गोष्ठ में हमको संपृक्त करो। हे इन्द्र ! इस वृषभ का वीर्य तुम्हारा ही है ॥ २३ ॥ यह तरुण वृषभ तुम्हारे निमित्त ही लाया गया है। तुम इस गोष्ठ में उससे क्रीडा रत हो अपने वत्सों सहित घूमो और हमें छोड कर न जाओ। हमको धनों से पूर्ण करो ॥२४॥

५ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—भृगु । देवता—अज पञ्चौदन । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, अष्टि, प्रकृति ।)

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥१॥
इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥२॥
प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥३॥
अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥४॥
ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥५॥
उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥६॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥७॥
पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥८॥
अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥९॥
अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥१०॥

इस अज को लेकर यज्ञ कर्म का प्रारम्भ करो। जिन लोको को पुण्यशील व्यक्ति गमन करते है, उनको यह अज भी प्रस्थान करे तथा अन्धकारो को पार करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त हो ॥ १ ॥ हे विज्ञ अज ! इस यज्ञ मे मैं तुझे इन्द्र के भाग के निमित्त यजमान के निकट पहुँचाता हूँ। तू हमारे शत्रुओ पर पांव रख। इस यजमान के पुत्र, पौत्रादि तो दोष रहित हैं ॥२॥ हे अज ! तू स्वय कृत दोष के कारण अपने पांवो को शुद्ध कर और पवित्र शफो से स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर। यह अज अन्धकारो का विनाश करता हुआ तथा विभिन्न लोको के दर्शन करता हुआ तृतीयनाक स्वर्ग को जा पहुँचे ॥ ३ ॥ हे विशस्ता ! इस श्याम के द्वारा इसको स्वस्थ करो। इसके जोडा को कष्ट न हो। इसको हर जोड पर कल्पित करता हुआ सुख पूर्ण स्थान की ओर प्रेषित कर ॥ ४ ॥ मैं ऋचा द्वारा कुम्भी को अग्नि पर चढाता हूँ। तू जल छिडक कर इसे रख। हे शमिताओ ! इसे रखो। यह पूर्णतया पक कर पुण्यात्माओ के लोक को प्राप्त हो ॥ ५ ॥ तू इस परिपक्व चरु द्वारा स्वर्ग गमन के निमित्त आरूढ हो। तूने अग्नि के द्वारा अग्नि रूप धारण कर लिया है, अत उस दैदीप्यमान लोक पर विजयश्री प्राप्त कर ॥ ६ ॥

अज ही ज्योति है यही अग्नि है, प्राणधारी पुरुष अज का दान करे। श्रद्धा सहित इस लोक मे दान किया हुआ अज पापो का विमोचन करता हुआ स्वर्ग का साधन है ॥ ७ ॥ पचौदन के पाँच क्रम हो। वह सूर्य, चन्द्र और अग्नि इन ज्योतित्रय पर आरूढ हो। हे पचौदन ! तू यज्ञात्मक सुकार्यों के मध्य मे पहुँच कर स्वर्ग को प्राप्त हो ॥ ८ ॥ हे अज ! जहाँ शरभ नहीं जा सकता, जो अनम्य पदार्थों से युक्त है ऐसे धर्मात्माओ के लोक मे चढ। ब्रह्मा के निमित्त किया हुआ पचौदन दाता को तुष्ट करने मे पूर्ण समर्थ है ॥ ९ ॥ यह अज दानशील व्यक्ति को श्रेष्ठ पद और निपृष्ठादि स्वर्ग की प्राप्ति कराता है। हे अज ! ब्रह्मा के निमित्त किया हुआ पचौदन दानी को कामधेनु बन जाता है ॥१०॥

एतद् वो ज्योति पितरस्तृतीय पञ्चौदन ब्रह्मणेऽज ददाति ।
अजस्तमास्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्त ॥११॥
ईजानाना सुकृता लोकमीप्सन् पञ्चौदन ब्रह्मणेऽज ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोक जयैत शिवोस्मभ्य प्रतिगृहीतो अस्तु ॥१२॥
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसा विपश्चित् ।
इष्ट पूतमभिपूर्त वषटकृत तद् देवा ऋतुश कल्पयन्तु ॥१३॥
अमोत वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोका त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवा ॥१४॥
एतास्त्वाजोप यन्तु धारा सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुत ।
स्तभान पृथिवीमुत द्या नाकस्य पृष्ठे अधि सप्तरश्मौ ॥१५॥
अजोस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरस प्राजानन् ।
त लोक पुण्य प्र ज्ञेषम् ॥१६॥
येना सहस्र वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेम यज्ञ नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥१७॥

अजः पक्व स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥१८॥
य ब्राह्मणे निदधे य च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्न सगमने पथीनाम् ॥१९॥
अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौ पृष्ठम् ।
अन्तरिक्ष मध्य दिश पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥२०॥

हे पितरो ! ब्रह्मा के निमित्त जो दाता तृतीय पचौदन रूप अज का दान करता है, वह तुम्हारे लिये प्रकाश रूप है। श्रद्धापूर्वक इस लोक मे दान किया हुआ अज परलोक मे पाप रूप तिमिर से मुक्ति दिलाता है ॥ ११ ॥ धर्मात्माओ के लोक की कामना करन वाला व्यक्ति पचौदन के अज को ब्रह्मा के निमित्त दान देता है। हे अज ! हमारे लिये मङ्गलमय स्थान तेरे द्वारा प्राप्त हो तथा तू स्वर्ग विजयी हो ॥ १२ ॥ यह अज ब्रह्म एव बल का ज्ञाता तथा अग्नि की ज्वाला से प्रकट होता है। इसके द्वारा अभीष्ट पूर्ति अभिपूर्ति और वषट् कर्म को देवगण कल्पित करें ॥ १३ ॥ स्वर्ण रूप दक्षिणा को वस्त्र से आच्छादित कर जो दान करता है, वह पुरुष पार्थिव तथा दिव्य लोको को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ हे अज ! यह घृतयुक्त मधुमयी दीप्यमान सोम की धाराएँ तुझे प्राप्त हो। तू सूर्य के ऊपर आसीन स्वर्ग मे द्यावा पृथिवी चक्ति कर ॥ १५ ॥ हे अज ! तू स्वर्ग है क्योकि तेरे द्वारा ही अङ्गिरा वश के ऋषियो ने स्वर्ग को पहिचाना था। मैंने भी उसी पुण्यात्मक स्वर्ग लोक को पहचान लिया है ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! जिस बल के आधार पर तुम देवगणो को सब भाँति के ऐश्वर्य पहुँचाते हो, उसी शक्ति से हमारे इस यज्ञ को भी स्वर्ग-लोक की प्राप्ति हेतु देवताओ के पास वहन करो ॥ १७ ॥ पचौदन अज स्वर्ग को प्राप्त होकर

पाप देवता निर्ऋति को रोकता है। सूर्य से युक्त लोकों को हम इस अज के द्वारा प्राप्त करें ॥१८॥ जो धन अज के ओदन की बूंदें है, जिस धन को हमने प्रजाओं एव ब्राह्मणो मे स्थापन किया है, हे अग्ने! धर्मात्माओं के लोक में यह सब हमको जानने वाले हो ॥ १६ ॥ अज ने आरम्भ मे व्यक्रमण किया, पेट भूमि, पीठ द्यौ मध्य अन्तरिक्ष और पार्श्व भाग दिशाऐं हुई तथा कुक्षि ने समुद्र रूप धारण किया ॥२०॥

सत्यं च ऋतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥२१॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे ।
योजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२२॥

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥२३॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योज पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२४

पच रुक्मा पच नवानि वस्त्रा पचास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२५॥

पंच रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२६॥

या पूर्वं पतिं वित्त्वायान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पंचौदनं च तावजं ददातो न वि योषत ॥२७॥

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योज पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२८॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनडवाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥२९॥

आत्मनं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥३०॥

नेत्र सत्य और ऋतु सिर विराट् एवं प्राण सत्य और श्रद्धा हुए । अतः यह पचौदन अज असीम यज्ञ ही है ॥ २१ ॥ पंचौदन अज का दानदाता यज्ञ फल की प्राप्ति करता हुआ अपने लिये विस्तृत असीम लोक का उद्घाटन करता है ॥ २२ ॥ इसके निमित्त अस्थियो को तोडने या 'मज्जा को धोने की आवश्यकता नही है । वरन् सब लेकर 'यह है' कहते हुए 'इसमे' प्रवेश करे ॥ २३ ॥ इसका ऐसा ही स्वरूप है । इसके द्वारा ही यह हमे फल से पूर्ण करता है । जो व्यक्ति इस दीप्यमान दक्षिणा-युक्त अज को दान करता है, उसे यह अन्न बल और कीर्ति प्रदान करता है ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति दक्षिणा-युक्त दीप्यमान पचौदन का दान करता है, स्वर्ण, पच नूतन वसन और पचधेनु उसकी कामनाओ को पूर्ण करते हैं ॥ २५ ॥ जो व्यक्ति दक्षिणा-युक्त दीप्यमान पचौदन अज का दान करता है, वह स्वर्ग का उपभोग करता है । उसके लिये पचरुक्मा ज्योति, शरीर के लिये कवच और वस्त्रों की प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ जो स्त्री वाग्दान् द्वारा पति को जान कर अन्य पति को ग्रहण करती है, वे दोनो पंचौदन अज का दान करने से कभी अलग नही होते ॥ २७ ॥ ऐसी पुनर्विवाहित स्त्री का पति दक्षिणा-युक्त पचौदन अज का दान करने से उसी पुनर्विवाहिता के साथ समान लोक मे निवास करता है ॥ २८ ॥ जो दान देने वाला उपवर्हण वृषभ और अनुपूर्ववत्सा धेनु का स्वर्ण वस्त्र सहित दान करते हैं, वे सुन्दर स्वर्ग को प्रयाण करते हैं ॥ २९ ॥ मैं स्वयं को, पिता, पितामह, पुत्र और पौत्र, स्त्री, माता एव अन्य प्रिय जनों को अपने निकट बुलाता हूँ ॥३०॥

यो वै नैदाघं नाम ऋतुं वेद ।
एष वै नैदाघो नाम ऋतुर्यदज. पंचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पचौदनं दक्षिणाज्योतिष ददाति ॥३१॥
यो वै कुर्वन्तं नाम ऋतुं वेद ।
कुर्वतीं कुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नाम ऋतुर्यदज पंचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३२॥
यो वै संयन्तं नाम ऋतु वेद ।
संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नाम ऋतुर्यदजः पचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योज पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३३॥
यो वै पिन्वन्त नाम ऋतुं वेद ।
पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नाम ऋतुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३४॥
यो वा उद्यन्तं नाम ऋतु वेद ।
उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्नामऋतुर्यदजः पंचौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योजं पचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३५॥
यो वा अभिभुवं नाम ऋतुं वेद ।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वा अभिभूर्नाम ऋतुर्यदज पंचौदन ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रिय दहति भवत्यात्मना ।
योज पचौदन दक्षिणाज्योतिष ददाति ॥३६॥
भ्रज च पचत पच चौदनान् ।
सर्वा दिश संमनस सध्रीची सान्तर्देशा प्रति गृह्णन्तु त एतम् ।३७
तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं आज्य हविरिद जुहोमि ॥३८॥

पचौदन अज ही नैदाघ ऋतु है। इस नैदाघ नामक ग्रीष्म ऋतु के ज्ञाता एव दक्षिणा-युक्त पचौदन भ्रज का दान दाता, अपने शुभ कर्म से शत्रुओ के वैभव को नष्ट कर देता है ॥ ३१ ॥ कुर्वन्त ऋतु यही पचौदन अज है इसका ज्ञाता अपने शत्रु के वैभव को ग्रहण कर लेता है। दक्षिणा-युक्त इस पचौदन अज का जो दान करता है वह अपन शुभ कर्म द्वारा शत्रु के वैभ व को भस्म कर देता है ॥ ३२ ॥ सयत ऋतु ही पचौदन अज है। इनका ज्ञाता अपन शत्रु के वैभव को प्राप्त कर लेता है। दक्षिणा-युक्त इस पचौदन अज का जो दान करता है, वह अपने शुभ कम द्वारा शत्रु के वैभव को जला देता है ॥ ३३ ॥ पिन्वन्त ऋतु ही पचौदन अज है। इसका ज्ञाता अपन शत्रु के वैभव को हर लेता है। दक्षिणा-युक्त इस पचौदन भ्रज का जो दान करता है, वह अपने शुभ कर्म द्वारा शत्रु के वैभव को भस्म कर देता है ॥ ३४ ॥ उद्यन्त ऋतु ही पचौदन अज है। इस ऋतु का ज्ञाता अपने शत्रु की लक्ष्मी को हर लेता है, वह भ्रपने शुभ कर्म द्वारा शत्रु के वैभव को जला देता है ॥ ३५ ॥ अभिभू ऋतु ही पचौदन अज है। जो इस ऋतु को जानता है, वह अपने शत्रु की लक्ष्मी को हर लेता है। जो दक्षिणा-युक्त पचौदन अज का दान करता है, वह अपने इस शुभ कर्म द्वारा शत्रु की ऐश्वर्यरूप लक्ष्मी को भस्म कर डालता है ॥ ३६ ॥ अज का पचौदन

प्रस्तुत करो। सब दिशाएँ अन्तर्दिशाओं सहित सम चित्त होकर इसका स्वागत करें ॥ ७ ॥ ये दिशाएँ तेरे यज्ञ की रक्षा करें। उनके लिये मैं इस हवि को अर्पित करता हूँ ॥३८॥

६ सूक्त (१)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अतिथिः विद्या। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप; अनुष्टुप; जगती, बृहती, पंक्तिः।)

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ।
सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥२॥
यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥३॥
यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति ॥४॥
या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥५॥
यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥६॥
यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥७॥
यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥८॥
यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥९॥
यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥१०॥
यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥११॥
यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥१२॥
यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥१३॥
ते व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेंऽशव एव ते ॥१४॥
यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥१५॥
शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥१६॥
स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥१७॥

जो प्रत्यक्ष ब्रह्म का ज्ञाता है, जिसकी गाठें ही सभार हैं तथा अनूक्य ही ऋचाएँ हैं ॥ १ ॥ हृदय जिसका यजु और

साम लोम है तथा परिस्तरण ही जिसका हव्य है ॥ २ ॥ जो गृहस्वामी अतिथि को देखता है, वह देव यज्ञ को ही देखता है ॥ ३ ॥ अतिथि से भाषण ही दीक्षा है और उदक की विनती ही प्रणयन रूप है ॥ ४ ॥ यज्ञ में प्रणयन किया जाना ही जल है ॥ ५ ॥ अग्निपोमीय पशु को बन्धन ग्रस्त करना ही तर्पण है ॥ ६ ॥ ठहरने के स्थान की कल्पना करना ही हविर्धान्य की कल्पना है ॥ ७ ॥ उपस्तृणन करना ही बर्हि है ॥ ८ ॥ उपरिशयन का आहरण कर्ता ही स्वर्ग का उद्घाटन कर्ता है ॥ ९ ॥ जो कशिपु-उपबर्हण के लाने वाले है वही परिधि हैं ॥ १० ॥ जो अजन के अभ्यजन को लाते है, वही आज्य हैं ॥ ११ ॥ जो परोसने के लिये खाद्य सामग्री लाते हैं, वही पुरोडाशो को लाते है ॥ १२ ॥ जो भोजन के लिये निमन्त्रित करते हैं, वही हवि ग्रहण करने के लिये आह्वान करते हैं ॥ १३ ॥ धान और जौ ही सोम हैं ॥ १४ ॥ उलूखल और मूसली ही ग्रावा है ॥ १५ ॥ सूप ही छन्ना है, भूसी ऋजीपा और अभिपवणी ही जल है ॥ १६ ॥ दर्वी ही श्रुचा है, पवित्र करना ही आयवन है, कलशियें ही द्रोण कलश हैं और काले मृग का चर्म ही वायव्य पात्र है ॥१७॥

६ सूक्त (२)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अतिथि, विद्या । छन्द—बृहती त्रिष्टुप्, उष्णिक, अनुष्टुप्, पङ्क्ति ।)

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया इदा मिति ॥१॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांस कुरुते ॥२॥

उप हरति हवींष्या सादयति ॥३॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥४॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥५॥
एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥६
स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न
मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥७॥
सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥८॥
सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥९॥
सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो विततध्वर ।
आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति ॥१०॥
प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ॥११॥
प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति ॥१२॥
योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् ।
पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥१३॥

यह अतिथिपति अत्यन्त गुण सपन्न है, इस भांति देखने वाला यजमान ब्राह्मण का ही करने वाला है ॥१॥ उठाओ, खाओ, ऐसा कथन करने वाला इस प्राण को ही बढ़ता हुआ करता है ।२। उपाहरण करता है, वह हवि को प्राप्त कराता है ॥३॥ अतिथि उन परासे हुए पदार्थो का अपनी आत्मा मे ही हवन करता है ।४। वह हाथ रूपी श्रचे, प्राण रूपी यूप और वषटकार रूपी श्रुचकार से अपनी आत्मा मे हवन करता है ॥ ५ ॥ इन अतिथि रूप ऋत्विजो को ही यह स्वर्ग ले जाता है ॥ ६ ॥ जो यह जानता है, वह अपने शत्रु अथवा जिसके गोत्रादि से पूर्ण परिचय न हो, उसके अन्न को न खाय ॥ ७ ॥ जिसके अन्न को जो खाता है, वह उसके सब पापो को भी खाने वाला होता है ॥८॥ जो जिसके अन्न को नही खाता, वह उसके पाप को भी नही ग्रहता ॥ ९ ॥ अतिथियों को अन्न देते रहने वाला ग्रावाओ सहित, आद्र पवित्र यज्ञ का करने वाला और यज्ञ को पूर्ण करन

में सामर्थ्यवान् होता है ॥ १० ॥ अतिथि को बलि देना प्राजात्पय यज्ञ है ॥ ११ ॥ अतिथि का सम्मान करने वाला प्रजापति के पद चिन्हों पर चलने वाला होता है ॥ १२ ॥ अतिथि आह्वान ही आह्वानीय अग्नि हैं, घर में स्थित अग्नि ही ग्राहपत्य हैं और पाक वाले अग्नि दक्षिणाग्नि होते हैं ॥१३॥

६ सूक्त (३)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अतिथि, विद्या । छन्द—गायत्री, बृहती, उष्णिक् ।)

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥१॥
पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥२॥
ऊर्जां च वा एष स्फार्तिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥३
प्रजां च वा एष पशूश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥४॥
कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥५॥
श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः
पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥६॥
एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥७॥
अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय ।
यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥८॥
एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा
तदेव नाश्नीयात् ॥९॥

जो अतिथि से पूर्व भोजन कर लेता है, वह घर के सभी इष्ट कर्मों की पूर्ति के फल को खा जाता है ॥ १ ॥ अतिथि से पूर्व भोजन कर लेने वाला घर के दूध और रस को नष्ट कर डालता है ॥ २ ॥ अतिथि से पूर्व भोजन करने वाला व्यक्ति अपने घर के बल और ऐश्वर्य का विनाश करता है ॥ ३ ॥ अतिथि से पूर्व भोजन करने वाला घर की प्रजा और पशुओं को

ही खा जाता है ॥ ४ ॥ अतिथि से पूर्व भोजन करने वाला घर के यश को ही खा डालता है ॥ ५ ॥ अतिथि से पूर्व भोजन करने वाला घर की लक्ष्मी और समान मति को ही नष्ट करता है ॥ ६ ॥ श्रोत्रिय ही सच्चे रूप से अतिथि है, उससे पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ अतिथि के भोजन करने के बाद ही भोजन करे। यही गृहस्थी का व्रत होता है ॥ ८ ॥ गौ का दूध और अमिष पदार्थों को न खाय ॥९॥

६ सूक्त (४)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अतिथिः; विद्या। छन्द—अनुष्टुप्; गायत्री; पङ्क्ति।)

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥१॥
यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥२॥
स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्यपोहरति ॥३॥
यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥४॥
स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥५॥
यावत् सत्त्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥६॥
स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥७॥
यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥८॥
स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥९॥
प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति
य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥१०॥

इस तथ्य का जानने वाला दूध का उपसेचन करके अतिथि के लिये भोज्य पदार्थों को लाता है ॥ १ ॥ अग्निष्टोम से यज्ञ करने पर जितने स्थान को अपने लिये खोल सकता है, अतिथि के द्वारा उतना ही स्थान प्राप्त करता है ॥ २ ॥ इसका ज्ञाता घृत का उपसेचन कर अतिथि के निमित्त भोजनीय पदार्थ

लाता है ॥ ३ ॥ जो अतिरात्र करने पर स्वर्ग के जितने अधिकार प्राप्त कर सकता है, वह अतिथि द्वारा उतने ही अधिकार प्राप्त कर लेता है ॥४॥ जो इसे जान कर मधुमय भोज्य पदार्थों को अतिथि के लिये लाता है ॥ ५ ॥ तो सत्र-संद्य यज्ञ के द्वारा जितना स्वर्ग फल कर सकता है, वह अतिथि के द्वारा उतना ही फल प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ जो इसका ज्ञाता भोज्य, वस्त्र का उपसेचन कर भोजनीय पदार्थों को लाता है ॥ ७ ॥ तो द्वादशाह यज्ञ द्वारा जितना फल प्राप्त कर सकता है, वह अतिथि द्वारा उतना ही फल प्राप्त करता है ।८। इस बात का ज्ञाता जल का उपसेचन कर भोजनीय पदार्थ लाता है ॥ ९ ॥ तो वह सन्तानो के प्रजनन को प्राप्त करता है एव प्रतिष्ठा को प्राप्त करता हुआ प्रजाओ का प्रिय बन जाता है । जो यह जानता हुआ जल का उपसेचन कर अतिथि के निमित्त भोजनीय पदार्थों को लाता है ॥१०॥

६ सूक्त (४)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अतिथि,, विद्या । छन्द— उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्, गायत्री ।)

तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ॥१॥
बृहस्पतिरुर्जयोद्‌ गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति
विश्वे देवा निधनम् ॥२॥
निधन भूत्याः प्रजायाः पशूना भवति य एव वेद ॥३॥
तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति सँगवः प्र स्तौति ॥४॥
मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तयन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूना भवति य एवं वेद ॥५॥
तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ॥६॥

विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्‌गायन्नुद्‌गृह्णन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥७॥
अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद् गायति ॥८॥
उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥९॥
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥१०॥

प्रजा उसके निमित्त हिं शब्द करती है, सूर्य उसे कीर्तिवान् बनाते हैं ॥ १ ॥ अन्न-रस से उत्पन्न पुष्टि से बृहस्पति उद्‌गायन करते हैं, त्वष्टा पुष्टि प्रदान करते हैं और साम परिसमाप्त करने वाली वाणी से विश्वेदेवा उसका यशोगान करते हैं ॥ २ ॥ इस बात का ज्ञाता पुरुष भूति, प्रजा और पशुओं का पोषण करने वाला होता है ॥३॥ प्रातः कालीन सूर्य हिं शब्द करते हैं और किरणों से युक्त वे सूर्य उसकी प्रशंसा भी करते हैं ॥४॥ सूर्य उसकी मृत्यु का विनाश करते हुए मध्यन्दिन के समय प्रशंसा करते हैं एवं मध्यान्ह में भोजन देते हैं। इस बात का ज्ञाता, भूति प्रजा और पशुओं का स्वामी होता है ॥ ५ ॥ उत्पन्न होता हुआ अन्न उसके निमित्त हिं शब्द करता है और घोर रव करता हुआ प्रशंसा करता है ॥ ६ ॥। वह चमकता हुआ प्रतिहरण करता और बरसता हुआ उद्‌गान करता है तथा मृत्यु का उद्‌ग्रहण करता है ॥ ७ ॥ अतिथियों को देखता हुआ हिं शब्द करता, उद्‌गान और स्तुति करता, अभिवादन एवं याचना करता है ॥ ८ ॥ तो उच्छिष्ट और निधन का प्रतिहरण तथा उपहरण करता है ॥ ९॥ इस तथ्य का ज्ञाता भूति, प्रजा और पशुओं का निधन साम से प्राप्त करने वाला होता है ॥१०॥

---

६ सूक्त (६)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अतिथिः; विद्या । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्; पङक्ति बृहती, जगती, त्रिष्टुप् ।)

यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥१॥
यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥२॥
यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥३॥
तेषां न कश्चनाहोता ॥४॥
यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥५॥
यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत्॥६
स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥७॥
स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ।८।
स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् ॥९॥
स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् ॥१०॥
स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ।११।
स उपहूत उपहूत ॥१२॥
आप्नोतीम लोकमाप्नोत्यमुम् ॥१३॥
ज्योतिष्मतो लोकाञ्जयति य एव वेद ॥१४॥

जो अभीष्ट कार्य वाला छत्ता को आहूत करता है, वह श्रुति को ही सुनने वाला होता है ॥ १ ॥ प्रतिज्ञा करने वाला ही प्रतिश्राव करने वाला है ॥ २ ॥ हाथ मे पात्र लिये आगे पीछे चलने हुए परोसने वाले ही चमस और अध्वर्यु है ॥ ३ ॥ इन अतिथियो मे एक भी ऐसा नही है जो आहुति न देता हो ॥ ४ ॥ अतिथियो को परोस कर गृहो के पास आने वाला

गृहपति अवभृथ स्नान करके गृह में बैठने के सदृष्य है ॥ ५ ॥ भोज्य पदार्थों को अलग-अलग परोसता हुआ दक्षिणा देता हुआ जो खड़ा रहता है, वह उदवसान करता है ॥ ६ ॥ वह पृथ्वी के सभी प्राणियों के यहाँ सन्मानपूर्वक आमंत्रित किये जाने पर भोजन करता है ॥ ७ ॥ वह अन्तरिक्ष के प्राणियों द्वारा सन्मान पूर्वक आह्वान किये जाने पर उनके यहाँ भोजन करता है ॥ ८ ॥ उपहूत होने पर देवताओं में भोजन करता है, देवों में जो प्राणी हैं, उनके द्वारा उपहूत होता है ॥ १० ॥ उपहूत होने पर वह लोकों में खाता है। लोकों में जो सुन्दर पदार्थ हैं, वह उनका आह्वान करता है ॥ ११ ॥ इस लोक और परलोक में भी वह सादर आह्वान किया जाता है ॥ १२ ॥ वह इस लोक को और परलोक को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जो इस बात का ज्ञाता है,वही ज्योतिर्मय लोकों को प्राप्त करता है।१४।

७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—गौ। छन्द—बृहती, उष्णिक्, अनुष्टुप्, गायत्री, पङ्क्ति त्रिष्टुप।)

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्र शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥१॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्य धरहनुः ॥२॥

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवा कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥३॥

विश्व वायु स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्य. ॥४॥

श्येन. क्रोडोन्तरिक्ष पाजस्यं बृहस्पति ककुद् बृहती कीकसाः ॥५

देवाना पत्नी. पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥६॥

मित्रश्च वरुणश्चासौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥७॥

इन्द्राणी भसद् वायु पुच्छ पवमानो वालाः ॥८॥

ब्रह्म च क्षत्र च श्रोणी बलमूरु ॥९॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदिति शफाः ॥१०॥

इस गौ के सींग परमेष्ठी प्रजापति हैं, इन्द्र, शिर, अग्नि मस्तक तथा यम कृकार हैं ॥ १ ॥ सोम मस्तिष्क, द्यौ उत्तर चिबुक, तथा निम्न चिबुक पृथ्वी है ॥ २ ॥ दांत मरुद्गण, जिह्वा विद्युत, कन्धे कृत्तिका और रेवती ग्रीवा रूप है ॥ ३ ॥ स्वर्गलोक विश्व, वायु और कृष्णद्र विधरणी निवेष्य है ॥ ४ ॥ बृहस्पति ककुद, बृहती, अस्थियां, बाज क्रोड तथा अन्तरिक्ष पाजस्य है ॥५॥ देव पत्नियाँ पसलियाँ है और उपसद उनकी कोख है ॥ ६ ॥ कन्धे मित्र वरुण हैं, महादेव वाहु तथा त्वष्टा और अर्यमा दोनो भुजाएं हैं ॥ ७ ॥ इन्द्राणी कमर है, वायु पूंछ और पवमान वाल है ॥ ८ ॥ जङ्घाऐं बल है तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय नितम्ब हैं ॥९॥ धाता और सविता उरु और जानु है,गन्धर्व जङ्घाऐं है अदिति शफ और अप्सराएं कुष्ठिकाएं है ।१०।

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥११॥
क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२॥
क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥१३॥
नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥१४॥
विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥१५॥
देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥
रक्षांसि लोहितमितरजना ऊवध्यम् ॥१७॥
अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥१८॥
अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥१९॥
इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥२०॥

मेघा, यकृत, चेत हृदय तथा व्रत पुरीतत् नाडी है ॥ ११ ॥ पर्वत प्लाशि हैं, बडी आंत इरा है और कोख भूख के अभिमानी देवता है ॥ १२ ॥ जननेन्द्रिय प्रजा, मन्यु अडकोष

तथा क्रोध वृक्क है ॥ १३ ॥ स्तन वर्षपति हैं, नदी सूक्ष्मी और ऐन गर्जन है ॥ १४ ॥ लोम औषधि, नक्षत्र रूप और विश्व व्यचा चर्म हैं ॥ १५ ॥ देवता गुदा मनुष्य आँतें, अन्न उदर है ॥ १६ ॥ राक्षस लोहित हैं, इतर मनुष्य ऊवध्य हैं ॥ १७ ॥ निधन मज्जा और अभ्र पुष्टि है ॥ १८ ॥ अग्नि असीन और उत्थित अश्विद्वय है ॥ १९ ॥ पूर्व की ओर ठहरना इन्द्र और दक्षिण की ओर ठहरना यम है ॥२०॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥२१॥
तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥२२॥
मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२३॥
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्त प्रजापतिर्विमुक्त: सर्वम् ॥२४॥
एतद् वै विश्वरूप सवरूपम् गोरूपम् ॥२५॥
उपैन विश्वरूपा. सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एव वेद ॥२६॥

पश्चिम मे ठहरी हुई गौ धाता और उत्तर मे ठहरी हुई सविता है ॥ २१ ॥ तृणों को प्राप्त गौ सोम रूप है ॥ २२ ॥ देखती हुई मित्र है ठीक हुई आनन्द है ॥ २३ ॥ युज्यमान विश्वेदेव रूप है युक्त प्रजापति है, और वियुक्त सर्वरूप है ॥२४॥ यह सपूर्ण विश्व गौ रूप है ॥२५॥ ऐसा जानने वाला हर प्रकार के पशुओ को प्राप्त करता है ॥२६॥

८ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा । देवता—सर्वशीर्षामयापाकरणम् ।
छन्द—अनुष्टुप् उष्णिक् बृहती पङ्क्ति. ।)

शीर्षक्ति शीर्षामय कर्णशूल विलोहितम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥१॥
कर्णाभ्या ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥२॥
यस्य हेतो. प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यत ।

सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥३॥
यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥४॥
अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्गयं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्य ते रोग बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥५॥
यस्य भीम प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारद बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥६॥
य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरंगेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥७॥
यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमंगेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥८॥
हरिमाणं ते अगेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९॥
आसो बलासो भवतु मूत्र भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विष निरवोचमहं त्वत् ॥१०॥

शीर्षामय, शीर्षक्ति, कर्णशूल और विलोहित आदि तेरे समस्त शीर्ष रोगो को पृथक करते हैं ॥ १ ॥ तेरे कानो से कर्णशूल और विसल्पक रोग को मैं निकाल बाहर करता हूँ ।२। जिस शीर्ष रोग के कारण कान और मुख द्वारा क्षय रोग होता है, उस शीर्ष रोग को हम पूर्णत विनष्ट करते हैं ॥ ३ ॥ जो रोग अन्धा बना देता है, उस शीर्ष रोग को हम पूर्णतया दूर करते है ॥ ४ ॥ शरीर को ऐंठने वाले ज्वर को, विसल्प रोग को, शिरोंगय एव शीर्ष रोग को हम पूर्ण रूपेण बाहर करते है ॥५॥ उस शरद् कालीन ज्वर को जो अपने भीषण आवेग द्वारा कम्पायमान कर देता है, हम बाहर खीचते हैं ॥ ६ ॥ उस क्षय रोग को जो गवीनिका नामक नाडियो मे तथा उरुओ मे घूमता है तेरे शरीर से बाहर निकालते हैं ॥ ७ ॥ जो काम

या अकामवश हृदय की शक्ति क्षीण करने वाला रोग पैदा होता है, उसे हम पृथक करते हैं ॥८॥ तेरे उदर से अधोरोग, अङ्गों से हरिया रोग और अन्तरात्मा से यक्ष्मोधा नामक रोग को निकाल बाहर करते हैं ॥ ९ ॥ मूत्र रोग तथा बलास रोग नष्ट हो। सब प्रकार के क्षय रोगों के विष को मैं मन्त्र शक्ति द्वारा तुझसे दूर करता हूँ ॥१०॥

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥११॥
उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१२॥
याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१३॥
या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१४॥
याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१५॥
यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१६॥
या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१७॥
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१८॥
ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१९॥
विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥२०॥
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।

अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥२१॥
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥२२॥

तेरे पेट से काहावाह नामक रोग दूर हो। सब प्रकार के क्षय रोगो के विष को मैं मंत्र-शक्ति द्वारा तुमसे अलग करता हूँ ॥ ११ ॥ तेरे उदर, नाभि और हृदय से यक्ष्मा रोग के विषो को मंत्र-शक्ति से निकाला हुआ कहता हूँ ॥ १२ ॥ सीमाओं को पीडित करने वाली, मस्तक मे जाने वाली अहिंसित अस्थियाँ स्वस्थ होती हुई, शरीर को न छोड़े ॥ १३ ॥ जो कीकश नामक हड्डियाँ हृदय मे फैली हुई हैं, वे किसी की हिंसा न करती हुई शरीर का त्याग न करें ॥ १४ ॥ जो अस्थियाँ पार्श्व मे जाती और पृष्टियो को शुद्ध करती हैं, वे स्वस्थ रहती हुई शरीर का त्याग न करें ॥ १५ ॥ तिरछी जाने वाली, वक्षणाओ मे मिलने वाली अस्थियाँ हिंसा न करती हुई स्वस्थ रहें और शरीर का त्याग न करें ॥ १६ ॥ गुदा के पीछे चलने वाली, आँतो को भ्रमित करने वाली वे *अस्थियाँ* हिंसा न करती हुई तथा स्वस्थ रहती हुई शरीर का त्याग न करे ॥ १७ ॥ जो *अस्थिया* गाँठो को कष्ट देती और मज्जा को धोली है, वे हिंसा रहित तथा स्वस्थ रहती हुई शरीर से बाहर न निकलें ॥ १८ ॥ अङ्गो पर मांस चढाने मे समर्थ यक्ष्मा रोग को नष्ट करने वाली औपधियाँ तेरे रोग को शमन कर सकती हैं। मैं उनके द्वारा समस्त प्रकार के यक्ष्मा विषों को मन्त्र-शक्ति से बाहर करता हूँ ॥ १९ ॥ वातीसार, अलजि, विसल्प, विद्रधि आदि समस्त क्षय के विषो को मंत्र-शक्ति द्वारा तेरे शरीर से बाहर निकलने को कहता हूँ ॥ २० ॥ तेरे जानु, पाव, श्रोणि, अनूक उष्णिहा नाडियो से मैंने तेरे शिर रोगो को सपूर्ण रूप से नष्ट कर दिया है ॥ २१ ॥ तेरे सिर पर ही प्रकट होते हुए सूर्य ने अपनी

किरणों द्वारा तेरे रोग को नष्ट कर दिया और चन्द्रमा ने तेरे सिर और हृदय के अग भेद को शान्त कर दिया है ॥२२॥

६ सूक्त (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता आदित्य , अध्यात्मम् । छन्द-त्रिष्टुप् जगती)

अस्य वामस्य पलितस्य ह तु तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्य विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थु ॥२॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवा निहिता सप्त नामा ॥३॥
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥४॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥५॥
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥६॥
अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥७॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८॥
युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९॥
तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥१०॥

यह आह्वानीय सूर्य, स्तुति द्वारा पोषण करते हैं। इनका मध्यम स्थानीय बन्धु वायु है तथा वही आकाश को जल ले जाने वाला है। इस वायु का तृतीय बन्धु अग्नि है। इस

भाँति वायु सूर्य और अग्नि रूप दीप्तियों में, मैं सूर्य को ही प्रमुख मानता हूँ ॥ १ ॥ खिसकने वाली रश्मियाँ अन्य दीप्तियों के प्रकाश को हटाती हुई एक पहिये वाले सूर्य के रथ मे योजित हो जाती हैं। सप्त ऋषियो द्वारा नमस्कार प्राप्त करते हुए यह सूर्य विचरण करते हैं। यही सूर्य ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त नामक ऋतुओं का समय नियत करते हैं। समस्त भुवन इस काल चक्र के आश्रय मे ही स्थित हैं ॥ २ ॥ सूर्य का रथ सात अश्वो द्वारा खींचा जाता है, जिसके समीप सप्त ऋषि खडे रहते हैं। किरणें इनकी स्तुति करती हैं। जहाँ रश्मिरूप गौएँ निहित हैं, वे इनको रस से पुष्ट करती हैं ॥ ३ ॥ भूमि को जीवन देने वाला एव जल का रचयिता आत्मा किधर है। इस प्रथम उत्पन्न अस्थन्वन् को किसने देखा ? अरुण इनका बोझ उठाते हैं। इसे पूछने के लिये विज्ञजनो के पास कौन पहुँचा था ? ॥ ४॥ सूर्य के विषय मे जानने वाला बताये कि इनकी प्रतिष्ठा कैसी है ? इनके मण्डल से गौएँ दूध दुहती और इनकी रश्मियो द्वारा वृष्टि होने पर जल पीती हैं ॥ ५ ॥ मैं सूय के विषय मे पूर्ण रूप से जानता हूँ। इनके सम्बन्ध मे अपने मन से पूछता हूँ कि सब देवगणो के कवच इन्हीं मे निहित है। विज्ञजनों ने विस्तार हेतु सात तन्तुओं की स्थापना की है ॥ ६ ॥ मैं अनजान हूँ। विज्ञजनो से पूछता हूँ कि वह अजरूप मे छै रजो को चकित करता है या एक रज को ? ॥ ७ ॥ माता सूर्य के उत्पत्तिकाल मे ही पिता की सेवा करती है और मन बुद्धि से युक्त हो जाता है। यह गर्भरस से निविद्ध होती है। हविरन्न युक्त प्राणी इन उपवाक् के पास जा पहुँचते हैं ॥ ८ ॥ शक्तिशालिनी स्त्रियो मे गर्भ की स्थापना होती है एव बछडा, गौ की ओर देखता हुआ शब्द करता है। वह तीन योजनाओ मे विश्वरूप धारण करता है ॥ ९ ॥ तीन द्यौ रूप तीन पिता और तीन पृथ्वी रूप

तीन माता तथा इनके बीच मे एक सूर्य स्थित है। विश्व के जाता आकाश के पृष्ठ में विश्व को प्राप्त न होने वाली वाणी को कहते हैं ॥१०॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभार सनादेव न च्छिद्यते सनाभि ॥११॥
पञ्चपाद पितर द्वादशाकृति दिव आहु परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥१२॥
द्वादशार नहि तज्जराय ववर्ति चक्र परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थु ।
सनेमि चक्रमजर वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षु रजसैत्यावृत यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१४॥
स्त्रिय सतीस्तां उ मे पुस आहु पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्ध ।
कविर्य पुत्र स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥१५॥
साकजाना सप्तथमाहुरेकज षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपश ॥१६
अव परेण पर एनावरेण पदा वत्स बिभ्रतीगौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची क स्विदर्ध परागात् क्व सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥१७॥
अव परेण पितर तो अस्य वेदाव पर एनावरेण ।
कवीयमान क इह प्र वोचद् देव मन कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥
ये अर्वाञ्चस्तां उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्तां उ अर्वाच आहु ।
इन्द्रश्च या चक्रथु सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष परि षस्वजाते ।
तयोरन्य पिप्पल स्वाद्वत्त्यनश्नन्न यो अभि चाकशीति ॥२०॥
यस्मिन् वृक्षे मध्वद सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहु पिप्पल स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्य पितर न वेद ॥२१॥
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेष विदथाभिस्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपा स मा धीर पाकमत्रा विवेश ॥२२॥

उस पांच अरे के चक्र मे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, उसके भार वाला अक्ष स्वय सन्तापित नही होता और वह प्राचीन होने पर भी नही टूटता ॥ ११ ॥ उस पिता रूप, बारह माम रूप आकृति और पच ऋतु रूप पाँव वाले को स्वर्ग के परार्द्ध मे सोने वाला कहते है । इस मेघ मे सप्त चक्र और छः अरो को समर्पित करते हैं ॥ १२ ॥ यह बारह अरे वाला स्वय गतिशील होता हुआ क्षीणता को प्राप्त नही होता । हे अग्ने ! इसमे पुन रूप सात सौ बीस युगल निवास करते हैं ॥ १३ ॥ वह क्षीण न होने वाला चक्र वृद्धि को प्राप्त होता रहता है, उसे दश 'युक्त' ढोते हैं । सूर्य का नेत्र तिमिर से आच्छादित आता है, जिसमे समस्त विश्व स्थित है ॥ १४ ॥ उनका दर्शन करने वाला अमर होता है, नही तो अज्ञानी होता है । जो विद्वान् इस तथ्य का ज्ञाता है, वह पोषको का भी पोषण कर्ता बन जाता है । साध्वी स्त्रियाँ उन्हे पुरुष पुकारती हैं ॥ १५ ॥ देवताओं से उत्पन्न छः ऋषि साङ्गों के सप्तथ को एकज कहते है, उनके अभीष्ट स्थान पूर्णतः ज्ञात हैं । वे विभिन्न रूप से शोभित होते हैं ॥ १६ ॥ श्वेत वर्ण की गौ पर पैर से अन्न और अवर-पैर मे वत्स को धारण करती हुई उठती है । वह किसी अर्ध भाग मे जाती है, यूथ मे बच्चा नहीं उत्पन्न करती है ॥ १७ ॥ 'पर' के द्वारा इसके पिता अन्न को जानने वाला और अवर के द्वारा 'पर' का ज्ञाता स्वर्गीय मन कहाँ से उदय हुआ ? ऐसा प्रजापति ने कहा ॥ १८ ॥ जो अर्वाङ हैं, वे पराचो को और जो पराच हैं, वे अर्वाचो को कथन करते हैं । हे इन्द्र ! और हे सोम ! तुम जिसे चाहते हो वही लोक धारण करने मे समर्थ होता है ॥१९॥ समान माया से युक्त और समान ख्याति वाले दो सुन्दर आत्मा एक ही वृक्ष पर आसीन है, परन्तु एक स्वादिष्ट पीपल का भक्षण [illegible]

॥ ३० ॥ वृक्ष का जो भाग स्वादिष्ट पीपल कहाता है, उस पर जो मधु प्रेमी पक्षी निवास करते हैं, वे सृष्टि के विस्तार मे सहायक होते हैं। जो कारण से अवगत नहीं उसका वह ससार विनष्टता को प्राप्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ जहाँ पक्षी कर्मों को अमृत रूप फल के समान जानते हैं, वह ससार का रक्षक घोर भूय मे प्रवश पाने की सामर्थ्य से रहित हैं ॥२२॥

१० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—गौ ; विराट्; अध्यात्मम्, मित्रावरुणौ । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्; शक्वरी ।)

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पद य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशु ॥१॥
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२॥
जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥३॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदुषु प्र वोचत् ॥४॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥५॥
गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥६॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥७॥
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥८॥
विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥९॥

य ईं चकार न सो अस्य वेदयईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥१०॥

गायत्र मे गायत्र और त्रैष्टुभ मे त्रैष्टुभ निरतक्षित है तथा जगती मे जगत निहित है । इसे सच्चे अर्थ मे जानने वाले अमर हो जाते हैं ॥ १ ॥ गायत्र से अर्क,अर्क से साम, त्रैष्टुभ से वाक् तथा वाक् को और द्विपदा, चौपदा छन्द से सब वाणियो को शब्द युक्त बनाया जाता है ॥ २ ॥ ससार द्वारा समुद्र को आकाश में प्रेरित किया, रथन्तर मे सूर्य को देखा, गायत्री की तीन समिधाओ का कथन किया, फिर वह अपनी महानता से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ गौओ की सुन्दर हाथो से दोहन करने वाला मैं सुगमता से दुग्ध-युक्त गौ को दोहन करता हुआ निकट बुलाता हूँ ॥ ४ ॥ मन से वत्स की चाहना करती हुई, धन द्वारा पालन करने योग्य यह धेनु हिं शब्द करती हुई धनिको को प्राप्त हुई है । यह श्रेष्ठ भाग्य के लिये हमारे घर मे वृद्धि को प्राप्त हो और अश्विनीकुमारो के लिये दुग्ध प्रदान करे ॥ ५ ॥ अपनी ओर देखते हुए बछडे को ओर हिं शब्द करती हुई गौ उसके समीप पहुँच कर सूँघती है । तू मेरा है, यह बताने को शब्द करती और वत्स को अपने दूध से पुष्ट करती है ॥ ६ ॥ शब्द-युक्त मेघ ने माध्यमिका वाणी को आच्छादित किया और आच्छादन की हुई वाणी शब्द करती है या वह अपने को सूर्यवत् बता कर मेघ से युक्त होकर रहती है । है । यह वाणी मनुष्य को भय प्रदान करती हुई विद्युत रूप मे प्रकट होती और वृष्टि की समाप्ति पर अपने रूप को छिपा लेती है ॥ ७ ॥ मैं यमलोक के भय से कम्पित प्राणी के घर मे निद्रामग्न स्वास लेता हूँ । अमर जीव, मृत्यु-शील प्राणियो का सयोनि हुआ स्वधा सहित भक्षण करता है ॥ ८ ॥ दमनशील, विधमनशील तरुण चन्द्र को सूर्य भक्षण कर जाता है । ईश्वर

की कुशलता से चन्द्रमा आज मृत्यु को प्राप्त हुआ है, वही, कल जीवित हो जाता है ।। ९ ।। गर्भ करने वाला गर्भ के तत्व से परिचित नही । गर्भ के भीतर जो होता है, वही गर्भ को देखता है । माता के भोजन व्यवहार से पुष्ट हुआ, वह उचित समय पर पैदा होता है एव अनेक वार उत्पत्ति रूप वाली निर्ऋति के बन्धन मे ग्रस्त होता है ।।१०।।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीवसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ।।११।।
द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ।।१२।।
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचं परमं व्योम ।।१३
इयं वेदि. परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ।।१४।।
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्य. संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ।।१५।।
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ।।१६
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
तेधीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ।।१७
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदु ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते।।१८
ऋचः पद मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।।१९।।
सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ।।२०।।

सरक्षण करने वाले आत्मा को हमने विश्वरूप चक्र में

विचरण करते देखा।'उसी को इहलोक एवं परलोक में सत्व-रज एवं तम-युक्त मार्गों में भी विचरण करते देखा है। वह अपने में व्याप्त इन्द्रियों सहित लोकों में घूमता है ॥ ११ ॥ वृष्टि करता हुआ वीर्योत्पादक ग्रह आकाश ही मेरा जनक है और यह पृथ्वी मेरी जननी है क्योकि यह वृष्टि जल को औषधि रूप प्रदान करती है। द्यावा पृथ्वी को सूत्र रूप से वायु धारण करते हैं। पिता रूप द्यौ वृष्टि रूप गर्भ का पृथ्वी मे स्थापन करता है ॥ १२ ॥ मैं पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थान को वर्षक व्यापक के वीर्य को और समस्त सृष्टि की नाभि को पूछता हूँ तथा व्योम से भी पूछता हूँ ॥ १३ ॥ वेदी पृथ्वी को सबसे उत्तम वस्तु है। सोम ही वर्षक व्यापक का वीर्य है, यज्ञ ही सम्पूर्ण जगत का नाभि है और ब्रह्मवाणी से परे आकाश है। १४ ॥ मैं यह नही समझ पाया कि मैं परब्रह्म रूप कारण हूँ अथवा उसका कार्य द्वैत हूँ ? मैं इस द्वैत और अद्वैत की सन्देह पूर्ण गुत्थियो मे फँस कर उसी के मध्य चक्कर काटता हूँ। अतः सब इन्द्रियो मे प्रमुख बुद्धि के द्वारा कारण हूँ या कार्य, यह जानकर वाणी के भाग का *उपभोग करूँ ॥ १५ ॥ आत्मा अमर है वह मृत्युशील मन से* सयुक्त हो गर्भ से प्रकट होता है। उनमे से आत्मा ब्रह्म मे मिल कर एक रूप हो जाता है और मन उसके समीप नही पहुँचता। वह आत्मा के कार्य का दर्शक मात्र होता है और कारण से अपरिचित ही रहता है ॥ १६ ॥ सूर्य मे सम रश्मियाँ वीर्य रूप मे रहती है। वे कर्मो की उत्पत्ति रूप से वर्षा के रूप मे समस्त सृष्टि में व्याप्त होती हैं ॥ १७ ॥ ॐकार के अक्षर परम व्योम मे समस्त देवगण निवास करते है, जो इससे परिचित नहीं, वह ऋक आदि मन्त्रों द्वारा क्या कर सकता है ? जो इससे परिचित हैं, वे इसका उपदेश देते है ॥ १८ ॥ ॐकार के पद की कल्पना करते हुए उस अर्ध मे इस चैतन्य सृष्टि की रचना हुई। ब्रह्म

अटल रूप से रहने वाला है उसकी एक मात्रा से चारो दिशाएँ जीवन प्राप्त करती हैं ॥ १९ ॥ हे पृथ्वी ! तू जलमय सूर्य से जल रूप ऐश्वर्य से युक्त हो । हम भी तेरे जल रूप धन से पूर्ण हों । तू उस मेघ को विदीर्ण करती हुई शुद्ध जल का सेवन कर एवं सूर्य की किरणों द्वारा लाये हुए जल का पान कर ॥२०॥

गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि विक्षरन्ति ॥२१॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदु ॥२२॥
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रा वरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिरस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥२३॥
विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥२४॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥२५॥
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥२६॥
चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥२७॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥२८॥

यह वाणी रूप गौ ही संसार की रचयिता है । यह जल को उत्पन्न करने वाली है । मध्यम के साथ एकत्व प्राप्त कर एकपदी, सूर्य के साथ द्विपदी दिशाओं के साथ चतुष्पदी, अवान्तर दिशाओं से अष्टपदी और दिशा-विदिशा तथा सूर्य के साथ युक्त

होकर नवपदी हा जाती है। परम व्योम के अविभाजित आत्मा मे सयुक्त हुई रचना करती है, उसी से मेघ वृष्टि करते हैं ॥२१॥ जल को प्राप्त होती हुई सूर्य रश्मियाँ दीप्यमान सूर्य म ही जाती है और वही जब दक्षिणायन मे सूय मण्डल से वापिस होती हैं, तब पृथ्वी जल से सिंचित हो उठती है ॥ २२ ॥ हे सूर्य! ह वरुण! तुम्हारे रूप को कौन जानता है? पाद-विहीन किरण पाँव वाला से पूर्व ही आ जाती हैं। पृथ्वी इनके बोझ को वहन करती है। वह सत्य भाषी का पोषण एव मिथ्याभाषी का विनाश करती है ॥ २३ ॥ विराट अन्तरिक्ष, विराट वाणी, विराट प्रजापति और विराट ही मृत्यु है। विराट ही साध्यो का स्वामी है। भूत भविष्य सभी उसके वशीभूत है। अत वह विराट भूत भविष्य का मेरे अधीन कर दे ॥ २४ ॥ मैंने विषवत् और एतावर यज्ञ द्वारा धूम्र को समीप ही देखा। उक्षा और पृश्नि का वीरा ने पचन किया, यही मुख्य धम थे ॥ २५ ॥ जो सूय अग्नि और वायु अपने कर्मों द्वारा समय समय पर ससार पर अनुग्रह करते है, इनमे एक अग्नि सवत्सर मे पृथ्वी को भस्म करते हैं, इससे वह क्रियाशील हो जाती है और सूर्य अपन कर्मो को करते हैं तथा वायु का रूप अदृष्य हो जाता है, केवल उसकी गति ही दिखाई देती है ॥ २६ ॥ ब्राह्मणो के मतानुसार वाणी के चार पद हाते हैं। उनम से तीन पद गुप्त हैं और चतुर्थ पद रूप वाणी का मनुष्य उच्चारण करते हैं ॥ २७ ॥ तत्व के जानने वाले विद्वान् अग्नि मित्र, वरुण को अग्नि ही बताते हैं और आकाश मे जो सुन्दर पर्णयुक्त स्तुति योग्य सूर्य हैं उन्ह भी अग्नि ही बताते हैं। इस एक ही अग्नि को आत्म स्वरूप से देखने वाले विद्वान् मातरिश्वा, यम, अग्नि आदि अनेक नामा से पुकारे जाते हैं ॥२८॥

❀ नवम् काण्डम् समाप्तम् ❀

दशम काण्ड

---

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—प्रत्यङ्गिरस । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती, गायत्री अनुष्टुप, पंक्ति, जगती, त्रिष्टुप्, उष्णिक् गायत्री)

या कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपा हस्तकृता चिकित्सव ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥१॥
शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता सम्भृता विश्वरूपा ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥२॥
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभि कृता ।
जाया पत्या नुन व कर्तार बन्ध्वृच्छतु ॥३॥
अनयाहमोषध्या सर्वा कृत्या अदूदुषम् ।
या क्षेत्रे चक्रुर्या गोषु या वा ते पुरुषेषु ॥४॥
अघमस्त्वघकृते शपथ शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृत हनत् ॥५॥
प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो न पुरोहित ।
प्रतीची कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥६॥
यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
त कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागस ॥७॥
यस्ते परू षि सदधौ रथस्येव ऋभुर्धिया ।
त गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽय जन ॥८॥
ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिण ।
शम्वीद कृत्यादूषण प्रतिवर्त्म पुनासर तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥
यद् दुर्भगा प्रस्नपिता मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्व मत् पाप द्रविण मोप तिष्ठतु ॥१०॥

जिस अभिचार कर्म को अभिचारक दहेज मे प्राप्त वधु के समान अलकृत करते हैं, उस कृत्या को हम दूर भगाते हैं। वह हमारे निकट से पलायन कर जाय ॥ १ ॥ सिर, नाक, कान से युक्त प्रेरित कृत्या अनेक दु खो को देने वाली है। हम उसे दूर भगाते हैं। वह हमारे निकट से पलायन कर जाय ॥२॥ शूद्र द्वारा, राजा व स्त्रियों द्वारा और मन्त्रों द्वारा प्रेरित कृत्या अभिचारक के पास उसी भाँति वापिस लौट जाय जैसे पती द्वारा भाइयों के पास भेजी गई स्त्री भाइयो द्वारा वापिस लौटा दी जाती है ॥ ३ ॥ खेत मे, गौओं मे और पुरुषों मे प्रेरित की गई कृत्या को मैं इस ओषधि द्वारा प्रभावहीन कर चुका हूँ ॥४॥ सौगन्ध,शपथ देने वाले को ही प्राप्त हो। हिंसा रूप पाप हिंसक के पास ही पहुँचे। हम कृत्या को इस प्रकार लौटाते हैं, जिससे वह अभिचारक को ही नष्ट कर डाले ॥ ५ ॥ हमारे पुरोहित पश्चिम दिशा के निवासी हैं एव अङ्गिरा वश से सम्बन्ध रखते हैं। हे पुरोहित ! तुम सामने आती हुई कृत्याओ को नष्ट करते हुए अभिचारको का सहार कर डालो ॥ ६ ॥ हे कृत्ये ! जिसने तुमको मेरे समीप आने के लिये कहा है, अब तुम उसी के पास लौट जाओ। हम निर्दोष हैं, इसलिये तुम हमारी इच्छा मत करना ॥ ७ ॥ हे कृत्ये ! जिस प्रकार ऋभु रथ को जोडता है और वैसे ही जिसने तेरी हड्डियों को जोड़ा है, अब तू उसी के पास वापिस जा क्योंकि वह आदमी तो तुमसे परिचित भी नही है ॥ ८ ॥ हे कृत्ये ! जिन अभिचारिको ने तुझे प्राप्त किया है, हम उस कल्याणकारी पुन. सर से जो अभिचार कर्म को दूषित कर उसके पथ को उलटने की सामर्थ्य रखता है, तुझे स्नान कराते हैं ॥ ९ ॥ हम जिस अभिचार कर्म द्वारा मृतक समान दुर्गति को पहुँचे हैं, हमारा वह पाप विमोचन हो तथा ह ारे पास धनादि वर्तमान रहे ॥१०॥

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११॥
देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मणा ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥१२॥
यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१३॥
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तृन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१४॥
अयं पन्थाः कृत्य इति त्वा नयामोऽभिप्रहिता प्रति त्वा प्र हिण्म ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥१५॥
पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६
वातइव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वंपुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तृन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१७॥
या ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्या वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥१८॥
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्वइव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥१९
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२०॥

पितरों को देते समय जिसका नाम लिया था उस पाप से वे औषधियाँ तुझे मुक्त करावें ॥ ११ ॥ देवताओं के अपराधजन्य पाप से तथा पितरों का नाम लेने के पाप से अभिनिष्कृत से और सन्देश्य से ये *औषधियाँ ऋषिओं* के तप एवं मन्त्ररूपी बलादि के द्वारा तुझे मुक्त करें ॥ १२ ॥ जिस प्रकार से वायु, आकाश से बादल और धरती से रेत को उड़ा देता है, ठीक वैसे ही मेरे सारे पाप मन्त्ररूपी बल के द्वारा दूर

हो ॥ १३ ॥ जिस प्रकार खूंटे से खुली हुई गर्दभी रेंकती हुई दुलत्ती मारती है, ठीक वैसे ही हे कृत्ये ! तू भी मन्त्र के द्वारा मार को सहन करती हुई दौड़ कर अपने उन अभिचारको का ही विनाश कर ॥ १४ ॥ हे कृत्ये ! तुझे शत्रु के द्वारा भेजी हुई को हम शत्रु की तरफ ही भेजते हैं। वही तेरा पथ है। इस कार्य के द्वारा तू गाड़ी सहित और बहुत वीरो से सम्पन्न शब्द-ध्वनि करती हुई सेना की तरह हमारे दुश्मनो पर ही झपट ।१५। हे कृत्ये ! शत्रुओ के पास तेरा प्रकाश पहुचे। तू हमसे दूर रहा कर। तू पनडुब्बी के द्वारा तैरने के योग्य दुर्गम नब्बे नदियो से पार हो और हमारी हिंसा मत कर ॥ १६ ॥ जिस प्रकार से हवा पेडो को तोड डालती है, ठीक उसी प्रकार तू भी अपने शत्रुओ को उखाड फेंक। उन दुश्मनो की गौ, अश्वो और मनुष्यों को भी बाकी मत रख। तू अपने अभिचार कर्म करने वालो को सन्तान से हीन की सूचना देती हुई यहाँ से दूर हो ॥ १७ ॥ हे कृत्ये ! तुमको अग्नि मे, श्मसान या मैदान मे छिपी हुई रीति से अभिचारको ने किया है या ग्रहस्थाऽग्नि में किया है। मैं निर्दोष मनुष्य उसे निर्बल करता हूँ ॥ १८ ॥ द्वेष पूर्वक किये जाने वाले कार्य को हम अभिचारक को ही प्राप्त कराते है। वह जहाँ से आया है ठीक घोडे के समान ही वही पर जाय और अभिचारको की सन्तान का विनाश करे ॥ १९ ॥ हे कृत्ये ! हम तेरे अस्थिपर्व को जानने वाले हैं क्योकि हमारे घर पर अच्छे शुद्ध लोहे की तलवारे है। इसीलिये तू हमारे यहाँ से जल्दी ही हमारे दुश्मन के पास भाग जा क्योकि तू हमसे परिचित नही है, अत. तू यहाँ पर क्या इच्छा करती है ॥२०॥

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजापती ॥२१॥
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२॥

भयाशर्वावस्यतां पः पक्रते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ।२३॥
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४॥
अभ्यक्ताक्ताःस्वरंकृतासर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५॥
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुं मर्हति ॥२६॥
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७॥
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८॥
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिताइव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०॥
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजान् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१॥
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि३२

हे कृत्ये ! मैं तेरा गला और दोनो पैर काटने को तैयार हूँ इसलिये तू यहाँ से भाग जा । प्रजा का पालन करने वाले इन्द्राग्नि मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥ यह सोम प्राणियो के उत्तरदायी तथा सुख को देने वाले हैं । इसलिये वे हमको भी सुख देवें ॥ २२ ॥ भव और शर्व नामक वे दोनो देवता अभिचारक और बुरे कर्म करने वालो पर देवताओं के शस्त्र रूपी विद्युत को प्रेरित करें ॥ २३ ॥ हे कृत्ये ! तू अभिचारक

द्वारा दो या चार पैरों वालों में है, इसलिये तू आठ पैर वाली होकर यहाँ से पलायन कर जा ॥ २४ ॥ हे कृत्ये ! तू घी मे तर और भली प्रकार से सजी हुई कुकर्मों को करने वाली है। जिस प्रकार एक लडकी अपने पिता को जानती है, ठीक उसी प्रकार तू भी अपने पैदा करने वाले को जानती हुई हमसे दूर हट ॥२५॥ हे कृत्ये ! तुम यहाँ पर मत ठहरो और यहाँ से दूर भाग जाओ। जिस प्रकार शेर फँसे हुए मृग की तरफ जाता है। ठीक उसी प्रकार तू भी दुश्मन के स्थान पर जा। तेरा प्रयोग करने वाला हिरन का रूप है और तू शेर का रूप है, इसलिये वह तेरा विनाश करने मे ,सफल नही हो सकता ॥ २६ ॥ पहले बैठे हुए को दूसरा आदमी नष्ट कर देता है और पहले मारने वाले व्यक्ति को दूसरा व्यक्ति हत्या कर देता है ॥ २७ ॥ मेरे इन वचनो का श्रवण करती हुई तू जहाँ से चली है वही पर लौट जा, जिसने तुझे उत्पन्न किया है तू उसी को प्राप्त कर।२८। हे कृत्ये ! निर्दोषो की हत्या करना भयङ्कर कर्म है, इसलिये तू हमारी गौ आदि पशुओ और मनुष्यो को हत्या न कर। तुझे जिन-जिन पदो पर प्रतिष्ठित किया गया है, वहाँ से हम तुझे ऊपर उठाते है। क्योकि तुम पत्ते से भी अधिक हल्की हो ।२९। हे कृत्याओ ! यदि तुम जाल अथवा अन्धकार मे ढकी हुई हो तो हम उन सारे अभिचार कर्मो को यहाँ से गायब करते हुए अभिचारक के पास फिर भेजते हैं ॥ ३० ॥ हे कृत्ये ! तू धोखा देने वाली अभिचारको की सन्तान को नष्ट कर दे और इन अभिचारका को भी नष्ट कर दे ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार कि सूर्य अन्धकार से मुक्त होता है और रात्रि को पैदा करने वाले तथा उषा के उत्पत्ति कारणो का भी त्याग कर देता है और जिस प्रकार कि गज-रज को झाड देता है ठीक उसी प्रकार मैं भी अभिचारक के कुकर्मी रूपी पाप को झाड देता हूँ ॥३२॥

२ सूक्त

(ऋषि—नारायण । देवता—पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम् ।
छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; जगती, बृहती ।)

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
केनांगुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ।१
कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जङ्घे निरृत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत ॥२॥
चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥३॥
कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ।४
को अस्य बाहू समभरद्वीर्यं करवादिति ।
असौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५॥
कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषा पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥६॥
हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥७॥
मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिका प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥८॥
प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं सबाधतन्द्र्यः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥९॥
आर्तिरवर्तिर्निरृतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥१०॥

पुरुष की एड़ियों को, टखनों को तथा मांस को किसने शक्ति सम्पन्न बनाया और सुन्दर उँगलियों को किसने पोषण किया ? छलखो को बीच में किसने प्रतिष्ठित किया ? ॥ १ ॥

उन नीचे के टखनों को किससे देवताओ ने बनाया, उरु और पैरों के बीच जो जाँघें है, उनकी किस प्रकार रचना की ? जांघो को निर्ऋति करके किससे बनाया । इस बात को कौन जानता है कि जांघों का जोड़ कहाँ पर है ? ॥ २ ॥ जांघो के ऊपर का हिस्सा, शिथिर, स्कन्धो और सहितान्त ये चारों मिलते हैं । जिससे कि कुसिध मजबूत हुआ है, उन श्रोणी तथा उरुओं का जानने वाला कौन है ॥ ३ ॥ जो पुरुष के गले और उर को जानते हैं, वे देवता कितने हैं तथा कितने प्रकार के वे देवता हैं? स्तनों को फफोड़ो को तथा कन्धो को किन-किन देवताओं ने रचना की और न जाने कितने देवताओं ने पृष्ठियो की कल्पना की ? ॥ ४ ॥ किस देवता ने इसके वीर्य को शक्तिसम्पन्न बनाया और किस देवता ने इसके स्कन्धो और भुजाओ को मजबूत किया । किस देवता ने इसको कुसिध पर स्थापित किया ? ॥ ५ ॥ आदमी के शिर मे दो कान, दो नथुने, दो आँख, एक मुख इन सातो छेदों को शिर को फाड कर किस देवता ने किया । दो पैर वाले और चार पैर वाले प्राणी इन देवताओ की बडाई से अनेक स्थानो मे होते हुए यमलोक को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ अनेक स्थानो को प्राप्त होने वाली जीभ को ठोडी मे किसने स्थापित किया था ? किसने उसमे वाणी की शक्ति दी । जल को धारण करने वाला वह देवता जीवो के अन्दर विचरण करता है, उसका जानने वाला कौन है ?॥ ७ ॥ मस्तिष्क का जो हिस्सा ललाट है, ककाटिका और कपाल एव हनुओ के सचय योग्य अश को चुन करके जो पहला देवता स्वर्ग को गया, वह देवता कौन-सा है ॥ ८ ॥ इस पुरुष के स्वप्न को प्रिय तथा अप्रिय वाणी को सबोधन इन्द्रियों को और आनन्दो को कौन-सा देवता धारण करने वाला है ? ॥ ९ ॥ इस मनुष्य मे पाप, आजीविका विरोधी तत्व, सन्ताप आदि

वहाँ से प्राप्त हुए हैं तथा उसने ऋद्धि, सिद्धि स्मृद्धि, बुद्धि तथा उदिति को कहाँ से प्राप्त किया है ? ॥१॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृत पुरूवृत सिन्धुसृत्याय जाता ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाची पुरुषे तिरश्ची ॥११
को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्यान च नाम च ।
गातु को अस्मिन् कः केतु कश्चरित्राणी पूरुषे ॥१२॥
को अस्मिन प्राणमवयत् को अपान व्यानमु ।
समानमस्मिन को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥१३॥
को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्य कोऽनृत कुतो मृत्यु कुतोऽमृतम् ॥१४॥
को अस्मै वास पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बल को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥१५॥
केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषस केनान्वैन्द्ध केन सायभव ददे ॥१६॥
को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाण को नृतो दधौ ॥१७॥
केनेमा भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुष ॥१८॥
केन पर्जन्यमन्वेति केन सोम विचक्षणम् ।
केन यज्ञ च श्रद्धा च केनास्मिन् निहित मन ॥१९॥
केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेम परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्नि पूरुष केन सवत्सर ममे ॥२०॥

जो जल अनेक का वरण करने वाले, सब जगत् एव वतमान सागर की तरफ प्रवाहमान हैं। उन जलों को अरुण, लोहित, ताम्र, धूम्र, वर्ण में ऊपर नीचे और तिरछे जाने के लिये पुरुष मे किसने सचरित किया ॥ ११ ॥ इस मनुष्य म रूप महिमा, ज्ञान, चरित्र, नाम और गति की किस देवता ने

स्थापित किया ॥ १२ ॥ इस मनुष्य में प्राण, अपान व्यान समान वायु को किस देवता ने स्थापित किया था ? ॥ १३ ॥ मरण, अमरण, सत्य और मिथ्या को इस पुरुष में किसने उपस्थित किया ? ॥ १४ ॥ जिस खाल से यह शरीर ढका हुआ है, उसे इसमें किसने लगाया। इसमें ताकत, वेग और आयु की किसने कल्पना की ? ॥ १५ ॥ किस देवता ने इसमें जल को उत्पन्न किया, किसके द्वारा इसके लिये प्रकाशयुक्त दिन का निर्माण हुआ तथा किसके द्वारा ऊषा स्वच्छ की गई और किसके द्वारा सायकाल की रचना की गई थी ॥ १६ ॥ प्रजा के लिये वीर्य की स्थापना किसने की ? उसमें बुद्धि का सचार किसने किया था तथा वाणी को किसने स्थापित किया था ? ॥ १७ ॥ किस प्रभाव से इसने भूमि को आवृत किया और किसके प्रभाव से यह स्वर्ग पर चढ़ता है तथा किसके प्रभाव से पर्वतादि पर चढता और कर्मों को करता है ॥ १८ ॥ किसके द्वारा यह पर्जन्य तथा सोम को प्राप्त करता है, किसके द्वारा यज्ञ और श्रद्धा को पाता है तथा किसके द्वारा इसका मन श्रेष्ठ कर्मों की ओर जाता है ? ॥ १९ ॥ किसके द्वारा यह श्रोत्रिय, परमेष्ठी तथा अग्नि को प्राप्त करता है ? किसके द्वारा यह संवत्सर की गणना कर रहा है ? ॥२ ॥

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मम परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्म मर्माग्नि पूरुषो ब्रह्म सवत्सर ममे ॥२१॥
केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विश ।
केनेदमन्य नक्षत्र केन सत् क्षत्रमुच्यते ॥२२॥
ब्रह्म देवा अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विश ।
ब्रह्म वमन्यन्नक्षत्र ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥२३॥
केनेय भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्ष व्यचो हितम् ॥२४॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२५॥

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वं प्रैरयन् पवमानोऽधि शीर्षत ॥२६॥

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥२७॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टास्तिर्यङ् नु सृष्टाः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥२८॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥३२॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥३३॥

आदित्य, परमेष्ठी और अग्नि को ब्रह्म ही प्राप्त हो रहा है और ब्रह्म ही संवत्सर की गणना करता है ॥ २१ ॥ कौन से कर्म से मनुष्य देवताओं के अनुकूल रह सकता है तथा किस कर्म के कारण देव प्रजाओं के अनुकूल चलता है। क्षत्र किसके द्वारा नहीं होता और किससे सत् क्षत्र बन जाता है? ॥ २२ ॥ मन्त्र ही देव के अनुकूल रहता है और मन्त्र ही देव व प्रजाओं के अनुकूल चलता है। यह सब कुछ ब्रह्म ही है और सत ब्रह्म को

ही क्षत्र कहते हैं ।। २३ ।। इस पृथ्वी मे प्रतिष्ठाता रखने वाला कौन है ? उत्तर द्यौ, ऊपर का भाग और तिर्यक भाग की रचना किसने की ? ।। २४ ।। ब्रह्म ने धरती, द्यौ, ऊपर का हिस्सा, तिर्यक् हिस्सा गमन योग्य अन्तरिक्ष की स्थापना की है ।।२५।। प्रजापति ने इसके शिर और उर को सीकर मिलाया है,उस उर्ध्व पवमान ने शीर्ष स्थान से और हृदय से ही प्ररणा प्राप्त की ।२६। यह अथवा प्रदत्त शिर सरलता से प्रतिष्ठित है, यह देवताओ के लिये कोश रूप के समान है । प्राण, अन्न और मन उस शिर की रक्षा करते रहते हैं ।। २७ ।। मनुष्य जिस ब्रह्मा का कहा जाता है, उसके रहने वाली जगह को जानता हुआ वह ऊर्ध्व, तिर्यक आदि सारी दिशाओं मे प्रकट हो जाता है और अपना प्रभाव भी जमाता है ।। २८ ।। जो मनुष्य ब्रह्मा की उस अमरण तत्व सहित उसकी पुरी को जानता है, उसे ब्रह्म के जानने वाले भल प्रकार से जानते है क्योकि उसे ब्रह्म और मन्त्रो सहित, वर्म, नेत्र, प्राण और सन्तति देते है ।। २९ ।। ब्रह्मा की जिस नगरी मे शयन करने के कारण मनुष्य जिसका कहा जाता है, उसे जो कोई भी जानता है तो उस मनुष्य के आँख तथा प्राण बुढ़ाप की उम्र से पहले साथ नही छोड़ते है ।। ३० ।। आठो चक्र और नौ द्वारा को धारण करने वाली अयोध्यापुरी है । उसमे स्वर्ग को देने वाला वह हिरण्मय ज्योति से पूरी तरह ढका हुआ है ।। ३१ ।। उस हिरण्मय कोश मे जिस आत्मा का पूजने योग्य स्थान है, उसको ब्रह्म के जानने वाला अच्छी प्रकार से जानता है ।। ३२ ।। पापो को नष्ट करने वाले तथा यश के कारण चमकने वाले वे कभी भी किसी से भी पराजित नहीं हुए ऐसे हिरण्यमय पुरी मे ब्रह्म प्रवेश करता है ।।३३।।

---

३ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—वरणमणि, वनस्पति.। छन्द—
अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्, पङ्क्ति जगती।)

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यत ॥१॥
प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात् ।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥२॥
अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥३॥
अयं ते कृत्यां वि ततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥४॥
वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥५॥
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६॥
अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥७॥
यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥८॥
वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥९॥
अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०॥

यह वरण वृक्ष की मणि जो कि शत्रुओं को नष्ट करने में अपना सामर्थ्य रखती है तथा अपनी इच्छा के अनुसार फलों की वृष्टि करने वाली है। तू उसके द्वारा परिश्रम करता हुआ

दुष्टता करने वाले शत्रुओं का विनाश कर ॥ १ ॥ यह मणि तेरे अभियान में आगे-आगे चले और अपने उन्हीं शत्रुओं का मर्दन करके तू उनको अपने वशीभूत कर। इस वरण मणि की सहायता के द्वारा ही देवता लोग राक्षसों के कुचर्मों को दूसरे दिन ही नष्ट कर देते है ॥ २ ॥ यह जो मणि है सारे दुखों का निवारण करने के समान है क्योंकि यह सहस्राक्ष के समान पराक्रम वाली है। यह याद रखने योग्य तथा हित वाली यह जो हरे रङ्ग की मणि है, वह तेरे शत्रुओं का संहार करेगी इसलिये अब तू जल्दी से जल्दी अपने शत्रुओं को नष्ट कर ॥३॥ तेरे प्रति यह जो अभिचार विस्तृत किये गये हैं, इन सबको यह वरण मणि शान्त कर देगी और किसी मनुष्य के द्वारा प्राप्त होने वाले भय की शङ्का को दूर करती हुई यह मणि तुझको सारे पापों से बचावेगी ॥ ४ ॥ यह सम्मुख प्राप्त दानादि गुणों से युक्त यह वरण मणि हमारे शत्रुओं तथा रोगों से बचावे। इस मनुष्य के अन्दर जिस यक्ष्मा आदि ने प्रवेश किया है, उसको देवता लोग शान्ति प्रदान करें ॥ ५ ॥ हे पुरुष ! तुझे पापमय स्वप्न का इतना भय और मृग का अप्रीतिकर दिशा की ओर जाना, छींक तथा कौवादि पक्षियों के द्वारा प्राप्त अपशकुनों से यह वरण मणि तेरी हर तरह से रक्षा करेगी ॥ ६ ॥ हे पुरुष ! यह मणि शत्रु, पाप तथा कुकृत्य आदि के डर से और मृत्यु के प्रबल अभिचारों से तेरी रक्षा करेगी ॥ ७ ॥ यह मणि रूपी वनस्पति मेरे माता, पिता, भाई तथा अपने आदमियों ने जो पाप किया है, उससे बचावेगी ॥ ८ ॥ मेरे गोत्रीय बन्धु भाइयों के समान शत्रु इस वरण मणि के द्वारा व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं तथा वे विस्तृत रज को प्राप्त हुए भी भीषण अन्धकार में पतित हों ॥ ९ ॥ मैं हिंसा से रहित होकर शान्ति को प्राप्त कर रहा हूँ। मैं पुत्र, भृत्यादि से सपन्न

होता हुआ आयुष्मान बनूं। दिशा-प्रदिशा में सब जगह यह वरण मणि मेरी रक्षा करता रहे ॥१०॥
अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥११॥
इमं बिभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥१२॥
यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वाञ्जातां उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१३॥
यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वाञ्जातां उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१४॥
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम न क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वाञ्जातां उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१५॥
तांस्त्वं प्र छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥१६॥
यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१७॥
यशा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१८॥
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिञ्जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१९॥
यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूर्ति नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२०॥

यह दानादि गुण से युक्त वनस्पति के द्वारा बनाई गई वरण मणि चमकती हुई मेरे हृदय मे प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार इन्द्र राक्षसो को कष्ट पहुँचाते हैं ठीक उसी प्रकार यह मेरे दुश्मनो और दस्युओ को बाधक हो ॥ ११ ॥ यह वरणमणि मुझमे राष्ट्र, चौपाहो मे बल दे और रक्षा साधनो की स्थापना करे। मैं इस मणि को सौ वर्ष की आयु को प्राप्त करने के लिये धारण करता हूँ ॥ १२ ॥ वायु अपने बल से वनस्पतियो तथा पेडो को तोडने की शक्ति रखता है ठीक उसी प्रकार यह मणि भी मेरे पहले शत्रुओ तथा वर्तमान शत्रु का सहार करे। यह वरण मणि मेरी रक्षा करने वाली हो ॥ १३ ॥ जिस प्रकार हवा और अग्नि वनस्पतियो के पास जाकर उन्हे भस्म कर डालते है ठीक उसी प्रकार हे वरण मणि ! तू मेरे पहले दुश्मनो तथा जो अब भी दुश्मन है उनको नष्ट कर और हे वरण मणि ! तू मेरी हर तरह से रक्षा करने मे सफल हो ॥ १४ ॥ सूखे हुए वृक्ष जिस प्रकार पृथ्वी पर गिर जाते हैं ठीक उसी प्रकार हे वरणमणि ! तू मेरे पहिले और पीछे के दुश्मनों को सुखा करके गिरा। यह वरण मणि मेरी रक्षा कारी हो ॥ १५ ॥ हे वरण मणि ! जो इस यजमान के पशु और जो कि राष्ट्र की इज्जत को गिराते हैं तो तू उनकी उम्र तथा भाग्य को पहले हो नष्ट कर दे ॥ १६ ॥ जैसे यह सूर्य अत्यन्त प्रकाशमान है और जैसा कि यह तेजवान् ठीक उसी प्रकार यह मणि मुझको भी तेज तथा ज्योति दे और मैं यश और तेज से पूरी तरह से सम्पन्न होऊँ ॥ १७ ॥ सब प्राणियो के साक्षिरूप जिस प्रकार कि चन्द्रमा मे यश विद्यमान है ठीक उसी प्रकार यह वरण मणि मुझमे यश और तेज देवे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार कि धरती और आकाश

मे यश विद्यमान है ठीक उसी प्रकार यह वरण मणि मुझको यश और तेज से सम्पन्न करे ॥ १६ ॥ जैसे कि एक कन्या यशशाली है और जिस प्रकार सभृत रथ मे यश वर्तमान है और वैसे ही यह मणि मुझे भी यशस्वी तथा तेजस्वी बनाय ॥२०॥

यथा यश सोमपीथे मधुपर्के यथा यश ।
एवा मे वरणो मणि कीर्ति भूति नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२१॥
यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यश ।
एवा मे वरणो मणि कीर्ति भूति नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२२॥
यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणि कीर्ति भूति नि यच्छतु तेजसा मा ।
समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२३॥
यथा यश प्रजापतौ यथास्मिन परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणि कीर्ति भूति नि यच्छतु तेजसा मा ।
समुक्षतु यशसा समनक्तुमा ॥२४॥
एवा मे वरणो मणि कीर्ति भूति नि यच्छतु तेजसा मा ।
समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२५॥

जैसे कि सोमपथि और मधुपर्क से यश है ठीक वैसे ही यह मणि मेरे अन्दर यश तथा तेज प्रदान करे ॥ २१ ॥ जसे कि अग्नि होत्र और वषट्कार मे यश है वैसे ही वह वरणमणि मुझको यश और तेज म अग्रसर करे ॥ २२ ॥ जैसा यश यजमान मे होता है और जैसे कि इस यजमान मे यश प्रतिष्ठित होता है ठीक वैसे ही वरण मणि मुझको यश और तेज प्रदान करे ॥ २३ ॥ जैसे राजा और परमेष्ठी म यश विद्यमान है वैसे ही वह वरण मणि मुझको यश और तेज को दने वाली हो ॥ २४ ॥ जैसे देवताओं म अमृत तथा सत्य प्रतिष्ठित है वैसे

हो यह वरण मणि मुझको यश तथा भूति दे और तेज तथा यश को देने वाली हो ।।२५।।

४ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान् । देवता—सर्पविषापाकरणम् । छन्द—पङ्क्ति, गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् ।)

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथ स्थाणुमारदथार्षत् ।।१।।
दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वार ।
रथस्य बन्धुरम् ।।२।।
अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरस विष वारुग्रम ।।३।।
अरघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरस विष वारुग्रम् ।।४।।
पैद्वो हन्ति कसर्णील पैद्व. श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिर स बिभेद पृदाक्वाः ।।५।।
पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ।।६।।
इद पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वत पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ।।७।।
सयत न वि ष्परद् व्यात्त न स यमत् ।
अस्मिन क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमाश्च तावुभावरसा ।।८।।
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहि दण्डेनागतम् ।।९।।
अघाश्वस्येद भेषजमुभयो स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहि पैद्वो अरन्धयत् ।।१०।।

प्रथम रथ इन्द्र का, द्वितीय रथ देवताओं का, तृतीय रथ वरुण का है तथा सर्पों का अपमा नामक रथ है जो कि स्थाणु मे भी गमनशील है और वह फिर भाग जाता है ॥ १ ॥ यह दर्भ सर्पों के लिये दुखदायक है, तरुणक और अश्व नाम के प्रसिद्ध सर्प के जहर को रोकता है तथा परुष नाम से जो विष है उसको दूर करता है। यह रथ का बन्धुर कहलाता है ॥२॥ हे श्वेत सर्षप ! तू अपने पद और अपर पद के द्वारा तू साँपो का नाश कर जैसे कि एक काष्ठ होता है ठीक उसी प्रकार सर्प विष मे निर्वीय हो गया है तू इस भीषण जहर को शान्त कर ॥ ३ ॥ जैसे ही अरन्घुष गोता लगा करके बाहर आया और यह कहने लगा कि उतारते हुए काष्ट की तरह सर्पों का जहर भी निर्वीय हो गया है और तू उस सर्प के जहर को दूर कर ॥ ४ ॥ पैद्व कसर्णील साँप को, सफेद तथा काले साँप को नष्ट कर डालता है। पैद्व ने उसी प्रकार रथर्व्या और पृदाकु के शिर को अलग कर दिया था ॥ ५ ॥ हे पैद्व ! तू अच्छी है इसलिये हम तुझसे प्राथना करते है कि तू हमारे पास आ। जिस रास्ते से हम जाने के लिये इच्छुक हैं तू उस मार्ग से सापो को दूर कर दे ।६। सापो को नष्ट करने वाला वह पैद्व सम्मुख है और यह इसका परायण है और वह इन सब शीघ्र चलने वाले विक्रमा की अजमाइस करने वाला है ॥ ७ ॥ हमको काटने के लिये सर्प का मुख नहीं खुले अर्थात् न तो उसका बन्द मुख खुले ही और न खुला मुख बन्द ही हो। इस इलाके के जो नर और मादा स्वरूप सर्प है वे मन्त्र की शक्ति द्वारा निर्वीय हो ॥ ८ ॥ समीप के और दूर के साँप जहर रहित हो। ये जो आये हुए सर्प है इनको मैं डण्डे से मारता हूँ तथा मैं बिच्छू को मुद्गर से कुचलता हूँ ॥ ९॥ अघाश्व और अकारण पैदा होने वाले स्वज इन दोनों की औषधियाँ मेरे पास हैं। हिंसात्मक पाप की

इच्छा रखने वाले सांप के निमित्त इन्द्रदेव ने पैद्व को मेरे वशीभूत किया है ॥१०॥

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
मे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥११॥
नष्टासवो नष्टविदा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥१२॥
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्वि करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥१३॥
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययी भिरभ्रभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥१४॥
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥१५॥
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा ॥१६॥
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकु च पृदाक्वम् ।
स्वजं तिरश्चराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७॥
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषाम् तृह्यमाणानां कः स्विल् तेषामसद् रसः ॥१८॥
स हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठइव कर्वरम् ।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥१९॥
अहीना सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥२०॥

यह पैद्व स्थिर प्रभाव से युक्त है इसी वजह से सांप भी शोक करते रहते है ॥ ११ ॥ इन सांपो के जहर और प्राण को तो वज्रिन ने ही समाप्त कर दिया था । यह सब इन्द्र के द्वारा मारे हुए है, इसलिये अब हम इनको मारते हैं ॥ १२ ॥ तिर्यक लिपटने वाले तिरश्चिराज नामक सर्प यह मन्त्र की ताकत से ही नष्ट हुए थे तथा पृदाकु नामक सांप भी कुचल दिए

गए थे। तू करिक्रत श्वेत और कृष्ण सर्प को कुशाओ पर रख कर के नष्ट कर डाल ॥ १३ ॥ किरातों के देशों मे 'सवा कुमारी' अवस्थित है वह खोदने के सुवर्ण आयुध द्वारा पहाडो की चोटियों पर ओषधियों को खोदती है ॥ १४ ॥ वह नव जवान वैद्य कभी भी हारा नही। इसमें मन्त्र की शक्ति प्राप्त है। इसलिये यह स्वज नामक सर्प तथा बिच्छू इन दोनों को ही नष्ट करने का सामर्थ रखती है ॥ १५ ॥ इन्द्र, वायु, दोस्त, वरुण और पर्जन्यद्वय ने सर्प को वशीभूत कर लिया था ॥१६॥ पृदाकु, पृदाक्व, स्वज, तिरश्चिराज, कसर्णील और दशोनसि इन नामो के सर्पो को मेरे कल्याण के हेतु इन्द्र ने इनको अपने पराधीन बना लिया ॥ १७ ॥ हे सर्प ! तेरे पैदा करने वाले को तो इन्द्र ने पहले ही नष्ट कर दिया था। उस समय जब कि सर्पो का सहार हो रहा था तो कौन सा सर्प शक्तिशाली था ॥ १८ ॥ जिस प्रकार कर्वर की पौजिष्ट ग्रहण करता है ठीक उसी प्रकार मैंने भी सिन्धु मे लौट कर सर्प के विष का शोधन कर दिया था ॥ १९ ॥ यह सब नदियाँ साँपो को बहा ले जाँय। तिरश्चिराज नाम के सर्प समाप्त हो गये तथा पृदाकु नाम के सर्प मन्त्र बल से पीस दिये जाँय ॥२०॥

औषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥२१॥
यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु तत्।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥२२॥
ये अग्निजा ओषधिजा अहीना ये अप्सुजा विद्युत आवभूवुः।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥२३॥
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥२४॥
अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय।

अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीन तदेतु ते ॥२५॥
आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥२६॥

मैं अपनी अच्छी बुद्धि के द्वारा उर्वरी औषधियों का वरण कर शीघ्र वेग वाली नदियों की तरह प्रेरित करता हूँ। हे सर्प! उससे तेरा विष दूर होवे ॥ २१ ॥ सूर्य, अग्नि, धरती तथा औषधिया मे जो विष है तथा कन्द मे जो जहर है उसे पूर्णतया दूर कर ॥ २२ ॥ अग्नि, नीर तथा औषधि एव सर्प से उत्पन्न होने वाला जो विष त है और उसी के परिणाम स्वरूप अत्यन्त भयङ्कर परिणाम निकले हैं इसलिये हम तुमको उन सारे सर्पों का समर्पित करते हैं ॥ २३ ॥ हे तौदी और घृताची नाम वाली औषधे! मैं नीचे की ओर पैरो को किये हुए बैठा हुआ तेरे जहर को निर्वीय करने वाले स्थान को ग्रहण करता हूँ ॥ २४ ॥ हे रागिन! तू अपने हृदय की रक्षा करते हुए तू अपने अङ्ग के हर एक अवयव से विष को बाहर निकाल और उस विष का प्रभाव मन्द गति का प्राप्त होता हुआ जड से बिल्कुल समाप्त हो जाय ॥ २५ ॥ नव विष भी विष मे मिल कर के नष्ट हो गया इस प्रकार वह जहर मे भी समाप्त हो गया। अग्नि ने तो जहर को नष्ट किया और सोम उसे दूर ले गया, इस प्रकार से विष उस काटने वाले सर्प को ही प्राप्त हुआ, इसी कारण से वह सर्प मर गया ॥२६॥

५ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—सिन्धुद्वीप, कौशिक ब्रह्मा, विहव्य। देवता—आप, मन्त्रोक्ता प्रजापति। छन्द—पंक्ति, जगती, बृहती, धृति, अनुष्टुप्, गायत्री शक्वरी अष्टि, उष्णिक, त्रिष्टुप्।)

इन्द्रस्योज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बल स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य

नृम्ण स्थ । जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बल स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य
नृम्ण स्थ । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥२॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बल स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य
नृम्ण स्थ । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥३॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बल स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य
नृम्ण स्थ । जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥४॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बल स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य
नृम्ण स्थ । जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥५॥
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बल स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य
नृम्ण स्थ । जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता
म आप स्थ ॥६॥
अग्नेर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥७॥
इन्द्रस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥८॥
सोमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥९॥
वरुणस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१०॥

हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज ताकत वीर्य और अभिभव करने की शक्ति हो और तुम्हीं इन्द्र के वैभव हो। मैं तुमको ब्रह्म योगों से सम्पन्न करता हुआ जयशील योग के लिए समर्थ करता हूँ ॥ १ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, तेज, बल, वीर्य, धन तथा तिरस्कार करने वाली शक्ति हो इसलिए मैं तुमको जयशील योग के निमित्त क्षत्रयोग से सम्पन्न करता हूँ ॥ २ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के तेज बल, वीर्य तथा धन और तिरस्कार

करने वाली हो इसलिये मैं तुमको जयशीलता के निमित्त इन्द्र योगी से सम्पन्न करता हूँ ॥ ३ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल,वीर्य,धन और शक्ति से सम्पन्न हो इसलिये मैं तुमको विजय के निमित्त सोमयोगों से सम्पन्न करता हूँ ॥ ४ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, शक्ति, बल और वैभव हो इसलिये मैं तुम्हें विजय के निमित्त अपयोगो से सम्पन्न करता हूँ ॥ ५ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, शक्ति, बल, वीर्य तथा वैभव हो। तुम मेरे पास जयशील योग क लिये हमेशा मेरे पास रहा करो और सब भूत मेरे पास रहे ॥ ६ ॥ हे जलो ! तुम अग्नि के ही अवयव हो, इस ससार के प्रजापति के वर्च से समाप्त करने के लिये जलो के वीर्य, तेज और नीर को हमारे अन्दर प्रतिष्ठित करो ॥ ७ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र देवता के अवयव हो और इस ससार को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलो के वीर्य तेज और माफ जलो को हममे प्रतिष्ठित करो ।८। हे जलो ! तुम माम के तो अवयव हो और इस ससार को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलो के वीर्य तेज और स्वच्छ जल का हमारे अन्दर प्रवाह मान करो ॥ ९ ॥ हे जलो ! तुम वरुण के अवयव हो, इस ससार को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिये जलो के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलो को हमारे अन्दर प्रविष्ट करो ॥१०॥

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥११॥
यमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१२॥
पितृणां भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१३॥
देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो असमासु धत्त

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१४॥
यो व आपोऽपां भागोप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजन. ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं स्तृपोयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१५॥
यो व आपोऽपमूर्मिरप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं त स्तृपीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१६॥
यो व आपोऽपां वत्सोप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तामति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं त स्तृपीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१७॥
यो व आपोऽपां वृषभोप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं दिष्म. ।
त वधेयं स्तृपीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१८॥
यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
त वधेय स्तृपोयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१९॥
यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि त माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृपोयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२०॥

हे जलो ! तुम मित्रावरुण के हो अवयव हो । इस ससार के प्रजापति के वर्च की समाप्त करने के लिए जलो के वीर्य, तेज

तथा स्वच्छ जलों को हमारे अन्दर प्रवर्तित कर दीजिए ॥११
हे जलो ! तुम यम देवता के ही हिस्से हो। इस लोक
प्रजापति के वर्च से समाप्त करने के लिए जलों के वीर्य, ते
और स्वच्छ जलों को हमारे अन्दर प्रतिष्ठित कर दो ॥ १२
हे जलो ! तुम पितरों के भाग हो, इस संसार को प्रजापति
वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्व
जलों को हमारे अन्दर प्रतिष्ठित करो ॥ १३ ॥ हे जलो ! तु
सविता के ही भाग हो। इस लोक को प्रजापति के वर्च से न
करने के लिए जलों के वीर्य तेज और उज्ज्वल जलों को
हमारे अन्दर भर दो ॥ १४ ॥ हे जलो ! जो तुम्हारा जली-
वाला भाग है, यजुर्वेद के मन्त्रों के द्वारा सेवन करने योग्य अ
देवताओं से संयुक्त होने वाला है इसलिए उस जलीय वाले भा
को अर्थात् जो हमारे शत्रु हैं मैं इसको उनके ऊपर छोड़ता हूँ
वह जलीय भाग मुझको पुष्टवान् करे और मैं कुकृत्य मन्त्र
द्वारा जल रूपी शस्त्र को मैं शत्रु के ऊपर प्रहार करके उस
नष्ट कर दूँ ॥ १५ ॥ हे जलो ! यजुर्मन्त्र से सेवन करने यो
जो तुम्हारी लहरें है और देवताओं से अपनी भेट करने वा
है। मै इन लहरों को उन शत्रुओं के ऊपर छोड़ता हूँ तथ
कुकृत्य कर्म से और जल रूपी शस्त्र से मन्त्र द्वारा ढक कर मा
डालूँ अब मैं उन लहरों से पुष्टि को प्राप्त करूँ ॥ १६ ॥
जलो ! तुम मे जो वत्स है वह यजुर्वेद के मन्त्र के द्वारा सेवनी
तथा देवताओं की सौवत करने योग्य है। उसी वत्स के द्वारा
अपने दुश्मन पर प्रहार करता हूँ। इस मन्त्र के द्वारा कुकृ
कर्म तथा जल रूपी आयुध को अपने शत्रुओं पर छोड़ कर
उनका संहार कर दूँ ॥ १७ ॥ हे जलो ! आपके साथ उ
वृषभ है वह यर्जुमन्त्र के द्वारा सेवन करने योग्य तथा दे
सत्संगति सम्पन्न है इस प्रकार हम उस वृषभ को अपने शत्रु

पर छोड़ते हुए मैं अपने को ताकतवान् बनाऊँ। इस मन्त्र के द्वारा कुकृत्य कर्म से और जल रूपी अस्त्र से अपने शत्रुओं को दहता हुआ उनको तहस-नहस कर दूँ ॥ १८ ॥ हे जलो! तुम्हारे साथ जो कि हिरण्यगर्भ है वह यजुमन्त्र से सेवनीय तथा देवताओं की सङ्गति करने वाला है। उसी हिरण्यगर्भ को हम शत्रु पर छोड़ते हुए अपने को पुष्टवान् करें। इस मन्त्र से अभिचार कर्म से तथा जल रूपी शस्त्र से मैं अपने शत्रु पर प्रहार करता हुआ उसको मारता हूँ ॥ १९ ॥ हे जलो! आप में जो अग्नियाँ हैं वही यजुमन्त्र के सेवनीय तथा देवताओं की सत्सगति करने वाली हैं। उन्ही अग्निओं को मैं अपने शत्रु पर प्रहार करता हूँ। उन अग्नियों से मैं पुष्टवान् बनूँ। इस मन्त्र के बल से अभिचार कर्म के द्वारा और जल रूपी शस्त्र के द्वारा ही शत्रु को दबाता हुआ उनको समाप्त करता हूँ ॥२०॥

ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्वन्तर्यजुष्या देवयजनाः ।
इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
त वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२१॥
यदर्वाचीन त्रैहायणादनृत कि चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥२२॥
समुद्रं व प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२५॥
विष्णो क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।

अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मः। स मा जोवीत् तं प्राणो जहातु ॥२६॥
विष्णोः क्रमोसिः सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजा.।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म. स मा जोवीत् तं प्राणो जहातु ॥२७॥
विष्णः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म.। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२८॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासँशितो वाततेजाः।
आश अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म.। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२६॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋचसँशितः सामतेजाः।
ऋचोऽनु वि क्रमे हमृग्भ्यस्त निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३०॥

हे जलो! तुम मे जो दिव्य पृश्नि पत्थर है वह यजुर्वेद के मन्त्रों के द्वारा सेवन करने योग्य तथा देवताओं की सङ्गति करने वाला है तो उसी को मैं अपने शत्रु पर फेंकता हुआ अपने को पुष्टवान् बनाता हूँ। इस मन्त्र के बल से कुकृत्य कर्म द्वारा तथा जल रूपी शस्त्र से मैं अपने शत्रुओं पर प्रहार करता हुआ उनको नष्ट करूँ ॥ २१ ॥ जिन तीन वर्षों के बीच हमने जो मिथ्याभाषण किया है वह नया पाप तथा दुर्गति प्राप्त कराने वाला है। जल मुझे उस पाप से मुक्त करे ॥ २२ ॥ हे जलो! समुद्र की ओर मैं तुम्हें अग्रसर करता हूँ। इसलिये तुम उसमें लीन हो जाओ क्योंकि तुम्हारी गति चारों तरफ है। आप हिंसा को नाश करोगे अत. अब हमारे लिए कोई विपदा नहीं आवें ॥२३॥ हे जलो! तुम पापहीन हो और हमको भी पापों से मुक्त कराओ। हमारे दुर्गति देने वाले पाप, कष्ट तथा मल

को प्रवाहित करो ॥ २४ ॥ तू शत्रु का नाश करने का साहस रखती है तथा विष्णु का पराक्रम है। धरती ने तुझको तीक्ष्ण किया और अग्नि ने तुममें तेज भरा है। तू धरती पर विक्रमण कर मैं पृथ्वी से उसे हटाता हूँ। हमारे शत्रु जिन्दा न रहे तथा वे अपने प्राण रहित हो जांय ॥ २५ ॥ तू दुश्मन का नाशक और विष्णु का पराक्रम है। तुझको आकाश ने तीक्ष्ण वायु ने तेज से तुझको युक्त किया है। तू आकाश का भ्रमण कर और मैं उसे वहां से दूर करता हूँ। हमारे शत्रु जिन्दा न रहे तथा वे मर जाय ॥ २६ ॥ तू विष्णु का शत्रु नाशक पराक्रम है तुझे द्युलोक ने ही तीक्ष्ण किया है और सूर्य ने ही तेजस्वी बनाया है। तू द्युलोक का भ्रमण कर और उसको मैं दूर करता हूँ। हमारा शत्रु जिन्दा न बचे तथा अपने प्राणों को त्याग दे ।२७। तू शत्रु का नाशक है और विष्णु का पराक्रम है। तुझे दिशा ने ही तीक्ष्ण किया है और मन से ही तेजस्वी बनाया है। तू दिशा पर विक्रमण कर मैं उस दिशा से पृथक करता हूँ। हमारे शत्रु अपने प्राणों का विसर्जन करें और जीवित न बचें ॥ २८ ॥ तू शत्रु का नाशक तथा विष्णु का पराक्रम है। आशा ने तुझे तीक्ष्ण किया है और वातों से तुझको तेजस्वी बनाया है। तू आशा पर ही विक्रमण कर और मैं उस आशा से हीन करता हूँ। मेरा विपक्षी अपने प्राणों को त्याग तथा जिन्दा न रहे ॥ २९ ॥ तू विष्णु का पराक्रम तथा शत्रु नाशक है। ऋक ने तुझको तीक्ष्ण किया है और साम से तेजस्वी बनाया है इसलिए तू ऋक पर ही विक्रमण कर और मैं उसको ऋक से अलग करता हूँ इसलिए मेरा विपक्षी अपने प्राणों का त्याग करे और जिन्दा न बचे ॥३०॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

स मा जीवित् त प्राणो जहातु ॥३१॥
विष्णो. क्रमोऽसि सपत्नहोषधीसंशित: सोमतेजा ।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्त निर्भजामो योऽस्मान द्वेष्टि य वय द्विष्मः । स मा जीवीत् त प्राणो जहातु ॥३२॥
विष्णो. क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्य् स्त निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि य वय द्विष्मः। स मा जीवीत् त प्राणो जहातु ॥३३॥
विष्णोः मोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः ।
कृषिमनु वि क्रमेऽह कृष्यास्त निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् त प्राणो जहातु ॥३४॥
विष्णो क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशिता पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽह प्राणात् त निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् त प्राणो जहातु ॥३५॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्य ष्ठां विश्वा· पृतना अराती ।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पदयामि ॥३६॥
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविण यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ।
दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते ।
ता मे द्रविण यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८॥
सप्तऋषीनभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्रह्मणवर्चसम् ॥३९
ब्रह्माभ्यावर्ते । तन्मे द्रविण यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४०॥

तू दुश्मन का नाश करने वाला तथा विष्णु का पराक्रम है तू यज्ञ के द्वारा तीक्ष्ण हुआ हे और ब्रह्म तेज से ही तेजस्वी बना है। तू यज्ञ पर विक्रमण कर और मैं उसको प्रथक करता हूँ और जो हमारे शत्रु है। उनको तो प्राणो रहित कर अर्थात् वे जीवित न रह पावें ॥ ३१ ॥ तू विष्णु नाशक पराक्रम है तथा

तू औषधि से तीक्ष्ण हुआ है एवं सोम से तेजस्वी बना है। तू औषधि पर विक्रमण कर मैं उसे औषधि से पृथक करता हूँ। मेरे शत्रु अपने पाशों का त्याग तथा कोई भी जीवित शेष न बचे ॥ ३२ ॥ तू विष्णु का शत्रु नाशक पराक्रम है, तू जल से तीक्ष्ण हुआ है। तेरा तेज वरुण के तेज से ही हुआ है। तू जल पर विक्रमण कर और मैं उसको जल से पृथक करता हूँ। मेरे शत्रु प्राण-हीन तथा आयुरहित हो जायँ ॥ ३३ ॥ तू विष्णु का शत्रु नाशक पराक्रम है। तू जल के द्वारा तीक्ष्ण हुआ। वरुण के तेज से ही तू तेजस्वी बना है। तू जल पर विक्रमण कर और उसको जल से अलग करता हूँ। मेरे शत्रु को प्राण-हीन और आयुरहित कर दे ॥ ३४ ॥ तू ही विष्णु का शत्रु नाशक पराक्रम है। तुझे प्राण ने ही तीक्ष्ण किया है इसलिए तू प्राण पर विक्रमण कर मैं उसको प्राण से अलग करता हूँ। मेरा शत्रु प्राण रहित हो जाय और जीवित न बचे ॥ ३५ ॥ यह विजित पदार्थों का ढेर और ये लाए गए पदार्थ हमारे ही है। शत्रु की सारी सेना अब मेरे वश मे हो रही है। मैं उस गोत्र वाले और उस अमुक माता का पुत्र जो कि मरा शत्रु है। उसके वर्च तेज प्राण और आयु को घेरता हुआ मैं शत्रु को पतित करता हूँ ॥ ३६ ॥ दक्षिण मे विस्तृत हुए सूर्य से आवृत्त भाग का मै अनुवर्तन करता हूँ। मुझे वह दक्षिण दिशा ब्रह्म तेज तथा वैभव सम्पन्न करे ॥ ३७ ॥ मैं दमकती हुई दिशाओं की परिक्रमा करता हुआ उनसे ब्रह्मचर्य तथा वैभव की प्रार्थना करता हूँ। वे मुझको ब्रह्मवर्चस्व की शक्ति प्रदान करें ॥ ३८ ॥ मैं मन्त्र के सामने स्थित हूँ, वे मेरे लिये वैभव तथा ब्रह्मवर्चस्व प्रदायक हों ॥४०॥

ब्राह्मणां अभ्यावर्ते। ते मे द्रविण यच्छन्तु।
ते मे ब्रह्मणवर्चसम् ॥४१॥

ग यस मृगयामहे त वधं स्तृणवामहे ।
व्याते परमेष्ठिनो ब्रह्मणोपपदाम तम् ॥४२॥
वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्त समयाद भि ।
इयं त प्सात्वाहुति समिद् देवो सहीयसा ॥४३॥
राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि ।
सोमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥४४॥
यत् ते अन्न भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु ।
तस्य नस्त्व भुवस्पते सप्रयच्छ प्रजापते ॥४५॥
अपो दिव्या अचायिस रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगम त मा स सृज वर्चसा ॥४६॥
स माग्ने वर्चसा सृज स प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवाइन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभि ॥४७॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्ट जनयन्त रेभा ।
मन्योर्मनस शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥४८
परा शृणीहि तपसा यातधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
पराचिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृप शोशुचत शृणीहि ॥४९॥
अपामस्मै वज्र प्र हराम चतुर्भृष्टि शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्यागानि प्र शृणातु सर्वा त मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥५०॥

मैं ब्राह्मणों का परिभ्रमण करता हुआ उनस धन तथा ब्रह्मवर्च की प्रार्थना करता हूँ ॥ ४१ ॥ हम जिसके लिए यह प्रयत्न कर रहे हैं उसे मारने वाले साधना से डरते हुए मन्त्र की शक्ति से उसे अग्नि के मुख में धकेलते हैं ॥ ४२ ॥ यह समिधा से सम्पन्न हवि रूप अस्त्र उस दुश्मन को अग्नि की दाढ मे डाले । यह तिरस्कार सहित ज्योतिर्मती हवि शत्रु को डस जावे ॥ ४३ ॥ हे वरुण के पाश रूप मन्त्र ! तू अमुक गोत्र वाले अमुक माता के पुत्र को अन्न और प्राण के निमित्त बाधक हो ॥ ४४ ॥ हे पृथिवी के अधिपति देव ! आपका जो अन्न पृथ्वी

मे रहता है आप उसके तत्व रूपी बल को हमे देवें ॥ ४५ ॥ मैंने दिव्य जल सींचा है और मैं उसकी सन्तति कर रहा हूँ । हे अग्ने ! मैं जल के साथ आपके समक्ष हूँ आप मुझको तेज प्रदान करो ॥ ॥ ४६ ॥ हे अग्ने ! मुझको तेज, सन्तान और आयु से सम्पन्न रखो । इन्द्र ऋषियों सहित मुझको अग्नि का सेवक समझें ॥ ४७ ॥ हे अग्ने ! जिस शत्रु की वजह से आज याद करने वाली कठोर वाणी को बोल रहे हो और सारे नर-नारियों मे बेचैनी फैल गई है, उस पीड़ा जनक दुश्मन को अपने क्रोधित मन से ज्वाला रूपी बाणों को निकालते हुए मर्दित करो ॥४८॥ हे अग्ने ! इन पीड़ा देने वाले दुश्मनों को अपने तेज के द्वारा भस्म करदो । राक्षस रूप, हिंसा कर्म वाले दुश्मनो को ज्वाला मे समाप्त करदो । अपने सन्तोष के लिए जो दूसरों के प्राणों को हरते है आप ऐसे शत्रुओं को नष्ट कर डालो ॥ ४९ ॥ मैं मन्त्र शक्ति का जानने वाला हूँ । इस वैरी का सिर तोड़ने के लिए चतुर्मुष्टि जल रूपी वज्र का प्रहार करता हूँ । मेरे इस कार्य मे समस्त देवता अनुकूल हों ॥५०॥

॥ समाप्तम् ॥

मुद्रक—गोपीनाथ मीतल, भगवत् प्रिंटिंग प्रेस, घीयामण्डी, मथुरा ।

सूक्त ६

(ऋषि—बृहस्पतिः। देवता-वनस्पतिः; फालमणि, आपः।
छन्द-गायत्री; अनुष्टुप्, जगती,, शक्वरी', अष्टि', धृति, पक्तिः)

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥१॥
वर्म मह्ममयं मणिः फालाज्जात' करिष्यति।
पूर्णो मन्थेन मागमद्रसेन सह वर्चसा ॥२॥
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥३॥
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्।
गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥४॥
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे।
स न पितेव पुत्रेभ्य श्रेय श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूय ः
श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥५॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः
श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥६॥
यमबध्नाद्बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम्।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फाल घृतश्चुतमुग्र खदिरमोजसे।
त सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूय श्वःश्वस्तेन त्व द्विषतो जहि ॥८
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फाल घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
त सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूय. श्वःश्वस्तेन त्व द्विषतो जहि ॥९
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फाल घृतश्चुतमुग्र खदिरमोजसे।

तं दिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणांपुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥१०

मेरे से वैर-भाव रखने वाले शत्रु के सिर को मैं मन्त्ररूपी शक्ति से विदीर्ण करता हूँ। यह मणि जो कि फल से उत्पन्न हुआ है यह तेज के साथ मेरे पास आता है और यह मणि मुझको कवच के समान रक्षा का कार्य देगा ॥ २॥ तुझको शिव भगवान् ने आयुध को हाथ मे लेकर काटा है, ऐसे तुझ पवित्र को प्राणो को देने वाला जल शुद्ध करे ॥३॥ हरिण्यध्यक मणि यज्ञोत्सवो को कराता हुआ हम सभी के घर मे पूज्य अतिथिवत् निवास करे॥४॥ पिता के समान यह मणि हमारे लिए कल्याणमयी होवे। हम इसको सुरा, मधु और घृत तथा अन्न उपहार करते हैं, देवताओ से आने वाली यह मणि हमको हमेशा मङ्गलमयी होवे॥५॥ खदिर फल की इस मणि को वृहस्पति गुरु ने वल की आशा से बाँधा और अग्नि देव ने इसका अभिवादन किया। यह घृतवत् सार पदार्थों को बढाने मे उपयोगी है। अतः इसके द्वारा तू शत्रुओ का हनन कार्य कर॥६॥ वृहस्पति जैसे गुरु ने इस खदिर फल को वल प्राप्ति की आशा से बाँधा और इन्द्र ने जिसे स्वतेज के लिये बँधवाया, तब वह खदिर सार पदार्थो की वर्षा करने वाला रोजाना ही वल देता रहता है। तू भी उसी मणि से अपने शत्रुओं का नाश कर॥७॥ जिस खदिर फल को वृहस्पति ने बल प्राप्ति को बाँधा तथा सोम ने उससे श्रोत और दर्शन रूपी गुणों को पाने के लिये बँधवाया, वह घृत की वर्षावत नित्य सोम देव को नवीन वर्च प्रदान करती है। अत इस मणि द्वारा तुम अपने शत्रुओ का हनन करो॥८॥ इस खदिर फल मणि को वृहस्पति ने बल प्राप्ति के लिये बाँधा और सूर्य देव ने जिसे दिशाओ पर विजय प्राप्ति के निमित्त बँधवाया था वह खदिर मणि घृतवत् सार पदार्थों को वर्षावत्, शत्रु के लिये उग्रमणि

प्रति दूसरे दिन सूर्य को अत्यधिक अनुभूति प्रदान करे। इसलिए तुम भी उसी मणि से शत्रुओं का नाश करो॥ ६॥ जिस खदिर फाल मणि को गुरुदेव बृहस्पति जी ने अपनी शक्ति के लिये बाँधा उसी मणि के बल से चन्द्रमा ने राक्षसों के सुवर्णमयी नगरी पर विजय पताका को फैलाया। वास्तव में यह मणि घृतवत् सार पदार्थों की वर्षा करने वाली है और शत्रु के लिये उग्र है। यह खदिर मणि चन्द्रमा को रोजाना ही श्री प्राप्त कराने वाली मानी जाती है अतः तुम उसी मणि से अपने शत्रुओं का नाश करो॥१०॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥११
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥१२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भुयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥१३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः।
स आभ्यो ऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१४
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम्।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान् युधाजयन्।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।१६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
त[illegible] म[illegible] प्र[illegible] मञ्चन्त शंभुवम्।

रा आम्पो विश्वमिद् दुहे भूयोभूय श्व.श्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ।१७
ऋतवस्तमवध्नतार्तवास्तमबध्नत ।
संवत्सरस्तं वद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥१८॥
अन्तर्देशा अवध्नत प्रदिशास्तमवध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विपतो मेऽधरां अक । १९।
अथर्वाणो अवध्नताथर्वणा अवध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विपतो जहि ।२०

जिस मणि को वृहस्पति ने वायु के वांधा था वह वायु दिन प्रति दिन वायु को वेगवान् बनाती रहती है। अत तुम उस मणि द्वारा ही अपने शत्रुओ का नाश कर ॥ ११ ॥ जिस मणि को वृहस्पति गुरु ने अश्विनी कुमारो के वांधा था उसी मणि की शक्ति से अश्वनीकुमार कृषि की रक्षा करते हैं। यह मणि हमेश अश्विनीकुमारो को जल प्रदान करती है। अत तुम उस मणि की शक्ति से अपने शत्रुओ को नष्ट करो ॥ १२ ॥ वृहस्पति गुरु ने जिस मणि को सविता के साथ वांधा था, उसी से सविता ने स्वर्ग पर अपनी विजय पताका को फैलाया। यह प्रतिदिन ही सविता को बारम्बार वाणी प्रदान करती रहती है। अतः इस मणि से तुम अपने शत्रुओं का नाश करो ॥ १३ ॥ गुरु वृहस्पति ने जिस मणि को जल के साथ वांधा तो जल हमेशा गतिवान रूप मे विद्यमान रहता है। यह मणि रोजाना इन जलो को अधिकाधिक अमृतत्व देती रहती है। अत. इसी मणि द्वारा तुम अपने शत्रुओं का नाश करो ॥ १४ ॥ वृहस्पति गुरु ने जिस मणि को वरुण राजा के वांधा था, वह मणि सदा कल्याण-दायिनी है। यह मणि रोजाना वरुण को सत्य देती रहती है। अत. तुम उसी मणि के द्वारा शत्रुओ का नाश करो ॥ १५ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को देवताओं के वांधा था और जिस मणि के प्रभाव में आकर देवताओ ने सम्पूर्ण लोको पर अपनी विजय पताका को फैलाया उसी मणि

द्वारा तुम अपने शत्रुओं का हनन कार्य करो ॥ १६ ॥ बृहस्पति गुरु ने जिस मणि को वायु के द्रुतगति के लिए बांधा था और देवताओं ने भी उसे धारण किया था वह मणि उनके लिये विश्व-दायिनी कहलाती है अतः तुम ऐसी मणि द्वारा अपने शत्रुओं का नाश करो ॥ १७ ॥ इस मणि को बृहस्पति गुरु ने ऋतु के उनके अवयव महीनो को बांधा था तथा संवत्सर इसी के बल प्रभाव से शत्रुओं का नाश करता है और प्राणियों की रक्षा का कार्य करता है ॥१८॥ इस मणि को अन्तर्देशों और प्रदिशाओं ने भी बांधा था । इसका आविष्कार प्रजापति महोदय ने किया था अत. यह मणि मेरे सम्पूर्ण शत्रुओं की दुर्गति करने वाला होवे ॥ १९ ॥ जिन्होने अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा इस मणि को धारण किया है उन्होने शत्रुओं के नगरों और गढों को तोड दिया है । अतः तुम ऐसी मणि द्वारा अपने शत्रुओं का नाश करो ॥२०॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूत व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२१॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२२॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स माय मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥२३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥२४॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ।२५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥२६॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ।२७

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८॥
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ।२९॥
ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधरां अकः ॥३०॥

इस मणि को धारण करके ही विधाता ने इन प्राणियों की रचना की थी। अत इसी मणि द्वारा तुम शत्रुओं को नष्ट करो ॥ २१ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को देवताओ के बांध कर असुरो का सहार कराया, वह मणि रस एवम् वर्च युक्त मुझको प्राप्त हो गई है ॥ २२ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को बांध कर राक्षसो का क्षीण कराया था वह मणि गौ, भेड आदि तथा सन्तानो सहित मुझको मिल गई है ॥ २३ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को राक्षसो के क्षीण होने को देवताओ के बांधा था वह मणि यव, धान्य, उत्सव और विभूति आदि सभी से सम्पन्न हुई मुझको मिल गई है ॥ २४ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को राक्षसो के नष्ट करने के लिए देवताओ के बाधा था, वह मणि घृत और मधु की धाराओ तथा अन्न से परिपूर्ण हुई मुझे मिल गई है ॥ २५ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को असुरो के क्षोण के निमित्त देवताओ के बांधा था, वह मणि अन्न, वल और लक्ष्मी के साथ मुझको मिल गई है ॥ २६ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को राक्षसो के नाश के लिए देवताओ के बांधा था, वह मणि, तेज, यश और दीप्ति से युक्त हुई मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २७ ॥ वृहस्पति ने जिस मणि को असुरो के लिए देवताओ के बांधा था, उस मणि को मैंने सम्पूर्ण विभूतियो सहित पा लिया है ॥ २८ ॥ क्षत्रिय के बल की वृद्धि-दायिनी शत्रु को वशीभूत करने मे कुशलता दिखाने वाली तथा उनका नाश करने वाली, इस मणि को पुष्टि के लिए देवगण मुझे प्रदान

षरें ॥ २९ ॥ हे मणे ! तू सर्व समार का कल्याण करने वाली है । तुझे मन्त्र शक्ति सहित मैं प्राप्त करता हूँ । तुम शत्रु रहित हो अतः शत्रुओ का सहार करने वाली हो । तुम मेरे शत्रु को भी नष्ट करो ॥३०॥

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिष्कृणोतु देवजाः
यस्य लोका इमे त्रय. पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठ्याय मूर्धत' ॥३१॥
यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठ्यायमूर्धत. ॥३२॥
यथाबीजमुर्वराया कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥३३॥
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुञ्च शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥३४॥
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षु पशून्त्समिद्ध
जातवेदसि ब्रह्मणा ॥३ ॥

देवताओ ने इस मणि का आविष्कार किया । यह मणि मुझे शत्रुओ से श्रेष्ठ बनावे, जिस मणि से हम दूध और दही जैसे पदार्थों की याचना करते हैं वह मणि केवल श्रेष्ठिता के निमित्त ही मेरे द्वारा धारण की जाती है ॥ ३१ ॥ देवता, पितर और मनुष्य जिस मणि द्वारा जीवन रूपी सर्वोत्तम वस्तु प्राप्त करते हैं ऐसी यह मणि श्रेष्ठता से मुझ पर चढे ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार फाल द्वारा कुरेदने पर भूमि मे बीज उत्पन्न होकर बढता है वैसे ही यह मणि भी प्रजा, पशु एवम् खाद्यान्नों की उत्पत्ति करने वाली है ॥ ३३ ॥ हे मणे ! तू यज्ञ की वृद्धि-दायिनी है । मैं जिसके कारण तुझे धारण करता हूँ उसे तू सफल कर ॥ ३४ ॥ हे अग्ने ! तुम मन्त्र-शक्ति से प्रदीप्त होते हुए इस हवि का सेवन

कर तृप्त होओ। हम इन अग्नि देव से श्रेष्ठ मति, प्रजा, चक्षु, पशु और सब प्रकार का कल्याण चाहते हैं ॥३५॥

सूक्त ७ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—स्कम्द., अध्यात्मम्। छन्द—जगती; त्रिष्टुप्, बृहती, अनुष्टुप्; गायत्री, पंक्ति)

कस्मिन्नंगे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नंगऋतमस्याध्याहितम्।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नंगे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१
कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२॥
कस्मिन्नंगे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नंगे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्।
कस्मिन्नंगे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नंगे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥३॥
क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्वः प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं त ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥४
क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥५
क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतम. स्विदेव सः ॥६
यस्मिन्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥७॥
यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भ. प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥८
कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एक यदंगमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भ प्र विवेश तत्र ॥९॥
यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतम स्विदेव सः ॥१०॥

इसके कौनसे अङ्ग मे तप, कौनसे अङ्ग मे ऋत, कौनसे अङ्ग मे श्रद्धा, कौनसे अङ्ग मे सत्य और कौनसे अङ्ग मे व्रत रहता

है ? ॥ १ ॥ इसके कौनसे अङ्ग मे वायु चलता है, कौनसे अङ्ग मे अग्नि प्रज्वलित होती है और कौनसे अङ्ग मे चन्द्रमा मान करता ? ॥ २ ॥ इसके कौनसे अङ्ग मे भूमि, कौनसे अङ्ग मे अन्तरिक्ष और कौनसे अङ्ग मे द्यू लोक का निवास है ? कौनसे स्थान मे द्यू लोक से भी श्रेष्ठ स्थान विद्यमान हैं ? ॥ ३ ॥ ऊपर उठता हुआ अग्नि कहाँ जाने का प्रयास करता है ? वायु किस स्थान को जाने की इच्छा करता हुआ चलता रहता है ? प्राणी आवागमन रूपी चक्कर म पडे हुए कहाँ जाने की लालसा करते हुए कौनसे स्कम्भ के सामने चलते हैं उसको बताओ ? ।४। सवत्सर से सहमति रखने वाले मास तथा ये पक्ष कहाँ को गमन कर जाते है ? ये ऋतुऐं और माँस जहाँ कहो भी जाते हो उस स्थान से परिचित कराओ ? ।५। रात्रि एवम ये दिन अनेकानेक रूपो को धारण करने वाले हैं, ये मिलने और अलग होने वाले भी है, वे दौडते हुए अथवा भागते हुए कहा चले जारहे हैं ? जहाँ प्राप्ति की इच्छा वाले जले जा रहे है उस स्थान को दृष्टि-गोचर कराओ ? ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण लोको को धारण कर जिस स्कम्भ पर प्रजापति निवास करता है, उस स्कम्भ को बताओ ? ॥ ७ ॥ जिन परम, अवम और मध्यम रूपो को प्रजापति ने बनाया है उनम कितने अश से स्कम्भ प्रवेश किया, जितने अश से प्रवेश नही हुवा, वह अश कितना है ? ॥ ८ ॥ कितने अशो से स्कम्भ भूत मे प्रवेश हुआ है ? भविष्य मे कितने अशो से सो रहा है ? अपने अशो को जो सहस्र प्रकार का बना लेता है। वह उसमे कितन अशो मे प्रवेश होता हैं ? ॥ ९ ॥ लोक, कोश और जल जिसमे निहित माने जाते हैं, तथा जिसमे सत् एवम् झूँठ भी विद्यमान है उस स्कम्भ को बताओ ॥१०॥

यत्र तप पराक्रम्य व्रत धारयत्युत्तरम् ।
ऋत च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिता स्कम्भ त ब्रूहि कतम
स्विदेव स ॥११॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव स ॥१२॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भ तं ब्रूहि कतमः स्विदेव स. ॥१३॥
यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भ तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१४॥
यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिता. स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१५॥
यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१६॥
ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥१७॥
यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भ तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१८॥
यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहु स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१९॥
यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२०॥

जहाँ तप तथा व्रत द्वारा तेजस्वी हुआ मनुष्य जाकर बैठता है, जिस स्थान पर श्रद्धा, ऋतु, जल और ब्रह्मा भी विद्यमान हैं उस स्कम्भ को बताओ ॥ ११ ॥ जिस स्कम्भ मे अग्नि, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष और दिव्य-लोक विद्यमान है उसे हमको बताओ ॥ १२ ॥ जिसके शरीर मे तेतीस देवताओं का निवास माना जाता है उस स्कम्भ को हमे बताओ

॥ १३ ॥ जिस स्कम्भ मे प्रारम्भ काल में ऋषि, पृथ्वी, ऋक्, साम और यजुर्वेद उत्पन्न हुए हैं उस स्कम्भ को हमे बताओ ।१४। जिस स्कम्भ के अन्दर जीना और मरना निहित है, समुद्र जिसकी नाड़ी है वह स्कम्भ कौनसा है ॥१५॥ चारो दिशा ही जिसकी मुख्य नाड़ियां हैं और जिसमे यज्ञ किया जाता है उसका तुम वर्णन करो ? ॥ १६ ॥ जो ब्रह्मदेव को जानने मे समर्थ है जो परमेष्ठी, प्रजापति एवम् अग्रज ब्राह्मणो को जानने मे समर्थ हैं वे ही स्कम्भ के भी ज्ञाता हैं ॥ १७ ॥ जिसका शिर वैश्वानर और जिसकी आंखें अङ्गिरावशीय ऋषि, जिसके अङ्ग 'यातु' है वह स्कम्भ कौनसा है ? ॥ १८ ॥ जीव को जिसको मधुकशा कहा जाता है और मुख को ब्रह्मा की उपाधि दी जाती है, जिसका कि ऐन विराट् कहलाता है, उस स्कम्भ से परिचित कराओ ॥ १९ ॥ जिस स्कम्भ से द्वारा यजुर्वेद के मन्त्र एवम् ऋचायें ने जन्म लिया, अथर्व जिसका मुख और साम जिसके लोम रूप माने जाते हैं उस स्कम्भ के बारे में हमको बताओ ? ॥२०॥

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदु ।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥२१॥
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिता स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥२२॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥२३॥
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥२४॥
बृहन्तो नाम ते देवा येऽसत. परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥२५॥
यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् ।

एक तदग स्कम्भाय पुराणमनुसविदु ॥२६॥
यस्य त्रयस्त्रिशद् देवा अगे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वैत्रयस्त्रिशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदु ॥२७॥
हिरण्यगर्भं परममनत्युद्य जना विदु ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्य लोके अन्तरा ॥२८॥
स्कम्भे लोका स्कम्भे तप स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥२९॥
इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्र त्वा वेद प्रत्यक्ष स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३०॥

अप्रकट वस्तु अथवा शाखा को प्रगट हो जाने पर वह सर्वोत्तम मानी जाती है। दूसरे मनुष्य जिस मनुष्य के लिए नतमस्तक रहे अथवा उसकी स्तुति करे वह भी सर्वोत्तम माना जाता है ॥ २१ ॥ जिस स्कम्भ मे चन्द्रमा, रुद्र, वसु भूत, भव्य और सम्पूण लोक समाविष्ट है उसको बताओ ? ॥ २२ ॥ तेतीस देवताओ द्वारा जिस निधि की रक्षा की जाती है उसका ज्ञाता कौन होता है ? ॥ २३ ॥ ब्रह्म को जानने योग्य दवता जहाँ पर महान् ब्रह्म की स्तुति एवम उपासना करते हैं, जो इन देवताओ को जानने वाला है वही उस ब्रह्म का जानने वाला है ॥ २४ ॥ असद् द्वारा पैदा हुए वृहत नामक देवगण उस स्कभ के ही अङ्ग हैं अत वे असत् कहलात हैं ॥ २५ ॥ उत्पन्न हुए पुराण को स्कम्भ ने व्यवर्तित किया था, अत वह स्कम्भ का अङ्ग प्राण कहलाता है ॥ २६ ॥ जिसके शरीर मे तेतीस देव गण सुशोभित होते है, उन्हें ब्रह्म को जानने योग्य विज्ञ ही जान सकते है ॥ २७ ॥ वह वर्णन म न आ सकने वाला हिरण्यगर्भ ऐसा माना जाता है कि वह स्कम्भ ने ही सर्व प्रथम इस लोक मे सींचा था ॥ २८ ॥ स्कम्भ के अन्दर लोक, ऋतु और तप सभी सम्मलित हैं। ह स्कभ ! इन्द्र ने तुझे प्रत्यक्ष रूप मे देख लिया और तू इन्द्र म ही निहित है ॥ २९ ॥ इन्द्र मे ही लोक,

तप और ऋतु निहित मानी जाती है। हे इन्द्र ! मैं तुझको जानता हूँ कि तुम सब स्कम्भो मे निहित हो ॥३०॥

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदज प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥३१॥

यस्य भूमि प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३२॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः
अग्नि यश्चक्र आस्य तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम' ॥३३॥

यस्य वात. प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम. ॥३४॥

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिश. षडुर्वीः स्कम्भ इद विश्वं भुवनमा विवेश ॥३५॥

य श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवल तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम' ॥३६॥

कथं वातो नेलयति कथ न रमते मन ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥३७॥

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्ध परितइव शाखा ॥३८

यस्मै हस्ताभ्या पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलि प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥३९॥

अप तस्य हत तमो व्यावृत्त स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिञ्ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥४०॥

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापति- ॥४१॥

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्राम वयत षण्मयूखम् ।

प्राऽन्या तन्तू स्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ।.२
तयोरह परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद् वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥४३॥
इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिव सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥४४॥

पहिले जो अजन्मा था, जिससे परे कोई भी भूत प्राणी नही है, इसे वह आत्मा की प्राप्ति हो जाती है । वह सूर्य और उषा से पूर्व नाम रूपात्मक ससार के नाम से पुकारा जाता है ॥ ३१ ॥ पृथ्वी जिसकी प्रभा मानी जाती है,अन्तरिक्ष जिसका उदर और द्यूलोक सिर रूप मे माने जाते है । ऐसे ब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ सूर्य और चन्द्र ही मानो जिसके नेत्र और अग्नि जिसका मुख रूप है उस ब्रह्मा को मैं श्रद्धा सहित प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥ जिसके प्राणायाम वायु, अङ्गिरा नेत्र और दिशायें प्रज्ञान रूप विद्यमान है उस ब्रह्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥ आकाश, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, प्रदिशा और छै उर्वियो को जिस स्कभ ने धारण किया और जो इस लोक मे फला हुआ भी है ॥ ३५ ॥ जो स्कभ सम्पूर्ण लोको का भोग करने वाला है और तपस्या के द्वारा जो प्रकाश रूप मे आता है, जिसने चन्द्रमा को बनाया है उस ब्रह्म को मैं वारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ किस सत्य की लालसा लिए हुए जल अचेष्ठ रहते है, वायु प्रेरणा नही करता और मन रमण नही करता है ॥ ३७ ॥ ससार मे एक अत्यधिक पूज्य-नीय व्यक्तित्व है और वह सलिष्ट पृष्ठ पर विराजमान है । उसको एव साम तप द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । वृक्ष की सभी शाखायें जिस प्रकार वृक्ष पर निर्भर रहती है उसी प्रकार सभी देवगण उस पर निर्भर रहते हैं ॥ ३८ ॥ जिसकी देवगण हाथ, पैर, वाणी और नेत्रादि से सेवा मे तत्पर रहते हैं जो विभिन्न देह मे अमित रूप मे विद्यमान है उस स्कम्भ के बारे मे ज्ञान कराओ ? ॥ ३९ ॥ जो स्कम्भ का ज्ञान होता है

उसके अज्ञान का नाश हो जाता है। वह पाप रहित होता है और प्रजापति की तीन ज्योतियाँ भी उसमे विद्यमान होती है ॥ ४० । प्रजापति वही माना जाता है जो जल मे बेंत का जानने वाला हो अन्यथा नही ॥ ४१ ॥ ये संवत्सर के आश्रित मे ये अनेकानेक दिन-रात्र एवम् छः ऋतुऐ हैं। मैं इन पर चढता हूँ। इनमें से एक तन्तु विस्तार कर उन्हे धारण करता है और इससे दूसरा भी इन्हे नही त्यागता है। ये दोनों ही तन्तु अन्न से युक्त नही होते हैं ॥ ४२ ॥ नर्तन शील इन दिन और रात्रियो मे दूसरे से मैं अनभिज्ञ हूँ। दिन इन्हें तन्तुवान् बनाता है और उद्गृणन् करके स्वर्गलोक मे पुष्टि प्रदान करता है ॥ ४३ ॥ प्रवाहमान होने के लिए साम 'तसर' करते रहते हैं एवम् मयूख स्वर्ग लोक को स्तम्भ रूप मे विद्यमान करते हैं ॥४४॥

सूक्त ८

(ऋषि—कुत्सः। देवता—अध्यात्मम्। छन्द—बृहती; अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः; उष्णिक्, गायत्री)

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥
स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वं मात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत् ॥२॥
तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥३॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥४
इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकज ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकज ॥५॥
आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेद सर्वमार्पित मेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥६॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमिसहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्व भुवनं जजान यदस्यार्धं क्वतद् बभूव ॥७॥
पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥८॥
तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहित विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥९॥
या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा स ऋचाम् ॥१०॥

जो ब्रह्म भूत, भविष्यत् और सबमे विद्यमान है, जो दिव्य लोक का भी अधिष्ठाता है उसको (ब्रह्म को) मेरा प्रणाम है ॥१॥ यह पृथ्वी एवम् आकाश स्कंध ही अपने स्थान पर स्थित है। यह आत्म रूप स्कंभ ही श्वास लेने और पलक मारने मे सहायक है ॥ २ ॥ तीन प्रजाएँ इसे प्राप्त करती हैं और सभी तरफ से सूर्य मे प्रविष्ट होती है। हरे रङ्ग की हरिणी मे ब्रह्म जो कि पृथ्वी का रचयिता है प्रविष्ट होता है ॥ ३ ॥ तीन 'नभ्य' एवं बारह 'प्रधि' हैं, उनमे तीन सौ आठ कीलें ठुकी हुई हैं इनको कौन जानता है ॥ ४ ॥ हे सविता देव ! दो-दो मास की ये छः ऋतुयें हैं जिनमे कि एक वर्ष की अवधि बनती है। इनमे जो ब्रह्म से उत्पन्न प्राणी जगत है वह ब्रह्म मे लीन होने की लालसा लिए हुए है ॥ ५ ॥ इस गुफावत् देह के अन्दर रहता हुआ आत्मा प्रकाशवान रहता है। जरत् नामक महापद मे यह सचेत रहता है और श्वासवान यह जगत स्थित माना जाता है ॥ ६ ॥ एक नेमि सहस्राक्षर एव एक चक्र के साथ गतिमान है। उसके अर्द्ध भाग से यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है। परन्तु इसका अन्य आधा भाग कहाँ पर स्थित है ॥ ७ ॥ अग्र को पञ्चवाही प्राप्ति कराती है, प्रष्टियाँ अनुकूल संवहन करती हैं। इसका केवल आना ही दिखाई देता है जाना दिखाई नही देता। यह अत्यधिक पास एवं अत्यधिक ही दूर है

॥ ८ ॥ ऊपर की ओर जड और तिर्यग्बिल चमस मे विश्व रूप यह आत्मा विद्यमान है। उसमे शरीर के रक्षक सप्तर्षि एक साथ रहते हैं ॥ ९ ॥ जो आगे, पीछे अथवा हर समय विनियुक्त होती है, जिससे कि यज्ञ मे वृद्धि प्राप्त होती है, वह ऋचा कौनसी है ॥ १० ॥

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥११॥
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥१२॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥१३॥
ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥१४॥
दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥१५॥
यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥१६॥
ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥१७
सहस्राहण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥१८॥
सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिञ्ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥१९॥
यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वाञ्ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥२०॥

जो चेतना युक्त है, स्थित है, प्राण-क्रिया करता भी है और नहीं भी करता, जो निमिषत् के समान है, उसी ने इस भूमि को धारण कर रखा है। वह सब रूपों में विद्यमान होता

हुआ एक रूप को भी प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ वह अनन्त भी मालूम देता है और एक रूप भी प्रतीत होता है वह अनेकानेक स्थानों में व्याप्त है, स्वर्ग सुख की इच्छा करने वाला प्राणी उसको खोजता फिरता है। भूत और भविष्यत् भी उसी के गर्भ माने जाते हैं। वह सर्व ज्ञाता है ॥ १२ ॥ गर्भ में अदृश्य रहता हुआ भी प्रजापति विचरण करता रहता है। वह अनेक रूपों में उत्पन्न होता है। उसके आधे भाग से जगत् की उत्पत्ति मानी जाती है शेष आधा भाग वहाँ विद्यमान है ॥ १३ ॥ कुम्भ द्वारा ऊपर उछलते हुए जल को सभी अपनी आँखों से देखते रहते हैं। किन्तु वे मन द्वारा नहीं जान पाते हैं ॥ १४ ॥ अपने आपको जो पूर्ण मानता है उससे वह दूर रहता है और जो स्वयं को हीन मानता है उससे भी दूर ही छिपा रहता है। लोक में एक अत्यन्त पूज्यनीय व्यक्तित्व है, राष्ट्र अथवा देश या भरण-पोषण करने वाले उसकी सेवा किया करते हैं ऐसा माना जाता है ॥ १५ ॥ सूर्य देव जिसके द्वारा उदय और अस्त को प्राप्त होते हैं वही बड़ा है। उसका अतिक्रमण करने के लिये किसी का भी साहस नहीं है ॥१६॥ इस पुरातन, विद्वान् और सभी के जो ज्ञाता हैं जो कि मध्य में पीछे की ओर छिपे माने जाते हैं, सूर्य के ही कहने वाले हैं। ये अग्नि एवं त्रिवृत् हंस का वर्णन भी इसी प्रकार बतलाते हैं ॥ १७ ॥ सहस्र दिनों तक स्वर्ग गमन के लिये पाप का नाश करने वाले इस हंस के पङ्ख फैले रहते हैं। सब देवताओं को हृदय में विद्यमान रखता हुआ वह सम्पूर्ण लोकों को दृश्यमान करता है ॥ १८ ॥ जिसमें वह अत्यधिक रमा हुआ है वह सत्य के ऊपर ही तप करता है। मन्त्र की शक्ति से नीचे देखता है और प्राण बल से तिर्यग् गमन का कार्य सम्पन्न करता है ॥१९॥ जो भी विद्वान् धन-मन्थन करने वाली अरणियों की लकड़ी के ज्ञाता हैं वे ही उस महान् ब्रह्म का भी ज्ञाता है ॥ २० ॥

अपावर्ग्र समभवत् सो अग्रे स्वराभरत् ।
चतुष्पाद् भू वा भोग्य. सर्वमादत्त भोजनम् ॥२१॥
भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥२२॥
सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥२३॥
शत सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्यय स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥२४॥
बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
तत परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥२५॥
इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार स. ॥२६॥
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत या कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्व जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥२७॥
उतैषा पितोत या पुत्र एषामुतैषा ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठ. ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्ट प्रथमो जात' स उ गर्भे अन्तः ॥२८॥
पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥२९॥
एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥३०॥

प्रथम तो वह पैर रहित होकर वे स्वर्ग का पालन-पोषण करता है और फिर चतुर पैर वाला होकर भोगने मे समर्थता प्राप्त करता है तथा सम्पूर्ण भोजन पा लेता है ॥ ११ ॥ जो सनातन देव की उपासना करता है वह बहुत-सा अन्न स्वय धन दान देता हुआ भोगो को भोगने मे समर्थ होता है ॥ २२ ॥ ये सनातन कहे जाते हैं और फिर नवीन होते हैं। इन्ही सूर्य से दिन एव रात की उत्पत्ति मानी गई है ॥ २३ ॥ सैकडो, हजारो अथवा असख्यात् अयुत, अर्बुद और दिन इनमे ही लीन माने

गये है, यह उनका साक्षीरूप ही रहता है। उनमे यह देव लिप्त न होने से तेजस्वी रहता है ॥ २४ ॥ यह आत्मा महान होता हुआ भी किसी को दिखाई नही देता चूंकि यह बाल से भी छोटा बतलाया गया है। जो आत्मा उससे मिलता है वह मेरे लिये अत्यधिक प्रिय है ॥ २५ ॥ आत्मदेव के लिये सदैव प्रस्तुत रहने वाली वह आत्मा हमेशा कल्याणमयी एव जरा रहित होती है। मर्त्यलोक मे जो ब्रह्म अमृत वत है उसका उपासक भी पूज्यनीय माना गया है ॥ २६ ॥ हे आत्मा तू ही कुमारी, तू ही स्त्री और तू ही पुरुष रूप है। तू जर्जर होकर प्राण से वियुक्त होता है और ,प्रकट होकर विश्वतोमुख होता मालूम देता है ॥ २७ ॥ हे आत्मा तू ही इन जीवो का ज्येष्ठा, कनिष्ठा, पिता और पुत्र रूप मे है। वही आत्मा एक देवता के मन मे है। वही गर्भ मे स्थित और वही पहिले उत्पन्न हुआ है ॥२८॥ पूर्ण से ही पूर्ण को सिंचित किया जाता है। पूण से ही पूर्ण उदचित होता है। जहां वह सीचा जाता है हम उसको जान गये हैं ॥ २९ ॥ यह तप द्वारा अनुकूल, सभी को व्याप्त करके यह विद्यमान पृथ्वी, उषा से चमकती हुई सचेष्ट जीवो के द्वारा देखी जाती मानो गई है ॥३०॥

अविर्वै नाम देवत ऋतेस्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रज ॥३१॥
अन्ति सन्त न जहात्यन्ति सन्त न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्य न ममार न जीर्यति ॥३२॥
अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मण महत् ॥३३॥
यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिता ।
अपा त्वा पुष्प पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥३४॥
येभिर्वात इषित प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिश सध्रीची ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपा नेतार कतमे त आसन् ॥३५॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्यको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥३६॥
यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमा ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥३७॥
वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥३८॥
यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥३९
अप्स्वा सीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥४०॥
उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥४१॥
निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥४२॥
पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥४३॥
अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोन
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥४०॥

अवि नामक देव उस ऋतु से ढके हुए माने जाते हैं। उसी के रूप के अन्तर्गत ये वृक्ष हरे रङ्ग के दिखलाई देते हैं॥३१॥ यह समीपवर्ती को नहीं देखता, यह समीप आये हुये को नहीं छोड़ता है। उस देव की यह विचित्रता है कि न कभी वह मृत्यु को प्राप्त होता है और न कभी यह जीर्णता को ही प्राप्त होता है।३२। अभूतपूर्व से प्रेरित वाणियाँ सत्यासत्य का वर्णन करने मे समर्थ है। वह उच्चारण करती हुई जहाँ भी लीन होती है वही महद्ब्रह्म कहलाता है ॥३३॥ नाभि मे अर्पित अरों के समान जिसमें कि सम्पूर्ण देव अर्पित हैं उसी नारायण को पूछता हूँ। वह अपनी माया के द्वारा वहाँ पर विद्यमान रहता है॥ ३४॥ जिनकी

प्रेरणा को प्राप्त करता हुआ वायु विचरण करता है। जो कि नच प्रीची देते हैं। जो आहुति को श्रेष्ठतम मानते हैं, वह जल नेता वहाँ पर विद्यमान है ॥ ३५ ॥ वही एक पृथ्वी पर छाया हुआ है वही अन्तरिक्ष मे सभी ओर विद्यमान है। वही इन जीवों को स्वर्ग प्रदान करता है। सम्पूर्ण दिशाओ की दिक्पाल नामक देव रक्षा करते हैं ॥३६॥ यह प्रजायें जिसके अन्तर्गत निहित हैं, इस विस्तृत सूत्र और कारण के भी कारणो का ज्ञाता है वही उस महद्ब्रह्म का ज्ञाता माना जा सकता है ॥३७॥ जिसके अन्तर्गत ये भुजायें निहित है उसका मैं स्वामी हूँ। उसके कारणो का भी ज्ञाता हूँ। वही महद्ब्रह्म है ॥ ३८ ॥ अग्नि जो कि ससार को भस्म रखने की ताक्त रखता है आकाश और पृथ्वी के मध्य आता है जहाँ पोषणकर्त्री देवियाँ रहती है। उस समय मातरिश्वा किस स्थान पर था ? ॥ ३९॥ मातरिश्वा जल मे विद्यमान था, सम्पूर्ण देवगण सलिल मे विद्यमान थे, पृथ्वी रचयिता करने वाला ब्रह्म निश्चल रूप मे विद्यमान था। उसी पाप का नाश करने वाले ने वायु रूप से जल मे प्रवेश किया था ॥ ४० ॥ उत्तर मे वे गायत्री मे प्रविष्ट हुये, जो साम द्वारा साम के जानने वाले है वह 'अज' कहाँ पर दिखाई देता है ॥ ४१ ॥ सविता देवताओ मे भी दिव्य माना जाता है। वह सत्य कर्म वाले हैं, पुण्यात्मा जीव उन्ही मे प्रवेश कर पाते हैं। वही उनको स्वर्ग का निवास स्थान प्रदान करते हैं। इन्द्र धन मे स्थित नही करने पाते है ॥ ४२ ॥ नौ द्वारो सहित पुण्डरीक त्रिगुणात्मक कहलाता है। उसमे विद्यमान आत्मा के पूज्य स्थान को ब्रह्मज्ञानी लोग ही जान पाते हैं ॥४३॥ इच्छा रहित, धैर्य-युक्त, स्वयभूब्रह्म अपने ही रस से स्वय तृप्त रहते हैं, वह किसी भी विषय मे असमर्थ नही माने जाते हैं। उस आत्मा के ज्ञाता सततयुवा को मृत्यु से डर मालूम नही होता है ॥ ४४ ॥

सूक्त ६ (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—शतौदना । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् पङ्क्ति, जगती, शक्वरी)

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातु ॥१॥
वेदिष्टेचर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥२॥
बालास्ते प्रोक्षणी सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥३॥
य शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्य ऋत्विज सर्वे यन्ति यथायथम् ॥४॥
स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥५॥
स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवा ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६॥
ये ते देवि शमितारः पक्तारो च ते जना ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषी शतौदने ॥७॥
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्या पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥८॥
देवा पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥९॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिश ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥१०॥

शत्रु-नाशनी यह, यजमान को स्वर्ग दिलाने वाली कामधेनु इन्द्र प्रदत्त है। हिंसा रूप पाप करने वाले शत्रुओं को यह कामधेनु उस पर वज्र प्रेरणा की अधिकारी है ॥ १ ॥ तेरे लोम कुशारूप होवें, चम वेदी वत होवें, तू इस रस्सी द्वारा पकड़ी हुई है और ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे ॥ २ ॥ हे अघ्न्ये !

तेरी जिह्वा मार्जन, का कार्य करे। तेरे बाल हे अज! प्रोक्षणी का रूप धारण करें। हे शतौदने! तू शुद्ध यज्ञीय होता हुआ स्वर्ग को प्राप्त होगा ॥ ३ ॥ शतौदना को प्रस्तुत करने वाला, इच्छा पूर्ति के लिये समर्थ होता है। इससे ऋत्वज प्रसन्न होते हैं और चले जाते हैं ॥ ४ ॥ शतौदना को अपूप नाभि करके देने वाला अन्तरिक्षस्य स्वर्ग के लिये प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ स्वर्ण अलंकृत गौ-दान करने वाला, दिव्य एवम् पार्थिव लोकों को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे देवि! तेरे रखने और शमन करने वाले तेरे रक्षक होंगे, अतः तू इनसे भय मत कर ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशा की ओर से वसु एवम् उत्तर दिशा की तरफ से वसु तेरी रक्षा करेंगे तथा पीछे की तरफ से सूर्यदेव तेरे रक्षक का कार्य सम्पन्न करेंगे। अतः तू अग्निष्टोम की ओर जा ॥ ८ ॥ मनुष्य, पितर, गन्धर्व, देवगण, एवम् अप्सरा तेरी रक्षा का कार्य करेंगे अत. तू अतिरात्र की तरफ जा ॥९॥ शतौदना का दानी, द्यु-लोक, पृथ्वी-लोक, अन्तरिक्ष मरुद्गण और दिशा इन सभी के लोकों को मैं निवास करने का अधिकारी होता है ॥१०॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥११॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१२॥
यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१३॥
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृंगे ये च तेऽक्षिणी।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१४॥
यस्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१५॥
यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्चते गुदाः।
आ[illegible] रां [illegible] दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१६॥

यस्ते सास्नियों वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।
आमिक्षा दुह्रता दात्रे क्षीर सर्पिरथो मधु ॥१७॥
यस्ते मज्ज यदस्थि यन्मांस यच्च लोहितम् ।
आमिक्षा दुह्रता दात्रे क्षीर सर्पिरथो मधु ॥१८॥
यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ।
आमिक्षा दुह्रता दात्रे क्षीर सर्पिरथो मधु ॥१९॥
यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा या पृष्टीर्याश्च पर्शव ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीर सर्पिरथो मधु ॥२०॥

हे शतौदने ! तुम घृत के प्रोक्षण सहित देव लोकों को प्राप्त होती हो अत तू पक्ता की हिंसा न करती हुई स्वर्ग को गमन करेगी ॥ ११ ॥ तू हमेशा पृथ्वी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष मे वास करने वाले देवगणों के लिये दूध घृत और मधु का सदा दोहन रूपी कार्य कर ॥ १२ ॥ तेरे शिर, मुख कान, ठोडी दानी के लिये अमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥१३॥ तेरे ओष्ठ, नासिका सीग तथा चक्षु दानी उपासक के लिए दूध, दही, घृत और शहद का दोहन करें ॥ १४ ॥ दान देने वाले सज्जन के लिये तेरा क्लोम, पुरीतत् हृदय और कण्ठनाडी अमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १५ ॥ दान देने वाले दाता के लिये तेरी यकृत, अन्तडिया और गुदा की नसें अमिक्षा, दूध घृत और मधु का दोहन कर ॥ १६ ॥ दान देने वाले सज्जन के लिये तेरा प्लाशि, वनिष्ठु कुक्षियाँ और चर्म आमिक्षा दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १७ ॥ दान देन वाले सज्जन के लिये तेरी मज्जा हड्डी, मांस और रक्त आमिक्षा, दूध घृत और मधु का दोहन करें ॥ १८ ॥ दान देने वाले सज्जन के लिये तेरी भुजा, अश और आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १९ ॥ दान देने वाले सज्जन के लिय तेरी ग्रीवा, कन्धा, पुष्टि, पसलिया आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करे ॥२०॥

यौ त उरू अष्ठीवन्तौ ये श्रेणी या च ते भसत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२१॥
यत् ते पुच्छं ये ते वाला यद्धो ये च ते स्तना. ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२२॥
यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२३॥
यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२४॥
क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा स पक्तारं दिवं वह ॥२५॥
उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
य वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२६॥
अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं स पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२७॥

दान देने वाले सज्जन को तेरी उरु, अष्टीवान्, श्रेणी और कटि आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करे ॥ २१ ॥ दान देने वाले सज्जन के लिये तेरी पूंछ, गाल, ऐन, और थन आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करे ॥ २२ ॥ दान देने वाले सज्जन के लिये तेरी जांघें, कुष्ठिका, सुम और ऋच्छर, आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करे ॥ २३ ॥ हे शतौदने ! दान देने वाले सज्जन के लिये तेरा चर्म तेरे लोम, आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करे ॥ २४ ॥ हे देवि ! तेरे क्रोड घृत से भरे पुरोडाश हों तू उन्हें पक्ष बना कर पक्ता के साथ स्वर्ग को प्राप्त कर ॥ ५ ॥ मातरिश्वा ने जिसका मथन किया है और जो धान्य-कण उलूखल, मूसल, चर्म, छाज में रहा

के हाथ में घृतवत् सार प्रदायिनी देवियों को देता हूँ। हे ब्राह्मणो ! जिस अभीष्ट के निमित्त तुम्हारा मैं सीचन कार्य करने का विचार करता हूँ वह सर्व कार्य धन-धान्य से सम्पन्न होवे ॥२७॥

सूक्त १०

(ऋषि—कश्यपः। देवता—वशा। छन्द—अनुष्टुप्; बृहती; पङ्क्तिः गायत्री)

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१॥
यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥२॥
वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥
यया द्यौर्यया पृथिवी ययापा गुपिता इमाः।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४॥
शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥५॥
यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका।
वशा पर्जन्यपत्नी देवां अप्येति ब्रह्मणा ॥६॥
अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७॥
अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥८॥
यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥९॥
यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत्।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद् वशे ॥१०॥

हे अघ्न्ये ! तुझे पैदा करने वाली को मेरा नमस्कार है, तेरे बालों और खुरों के लिये भी नमस्कार है ॥ १ ॥ जो पुरुष वशा गौ की सात वस्तुओं और वशा से दूर रखने वाली सात वस्तुओं को जानता है जो यज्ञ के शीर्ष को भी जानता है वह वशा को ग्रहण करने मे योग्य है ॥ २ ॥ मैं सात परावतों, सात प्रवातों और यज्ञ के शीर्ष तथा उसमे निहित सोम को भी भली प्रकार जानता हूँ ॥ ३ ॥ पृथ्वी, आकाश और यह जल जिस वशा द्वारा रक्षित हैं वह सहस्त्र या असख्यात् नाली वाली वशा में हम सामने होकर मन्त्र द्वारा वार्तालाप सम्बन्धी कार्य करते हैं ॥ ४ ॥ इसकी पीठ मे दुग्ध पीने के शतपात्र और सौ दुग्धा है, इसके अन्दर प्राणान करने वाले विद्वतजन इस वशा के एक प्रकार से ज्ञाता हैं ॥ ५ ॥ यज्ञपदी, इरा, क्षीरा, स्वाधा-प्राणा और पर्जन्य की स्त्री रूप वशा मन्त्र शक्ति द्वारा देवगणा की सन्तुष्टि मानी जाती है ॥ ६ ॥ हे वत्से ! तेरे अन्दर सोम और अग्नि का प्रवेश है। पर्जन्य रूप तेरे ऐन और विद्युत रूप तेरे स्तवन प्रतीत होते हैं ॥ ७ ॥ हे वशे ! तू जल का देने वाली है, उर्वर वस्तुओं को भी प्रदान करने वाली है, तृतीय राष्ट्र को देती हुई अन्न, दुग्धादि प्रदान करती है ॥८॥ आदित्यों द्वारा बुलाने पर तू उनके पास गई थी। उस समय इन्द्र ने तुमको असख्य पात्रों द्वारा सोम रस का पान कराया था ॥ ९ ॥ जब तू इन्द्र के पास मे थी तो ऋषभ ने तेरा आह्वान किया था और रुष्ट होकर वृत्रहा ने तेरे दूध का हरण किया ॥ १० ॥

यत ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इद तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥११॥
त्रिषु पात्रेषु त सोमसा देव्य हरद वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१२॥
स हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्य[illegible]द् गन्धर्वैः क[illegible]भि सह ॥१३॥

यातेनागत सम् सर्वैः पतत्रिभिः ।
समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥१४॥
सूर्येणागत सम् सर्वेण चक्षुषा ।
समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५॥
वृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥१६॥
भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
र्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१७॥
माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
या यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८॥
र्वं बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।
स्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१९॥
नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
स्याज्ज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥२०॥

तेरे जिस दूध को रुष्ट धनपति ने हर लिया था उसको
ा पात्रों में रख कर स्वर्ग रक्षा कर रहा है ॥ ११ ॥ उस
म को देवी वशा ने तीन वर्तनों में भरा, वहाँ सुन्दर कुशा पर
र्वा विराजमान किये गये ॥ १२ ॥ वशा सोम और सभी
दो के साथ सुसङ्गठित हुई, कलि तथा गन्धर्वों के साथ अच्छी
ाती हुई जल पर प्रतिष्ठित अर्थात् विराजमान् हैं ॥ १३ ॥
ायु एवम् सभी पाद युक्तों सहित ये वशा सुसङ्गत होती हुई,
ऋचा एवम सोमों को धारती गई, यह समुद्र में अपना नृत्य
रती है ॥ १४ ॥ वशा सूर्य तथा सबने नेत्रों को सुशोभित
रती भई, और ज्योतियों को धारती भई सिन्धु से भी
त्यधिक प्रशस्ति को प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ हे वशे ! तू
ुवर्ण से सुशोभित खडी थी तभी द्रुतगामी समुद्र अधिस्कन्दित
ो गये थे ऐसी मानता है ॥ १६ ॥ जहाँ कहीं भी दीक्षित
अथर्वा कुशाओं पर विराजते हैं वहाँ पर वशा देष्ट्री और स्वधा

गड्डल करो पानी हो जाती है ॥ १७ ॥ हे स्वधे ! क्षत्रिय की जन्म-दायिनी वशा मानी जाती है। तेरी भी वैसे रचना करने वाली है। वशा का मन शस्त्र है फिर चित्त उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हे वशे ब्रह्म के बुद्बुद से उभरने वाले एक बिन्दु से तेरी पैदायश हुई और तत्पश्चात होना पैदा हुआ है ॥ १९ ॥ हे वशे ! गाथा म तेरे मुख से निकली मानी जाती है उष्णिहा नाड़ियों से बल की उत्पत्ति हुई, बल से यज्ञ की उत्पत्ति हुई और तेरे स्तनों से किरणों की उत्पत्ति हुई ॥२०॥

ईर्माभ्यामयन जात सक्थिभ्यां च वशे तव ।
ग्रामभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुध ॥२१॥
यदुदर वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥२२॥
सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वा ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभि क्लृप्त स ह्यस्या बन्धु ॥२३॥
युध एक स सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षु रभवद् वशा ॥२४॥
वशा यज्ञ प्रत्यगृह्णाद वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥२५॥
वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेव सर्वमभवद देवा मनुष्या असुरा पितर ऋषय ॥२६॥
य एव विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
यथा हि यज्ञ सर्वपाद दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥२७॥
तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासा या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥
चतुर्धा रेतो अभवद् वशाया ।
आपस्तुरीयममृत तुरीय यज्ञस्तुरीय पशवस्तुरीयम् ॥२९॥
वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णु प्रजापति ।
वशाया दुग्धमपिब त्साध्या वसवश्च ये ॥३०॥

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥
सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥३२॥
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥३३॥
वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्याउत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥३४॥

हे वशे ! तेरे प्राणों एवम् अपूर्व शक्तियों से अयन हुआ, आँतों से पुत्र और उदर से लताऐं की उत्पत्ति हुई ॥ २१ ॥ हे वशे ! तू जब वरुण के उदर मे प्रवेश हो गई तो ब्रह्मा ने तेरे को बाहर निकाला, वही तेरे नेत्र को जानने वाले है ॥ २२ ॥ गर्भ से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण प्राणी डर का अनुभव करते हैं, यह वशा ही उनकी उत्पत्ति करती है । मन्त्रो से समर्थ होने वाला यह कर्म उनके भाईपन का कार्य करता है ॥ २३ ॥ केवल साम युध ही रचने वाला है, वही इसका वशी है, तरस को यज्ञ मानते हैं, और यज्ञ वालो का चक्षु दशा माना जाता है ॥ २४ ॥ वशा ही यज्ञ का प्रति ग्रहण कार्य करती है, वशा ही सूर्य को [illegible]ा स्थान रखने मे समर्थ है, वशा मे ही ब्रह्मा सहित, ओदन निहित माना जाता है ।२५। वशा ही अमृत कहलाने में समर्थ वह मृत्यु रूप से भी उपास्य है । पितर, देवता, ऋषि और [illegible]न्य सभी इस वशा से युक्त है ॥ २६ ॥ इस प्रकार ज्ञाता [illegible] का प्रति ग्रहण करने वाले के समान है सब पापो से सपूर्ण [illegible]ता को उसके कर्म का फल देने मे कभी आनाकानी नही है ॥ २७ ॥ तीन जिह्वायें वरुण के मुख मे चमकती है । उनमे जो भी जिह्वा सुशोभित होती है वही वशा है ॥ २८ ॥ इस वशा का रज चार भागो मे विभक्त है । एक भाग अमृत, एक भाग जल, एक भाग पश और

एक भाग यज्ञ होता है ॥ २६ ॥ द्यो-लोक और पृथ्वी-लोक भी वशा ही है। विष्णु और प्रजापति भी वशा ही हैं, साध्य और वसु वशा का ही पान करते हैं ॥ ३० ॥ वशा के दूध को पान करने वाले ये साध्य और वसु सूर्य-मण्डल मे विद्यमान देवाकाश मे दूध की दी उपासना करते देखे गए हैं ॥ ३१ ॥ एक सोम का दोहन कार्य करते हैं, दूसरे घृत प्राप्त करते हैं, इस प्रकार जानने वाले को जिसने वशा दी उनको स्वर्ग की प्राप्ति हो गई ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणो को वशा दान करने वाला सम्पूर्ण लोको के सुख को भोगता है। सत्य, ब्रह्म और तप इस वशा मे ही आश्रित होते है ॥ ३३ ॥ वशा के द्वारा देवताओ ने जीविका को प्रदान किया। मनुष्य भी उससे जीविका का साधन दे सकते हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जहाँ तक कि सूर्य अपने दीव्य चक्षुओ से देख सकता है वह सब स्थान वशा रूप ही होता है ॥३४॥

मुद्रक—गोपीनाथ मोहन, भगवत् प्रिंटिंग प्रेस, घीयामण्डी मथुरा।